॥ श्रीः ॥

विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला

२

महाकविश्रीसुबन्धुविरचिता

वासवदत्ता

'प्रबोधिनी' संस्कृत-हिन्दीटीकोपेता

टीकाकारः

पं० श्री शङ्करदेव शास्त्री

प्रस्तावनालेखकः

पं० श्री शिवदत्त शुक्ल एम. ए.

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयाध्यापकः ।

चौखम्बा विद्या भवन, चौक, बनारस–१

२०११] [ई० १९५४

प्रकाशकः—
चौखम्बा विद्या भवन,
चौक, बनारस

Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Banaras-1
1954
मूल्यं ४)

मुद्रक—
विद्याविलास प्रेस,
बनारस

श्रीर्जयति

प्रस्तावना

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥ (भट्टबाण)

संस्कृत साहित्य और उसका विकास

भारतीय परम्पराओं को समस्त विश्व में सर्वोच्च सम्मान पाने का एकमात्र कारण इस देश का सर्वाङ्गपूर्ण महनीय वाङ्मय समुद्र ही रहा है। सुप्रसिद्ध भारतीय प्राचीन पुस्तकों के संग्राहक महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने एक बार अपने भाषण में भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थों के विषय में कहा था कि—

'विष्णोरिवाऽस्याऽनवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा'

यह कालिदास की उक्ति संस्कृत भाषा के ग्रन्थों पर चरितार्थ होती है। वेद, उपनिषत्, सूत्र, संहिता, स्मृतियां, पुराण, तन्त्र, शल्य, चिकित्सा, काव्य, नाटक राजनीति आदि विभिन्न विषयों पर आज भी नये-नये मौलिक निबन्ध अन्वेषकों को प्राप्त हो ही रहे हैं, इन बातों को देखते हुए मनु की इस उक्ति—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'

को नतमस्तक होकर कौन भला स्वीकार नहीं करेगा?

शास्त्र और काव्य

इस वेदमूलक वाङ्मय धारा की दो प्रधान शाखाएं विद्वानों ने स्वीकार की हैं, एक शास्त्र और दूसरी काव्य। ये दोनों ही प्रवाह एक महानद के २ रूप हैं, तथा परस्पर के पूरक भी हैं। परन्तु दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि दोनों की पद्धति कुछ भिन्न है, एक कठोर नियमों के साथ लक्ष्य की ओर ले जाता है, तो दूसरा अभिन्न मित्र की तरह सहज ही वार्तालाप के साथ आनन्द विभोर करते हुए अनायास लक्ष्य तक पहुँचा देता है—

'कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम्।
आह्लाद्यमृतवत् काव्यमविवेकगदापहम्॥'

व्याधिनिवृत्ति तो दोनों ओषधियों से होगी, परन्तु दोनों की अपनी पद्धति भिन्न है।

काव्य का क्षेत्र

शास्त्र की अपेक्षा काव्य का क्षेत्र अधिक व्यापक है। कवि के सामने सैकड़ों, हजारों पिपासाकुल जनता खड़ी है। उसे, अन्तःकरण तक पहुंचने वाले, सरस-शीतल,

प्रसन्नमधुर, वाङ्मय-रसायन की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति परिनिष्ठित कवि के द्वारा ही सम्भव है। इस बात को हमारे प्राचीन आचार्य भली भांति जानते थे। उन्होंने मनोवैज्ञानिक पद्धति का आश्रय लेकर हजारों प्रबन्धों की रचना कर डाली।

गद्य और पद्य

काव्य दो प्रकार का है—पहला दृश्य और दूसरा श्रव्य। इन दोनों प्रकारों में शब्दार्थ संघटन गद्य या पद्य के द्वारा किया जाता है। गद्य की अपेक्षा पद्यमय रचनाओं का प्राचुर्य है। इसके अनेक कारण हैं। पद्य लयबद्ध होने के कारण आकर्षण उसमें अधिक है और लेखक तथा लेखन-कला के अभाव में कण्ठ में भी पद्य की स्थिति सुरक्षित रहती थी। केवल काव्य ही नहीं अपितु विभिन्न शास्त्रों के भी प्रायः सभी ग्रन्थ अधिकांश पद्य में ही लिखे गए हैं।

यद्यपि संस्कृत-साहित्य के प्रमुख महाकाव्य पद्य में ही लिखे गए हैं, परन्तु गद्य-रचना कम होते हुए भी नितान्त रमणीय उपलब्ध होती है। प्राचीन विद्वज्जनों की दृष्टि में तो पद्य की अपेक्षा गद्य-निर्माण को अधिक कठिन, श्रम-साध्य समझा जाता था—

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।'

छन्दोबन्ध के कारण पद्य में स्वयं ही लय बन जाता है। जो कवि की त्रुटियों का पूरक हो सकता है; परन्तु गद्य में विषय-विन्यास एवं शब्द-रचना का समुचित सामञ्जस्य रहे विना आकर्षण उत्पन्न हो ही नहीं सकता। अतः विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न कवि ही गद्य-निर्माण के लिए लेखनी उठाने का साहस करते थे।

गद्य के प्रकार

अलङ्कारशास्त्र की दृष्टि में गद्य का लक्षण यह है—

'वृत्तबन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
भवेदुत्कलिका प्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्॥
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्।
अन्यद् दीर्घसमासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम्॥

गद्य काव्य के भेद

गद्य काव्य के प्रमुख भेद दो हैं—(१) कथा (२) आख्यायिका। अन्य भी कुछ भेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु आचार्य दण्डी की 'अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः' इस उक्ति के अनुसार प्रमुख भेद दो ही हैं।

वासवदत्ता

कविवर सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' गद्यकाव्य के 'कथा' के लक्षण के अनुसार ही निर्मित की गई है। कथा-साहित्य में प्रायः कल्पित कथा वस्तु को लेकर दीर्घवर्णनों के द्वारा मनोरम सन्निवेश का प्रयास कविगण करते रहे हैं। कथा का लक्षण यह है—

'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्॥'

आख्यायिका में बीच-बीच में आश्वास या निःश्वास, नामक परिच्छेद रहते हैं। आख्यायिका प्रायः किसी राजा के चरित्र के विषय में ही लिखी जाती है। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' तथा उसी के अनुकरण में लिखे हुए वामनभट्ट बाणकृत 'वेमभूपाल चरित' को देखते हुए यह धारणा दृढ़ होती है। वैसे तो अत्यन्त प्राचीन काल से ही अनेक आख्यायिकाओं की चर्चा सुनने में आ रही है—कात्यायन के वार्त्तिक में—'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' आख्यायिकाओं की चर्चा की गई है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी 'यवक्रीत' 'प्रियङ्गव', 'ययाति' प्रभृति के आख्यान का निर्देश किया है तथा 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा', 'भैमरथी' प्रभृति आख्यायिकाओं की गणना की है। परन्तु ये प्रबन्ध इस समय उपलब्ध नहीं हैं। काल की कराल चेष्टाओं ने आजतक अनेक ग्रन्थों को विलुप्त कर डाला है, जिनका नाममात्र से कुछ परिचय हम प्राप्त कर सकते हैं। भट्टबाण ने भट्टार हरिश्चन्द्र की बड़ी प्रशंसा की है 'भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते' (ह० च०)। वररुचि की 'चारुमती' रामिल-सोमिल कृत 'शूद्रक कथा' जिसका उल्लेख जह्लण ने अपने सुभाषित ग्रन्थ में किया है, केवल नाममात्र से ही उपलब्ध है।, यही स्थिति धनपाल के द्वारा 'तिलकमञ्जरी' में उद्धृत 'तरङ्गवती' की भी है। इन सब ग्रन्थों की चर्चा देखते हुए, हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि कथा साहित्य भी अत्यन्त चिरकाल से संस्कृत सरस्वती के पावन अङ्क में लालित-पालित होकर परिपुष्ट होता रहा है।

सुबन्धु के विषय में

सुबन्धु-बाण-दण्डी संस्कृत गद्यकाव्य के क्षेत्र की यह रत्नत्रयी है। यद्यपि इन कवियों से अत्यन्त प्राचीन शिलालेखों में परिष्कृत, एवं रमणीय गद्यशैली के

दर्शन होते हैं, अतः गद्य की परम्परा तो अव्याहत चल ही रही थी, परन्तु उपलब्ध ग्रन्थ के रूप में 'वासवदत्ता' ही सर्वप्रथम गद्यकाव्य है। प्राचीन शिलालेखों में रुद्रदामन का गिरिनार का शिलालेख (ई० १५०) भाषा की दृष्टि से दर्शनीय है। उसके परवर्ती शिलालेखों में गुप्तकाल के शिलालेख (ई० ४००—५००) भी दर्शनीय हैं।

सुबन्धु का समय

हमारे विचार में सुबन्धु ही उपलब्ध संस्कृत गद्यकाव्य निर्माताओं में सर्वप्रथम हैं, यद्यपि इतिहासज्ञ पण्डितों की सम्मति में अनेक दृष्टियां इस विषय पर हैं। कुछ लोग सुबन्धु को बाण का परवर्ती सिद्ध करने पर तुले हुए हैं, 'वक्रेणेवेन्द्रायुधेन मनोजवनाम्ना तुरगेण सह नगरान्निर्जगाम' इस वाक्य में 'इन्द्रायुध' शब्द से ही कादम्बरी के चन्द्रापीड के 'इन्द्रायुध' नामक घोड़े का स्मरण यहां पर किया गया है। यह कल्पना की जाती है। अतः सुबन्धु बाण से परवर्ती होना चाहिए। कथानक की समानता, राजपुत्र का विरही बनकर घूमना, आकाशवाणी के द्वारा आत्महत्या का निषेध आदि समान घटनाचक्र भी बाण के अनुकरण को सूचित करता है। इस मत का समर्थन करनेवाले हैं पं० कृष्णमाचारियर, जिन्होंने अपने 'वासवदत्ता' की विस्तृत भूमिका में सुबन्धु के अनेक दोषोद्घाटन पर विशेष जोर दिया है। परन्तु इसके विपरीत अनेक विद्वानों ने प्रबल प्रमाणों के द्वारा यह निश्चित कर दिया है, कि सुबन्धु के अनन्तर ही बाण का समय आता है। म० म० काणे महोदय ने 'कादम्बरी' की भूमिका में यह बात स्पष्ट की है, इसके अतिरिक्त वामन (ई० ८००) ने अपने काव्यालङ्कार सूत्र में सुबन्धु तथा बाण के ग्रन्थों से उद्धरण दिए हैं। इससे भी पूर्ववर्ती 'गउडवहो' के निर्माता प्राकृत भाषा के कवि 'वाक्पतिराज' (ई० ७३६) ने केवल सुबन्धु की ही प्रशंसा की है। इससे मालूम होता है कि उस समय सुबन्धु प्राचीन होने के नाते बाण से अधिक प्रसिद्ध रहे होंगे। इससे भी परिपुष्ट प्रमाण तो यह है कि एक स्थान पर सुबन्धु ने **'न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपां, बौद्धसंगतिमिवालङ्कारभूषिताम्'** इत्यादि वाक्यों का प्रयोग किया है। पाश्चात्य विद्वान 'कीथ' महोदय की सम्मति में सुबन्धु ने श्लेष के द्वारा 'न्यायवार्तिक' के रचयिता 'उद्योतकर' तथा बौद्धधर्मकीर्ति के 'बौद्धसङ्गत्यलङ्कार' का ही निर्देश किया है। अतः समुचित यही मालूम होता है, कि सुबन्धु का समय ई० ५०० या उससे कुछ पूर्व ही माना जाय।

सुबन्धु की शैली

सुबन्धु को 'महाकवि' कहने में हमें कोई भी सङ्कोच नहीं है। पं० कृष्णामाचारियर महोदय ने समालोचना करते हुए बहुत सी बातों को ध्यान में नहीं रखा है। एक तो सुबन्धु ने अपनी ही कल्पना के आधार पर कथानक तथा रचना शैली दोनों का निर्माण किया। 'वासवदत्ता' की प्राचीन कथा तथा सुबन्धु की 'वासवदत्ता' से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। प्राचीन वत्सराज की आख्यायिका का कुछ भी सम्बन्ध न होना सुबन्धु का कोई दोष नहीं है। पं० कृष्णमाचारियर इसे सुबन्धु का अपराध मानते हैं। परन्तु कल्पना के लिए कवि स्वतन्त्र है। उसने अपनी ही कल्पना-प्रसूत 'कथा' को लिया, इससे क्या हुआ! 'वासवदत्ता' एक सरस, एवं सरल प्रेमकथा है। इस कथा के बहाने कवि ने 'संस्कृत' गद्य निर्माण में अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रचुर प्रदर्शन किया है। विशेषतः 'श्लेष' निर्माण प्रयास कवि का श्लाघनीय है। यद्यपि श्लेष के अतिशय प्रयोग से कहीं २ सरसता तथा घटना की रूपरेखा अस्पष्ट सी होने लगती है, तथापि इस विशेष शैली की अमिट छाप वाचकों के अन्तःकरण पर प्रतिबिम्बित हुए बिना नहीं रहती। बाणभट्ट ने इसी आशय से कवि सुबन्धु की प्रशंसा में कहा है कि—

'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया'

कवि की प्रतिज्ञा भी यही है—

'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्।'

परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सुबन्धु की एक यही मात्र शैली है। भिन्न भिन्न स्थलों पर गद्य रचना के सभी प्रकार कवि ने प्रदर्शित किए हैं। मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय, चूर्णक, चारों गद्य के प्रकार सुबन्धु की रचना में प्राप्य हैं।

इसके अतिरिक्त भावप्रधान कोमल वाक्यरचनाओं की भी कमी इस कवि की रचना में नहीं है। उदाहरण के लिए देखिए **'रविविरहविधुरायाः कमलिन्या हृदयमिव द्विधा पपाट चक्रवाकमिथुनम्। आगमिष्यतो हिमकरदयितस्य पार्श्वे सचरन्ती कुमुदिन्या भ्रमरमाला दूतीवाऽलक्ष्यत'** इत्यादि।

इसी प्रकार आरम्भ के पद्य भी कवि की परिपक्व रचना शैली के प्रमाण हैं। इन सब बातों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि 'सुबन्धु' को गद्यकाव्य-निर्माण के इतिहास में सर्वोच्च स्थान दिया जाना चाहिए। बाणभट्ट तो अपनी महत्ता से विख्यात ही हैं, परन्तु पूर्ववर्ती आदर्शभूत कवियों में सुबन्धु की प्रमुख

स्थिति है। और सभी प्रकार की रचनाओं में अप्रतिहत गति सरस्वती का प्रसाद पाकर यह 'महाकवि' सचमुच 'महाकवियों' की श्रेणी में अपना प्रमुख स्थान बनाए हुए हैं, यह कहना ही पड़ेगा।

प्रस्तुत संस्करण के विषय में

'चौखम्बा विद्या भवन' के संस्थापकों ने संस्कृत साहित्य के प्रकाशन द्वारा जो देश की सेवा का संकल्प किया है वह परम स्तुत्य है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की अपेक्षा आधुनिक परीक्षाओं की पुस्तकों के प्रकाशित करने में आय की अधिक संभावना होती है किन्तु इन लोगों ने मुख्यतया देववाणी की सेवा का दृष्टिकोण रखकर ही स्वल्प लाभकर मार्ग का आश्रय लिया है। प्रस्तुत संस्करण इन लोगों की इसी प्रवृत्ति का परिचायक है।

वासवदत्ता के प्रस्तुत संस्करण को अधिक उपयोगी बनाने के हेतु इस संस्करण में सुयोग्य विद्वान् श्री पं० शङ्करदेव शास्त्री द्वारा हिन्दी भाषान्तर भी दिया गया है। इससे इसकी उपादेयता अधिक बढ़ गयी है। आधुनिक युग में संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद राष्ट्रभाषा में स्वतन्त्र रूप से पृथक् प्रकाशित करने की अपेक्षा मूल के साथ देना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

भूमिका के सम्बन्ध में

प्रकाशकों के प्रेमवश मुझ जैसे अल्पज्ञ को इस इतिहासप्रसिद्ध संस्कृत साहित्यगगन के देदीप्यमान् ग्रन्थचन्द्र के साथ अपने द्वारा लिखी गयी भूमिका को सम्बन्ध करने में भय सा लगता है कि सम्भवतः यह कहीं विधु के सौन्दर्य में कलङ्कवत् न प्रतीत हो, तथापि विद्वानों के सौजन्य तथा विश्वासवश अपनी योग्यता के अनुरूप दो शब्द लिख दिये हैं। इस भूमिका को प्रस्तुत करने में मुझे मित्रवर श्री पं० बटुकनाथ जी खिस्ते साहित्याचार्य, एम० ए०, अध्यापक साहित्य विभाग, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस से विचार विमर्श करने में परम सहायता मिली है अत एव मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। मेरे सहयोगी श्री भाई रामसुशील जी ने इसकी प्रेसकापी तैयार की है, इस हेतु मैं उनका भी ऋणी हूँ। किमधिकं विज्ञेषु।

अनन्तचतुर्दशी
सं० २०११

विदुषां वशंवदः
—शिवदत्त शुक्ल

॥ श्रीः ॥

वासवदत्ता

'चपला' संस्कृत-हिन्दीटीकोपेता

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः ।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥ १ ॥

प्रणम्य परमानन्दं संस्मृत्य च गुरुपदाम्बुजद्वन्द्वम् ।
वासवदत्ताव्याख्यामतीवसरलां तनोमि चपलाख्याम् ॥
यद्यपि लसन्त्यनेकाः स्फीताष्टीकाः सुधीभिरारचिताः ।
छात्राणां हितबुद्धया रचनेयं प्रीतये सतामस्तु ॥

प्रारिप्सितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तये कृतं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै निबध्नाति— करबदरेति—**यस्याः सरस्वतीदेव्याः प्रसादतः अनुग्रहेण कवयो विद्वांसः अल्पधियोऽपीति भावः । सूक्ष्मा तत्तद्दुरूहविषयग्रहणपट्वी मतिर्बुद्धिर्येषां तादृशाः सन्तः, अखिलं समस्तं भुवनतलं भुवनस्वरूपम् 'अधःस्वरूपयोरस्त्री तलम्' इत्यमरः । करे हस्ते बदरं बदरीफलं, विकारार्थे समुत्पन्नस्याणो 'फले लुक्' इति लुक् । तत्सदृशं, पश्यन्ति विलोकयन्ति । याथार्थ्येनानायासेन च सकलं जगत् विजानन्तीति भावः । सा एतादृशमहामहिमशालिनी, प्रसिद्धा वा सरस्वती देवी वागधिदेवता जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । चिकीर्षितस्य ग्रन्थनिर्माणरूपस्य कर्मणो वाग्रूपत्वादादौ तदधिष्ठातृदेवताया एव कीर्तनं कृतं कविनेति विभावनीयम् । आर्यावृत्तम् ॥ १ ॥**

परब्रह्मका वन्दनकर अभिनन्दनकर श्रीगुरु-जनका ।
जिनकी अनुकम्पासे पाया प्रिय-प्रकाश विद्या-धनका ॥
वासवदत्ता अतिरुचिराकी चपला-**टीका करता हूँ ।**
संस्कृतकी मधु-मधुर-सुधाको हिन्दीघटमें भरता हूँ ॥

(क) जिसकी कृपासे तीव्र-बुद्धि कविलोग समस्त संसारको हाथमें स्थित बेरके समान-अत्यन्त स्पष्ट देखते हैं; वह **सरस्वती**देवी विजयको प्राप्त होती है ।

(ख) जिनकी निर्मलताके कारण अल्पबुद्धि, जलमें रहनेवाले पक्षी, जलके तलप्रदेशको हाथमें स्थित बेरके समान साफ-साफ देखते हैं वह **सरस्वती** नदी सर्वोत्कृष्ट है ॥ १ ॥

खिन्नोऽसि मुञ्च शैलं बिभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुजः ।
भरभुग्नविततबाहुषु गोपेषु हसन् हरिर्जयति ॥ २ ॥
कठिनतरदामवेष्टनलेखासन्देहदायिनो यस्य ।
राजन्ति बलिविभङ्गाः स पातु दामोदरो भवतः ॥ ३ ॥

खिन्न इति—हे कृष्ण ! त्वं खिन्नः श्रान्तोऽसि, गोवर्धनधारणादिति भावः । अतः शैलम् एनं पर्वतं मुञ्च जहीहि, वयं सर्वे बिभृमो धारयामः, इति गोपेषु वदत्सु कथयत्सु शिथिलः शिथिलीकृतो न तु सर्वथाकर्षितो भुजो बाहुर्येन सः तथोक्तः । एते कथमपि पर्वतममुं धारयितुं न क्षमा इति धिया कृष्णेन स्वबाहुनाकर्षितः केवलं तत्परीक्षायै शिथिलित एवेति बोध्यम् । ततः, भरेण गोवर्धनभारेण भुग्नाः कुटिलाः, वितताः विस्तृताः प्रलम्बा बाहवो येषां ते तेषु तथोक्तेषु सत्सु हसन् हरिः कृष्णः जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । अत्र युष्माभिर्बहुभिः प्रलम्बेष्वपि बाहुषु पर्वतो धारयितुं न शक्यते मया तु एकस्मिन्नेव लघीयसि बाहौ धृतः स इत्युपजहास हरिर्गोपानिति 'वयं, वितत' शब्दशक्तिगम्यम् । 'भुग्न' इत्यत्र भुजूधातोः क्तः । ओदितश्चेति निष्ठानत्वम् ॥ २ ॥

कठिनेति—यस्य दामोदरस्य कृष्णस्य, कठिनतरेण अतिकठिनेन दाम्ना रज्ज्वा यद्वेष्टनं वन्धनं, यद्वा कठिनतरम् , अतिदृढं यत् दाम्ना वेष्टनं तस्य लेखानां रेखाणां सन्देहं संशयं दातुं शीलं येषां ते तथोक्ताः, वलिविभङ्गाः त्रिवलिपङ्क्तयः 'वलिस्त्रिवलिदैत्ययोः' इति विश्वः । राजन्ति शोभन्ते स दामोदरः कृष्णः । भूतपूर्वगत्या दामोदरत्वं बोध्यम् । भवतो युष्मान् पातु रक्षतु ॥ ३ ॥

(क) 'तुम थक गये हो, पर्वतको छोड़ दो, हम संभाले रहेंगे' ऐसा गोपोंके कहनेपर हरिने अपनी भुजाको कुछ शिथिल कर लिया, तब गोपोंकी भुजाएँ बोझसे झुक गयीं और व्यर्थ हो गयीं, पर्वतके बोझको संभाल न सकीं । इसपर हरि हँसने लगे । इसप्रकार हँसते हुए हरि विजयको प्राप्त हों ।

(ख) (पक्षान्तरमें इन्द्रकी पूजाके लिये उद्यत परन्तु भगवान्के रोकनेपर विरत नन्दादिकी इन्द्रके प्रति यह उक्ति है) 'हे इन्द्र ! हमें बड़ा पश्चात्ताप है (मूर्खतासे अब तक तुम्हारी पूजा करते रहे इसका बड़ा खेद है), अब हमें छोड़ो, हम गोवर्धन पर्वतकी ही आराधना करेंगे' गोपोंके ऐसा कहनेपर हविर्भोक्ता इन्द्र हँसने लगे । परन्तु गोपोंके अपने निश्चयपर दृढ़ रहनेपर उनका अभिमान दूर हो गया (और उन्होंने हरि-विष्णुकी स्तुतिकी, भगवान्की कृपासे इन्द्र भी सर्वोत्कृष्ट हो गये) ऐसे इन्द्र सर्वोत्कृष्ट रहें ॥ २ ॥

जिसकी त्रिवलियाँ, अत्यन्त कठोर रस्सीसे बाँधनेकी रेखाओं (चिह्नों) का सन्देह उत्पन्न करती हुई सुशोभित हो रही हैं; वे दामोदर (कृष्ण) आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥

स जयति हिमकरलेखा चकास्ति यस्योमयोत्सुकान्निहिता।
नयनप्रदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरिव॥ ४॥
भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य।
वहति विकाशितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः॥ ५॥
विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः॥ ६॥

स इति—यस्य, उमया पार्वत्या उत्सुकात् औत्सुक्यात् क्रीडारसेनेत्यर्थः। भावप्रधानो निर्देशः। नयनं तृतीयनेत्रमेव प्रदीपो दीपस्तस्य कज्जलजिघृक्षया तदीयकज्जलं ग्रहीतुमिच्छया। ग्रहेः सन्नन्ताद् 'अ प्रत्ययात्' इति स्त्रियाम् अप्रत्ययः। ततष्टाप्। निहिता स्थापिता हिमकरलेखा चन्द्रकला रजतशुक्तिः रौप्यशुक्तिरिव चकास्ति शोभते स एतादृशविशेषणविशिष्टः शिव इत्यर्थः। जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। अत्र विशेषणद्वारा विशेष्यप्रतिपत्तिः॥ ४॥

भवतीति—विस्तारिताः प्रथिताः, सर्वजनसमक्षं वर्णिता इति यावत्। परेषां गुणाः सौशील्यादयो येन स तथोक्तस्य सुजनस्य साधोः सुभगत्वं सौभाग्यमधिकं भवति। पूर्वापेक्षयेत्यर्थः। तथाहि—विकसितानि विकासं प्रापितानि कुमुदानि येन सः तादृशः, हिमकरस्य चन्द्रस्य उद्योतः प्रकाशः कौमुदीति यावत्। 'प्रकाशो द्योत आतपः' इत्यमरः। द्विगुणां पूर्वाभ्यधिकां रुचिं शोभां वहति धत्ते। कुमुदानि विकाश्य यथा चन्द्रोऽतितरां शोभते तथैव परगुणप्रथयिता सज्जनोऽपि, अतः खलैरपि परोपकृतये यतनीयमिति भावः। अत्र विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलंकारः। तल्लक्षणम्—'सामान्यं हि विशेषो वा यदन्येन समर्थ्यते'॥ ५॥

विषधरत इति—खलो दुर्जनः, विषधरतः सर्पादपि अतिविषमः अतिक्रूर इति विद्वांसो विपश्चितः मृषा मिथ्या न वदन्ति न कथयन्ति अपि तु सत्यमेव तेषां कथनम्। यत् यस्मात् कारणात् अयं विषधरः न कुलद्वेषी वंशविरोधी न भवति, यस्तस्यापराध्यति तमेव दशति न तु तत्कुलजानपीति भावः। पिशुनो दुर्जनस्तु 'पिशुनो दुर्जनः खलः' इत्यमरः। सकुलद्वेषी सवंशस्य विरोधी भवति। न केवलमपराधितमेव द्वेष्टि

जिसके सिरपर चन्द्रलेखा इसप्रकार सुशोभित हो रही है, मानों उत्कण्ठित पार्वतीने नेत्ररूपी दीपकपर काजल उतारनेकी इच्छासे चाँदीकी सीप रक्खी हो; वे शिव सर्वोत्कृष्टसे बिराजित हैं॥ ४॥

दूसरेके गुणोंको प्रकट करनेवाले सज्जन और भी अधिक मनोहर प्रतीत होते हैं, कुमुदोंको खिलानेवाली चाँदनी पहिलेसे भी अधिक रमणीक मालूम होती है॥ ५॥

विद्वान् लोग यह मिथ्या नहीं कहते कि दुष्ट पुरुष सर्पकी अपेक्षा भी अधिक क्रूर होता है

अतिमलिने कर्त्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः ।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते चक्षुः ॥ ७ ॥
विध्वस्तपरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम् ।
अन्तरितशशिरुचामपि सलिलमुचां मलिनिमाऽभ्यधिकः ॥ ८ ॥

अपि तु तद्वंश्यानपि द्वेष्टीत्यहो ! खलस्य क्रूरत्वम् । किञ्च, विषधरो नकुलो द्वेपी द्वेष्टा यस्य तादृशो भवति स प्रसिद्धो दुर्जनस्तु कुलद्वेषी स्वकुलविरोध्यपि भवति स्वकुलजानपि द्वेष्टीति तस्य क्रूरत्वं किमु वक्तव्यम् ! सभङ्गश्लेषार्थान्तरन्यासयोः संकरः ॥६॥

अतिमलिन इति—अतिमलिने अतिकृष्णे अतिगर्हिते इति यावत्, कर्तव्ये कार्ये खलानां दुष्टानां धीः बुद्धिः अतीव अत्यन्तं निपुणा तत्तत्कार्यसम्पादनपटुर्भवति । हि यतः अतिमलिनेऽतिघने तिमिरेऽन्धकारे कौशिकानाम् उलूकानां 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः । चक्षुर्नेत्रं रूपं स्वविषयं प्रतिपद्यते गृह्णाति । दिवान्धा अपि उलूका यथा घनान्धकारे सम्यगवलोकयन्ति एवं सत्कर्मणि कर्तव्ये मूढा अपि खला दुष्कर्मणि नितान्तं पटवो भवन्तीति भावः ॥ ७ ॥

विध्वस्तेति—विध्वस्ता निन्दादिभिः कलुषिताः परेषामन्येषां सुजनानां गुणा यैस्ते तेषां खलानामसतां मलिनत्वं कृष्णत्वम्, अकीर्तिरिति यावत्, अतीव अत्यन्तं भवति । यद्यपि स्वोत्कर्षार्थं खलाः परगुणान्निन्दन्ति तथापि तेन तेषामेव दुर्यशः सर्वत्र प्रथितं भवति सज्जनानां तु न किमपि परिहीयत इति भावः । एतदेव दृष्टान्तेन समर्थयति । अन्तरितेति—अपि यतः, अव्ययानामनेकार्थत्वादपिरत्र हेतौ द्रष्टव्यः । अन्तरिता आच्छादिता शशिनश्चन्द्रस्य रुक् कान्तिर्यैस्तेषां सलिलमुचां वर्षाकालिकमेघानां मलिनिमा मालिन्यं कार्ष्ण्यमित्यर्थः, अभ्यधिको भवति । मलिनिमेत्यत्र मलिनशब्दात् पृथ्वादित्वादिमनिच्प्रत्ययः । यद्वा—यदा सलिलमुचां जलवर्षणेनाह्लादितलोकानामपि मेघानां शशिरुचोऽन्तर्धानेन मालिन्यमभ्यधिकं जायते तदा सर्वदैव परपीडननिरतानां खलानां परगुणनिन्दया मालिन्याधिक्ये किमु वक्तव्यमित्यभिप्रायेण स्वार्थ एवापिशब्दो योज्यः । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः, सलिलमुचामिति साभिप्रायविशेषणत्वात्परिकरश्च । 'अलङ्कारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे' इति तल्लक्षणात् ॥ ८ ॥

क्योंकि यह सर्प नकुल (नौला) से ही द्वेष करता है परन्तु अपने सजातीय सर्पोंसे द्वेष नहीं करता लेकिन दुष्ट तो अपने कुलवालोंसे भी द्वेष करता है ॥ ६ ॥

दुर्जनोंकी बुद्धि निन्दित कार्यमें अत्यन्त निपुण होती है। जैसे उलूकोंकी दृष्टि अन्धकारमें भी रूप देखती है ॥ ७ ॥

दूसरेके गुणोंपर पर्दा डालनेवाले (छिपानेवाले) दुर्जनोंकी नीचता और भी अधिक बढ़ जाती है । (प्रायः देखा जाता है कि) चन्द्रमाकी किरणोंको छिपानेवाले मेघोंकी कालिमा (नीलिमा) अधिक हो जाती है ॥ ८ ॥

हस्त इव भूतिमलिनो यथा यथा लङ्घयति खलः सुजनम्।
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायम्॥ ९॥
सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्त्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये॥ १०॥

हस्त इवेति—भूत्या स्वकौशलेन मलिनः कलुषितान्तःकरणः खलो दुर्जनः, भूत्या भस्मना मलिनो मलीमसः, हस्तो दर्पणं मुकुरमिव यथा यथा सुजनं लङ्घयति निन्दति घर्षयति च तथा तथा स दुर्जनो हस्तश्च तं सुजनं दर्पणं च निर्मला उज्ज्वला छाया कान्तिः यशो यस्य तादृशं पक्षे उज्ज्वलप्रभं च कुरुते। उपमालङ्कारः॥ ९॥

सा रसेति—रसन्ति सत् काव्याद्यालापेन शब्दायन्त इति रसः कवयस्तैः सह वर्तमान इति सरस् तस्मिन् सरसि कविमण्डलमण्डित इति भावः। विक्रमादित्ये राजनि सरसीव सरोवर इव कीर्तिरेव शेष इति कीर्तिशेषस्तं गतवति प्राप्ते सति स्वर्गमध्युषित इत्यर्थः। सा प्रसिद्धा तात्कालिकी रसवत्ता सहृदयता परगुणग्राहकतेति यावत्। विहता नष्टा, किंच, नवकाः कुत्सिता नवा नूतना राजानो विलसन्ति विलासं कुर्वन्ति, ऐश्वर्यभोगपरायणा विद्वद्गोष्ठीर्नानुतिष्ठन्तीति भावः। अतः कः कविः कं राजानं नो चरति न गच्छति, स्वाश्रयं लब्धुकामाः कवयो नृपान्नृपं पर्यटन्ति न तु कुत्राप्याश्रयं लभन्ते सर्वेषामेव राज्ञां भोगपरायणत्वादिति भावः। यद्वा, सा रसवत्ता शृङ्गारादिरसवत्ता, गुणवत्ता, ध्वनौ साभिलाषता वा विहता नष्टा अतो नवकाः, अनुकम्पायां कन् अनुकम्पितनवीनकवयो विलसन्ति। गुणग्रहीत्रभावेनास्मदादीनां प्रचारराहित्येनेति भावः। अतः कस्तादृक् पण्डितम्मन्यः कं मूर्धानं 'कं शिरोऽम्बुनोः' इत्यमरः। नो चरति नारोहति। अपि त्वारोहत्येव। यद्वा, सा पुरुषान्तरेऽनुपलभ्यमाना रसवत्ता वीर्यवत्ता विहता अतः कः सबलः कं निर्बलं नो चरति न भक्षति अत्यर्थं पीडयतीति भावः।

पक्षे—वीनां पक्षिणां क्रमेण सञ्चारेण आदित्य इव दीप्तिमति सरसि सरोवरे भुवि पृथिव्यां कीर्तिशेषं नाममात्रावशेषं शुष्कतामिति यावत्, गतवति सति सारसवत्ता सारसः पक्षिविशेषस्तद्वत्ता कमलवत्ता वा 'सारसं सरसीरुहम्' इत्यमरः।

जिसप्रकार राखसे सना हुआ हाथ जैसे-जैसे दर्पणपर घिसा जाता है वैसे-वैसे उसके प्रतिबिम्बको साफ करता है इसीप्रकार ऐश्वर्यमत्त दुर्जन जैसे-जैसे सज्जनका अनादर करता है वैसे-वैसे वह उसकी कान्तिको बढ़ाता है॥ ९॥

जिसप्रकार तालाबके पङ्कमात्र (अथवा स्थलमात्र) शेष रह जानेपर वह सारस पक्षी अन्तर्हित हो जाते हैं (सारसवत्ता=सारसोंसे युक्त होना) बगुले भी दिखाई नहीं पड़ते (शोभित नहीं होते) और न कङ्कपक्षी ही विचरते हैं; इसीप्रकार पृथ्वीपर विक्रमादित्यके

अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम् ।
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥ ११ ॥
गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एव सम्भवति ।
स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुरतले जायते यस्मात् ॥ १२ ॥
सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥ १३ ॥

विहता नष्टा बकाः बकपक्षिणो न विलसन्ति न राजन्ते कङ्की महाबकश्च नो चरति । जलाभावात्सर्वेषामिव यत्र तत्रोड्डीनत्वात् ॥ १० ॥

अविदितेति—न विदिता अज्ञाता गुणा ओजःप्रसादादयो यस्याः तादृशी अपि सत्कवेः रमणीयार्थवर्णनपटोः भणितिर्वचनं कर्णेषु मधुधारां मकरन्दसन्ततिं वमति उद्गिरति। अर्थापरिज्ञानमन्तराऽपि श्रवणमात्रेणैव श्रोतुः श्रोत्र आप्याययतीति भावः। हि यतः नाधिगतो न लब्धः परिमलो गन्धो यस्याः सा अनुवातस्थितत्वात् तादृश्यपि मालतीमाला दृशं नेत्रं हरति आकर्षति ॥ ११ ॥

गुणिनामिति—गुणिनां गुणवतामपि साधूनां निजस्य स्वीयस्य रूपस्य स्वरूपस्य प्रतिपत्तिः ज्ञानं परतोऽन्यस्मादेव विवेचकादेवेति भावः। भवति जायते। यस्मात् यतः, अक्ष्णोः चक्षुषोः स्वमहिम्नः निजरामणीयकविशालत्वादेः दर्शनं ज्ञानमवलोकनं वा मुकुरतले दर्पणे जायते । यथा चक्षुषी स्वविस्तारादिकं दर्पणादेवावगच्छतः एवमहमपि स्वप्रबन्धमाहात्म्यं विवेचकानां विवेचनया ज्ञास्यामि । साधव एव मत्कृतेः सौष्ठवे प्रमाणमिति भावः ॥ १२ ॥

सरस्वतीति—सरस्वत्या वाग्देव्या दत्तेन वरेण अभीष्टलाभेन प्रसादः प्रसन्नता ग्रन्थनिर्माणोत्साह इति यावत् , यस्य सः तथोक्तः । यद्वा—सरस्वत्या दत्तौ वरः श्रेष्ठः प्रसादोऽनुग्रहो यस्मै सः । सुजनानां साधूनामेकौ बन्धुः, अक्षरमक्षरं प्रतीति प्रत्यक्षरं

कीर्तिमात्र शेष रहनेपर वह रसिकता नष्ट हो गयी, नये-नये (कवि अथवा राजा) चमकने लगे और कौन किसको नहीं खाता (पीड़ित करता) है ॥ १० ॥

महाकवियोंकी सूक्तियाँ प्रसाद-माधुर्यादिगुणोंके अनुभव बिना भी केवल सुननेमात्रसे, कानोंमें मधुकी वर्षा करती हैं । जैसे, मालतीपुष्पोंकी माला सुगन्ध ग्रहण किये बिना भी दर्शनमात्रसे दृष्टिको आकर्षित करती है ॥ ११ ॥

गुणवान् पुरुषोंकी भी अपने स्वरूपका ज्ञान दूसरोंके द्वारा ही होता है क्योंकि आँखें अपने बड़प्पनका दर्शन दर्पणमें ही कर सकती हैं ॥ १२ ॥

सरस्वती देवीने वर प्रदान कर जिसपर अनुग्रह प्रकाशित किया है और जो सज्जनोंका

अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणिर्नृसिंह इव दर्शितहिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणो नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः

प्रतिवर्णं यः श्लेष एकेन पदेनानेकार्थाभिधानरूपस्तन्मयस्तत्प्रचुरो यः प्रबन्धो रचना तस्य विन्यासे निर्माणे यद्वैदग्ध्यं नैपुण्यं तस्य निधिराश्रयः, श्लिष्टरचनापटुरित्यर्थः। सुबन्धुनामकः कविः निबन्धं चक्रे विरचयामास। उपजातिवृत्तम्। 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।' इति लक्षणात्॥ १२॥

चिन्तामणिर्नाम राजाऽभूदित्यन्वयः। तमेव विशिनष्टि-पूर्वं भूतो भूतपूर्वः। सुप्सुपेति समासः। 'भूतपूर्वे चरट्' इति निर्देशात् भूतशब्दस्य पूर्वनिपातः। पश्चान्नञ्समासः। तादृक् पूर्वं न कोऽपि अभवदित्यर्थः। सर्वेति—सर्वेषां सकलानामुर्वीपतीनां राज्ञां चक्रस्य समूहस्य चारुः मनोहरा चूडामणिश्रेणी शिरोरत्नपङ्क्तिरेव शाणो निकषस्तस्य कोणेनाग्रभागेन कषणेन घर्षणेन निर्मलीकृताः स्वच्छीकृताः चरणनखाः पादनखा मणय इव यस्य स तथोक्तः। सकलराजभिः प्रणम्यमान इति भावः। नृसिंह इवेति—दर्शितो जनितो लोकानामिति भावः। हिरण्यस्य सुवर्णस्य कशिपोः अन्नवस्त्रादेः, क्षेत्रस्य केदारस्य च दानेन वितरणेन विस्मय आश्चर्यं येन सः। ब्राह्मणादिभ्यो प्रभूतधनादिवितरणेन परमोदार इति भावः। पक्षे-दर्शितः प्रकाशितः हिरण्यकशिपोर्दैत्यविशेषस्य प्रह्लादपितुः क्षेत्रस्य शरीरस्य दानेन विदारणेन विस्मयो येन स तथोक्तः, नृसिंहावतारः। 'क्षेत्रं शरीरे केदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः' इति विश्वः। 'कशिपुस्त्वन्नमाच्छादनं द्वयम्' इत्यमरः। कृष्ण इवेति—श्रीकृष्ण इव, कृतं वसुभिर्धनैर्देवानां तर्पणं तृप्तिर्येन स तथोक्तः। प्रभूतयज्ञाननुष्ठाय तर्पितदेव इत्यर्थः। पक्षे—कृतं वसुदेवस्य स्वपितुः तर्पणं प्रीणनं रक्षणं वा येन स तथोक्तः। नारायणेति—सुकरस्य

एकमात्र बन्धु है उस सुबन्धुने प्रत्येक अक्षरमें श्लेष-द्वारा सप्रपञ्च रचनाकी निपुणताका परिचायक वासवदत्ता नामक ग्रन्थका निर्माण किया है॥ १२॥

अभूतपूर्व एक चिन्तामणि नामक राजा हुए हैं; जिसके चरणोंकी नखरूपी मणियाँ, समस्त राजमण्डलके सुन्दर चूडामणियोंकी पंक्तिरूपी कसौटीके कोनेपर घिसनेसे निर्मल हो गयी हैं अर्थात् सब राजा लोग जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके शरीरको विदीर्ण करके आश्चर्यमें डालनेवाले नृसिंहके समान जिसने सुवर्ण, अन्न-वस्त्र और क्षेत्र (भूमि, खेत) के दानद्वारा सबको आश्चर्यान्वित कर दिया है। वसुदेव (अपने पिता) का तर्पण करनेवाले कृष्णके समान जिसने आठ वसुओं और देवताओंको प्रसन्न किया है (अथवा धनद्वारा जिसने देवतर्पण-यज्ञ किये हैं)। वराहावतारद्वारा पृथ्वीका उद्धार करनेवाले नारायणके समान जिसने बिना प्रयास ही

कंसारातिरिव जनितयशोदानन्दसमृद्धिरानकदुन्दुभिरिव कृतकाव्यादरः सागरशायीवानन्तभोगिचूडामणिमरीचिरञ्जितपादपद्मो वरुण इवाशान्तर-

---

भावः सौकर्यमनायासस्तेन समासादितं लब्धं जितमिति यावत् । धरणिमण्डलं पृथ्वीमण्डलं येन सः । महाबलत्वादनायासेनैव जितसकलमहीपतिरित्यर्थः । पक्षे—सौकर्येण सूकरभावेन वराहावतारेणेत्यर्थः । समासादितमुद्धृतं धरणिमण्डलं येन सः । सौकर्येति ब्राह्मणादित्वात् भावे ष्यञ् । कंसेति—कंसस्य अरातिः शत्रुः कृष्णः स इव, जनिता उत्पादिता यशोदा कीर्तिप्रदा आनन्दा आनन्दकारिणी च समृद्धिर्येन सः । कुल्यादिनिर्माणात् लोकानन्दकर इत्यर्थः । पक्षे जनिता यशोदाया नन्दस्य च समृद्धिर्येन सः । यद्वा–यशोदाया आनन्दसमृद्धिर्येन सः । आनकेति—आनकदुन्दुभिः वसुदेवः स इव । 'वसुदेवोऽस्य जनकः स एवानकदुन्दुभिः' इत्यमरः । कृतः काव्येषु कविनिर्मितिषु आदरः श्रद्धा येन सः । यद्वा-कृतं काव्यं यैस्ते कृतकाव्यास्तेषामादरो येन सः । समादृतकविरित्यर्थः । पक्षे—सर्वे शब्दाः सावधारणा इति नियमात् कं सुखमेव न तु दुःखमव्यते प्राप्यते यैस्ते काव्या देवाः, प्राप्त्यर्थकात् अव्धातोः 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यत् । कृतः काव्यैर्देवैरादरो यस्य स कृतकाव्यादरः । वसुदेव-जन्मसमये देवैर्देवदुन्दुभीर्वादयित्वा तदादरः कृत इति पुराणेषु प्रसिद्धमत एव च तस्यानकदुन्दुभिरिति नाम जातम् । केचित्तु कृतः काव्यायाः पूतनाया दरस्त्रासो येन सः, यद्वा कृतकावी तत्पुत्रौ तयोरादरः कृतो येनेत्यर्थमाहुः । सागरेति—सागरे शयितुं शीलं यस्य स विष्णुः स इव । अनन्तानां बहूनां भोगिनां नृपाणां चूडामणीनां शिरोरत्नानां मरीचिभिर्मयूखै रञ्जितं रक्तीकृतं पादपद्मं चरणकमलं यस्य सः । 'भोगी नृप' इति मेदिनी । पक्षे—अनन्तभोगी शेषस्तस्य चूडामणिमरीचिभिः रञ्जितं चरणकमलं यस्य सः तथोक्तः ।

वरुणेति—आशानां दिशां चतुर्णामपीति भावः । अन्ते रक्षणं यस्य सः । चतुर्दिगन्तशासन इति भावः । यद्वा अशान्तमविरतं रक्षणं यस्य तथोक्तः । पक्षे आशायाः

(अथवा मामूली करोंद्वारा) समस्त पृथ्वीमण्डलको अपने अधीन कर लिया है । यशोदा और नन्दकी समृद्धि-ऐश्वर्यको बढ़ानेवाले कंस-शत्रु कृष्णके समान जिसने कीर्ति, दान और आनन्दकी सम्पत्ति सम्पादित की है । पूतनासे भयभीत होनेवाले वासुदेवके समान जो काव्यों (अथवा काव्यनिर्माता कवियों) का आदर करता था । अनन्त नामक शेषनागकी शिरःस्थित मणियोंकी किरणोंसे जिसके चरण रञ्जित हैं ऐसे समुद्रमें शयन करनेवाले विष्णुके समान जिसके चरण अनेक राजाओंकी चूडामणियोंकी प्रभासे अनुरञ्जित हैं, दिक्पर्यन्त रक्षण करनेवाले (दिक्पाल) वरुणके समान जो शान्ति-

क्षणोऽगस्त्य इव दक्षिणाशाप्रसाधको जलनिधिरिव वाहिनीशतनायकः समकरप्रचारश्च हर इव महासेनानुगतो निवर्तितमारश्च मेरुरिव विबुधालयो विश्वकर्माश्रयश्च रविरिव क्षणदानप्रियश्छायासन्तापहरश्च कुसुमकेतु-

पश्चिमदिशोऽन्ते रक्षणं यस्य सः। अगस्त्येति—अगस्त्यो महामुनिरिव दक्षिणानां कुशलानां परच्छन्दानुवर्तिनां वा आशाया आकाङ्क्षायाः प्रसाधकः प्रकर्षेण साधकः पूरयिता, यद्वा—दक्षिणाया या आशा तस्याः प्रसाधकः। पक्षे दक्षिणाशाया दक्षिणदिशः प्रसाधकोऽलङ्कर्ता। 'दक्षिणः सरलेऽवामे परच्छन्दानुवर्तिनि। वाच्यवद्दक्षिणावाची यज्ञदानप्रतिष्ठयोः' इति विश्वः। जलनिधिरिति—जलनिधिः समुद्र इव वाहिनीनां सेनानां शतस्य नायको नेता, समः सर्वप्रजासु समानरूपो न तु पक्षपातादिना न्यूनाधिकः करस्य राजग्राह्यभागस्य प्रचारो यस्य सः। यद्वा—मा लक्ष्मीस्तया सहितः समः सलक्ष्मीकः करस्य हस्तस्य प्रचारश्चालनं यस्य सः। पक्षे—वाहिनीशतस्य नदीशतस्य नायकः पतिः। मकराणां जलजन्तुविशेषाणां प्रचारेण इतस्ततो गमनेन सहितश्च। 'तरङ्गिण्यां च सेनायां वाहिनी परिकीर्तिता' इति विश्वः। 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः। हरेति—हरो महादेव इव। महत्या विपुलया सेनया वलेन अनुगतोऽनुसृतः, निवर्तितो विनाशितो मारो विघ्नो येन सः। पक्षे—महासेनेन कार्तिकेयेन स्वपुत्रेणानुगतः, निवर्तितो भस्मीकृतो मारः कामो येन सः। 'कार्तिकेयो महासेनः' इत्यमरः। मेरुरिति—मेरुः सुमेरुरिव, विबुधानां विदुषामालयो निवासाश्रयः, विश्वानि सकलानि यानि कर्माणि प्रजापालनादीनि तेषामाश्रयः, तदनुष्ठातेत्यर्थः, पक्षे—विबुधानां देवानामालयो निवासभूमिः। विश्वकर्मणो देवशिल्पिनः सूर्यस्य वा आश्रयो निवासः। 'विश्वकर्मा देवशिल्पी विश्वकर्मा दिवाकरः' इति विश्वः। रविरिवेति—रविः

पूर्वक रक्षा करता था (अथवा—अन्य दिशाओंमें भी क्षण-उत्सवयुक्त, अथवा जिनका रक्षाकार्य सर्वदा प्रवृत्त रहता था। अथवा सब प्रकारकी अभिलाषाएँ जिनकी निवृत्त हो गयी थीं)। दक्षिण दिशाको सुशोभित करनेवाले अगस्त्यके समान जो चतुर-बुद्धिमान् पुरुषोंकी इच्छाओंको पूर्ण करता था (अथवा दक्षिणामें लगी हुई आशाको पूर्ण करता था) अनेकों नदियोंके पति तथा मकरयुक्त समुद्रके समान जो अनेक सेनाओंका अधिपति था तथा जिसके राज्यकरकी व्यवस्था सर्वत्र एक समान थी। (अथवा—जिसके गुप्तचरोंके हाथ सदा धनसे परिपूर्ण रहते थे)। कार्तिकेयसे अनुगत तथा कामदेवको जीतनेवाले महादेवके समान बड़ी भारी सेना जिसके साथ चलती थी और जिसने (अपने सौन्दर्यसे) कामदेवको जीत लिया था। देवताओंके निवास स्थान तथा विश्वकर्मा नामक देव-शिल्पी (अथवा सूर्य) के आवास-स्थल मेरुके समान जो विद्वानों और संसारके रक्षा-रूप कार्यका आश्रय था। रात्रिके अनभिमत (अथवा पूजादि कार्योंके लिये क्षण-समय देनेवाले और

रिव जनितानिरुद्धसम्पद्रतिसुखप्रदश्च विद्याधरोऽपि सुमना धृतराष्ट्रोऽपि गुणप्रियः क्षमामनुगतोऽपि सुधर्माश्रितो बृहन्नलानुभावोऽप्यन्तःसरलो महि-

सूर्य इव, क्षणेषूत्सवेषु दानं धनवितरणं प्रियं यस्य सः, यद्वा—क्षणं प्रतिक्षणं सर्वदेति यावत्, दानं प्रियं यस्य सः। छायया स्वाश्रयप्रदानेन सन्तापं दुःखं पीडितानामिति भावः। हरतीति तथोक्तः। पक्षे—क्षणदा रात्रिर्न प्रिया यस्य सः, रात्रेर्विनाशकत्वात्सूर्यस्येति भावः। छायया स्वकान्त्या स्वालोकेन सन्तापं वियोगजन्यं दुःखं चक्रवाकमिथुनानामिति भावः। हरतीति तथोक्तः। यद्वा—छायायाः स्वपत्न्याः सन्तापहरः। 'अथ क्षण उद्धर्षो मह उद्धव उत्सवः'। 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्युभयत्राप्यमरः। कुसुमेति—कुसुमकेतुः कामः स इव, जनिता उत्पादिता अनिरुद्धा अनिवारिता सततस्थायिनी सम्पदैश्वर्यं येन सः, रतौ सुरते सुखप्रद आनन्दजनकश्च। पक्षे-जनिता अनिरुद्धस्य स्वपुत्रस्य सम्पद् ऐश्वर्यं येन सः, वाणासुरविजयेनेति भावः। रतेः स्वप्रियायाः सुखप्रद आनन्दप्रदश्च। विद्येति—विद्याधरोऽपि देवयोनिविशेषोऽपि सुमनाः विद्यानामष्टादशविद्यानां धारयिता, सुशोभनं निष्कल्मषं मनो यस्य सः तथोक्तः, इति परिहारः। अत्र विरोधाभासोऽलङ्कारः। तथाच 'विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।' इति। धृतराष्ट्रः अम्बिकासूनुरपि गुणप्रियो भीमप्रियः। इति विरोधः, परिहारस्तु—धृतं शासितं राष्ट्रं राज्यं येन स तथोक्तः, गुणाः सन्धिविग्रहादयो दयादाक्षिण्यादयो वा प्रिया अभीष्टा यस्य सः। 'गुणोऽप्रधाने शुक्लादौ गुणः सूदे वृकोदरे' इति विश्वः। क्षमेति—क्षमां भुवमनुगतः प्राप्तोऽपि सुधर्मां देवसभामाश्रितोऽधिष्ठितः। पृथ्वीमाश्रितः कथं देवसभामाश्रयेदिति विरोधः। 'स्यात्सुधर्मा देवसभे'-त्यमरः। परिहारस्तु—क्षमया शान्त्याऽनुगतो युक्तः, शोभनं धर्मं प्रजापालनादिरूपमाश्रितश्च। बृहदिति—बृहन्महान् यो नलतृणविशेषः तस्येव अनुभावः यस्य सः।

प्राणियोंके प्रिय) तथा छाया (अपनी पत्नीके) सन्तापको हरनेवाले सूर्यके समान जो चिन्तामणि उत्सवोंमें दान देनेवाले और अपनी कान्तिसे (प्रजाके) सन्तापको दूर करते थे। अनिरुद्धरूपी सम्पत्तिको उत्पन्न करनेवाले तथा रति (पत्नी) को आनन्दित करनेवाले कामदेव (प्रद्युम्नके समान) जो (किसीसे भी) अनिवार्य सम्पत्ति उत्पन्न करते और (अपनी पत्नियोंको) क्रीड़ा सुख पहुँचाते थे। (यहांसे आगे विरोधाभास अलङ्कार है) जो विद्याधर (देवयोनिविशेष) होते हुए भी देव थे (यह विरोध है) वस्तुतः जो चारो विद्याओंके धारण करनेवाले और उदार हृदय थे। धृतराष्ट्र (दुर्योधन-पिता) होते हुए भी भीमसेनसे प्रेम करते थे (वस्तुतः) जो चिन्तामणि राज्यका सुप्रबन्ध करनेवाले और गुणोंपर प्रेम करते थे। जो पृथ्वीपर रहते हुए भी देवसभामें निवास करते थे (वस्तुतः) जो क्षमाशील थे और उत्तम धर्मका पालन करते थे (अथवा धर्मात्मा पुरुषोंके आश्रय थे)। जो बड़े नल (तृणविशेष अथवा पद्मविशेष) से उत्पन्न होते हुए भी बीचमें सरल नामक वृक्ष थे (वस्तुतः) जो बृहन्नलाके समान प्रभावशाली और अन्तःकरण के उदार थे। भैंससे

महिषीसंभवोऽपि वृषोत्पादी, अतरलोऽपि महानायको राजा चिंतामणिर्नाम। यत्र च शासति धरणिमण्डलं छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु नास्तिकता चार्वाकेषु कण्टकयोगो नियोगेषु परीवादो वीणासु खलसंयोगः शालिषु द्विजिह्व-

---

प्रयत्नानपेक्षः सन्नपि प्रवर्धनशील इत्यर्थः। एतादृशः पुनः कथम् अन्तः मध्ये सरलः इति विरोधः। परिहारस्तु—बृहन्नलानुभावः अर्जुनप्रभावः अन्तःसरल इति परिहारः।

महिषीति—महिष्याः महाक्षीरायाः सम्भवो जन्म यस्य तादृशोऽपि वृषं वृषभमुत्पादयतीति तथोक्तः, महिषीपुत्रो महिष एव सम्भवति स च कथं भिन्नजातीयं वृषमुत्पादयितुमर्हेत् इति विरोधः। महिष्यां कृताभिषेकायां राजपत्न्यां सम्भवो यस्य तादृशः, वृषं धर्ममुत्पादयति जनयति शुभकर्मभिरिति वृषोत्पादी इत्यविरोधः। 'कृताभिषेका महिषी भोगिन्योऽन्या नृपस्त्रियः।' 'पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः' इत्यमरः। अतरलेति—अतरलो हारमध्यमणिभिन्नोऽपि महानायको हारमध्यमणिरिति विरोधः। 'तरलो हारमध्यगः।' इत्यमरः। 'नायको नेतरि श्रेष्ठे हारमध्यमणावपि' इति विश्वः। परिहारस्तु—अतरलोऽचञ्चलः स्थिरमतिरिति यावत्। महान् नायको नेता चेत्यविरोधः।

यत्रेति—यस्मिन् चिन्तामणौ राजनि धरणिमण्डलं भूवलयं शासति सति, वादेषु शास्त्रार्थेषु छलो वाक्छलो, निग्रहः प्रतिज्ञाहान्यादिः न्यायशास्त्रोक्तः, तयोः प्रयोग-आसीन्न तु प्रजासु छलस्य कपटस्य निग्रहस्य बन्धनदण्डादेः प्रयोग उपयोगोऽभवत् प्रजानां धर्मवृत्तित्वात् वधादियोग्यतदपराधाभावाच्च। नास्तिकता परलोकाभावस्वीकारत्वं चार्वाकेषु बृहस्पतिमतानुयायिषु आसीत् न तु प्रजासु नास्तिकता दुःखमासीत्, नास्ति कं सुखं यस्य स नास्तिकस्तस्य भावो नास्तिकतेति व्युत्पत्तेः। नास्तिकता निर्धनता वा। कण्टकेति—नियोगेषु अपुत्रभ्रातृपत्नीपुत्रार्थं नियोजनेषु कण्टकयोगो

उत्पन्न भी बैलको उत्पन्न करनेवाले थे (वस्तुतः) रानीके गर्भसे उत्पन्न और धर्मका उत्पादन करनेवाले थे। तरल-मध्यमणि न होते हुए भी महानायक-मध्यमणि थे (वस्तुतः) जो धीर गम्भीर और उत्तम नेता थे।

जिसके शासनकालमें, छल, जाति और निग्रह (स्थान) का प्रयोग वादविवादमें ही होता था परन्तु (प्रजाओं अथवा उनके व्यवहारोंमें) छलपूर्वक (शूद्रादि) जातियोंका निग्रह नहीं होता था। नास्तिकता-परलोकाभावबुद्धि चार्वाकोंमें ही थी, प्रजाओंमें नास्तिकता-दरिद्रता नहीं थी। (पारस्परिक) संयोगोंमें ही कण्टक-रोमाञ्च होता था, प्रजाओंमें कण्टक-सूचीके अग्रभागका (अङ्गुलीके अग्रभागमें) सम्बन्ध कभी नहीं होता था (क्योंकि ऐसा कोई अपराध नहीं किया जाता था जिससे इसप्रकारका दण्ड दिया जाय।)

सङ्गृहीतिराहितुण्डिकेषु करच्छेदः क्लृप्तकरग्रहणेषु नेत्रोत्पाटनं मुनीनां द्विजराजविरुद्धता पङ्कजानां सार्वभौमयोगो दिग्गजस्याग्नितुलाशुद्धिः

रोमाञ्चाविर्भावः, यद्वा—नियोगेषु आज्ञादानेषु कण्टकस्य अनेनेदं भुक्तमिति स्वामिनि कथकस्य योगः संबन्ध आसीत् न तु राज्ये प्रजासु वा कण्टकयोगः क्षुद्र-शत्रुसंबन्धोऽभवत्, राज्ये सुशासनत्वात् प्रजानां धर्मवृत्तित्वाच्च। परीति—वीणासु वल्लकीषु परीवादः परितः सामस्त्येन सम्यगित्यर्थः, वादनं, यद्वा वीणा वादनदण्ड-संबन्धः आसीत् न तु लोकेषु परस्परस्य निन्दा आसीत्। खलेति—खलस्य धान्यमर्द-नभूमेः संयोगः संबन्धः शालिषु धान्येषु आसीत्। शालयः खलेषु मर्द्यन्ते, प्रजासु तु खलस्य पिशुनस्य संबन्धो नासीत्। द्विजिह्वेति-द्विजिह्वानां सर्पाणां सङ्गृहीतिः सङ्ग्रहणम्, आहितुण्डकेषु सर्पोपजीविषु आसीत्। अहितुण्डेन सर्पमुखेन दीव्यतीति आहितुण्डिको व्यालग्राही। तेन दीव्यतीति ठक्। प्रजासु तु द्विजिह्वानां मिथ्याभाषणशीलानां संग्रहो नासीत्, मिथ्याभाषिणो जनान् न कोऽपि समीप उपवेशयतीत्यर्थः। करच्छेद इति—क्लृप्ता यथायथं निश्चिता ये करा राजग्राह्यभागास्तेषां ग्रहणेषु आदानेषु करस्य राजग्राह्यभागस्य छेदो न्यूनीकरणमासीत्, यदा वर्षाभावादिनाऽन्नन्यूनता तदा राज-ग्राह्यभागोऽपि राज्ञा न्यूनीक्रियते स्म इति भावः। प्रजासु तु करस्य हस्तस्य छेदः कर्तनं दण्डरूपेण न जायते स्म। तादृशदण्डयोग्यापराधाभावात्। नेत्रेति—नेत्राणां जटानामुत्पाटनं कर्तनम् उन्मूलनं वा मुनीनां यतीनां जायते स्म न तु प्रजानां नेत्रयो-श्चक्षुषोरुत्पाटनं भवति स्म। तादृग्दुष्कर्माभावाद्येन नेत्राण्युत्पाट्येरन् इति भावः। द्विजेति—द्विजराजश्चन्द्रस्तद्विरुद्धता तत्प्रातिकूल्यं पङ्कजानां कमलानामासीत्, उदिते चन्द्रे पङ्कजानि निमीलितानि भवन्ति। न तु प्रजानां द्विजराजानां श्रेष्ठब्राह्मणानां प्रातिकूल्यमासीत्। सर्वा एव प्रजाः तत्प्रतिपादितयज्ञाद्यनुष्ठानसरणिमनुवर्तन्ते स्म इति भावः। सार्वभौमेति-रूढस्य 'सार्वभौम' इति पदस्य योगः सम्बन्धो दिग्गजस्या-

---

वीणाओंमें वीणादण्डका प्रयोग होता था परन्तु प्रजाओंमें कोई किसीकी निन्दा नहीं करता था। शालियोंके लिये ही खल–व्रीहि आदिके कूटनेके स्थानका प्रयोग किया जाता था परन्तु प्रजाओंमें दुष्टोंका संसर्ग न था। सपेरे ही सापोंको पकड़ा करते थे, प्रजाओंमें पिशुन–चुगलखोरोंका संग्रह कोई भी न करता था। फूल चुननेमें ही करच्छेद (फूलको हाथसे तोड़ना) होता था परन्तु प्रजाओंमें किसीको हस्तकर्तनका दण्ड नहीं दिया जाता था। मुनि नामक वृक्षोंमें ही वल्कल उतारनेका कार्य होता था, प्रजाओंमें किसीको नेत्र (आँख) निकालनेका दण्ड नहीं दिया जाता था। कमलोंमें ही राजा–चन्द्रके प्रति विरुद्ध भाव देखा जाता था, प्रजाओंमें अपने राजाके प्रति विद्रोहाचारण नहीं पाया जाता था। दिग्गजोंमें ही 'सार्वभौम' नामक दिग्गजका सम्बन्ध पाया जाता था परन्तु अन्य राजाओंमें

सुवर्णानां सूचीभेदो मणीनां शूलभङ्गो युवतिप्रसवे दुःशासनदर्शनं भारते करपत्रदारणं जलजानाम्। महावराहो गोत्रोद्धरणप्रवृत्तोऽपि गोत्रोद्दलन-

भवत्। एतन्नामा गज आसीत्। सर्वभूमेरीश्वर इत्यर्थे व्युत्पन्नस्य सार्वभौमशब्दस्य प्रयोगस्तु एतद्भिन्ने राजनि न विद्यते। 'सार्वभौमस्तु दिङ्नागे सर्वपृथ्वीपतावपि।' इति विश्वमेदिन्यौ। 'पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।' इत्यमरः। अग्नीति—अग्निना तुलया च शुद्धिर्वर्णोन्मानयोर्ज्ञानं सुवर्णानां काञ्चनानामासीत्, नतु लोकानां तादृशशुद्धियोग्यापराधाभावात् इति भावः। सूचीति—सूच्या सीवनसाधनद्रव्येण भेदः सूत्रप्रवेशनाय रन्ध्रविधानं मणीनां मुक्तानामभवत् न तु लोकानां सूचेर्दृष्टेर्भेदो विदारणमासीत्, तादृशापराधाभावात्। श्लेषवशेन उक्तानुक्तचिन्ता न प्रवर्तते। यद्वा—सूचीकराद्यभिनयस्तस्य भेदोऽन्यथानुष्ठानं, सर्वेषां नर्तककीर्तकानां परिनिष्ठितत्वादिति भावः। यद्वा सूची नारीणां करणान्तरं गीताङ्गहारसंवेशक्रिया तस्या भेद इति भावः। 'सूची कराद्यभिनये नारीणां करणान्तरे, सूची सीवनद्रव्ये' इति च। 'सूचिर्दृष्टिः' इति शब्दकल्पद्रुमः। शूलेनेति—शूलेनोदरपीडया भङ्ग आमर्दः कष्टमिति यावत्, युवतिप्रसवे युवतिजनगर्भमोचनव्यापारेऽभवत् न तु लोकानां शूलेनायःकीलेन भङ्गो वध आसीत् तादृशदण्डयोग्यापराधाभावात्कस्यापि। दुःशासनेति—महाभारते दुःशासनस्य दुर्योधनानुजस्य दर्शनं ज्ञानमासीत्, न तु प्रजासु दुःशासनस्य दुष्टशासनस्य दर्शनं निरीक्षणमभवत्। करेति—जलजानां कमलानां करैः सूर्यकिरणैः पत्राणां किसलयानां दारणं विकासनमभवत्; न तु लोकानां करपत्रेण क्रकचेन दारणं भेदनमासीत्। 'क्रकचोऽस्त्री करपत्रमि'त्यमरः। महेति—महावराहः वराहावताररूपो विष्णुः गाः सर्वान् पशून् जीवान् त्रायत इति गोत्रा पृथ्वी तस्या उद्धरणाय समुद्धाराय

'सार्वभौम' शब्दका प्रयोग नहीं होता था (क्योंकि एकमात्र यही चक्रवर्ती सम्राट् था)। स्वर्णोंमें ही अग्निद्वारा (रूप) शुद्धि और तुलाद्वारा (तोलकी) शुद्धि की जाती थी परन्तु प्रजाओंमें अग्नि और तुलाद्वारा (किसीके निरपराध होनेकी) परीक्षा नहीं की जाती थी (क्योंकि कोई भयङ्कर अपराध करता ही न था)। मणियोंमें ही सूचीद्वारा छिद्र किया जाता था, प्रजाओंमें सूचीभेद नामक दण्डका प्रयोग नहीं होता था (अथवा सूचियों—पिशुनोंद्वारा परस्पर कलह उत्पन्न नहीं किया जाता था, अथवा सूचीनामक नृत्यमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं होता था)। युवतियोंके प्रसव कालमें ही शूल-दर्द द्वारा क्लेश होता था, प्रजाओंमें किसीको शूलीपर चढ़ानेका दण्ड नहीं दिया जाता था। महाभारतमें ही दुःशासनके दर्शन होते थे प्रजाओंके प्रति बुरा शासन न था। कमल ही (सूर्यकी) किरणों द्वारा विकसित होते थे प्रजाओंमें किसीको करपत्र (आरा) विदारणका दण्ड नहीं दिया जाता था।

महावराहने (वराहावतारने) गोत्र—पृथ्वीके उद्धारके लिये प्रवृत्त होकर भी पृथ्वीका

मकरोत्। राघवः परिहरन्नपि जनकभुवं जनकभुवा सह वनं विवेश। भरतो रामे दर्शितभक्तिरपि राज्ये विराममकरोत्। नलस्य दमयन्त्या मिलितस्यापि पुनर्भूपरिग्रहो जातः। पृथुरपि गोत्रसमुत्सारणविस्तारित-भूमण्डलः। इत्थं नास्ति वागवसरः पूर्वतरराजेषु। स पुनरन्य एव द्वेषो न्यक्कृतसर्वोर्वीपतिचरितः। तथाहि स पर्वतः कटकसञ्चारिणो गन्धर्वान्

प्रवृत्तोऽपि गोत्राया भुव उद्दलनं विनाशमकरोदिति विरोधः। यदुद्धाराय प्रवृत्तस्तस्यै-वोद्दलनस्यानुचितत्वात्। समुद्रमग्नां भुवं वराहावतारेण भगवानुदधरदिति पौराणिकी वार्ता। गोत्रस्य पर्वतस्योद्दलनं चूर्णनमकरोदिति विरोधपरिहारः। राघव इति—राघवः रामः जनकस्य पितुः भुवं पृथ्वीं परिहरन् परित्यजन्नपि तयैव सह वनं विवेश प्राविशत् इति विरोधः। यस्याः परित्यागस्तयैव सह गमनस्यानुचितत्वात्। जनक-भुवा सीतया सहेति तत्परिहारः। भरत इति—भरतः कैकेयीपुत्रः रामे स्वाग्रजे दर्शिता प्रकटीकृता भक्तिरनुरागो येन तथाभूतोऽपि राज्ये विरामं रामाभावमकरोदिति विरोधः। विरामं विरतिमिति तत्परिहारः। नलस्येति—दमयन्त्या स्वपत्न्या सह मिलितस्य सङ्गस्यापि नलस्य पुनर्भूपरिग्रहः पुनरूढास्वीकारोऽभवदिति विरोधः। दमयन्त्याः पुनरूढात्वाभावात् पुनरक्षतयोनित्वादुह्यते या यथाविधि सा पुनर्भूः।' परिहार-पक्षे तु पुनर्द्वितीयवारं भूपरिग्रहः पृथ्वीपरिग्रहोऽभवदित्यर्थः। पृथुरिति पृथुः राज-विशेषोऽपि, गोत्राणां स्ववंशजानां समुत्सारणेन निर्वासनेन विस्तारितं विस्तीर्णतां नीतं भूमण्डलं स्वराष्ट्रं येन तथोक्त आसीत्। स्ववंशजपीडनेन स्वराज्य वर्धनमनुचित-मिति तस्य निन्दा। परिहारपक्षे तु—गोत्राणां पर्वतानां समुत्सारणेन विक्षेपेण विस्ता-रितं प्रविभक्तं भूमण्डलं येन सः। इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण पूर्वतरराज्ञां सदोषत्वात् तेषु वागवसरः स्तुतियोग्यत्वं नास्ति।

स चिन्तामणिर्देवोऽन्य एव वर्णितेभ्योऽन्यगुणविशिष्टः। तदेव साधयति—तथाही-

---

विनाश ही किया (वस्तुतः, गोत्र-पर्वतका विनाश किया) रामचन्द्रने जनकभू—पिताके राज्यका परित्याग करते हुए भी जनकभूके साथ वनमें प्रवेश किया (वस्तुतः—जनकभू=सीताके साथ)। भरतने, राममें भक्ति प्रदर्शित करते हुए भी राज्यको विराम-रामरहित कर दिया (वस्तुतः राज्यमें विरक्ति प्रदर्शित की)। दमयन्तीके साथ मिलनेपर भी नलने पुनर्भू (विधवा स्त्री) को स्वीकार किया। (वस्तुतः फिर अपने राज्यको पाया)। पृथुने भी गोत्र (अपने वंशजोंका) विनाश कर अपने राज्यको विस्तृत किया था (वस्तुतः गोत्र-पर्वतोंको हटाकर पृथ्वीको चौरस किया)। इस प्रकार पहिले राजाओंके सम्बन्धमें कुछ कहा ही नहीं जा सकता। वह (चिन्तामणि) सबसे विलक्षण राजा था जिसने अपने चरित्रसे सब राजाओंके चरित्रको तिरस्कृत कर दिया था जिस प्रकार ऊँचे शिखरोंसे

दर्शितशृङ्गोन्नतिः सुखयन् न विरराम। स हि मालयो नावश्यायोच्छलितो नो मायाजन्मने हितश्च। स हि मानी गिरि स्थितो वृषध्वजः। असौ

त्यादिना-स चिन्तामणिर्देवः, पर्व उत्सवो विद्यते यस्य स पर्वतः सर्वदोत्सवप्रवृत्त इत्यर्थः। पर्वशब्दान्मत्वर्थे 'तप् पर्वमरुद्भ्याम्' इति वार्तिकेन तप्प्रत्ययः। दर्शिता प्रकटीकृता लोकेभ्य इति शेषः। शृङ्गस्य स्वप्रभुत्वस्योन्नतिरौन्नत्यं येन सः, जगति दर्शित-स्वप्रभाव इत्यर्थः। 'शृङ्गं प्रभुत्वमिति' शब्दकल्पद्रुमः। कटके सैन्ये सञ्चरन्ति इति कटकसञ्चारिणो गन्धर्वान् अश्वान् सुखयन् आल्हादयन् न विरराम विरतो नाभूत्। सर्वदैव तान् सुखयति स्मेति भावः। पक्षे स प्रसिद्धः पर्वतः सुमेरुः, दर्शिता शृङ्गाणां शिखराणामुन्नतिरुच्चत्वं येन तथाविधः। कटकेषु पर्वतनितम्बभागे मध्यप्रदेशे सञ्चा-रिणो भ्रमणशीलान् गन्धर्वान् हाहाहूहूप्रभृतीन् देवयोनिविशेषान् आल्हादयन् न विरराम। स इति-स चिन्तामणिः मालयः माया लक्ष्म्या आलयो निवासः। अवश्या-येन गर्वेण नोच्छलितो नातिक्रान्तमर्यादः, मायाजन्मने कपटप्रवृत्त्यै हितोऽनुकूलश्च नास्ति। कपटाचारिणां निराकरणकारित्वात्। पक्षे-स प्रसिद्धो हिमालयो हिमवान् पर्वतस्तु अवश्यायेन हिमेन उच्छलितः प्रवृद्धोऽस्त्येव, तथा स हिमालयः उमायाः पार्वत्या जन्मने उत्पत्त्यै हित उपयुक्तश्चास्त्येवेति व्यतिरेकः। स इति-स चिन्तामणिः, मानी अहङ्कारवान्, मानधन इति भावः। गिरि वाचि स्थितः स्वप्रतिज्ञापालक इत्यर्थः। वृषो धर्मो ध्वजश्चिह्नं यस्य सः, यद्वा वृषस्य धर्मस्य ध्वजश्चिह्नभूत इव। यं दृष्ट्वैव लोका अयं धर्मात्मेति प्रतियन्तीत्यर्थः। मूर्तिमान्धर्म इवेति भावः। पक्षे-महद्धिमं हिमानी हिमसंहतिस्तद्रूपो यो गिरिः पर्वतः कैलासस्तत्र स्थितः 'हिमानी-गिरिस्थित' इत्येकं पदम्, वृषध्वजो महादेवः। असाविति—असौ चिन्तामणिः सततं

युक्त पर्वत, मध्यभागपर विचरनेवाले देवगायकोंको आनन्दित करनेसे विरत नहीं होता इसी प्रकार वह (चिन्तमणि) मानों, दूसरा पर्वत था—उसके यहाँ सदा आनन्द प्रमोद होता रहता था, युद्धके समय उसकी ऊँची पताका फहराती रहती थी और वह सेनाके अश्वोंको आनन्दित करनेसे विरत नहीं होता था। वह हिमालयसे भी विलक्षण था क्योंकि हिमालय अवश्याय-हिमसे बढ़ा हुआ था और माया-पार्वतीके जन्मलाभके लिये हितकर था परन्तु यह राजा चिन्तामणि मा-लक्ष्मीका निवास स्थान होते हुए भी अवश्याय-अहङ्कारसे अपनी मर्यादासे च्युत नहीं होता था (अथवा-आवश्यक धन-प्राप्तिसे वञ्चित नहीं था, अथवा स्वाभिमानशून्य नहीं था और न किसीकी प्रवञ्चनामें आता था) और न, छल आदिके लिये अनुकूल था किन्तु सर्वथा निष्कपट था। वह चिन्तामणि, मानों, हिमालय पर्वतपर स्थिर साक्षात् शिव ही था क्योंकि वह भी स्वाभिमानी, सत्यवाक् और धार्मिक था। वह राजा दूसरा वायु ही था क्योंकि जिसप्रकार वायु सदा गतिशील, समस्त वनको हिलानेवाला, अग्निका सहचर, आकाशमें चलनेमें उत्सुक और पुष्पोंका हरण

सदागतिरवधूताखिलकान्तारः पावकाग्रेसरी नभोगोत्सुकः सुमनोहरश्च । स रत्नाकरोऽनहिमयः कथमगाधः समर्यादो नोद्रोकोऽप्यस्य विस्मयः सदा हिमकराश्रयोऽमृतमयः सपोतस्तस्याचलो नक्रोधो महानदीनः समुद्रः ।

साधूनां गतिर्निर्वाहो यस्मात्सः, यद्वा सतामागतिरागमनं यस्येति सः। अवधूता दूरीकृताः कान्ताराः दुर्गमार्गा दुर्भिक्षा वा येन सः। 'कान्तारः कानने चेक्षौ दुर्भिक्षे दुर्गवर्त्मनि' इति विश्वः। पावयन्तीति पावकाः पवित्रताहेतवस्तेषामग्रेसरो मुख्यः। तथा च मनुः—'अग्निचित् कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः। दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः' इति। भोगेषु स्त्र्यादिसुखेषु नोत्सुकः नोत्कण्ठितः। यद्वा—नभोगेषु देवेषूत्सुक उत्कण्ठितस्तदाराधनतत्पर इत्यर्थः। सुमनोहरः प्रियदर्शी, यद्वा सुमनसः पण्डितान् हरति आकर्षतीति सुमनोहरः। स्वगुणैर्विद्वन्मनोरञ्जक इति भावः। पक्षे—सदागतिर्वायुः। अवधूतानि कम्पितानि अखिलानि समस्तानि कान्ताराणि वनानि येन सः। पावकस्याग्नेः अग्रेसरः सखा। नभोगेषु आकाशयायिषु मेघेषु उत्सुकः। सुमनसः पुष्पाण्याहर्ति तच्छीलश्च। 'सुमनाः पुष्पमालत्योस्त्रिदशे कोविदेऽपि च' इति विश्वः। स इति। स चिन्तामणिर्देवः, रत्नानां श्रेष्ठवस्तूनामाकरो निधिः। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्धि रत्नं प्रचक्षते' इति कोशः। अहिः खलस्तन्मयस्तत्स्वभावो न भवतीति अनहिमयः, दुर्जनसंसर्गरहित इति वा। अगाधो गभीराशयो निर्लोभो वा, गाधनं गाधो लिप्सा। गाधृधातोर्भावे घञ्। मर्यादा न्यायपथस्थितिस्तया सह वर्तत इति समर्यादो न्यायपथप्रवृत्तः। उद्गत उत्थितो रोको दीप्तिर्यस्य स उद्रोकः 'रुच' दीप्तावित्यस्माद् घञ्। तथाऽप्यस्य विस्मयो गर्वो नास्ति। सदा सर्वदा हिमकरश्चन्द्रस्तद्वदाह्लादक आश्रयो गृहं यस्य सः। यद्वा—सर्वदा ग्रीष्मादिष्वपि ऋतुषु हिमकरः शीतल आश्रयो यस्य सः। अमृतमयः सुधास्वरूपः, आह्लादकत्वात्। पोता दशवर्षीयगजा विद्यन्ते यस्य स सपोतः। 'पोतो दशवर्षीयहस्तीति' हैमः। तस्य चिन्तामणेः क्रोधः कोपः, अचलः चिरस्थायी नास्ति किन्तु प्रणिपातादिना झटित्येवापनेय इति भावः। तदुक्तम्—'प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्' इति महान् अनुभावो महानुभावः, अदीनोऽदरिद्रः। मुद्रया राजचिन्हेन सहितः। समुद्रपक्षेतु—रत्नानां मन्थनकालसमुत्थितानां चतुर्दशरत्नानां मौक्तिकादीनां वा करोनिधिः। न विद्यते हिमं शैत्यं यस्य सोऽहिमः सूर्यः, तेन याति शोषमुपगच्छतीति अहिमयः। या धातोः

करनेवाला—इधर उधर ले जानेवाला होता है इसीप्रकार वह भी सज्जनोंका पोषक, सब दुर्भिक्षादिका निवारक, पवित्रोंमें श्रेष्ठ, विषयों में अनासक्त और विद्वानोंका प्रिय था। वह दूसरा रत्नाकर समुद्र था क्योंकि जिसप्रकार समुद्र, रत्नोंकी खान, जलसर्पोंके भयसे रहित, गहरा, मर्यादायुक्त, नावोंके गमनागमनसे शून्य, आश्चर्यस्वरूप, सदा सर्प और मकरोंका निवासस्थान, जलमय, दोनों तटोंके मध्यभागसे युक्त होता है और उसके नीचे—निचले

स चन्द्र इव क्षणदानन्दकरः कुमुदवनबन्धुः सकलकलाकुलगृहं नताराति-बलः। मित्रोदयहेतुः काञ्चनशोभां बिभ्रदचलाधिकलक्ष्मीः सुमेरुरिव।

'सुपि स्थः' इत्यत्र सुपीति योगविभागात्कः। तादृशो न भवतीत्यनहिमयः। यः खलु कासारादिवत् रविकरसम्पर्केणापि न शुष्यतीति भावः। कथं, यतोऽगाधोऽतल-स्पर्शः। मर्यादया वेलानतिक्रमणसहितः।

सदा हि सर्वस्मिन्नेव काले मकराणां कुम्भीराणामाश्रयो निवासः। यद्वा—हिमकरस्य चन्द्रस्याश्रयः। चन्द्रस्य समुद्रादुत्पन्नत्वात्। अमृतमयो जलमयः। 'पयः कीलालममृतम्' इत्यमरः। सपोतः सयानपात्रः। तस्य समुद्रस्याधोऽन्तोऽचलो मैनाकपर्वतः, नक्रः कुम्भीरश्च विद्यते। महतीनां नदीनामिनः स्वामीति महानदीनः।

स चिन्तामणिर्देवः चन्द्र इव शशीव क्षणं यात्रादिशुभमुहूर्त्तं ददतीति क्षणदा-गणकास्तेषामानन्दकरः। यद्वा—क्षणमुत्सवं ददतीति क्षणदः स चासावानन्दकरश्चे-त्यर्थः। यद्वा, क्षणदेन जलेनानन्दकरः। तत्र तत्र मरुभूम्यादिष्वपि वापीकूपतडागादि-निर्माणात्। मुदा हर्षेण ममेदं कर्तव्यमितिधिया प्रसन्नचेतसेत्यर्थः। अवनं रक्षणमिति मुदवनं कोः पृथिव्या मुदवनं तेन बन्धुरिव बन्धुरित्यर्थः। सकलानां समस्तानां चतुः-षष्टेः कलानां गीतवाद्यनृत्यादीनां कुलगृहमाश्रयः। नतं प्रणिपातेन नम्रीभूतं वशङ्गत-मित्यर्थोऽरातिबलं यस्य सः। पक्षे—क्षणदाया रात्रेरानन्दकरः। कुमुदवनस्य कैरव-समूहस्य बन्धुस्तस्य विकासजनकत्वात्। सकलानां कलानां षोडशांशानामाश्रयः। न तारा नक्षत्राण्यतिबला यस्मात्तादृशः। मित्रेति—स चिन्तामणिः सुमेरुरिव मित्राणां

भागमें मैनाक पर्वत और नक्र रहते हैं और वह बड़ी-बड़ी नदियोंका पति है इसीप्रकार वह भी रत्नाकर—उत्तम वस्तुओंकी खान, अपने ही पक्षके मनुष्योंसे उत्पन्न होनेवाले भयसे रहित, गम्भीर, मर्यादा-उचित कर्तव्यका उल्लङ्घन न करनेवाला, सावधान, आश्चर्य स्वरूप, दाता, चन्द्रमाके समान शीतल-शान्तस्वभाव, अमृतस्वरूप-अमृतके समान आनन्दजनक, योग्य पुरुषोंसे युक्त था। उसका क्रोध देर तक स्थिर न रहता था। वह महान्, उदार और राजचिह्नोंसे युक्त था। वह राजा चिन्तामणि दूसरा चन्द्रमा ही था क्योंकि वह समय-समयपर दानद्वारा सबको आनन्दित करनेवाला, पृथ्वी-निवासी जनोंको आनन्दित करने और उनकी रक्षा करनेमें बन्धुतुल्य, (अथवा दीनोंकी रक्षा करनेमें बन्धुतुल्य) समस्त शिल्पविद्याओंका आश्रयस्थान, शत्रुसेनाको वशमें करके (अपने) चरणोंपर झुकानेवाला और सबका आह्लादक था। चन्द्रमा भी रात्रिको आनन्दित करनेवाला, कुमुदसमूहका बन्धु, सोलह कलाओंका आश्रय स्थान, अन्य नक्षत्रोंसे अधिक बलशाली और सबको आनन्दित करनेवाला होता है। वह दूसरा सुमेरु था क्योंकि वह मित्रोंकी उन्नतिका कारण, किसी अनिर्वचनीय शोभाका धारण करनेवाला था और उसका ऐश्वर्य स्थिर तथा सबसे अधिक था, साथ ही उसके कण्ठमें सुन्दर माला पड़ी हुई थी। सुमेरु पर्वत भी

यस्य च रिपुवर्गः सदा पार्थोऽपि न महाभारतरणयोग्यः, भीष्मोऽप्यशान्तनवेहितः, सानुचरोऽपि न गोत्रभूषितः। अपि च त्रिशङ्कुरिव नक्षत्र-

सुहृदामुदयस्याभ्युन्नतेर्हेतुः कारणम्। काञ्चन अनिर्वचनीयां शोभां बिभ्रत् दधानः, अचलाऽनपायिनी अधिकाऽन्यराजेभ्यो विशिष्टा च लक्ष्मीः सम्पद्यस्य सः। पक्षे-मित्रस्य सूर्यस्योदयहेतुराविर्भावनिमित्तम्। काञ्चनस्य सुवर्णस्य शोभां दधानः, अचलेभ्यः पर्वतेभ्योऽधिका लक्ष्मीः शोभा यस्य सः।

यस्येति—यस्य चिन्तामणेः रिपुवर्गः शत्रुसमूहः पार्थोऽर्जुनोऽपि सन् महाभारते यद्रणं युद्धं तद्योग्यो नाभवत् इति विरोधः। अर्जुनस्य महाभारतरणयोग्यत्वात्। परिहारस्तु—यस्य रिपुवर्गो महतो भारस्य सैन्यसञ्चालनादेर्महाकार्यस्येत्यर्थः। तरणे धारणे सम्पादने योग्योऽपि न अत एव सदा सर्वस्मिन्नेव कालेऽपार्थः अपगतो विनष्टोऽर्थः प्रयोजनं यस्य सः। भीष्म इति—यः, भीष्मो देवव्रतोऽपि शन्तनुपुत्रोऽपीत्यर्थः। अशान्तनवे पितृभिन्नाय हितः। पित्रे न हित इति विरोधः। नहि पुत्रस्य पितृविरोधित्वमुचितम्। भीष्मो भयानकोऽपि राजगुणैरिति भावः। तथा च कालिदासः—'भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्। अधृष्यश्चाधिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः' इति। तथा, अशान्तमनविरतं नवं स्तुत्यं नवं वेहितं चेष्टितं यस्य सः। यो वै सर्वदा प्रजानां हिताय नवनवानि कार्याणि सम्पादयतीत्यर्थः। इति परिहारः। शन्तनुवाचको दीर्घादिशान्तनुशब्दोऽप्यस्ति। तथाच नलचम्प्वां त्रिविक्रमभट्टः 'शान्तनुतनयः' इति। सान्विति—सानुषु पर्वतशिखरेषु चरतीति सानुचरोऽपि न गोत्रस्य पर्वतस्य भुवि भूमावुषितः स्थित इति विरोधः। शिखरचरस्य पर्वतभूमौ स्थितेरपरिहार्यत्वात्। परिहारस्तु अनुचरैः सेवकैः सहितः सानुचरः। गोत्रैर्गोत्रजैर्न भूषितोऽलङ्कृतोऽपि तु स एव गोत्रजानां भूषक आसीत्। अपि च—त्रिशङ्कुः

सूर्योदय के कारण, किसी अनिर्वचनीय शोभाको धारण करनेवाला है तथा उसका ऐश्वर्य अन्य पर्वतोंसे विशिष्ट है।

जिस राजा चिन्तामणिका शत्रुवर्ग, सर्वदा पार्थ-अर्जुन होते हुए भी महाभारत युद्धके योग्य नहीं था, (वस्तुतः) सदा धनशून्य और किसी बड़े कार्यके निर्वाहके अयोग्य था (अथवा कान्तिशून्य और केवल रति-क्रीड़ा योग्य ही था) भीष्म होते हुए भी अपने पिता शन्तनुका शुभेच्छु न था (वस्तुतः) भयङ्कर होते हुए भी क्रुद्ध राजा चिन्तामणिको प्रसन्न करनेके लिये उद्यत रहता था। पर्वतप्रदेशोंमें घूमते हुए भी पर्वतभूमिमें नहीं रहता था। (वस्तुतः) सेवकोंके साथ रहते हुए भी अपने कुल-नामसे विख्यात न था क्योंकि उनमेंसे कोई महावीरोचित काम न करता था। (अथवा इसका शत्रुवर्ग पत्तोंको खाता तथा वंश भूमि-कुलक्रमागत राज्यमें निवास न करता था)। वह त्रिशङ्कु होते हुए भी आकाशसे च्युत नहीं हुआ (वस्तुतः) वह राजा चिन्तामणि (उत्साह आदि) तीन शक्तियोंसे सम्पन्न था (अथवा प्रातः, मध्य और सायं तीनों समय शम्भुकी पूजामें तत्पर) और क्षत्रियोचित

पथस्खलितः, शङ्करोऽपि न विषादी, पावकोऽपि न कृष्णवर्त्मा, आश्रयाशोऽपि न दहनः, नान्तक इवाकस्मादपहृतजीवनः, न राहुरिव मित्रमण्डलग्रहणविवर्द्धितरुचिः, न नल इव कलिविघटितः, न चक्रीव

राजविशेषः स इव क्षत्रपथात् क्षत्रियधर्मात् नस्खलितोऽविच्युतः। क्षत्रधर्मपरिपालक इत्यर्थः। पक्षे नक्षत्रपथात् आकाशात् स्खलितो भ्रष्ट इत्यर्थः। पुनर्विरोधाभासेनाह— शंकर इति—शंकरो महादेवोऽपि न विषं गरलमत्तीति विषादी विषभक्षक इति विरोधः। महादेवस्य समुद्रोत्थितविषभक्षकत्वात्। शं कल्याणं करोतीति शंकरः कल्याणंकरो विषादी दुःखितश्च नेति परिहारः। पावकोऽग्निरपि न कृष्णवर्त्माऽग्निरिति विरोधः। पावकोऽन्येषां पावयिताऽपि न कृष्णं कलुषितं पापमयं वर्त्म आचारपद्धतिर्यस्य सः, दुराचारो नेति परिहारः। आश्रयेति—आश्रयं स्वाधिष्ठानं काष्ठादिकमश्नातीत्याश्रयाशो वह्निरपि न दहनो दाहकः। इति विरोधः। अग्नेर्दहनासम्भवात्। परिहारस्तु—आश्रयाणामाश्रितानां स्वोपजीविनामित्यर्थः। आशा यस्मिन् तादृशः। न तु दहनः सन्तापजनकः। पीडकत्वाभावात्। नान्तकेति—अन्तको यम इव नाभूत्स चिन्तामणिः, अकस्मात् सहसैव कारणं विनैवेत्यर्थः। अपहृतं विनाशितं जीवनं जीविका येन सः। पक्षे—अकस्मात्सहसा अपहृतं गृहीतं जीवनं जीवितं येन सः। न राहुरिति—मित्राणां सुहृदां मण्डलस्य राष्ट्रस्य ग्रहणे स्वायत्तीकरणे विवर्द्धिता विशेषेण कृता रुचिरिच्छा येन तादृशो नाभूत् स देवः। राहुस्तु मित्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलस्य ग्रहणेन ग्रसनेन विवर्द्धिता रुचिर्दीप्तिर्यस्य तादृशोऽस्त्येवेति भावः। नल इवेति—कलिना कलहेन गृहविवादेनेत्यर्थः। विघटितो विश्लेषितो बन्धुभिरिति शेषः, नाभूत्। नलस्तु कलिना युगविशेषेण विघटितो व्याप्त आसीदेवेति भावः। न चक्रीति—चक्रीव विष्णुरिव,

---

मार्गसे च्युत होनेवाला मनुष्य न था। महादेव होते हुए भी विष-भक्षक न था (वस्तुतः) वह सबका कल्याण करनेवाला और सदा सन्तुष्ट रहनेवाला था। अग्नि होते हुए भी अग्नि नहीं था। (वस्तुतः) वह पवित्र और उज्ज्वल चरित्रवान् था। अग्निस्वरूप होते हुए भी सन्तापकारी न था (वस्तुतः) वह आश्रितजनोंकी आशाओंको पूर्ण करनेवाला था परन्तु किसीको भी सन्तापित न करता था। अचानक ही जीवन (प्राण) हरण करनेवाले यमके समान वह अकस्मात् ही किसीकी जीविकाका हरण न करता था। वह राहुके समान न था क्योंकि उसकी मित्रोंके देश (राज्य) को छीननेमें स्पृहा नहीं थी परन्तु राहु सूर्यमण्डलके ग्रहणसे अपनी कान्तिको नष्ट कर देता है। (यहाँ तथा अग्रिम वाक्योंमें राहु आदिसे राजाका उत्कर्ष अभिप्रेत है)। वह नलके समान तथा क्योंकि वह छलसे युद्धमें विजय प्राप्त न करता था, लेकिन राजा नलके शरीरको कलियुगने आक्रान्त किया हुआ था। और न वह विष्णुके ही समान था क्योंकि वह क्षुद्र शत्रुओंके विनाशसे (चरणों द्वारा) की हुई स्तुतिसे

शृगालवधस्तुतिसमुल्लसितः, नन्दगोप इव यशोदयाऽऽश्रितः, जरासन्ध इव घटितसन्धिविग्रहः, भार्गव इव सदानभोगः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणानुरक्तो रक्षितगुश्च, राम इव जनित कुशलवयोरूपोच्छ्रायः ।

शृगालनां भीरूणां वधेन हननेन स्तुत्या प्रशंसया समुल्लसितो हृष्टो नासीत् । भीरुवध-प्रयुक्तस्तुतिस्तस्यै न रोचते स्म, अपितु शूरवधेनैव स आत्मानं बहुमन्यते स्मेति भावः। विष्णुस्तु शृगालस्य राजविशेषस्य वधेन स्तुत्या समुल्लसितो जनैः प्रीणित आसीदेवेति भावः । 'शृगालो जम्बुके भीरु शूरे वै पार्थिवान्तरे' इति विश्वः । नन्देति—नन्दगोप इव यशसा कीर्त्या दयया परदुःखप्रवाणेच्छया च आश्रितो युक्तः । पक्षे—यशोदया एतन्नाम्न्या निजभार्ययाश्रितः । जरेति—जरासन्धो राजविशेषः स इव, घटितौ विहितौ सन्धिः सन्धानं, विग्रहो युद्धं, अन्यराजभिः सहेति भावः । येन स तथोक्तः । पक्षे घटितः कृतः सन्धिः शरीरशकलद्वयं यस्य स घटितसन्धिस्तादृशो विग्रहो देहो यस्य स तथोक्तः । अत्र च 'अन्यस्यामपि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् । ते मात्रा बहि-रुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते ॥ जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत्सुतः ॥' इति श्रीभागवतमनुसन्धेयम् । भार्गव इवेति—भार्गवः शुक्रः स इव, दानेन दीनविप्रादि-भ्यो धनवितरणेन भागेन सर्वसुखानुभवेन च सहितः । पक्षे—सदा नभोगः आकाश-गामी । यद्वा—दानेन भोगो जीविकाऽस्येत्यर्थः । दशरथेति—दशरथो रामजनकः स इव सुमित्रैः अनुरक्तवयस्यैरुपेतोऽन्वितः, सुमन्त्रेण सत्परामर्शेणाधिष्ठित आश्रितश्च । पक्षे—सुमित्रया लक्ष्मणजनन्या स्वभार्ययोपेतः, सुमन्त्रेण एतत्संज्ञकसारथिना श्रितश्च । दिलीप इति—सुदक्षिणेषु सरलान्तःकरणेषु जनेषु, यज्ञदानेषु वा अनुरक्तः प्रीतिमान्, रक्षिता पालिता गौः पृथ्वी येन स तथोक्तश्च । पक्षे—सुदक्षिणायां निज-भार्यायामनुरक्तः सस्नेहः, रक्षिता गौः वासिष्ठी धेनुर्येन तथोक्तश्च । 'स्वर्गेषुपशुवाग्व-ज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले, स्त्रियां पुंसि गौः' इत्यमरः । राम इति—रामो दाशरथिरिव,

---

प्रसन्न न होता था लेकिन विष्णु, शृगाल नामक दैत्यके नाशसे की हुई स्तुतिसे प्रसन्न होते थे । वह राजा, यशोदासे युक्त नन्दगोपके समान, यश और दयामें युक्त थे । जरा नामक पिशाचीके द्वारा जिनके शरीरकी सन्धियाँ जोड़ी गई थीं ऐसे जरासंधके समान, सन्धि और युद्ध करनेवाला था । सर्वदा आकाशगामी शुक्राचार्यके समान, दान और भोग करनेवाला था । अपनी रानी सुमित्रा तथा सुमन्त्र नामक सारथि से युक्त दशरथके समान, उत्तम मित्रों और उत्तम मन्त्रणाओंसे युक्त था । अपनी रानी सुदक्षिणा से युक्त, (वशिष्ठकी) गौकी रक्षा करनेवाले दिलीपके समान, कुशल विद्वानोंसे युक्त तथा पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला था । कुश-लवके सम्बन्धमें अत्यधिक महिमा उत्पन्न करनेवाले रामके समान, कुशल-क्षेम, यौवन और सौन्दर्यकी महिमासे युक्त था ।

तस्य च पारिजात इवाश्रितनन्दनः, हिमालय इव जनितशिवः, मन्दर इव भोगिभोगाङ्कितः, कैलास इव महेश्वरोपभुक्तकोटिः, मधुरिव नानारामानन्दकरः, क्षीरोदमथनोद्यतमन्दर इव मुखरितभुवनः, रागरज्जुरि-

---

जनितः सम्पादितः कुशलः पर्याप्तो वयसो यौवनादे रूपस्य सौन्दर्यस्य च उच्छ्राय औन्नत्यं येन सः। यद्वा—वयसां पक्षिणां रूपाणां पशूनां च उच्छ्रायो येन सः। पक्षे—जनितो विहितः कुशलवयोरेतन्नामकयोः स्वापत्ययो रूपस्य सौन्दर्यस्य उच्छ्राय औन्नत्यं येन सः। कारणगुणानां कार्यसञ्चारित्वेन स्वात्मतुल्यजनितसौन्दर्य इति भावः। तथाच कालिदासो रघुवंशे—'रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्। न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्।' इति।

तस्य चिन्तामणेः कन्दर्पकेतुर्नाम पुत्रोऽभवदिति संबन्धः। पारिजातो देवतरुरिव, आश्रितान् शरणागतान् स्वोपजीविनो वा नन्दयतीत्याश्रितनन्दनः। पक्षे—आश्रितमधिष्ठितं नन्दनमिन्द्रवनं येन सः। 'नन्दनं वनम्' इतीन्द्रप्रकरणेऽमरः। हिमेति—हिमालयो हिमवानिव, जनितः कृतः शिवं कल्याणं प्रजानामिति शेषः। येन स तथोक्तः। पक्षे—जनितोत्पादिता शिवा पार्वती येन सः। 'शिवा भवानी रुद्राणी' इत्यमरः। मन्दरेति—मन्दराचल इव भोगिनां विलासिनां भोगैर्विलासैरङ्कितो युक्तः। विलासिजनसम्भोगान्वित इत्यर्थः। पक्षे—भोगिनः सर्पस्य समुद्रमथनकाले मन्थनरज्जुरूपेण वेष्टितस्य वासुकेरित्यर्थः। भोगेन शरीरेण शरीरसम्पर्कजन्यरेखयेतिभावः। अङ्कितश्चिह्नित इत्यर्थः। कैलास इति—कैलास इव महेश्वरैर्महाराजैरुपयुक्ताः कोटयस्तत्संख्याकानि धनानि यस्य स तथोक्तः। 'कोटिः स्त्री धनुषोऽग्रे स्यात् सङ्ख्याभेदप्रकर्षयोः' इति विश्वः। पक्षे—महेश्वरेण शिवेन उपयुक्ता कोटिरग्रं यस्य सः। 'कोटिरग्रे प्रकर्षे च' इति धरणिः। मधुरिति—मधुर्वसन्त इव, नाना अनेकासां रामाणां प्रमदानामानन्दं सुखं करोतीति नानारामानन्दकरः। अनेकयोषित्सुखप्रद इत्यर्थः। 'सुन्दरी रमणी रामा' इत्यमरः। पक्षे—नानारामेषु अनेकोपवनेषु आनन्दकरः, यद्वा नानोपवनानां तत्तत्पुष्पविकासादिना शोभाजनक इत्यर्थः। क्षीरोदेति—क्षीरोदस्य क्षीर-

---

उस राजा चिन्तामणिका कदर्पकेतु नामक पुत्र था। जो नन्दनवनस्थित पारिजातके समान, स्वाश्रितजनोंको आनन्दित करनेवाला, पार्वती-जनक हिमालयके समान, कल्याणकारी सर्पराज (वासुकि) के शरीरसे चिह्नित मन्दराचलके समान, राजसुखको भोगनेवाला महादेवसे उपयुक्त शृङ्गोंवाले कैलाशके समान, बड़े-बड़े राजाओंने जिसकी उत्कृष्टता अनुभव की थी, अनेक उपवनोंको आनन्दित करनेवाले वसन्तके समान, रमणियोंको अनेक प्रकारसे आनन्दित करनेवाला, (समुद्रके) जलको शब्दयुक्त करनेवाले क्षीरसमुद्रके मथनके लिये उद्यत मन्दरके समान (अपनी प्रशस्ति घोषसे)

वोल्लासितरतिः, ईशानभूतिसञ्चय इव सन्ध्योच्छलितः, शरन्मेघ इवावदातहृदयो विष्णुपदावलम्बी च, पार्थ इव समरसाहसोचितः, कंस इव

समुद्रस्य मथनायोद्यतो यो मन्दरो मन्दरपर्वतः स इव मुखरितं स्वजयघोषणादिना शब्दायमानं कृतं भुवनं लोको येन सः। सकललोकगीतयशा इत्यर्थः। पक्षे—मुखरितं स्वभ्रमिजन्यशब्देन सध्वनिकृतं भुवनं जलं येन सः। 'पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः। रागेति—रागो रज्जुरिव यस्य सः। नायकयोः परस्परानुरागबद्धत्वात्। कामदेव इव उल्लासिता वर्द्धिता रतिः अनुरागो येन सः। स्वगुणैरात्मनि वर्द्धितप्रजानुराग इति भावः। यद्वा—उल्लासिता देवगुरुषु रतिः स्वानुरागो येन सः। पक्षे—उल्लासिता प्रहर्षिता रतिः स्वपत्नी येन स तथोक्तः। ईशेति—ईशानस्य महादेवस्य भूतेर्भस्मनः सञ्चयो राशिरिव, सम्यग् ध्यायतीति सन्ध्यः, ध्याधातोः 'आतश्चोपसर्गे' इति कः। सम्यग् विचारवानित्यर्थः। अत एव उच्छलितः केनाऽप्यप्रतारित इत्यर्थः। छलशब्दात् 'तदस्य संजातम्' इति इतच्प्रत्ययः। पक्षे—सन्ध्यासु सायंकालेषु उच्छलितः प्रवृद्धः। शरदिति—शरन्मेघ इव अवदातं विशुद्धं निष्कल्मषं हृदयमन्तःकरणं यस्य सः। विष्णुपदं हरिचरणमवलम्बत आश्रयत इति विष्णुपदावलम्बी। हरिभक्त इत्यर्थः। पक्षे-अवदातं शुभ्रं जलसम्बन्धजनितनीलिमरहितं हृदयमन्तःप्रदेशो यस्य सः। आकाशावलम्बी च। 'वियद्विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी' इत्यमरः। पार्थ इति—पार्थोऽर्जुन इव। समरे युद्धे यत्साहसं तत्रोचितो योग्यः। पक्षद्वयेऽपि समानमेतत्। यद्वा—राजपक्षे, समः समानो रसः प्रीतिर्येषां ते समरसाः स्वसमानप्रीतयस्तैः सह य आहसः क्रीडा तत्रोचितः। 'आहसो ललितं क्रीडा' इत्यजयः। यद्वा—समा मया लक्ष्म्या सहिता या रसा पृथ्वी तस्या हसो हासः संतोष इति यावत् तत्र उचित इति वा। कंसेति—कंस इव, कोः पृथिव्या वलयमेव आपीडः शेखरस्तेन भूषितोऽलङ्कृतः। पक्षे—कुवलयापीड इति नाम्ना प्रसिद्धगजेन भूषितः। 'कुवलयापीडभूषणः' इति पाठान्तरम्।

-संसारको पूर्ण करनेवाला, (अपनी पत्नी) रतिको आनन्दित करनेवाले कामके समान, अनुरागको बढ़ानेवाला सन्ध्याकालमें सर्वत्र व्याप्त महेश्वरके भस्मपटलके समान उत्तम बुद्धि (अथवा सहायक) द्वारा कार्योंमें संलग्न (अथवा व्यवहारमें उद्यत), शुभ्र मध्यभागवाले शरत्कालीन मेघके समान, निर्मल-अन्तःकरण सम्पन्न अकाशस्थित चन्द्रमाके समान, हरिचर्णों का भक्त, अर्जुनके समान युद्धमें साहसपूर्ण कार्योंको करनेवाला (अथवा—राजपक्षमें, अपने समान प्रीतिवाले मित्रोंके साथ क्रीडामें तत्पर अथवा—धनधान्यादि लक्ष्मीसम्पन्न पृथ्वीको सन्तुष्ट करनेवाला), कुवलयापीड नामक हस्तिसे सुभूषित, कंसके समान, उत्पलों द्वारा निर्मित भूषण धारण करनेवाला, अथवा—भूमण्डलके शिखरको

कुवलयापीडभूषितः, तार्क्ष्य इव विनताऽऽनन्दकरः सुमुखनन्दनश्च, विष्णुरिव क्रोडीकृतसुतनुः, शान्तनव इव स्ववशस्थापितकालधर्मः, कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठितः, जलधरसमय इव विमलतरवारिधारात्रासित-

---

तत्र कुवलयैर्नीलोत्पलैः कृतः आपीडः शेखरो भूषणं यस्य स इत्यर्थः। तार्क्ष्य इवेति—तार्क्ष्यो गरुडः। विनतानां नम्राणामानन्दकरः। पक्षे—विनतायाः स्वमातुः प्रीतिवर्धनः। सुमुखान् पण्डितान् नन्दयति प्रीणयतीति तथोक्तः। पक्षे—सुमुखः तन्नामानन्दनः पुत्रो यस्य सः। 'सुमुखस्तार्क्ष्यतनये फणिभेदे च पण्डिते' इति विश्वः। विष्णुरिवेति—क्रोडीकृता आलिङ्गिता सुतनवः शोभनाङ्ग्यो बाला येन सः। 'क्रोडीकरणमाश्लेषस्तथालिङ्गनमित्यपि' इति वररुचिः। पक्षे—क्रोडीकृता शूकरीकृता शोभना तनुः शरीरं येन सः। 'क्रोडः शनौ सूकरे ना न पुमानङ्करक्षसोः' इति मेदिनी। शान्तनव इवेति—शान्तनवः शन्तनुपुत्रो भीष्मः। स्ववशे स्वाधीनतायां स्थापितः कालो धर्मश्च येन स तथा। 'राजा कालस्य कारणम्', 'राजा धर्मस्य कारणम्' इति व्यासः, स्मृतिश्च। पक्षे—स्ववशे स्थापितः कालधर्मो मृत्युर्येन स तथोक्तः। पितुर्वरप्रसादात् भीष्मस्य स्वच्छन्दमृत्युत्वात्। 'स्यात्पञ्चता कालधर्मः' इत्यमरः। कौरव इवेति—कौरवाणां दुर्योधनादीनां यो व्यूहः सेनाविन्यासः स इव। सु शोभनं शर्म सुखं सुशर्म, तेनाधिष्ठितो युक्तः। 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः। पक्षे—सुशर्मणा त्रिगर्तदेशीयराजेनऽधिष्ठितः।

जलधरेति—जलधरसमयो वर्षाकालः स इव। विमला स्वच्छा तेजितेति यावत्, या तरवारेः खड्गस्य धारा अग्रं तया संत्रासितं भीपितं राजहंसानां श्रेष्ठनृपाणां मण्डलं समूहो येन सः। एकेनैव प्रत्यर्थिनृपाणां समूहो भीपित इति मण्डलपदस्वारस्यम्। राजानो हंसा इवेति 'उपमितं व्याघ्रादिभिः' इति समासः। 'स्युत्तरपदे व्याघ्र' इत्यत्रादिपदेन हंसादीनामपि ग्रहणात् एतेषामपि श्रेष्ठार्थपरत्वम्। 'राजहंसस्तु कादम्बे कलहंसे नृपोत्तमे' इति मेदिनी। 'करवालनिस्त्रिंशकृपाणखड्गास्तरवारिकौक्षेयकमण्डलाग्राः' इति हैमः। 'धारोत्कर्षे खड्गाद्यग्रे सैन्याग्रे वाजिनां गतौ।

भूषित करनेवाला, सुमुखनामक पुत्रसे युक्त गरुडके समान, विद्वानोंको आनन्दित करनेवाला, वराह-शरीर धारण करनेवाले विष्णुके समान, युवतियोंको आलिङ्गित करनेवाला, स्वच्छन्द मृत्यु (मृत्युको अपने वशमें रखनेवाले) भीष्मके समान, काल और धर्मको अपने अधीन रखनेवाला, सुशर्मासे युक्त, कौरवव्यूहके समान, सुखसम्पन्न, अत्यन्त स्वच्छ जलधाराओंसे राजहंस-गणोंको भीषित करनेवाले वर्षाकालके समान, तीक्ष्ण तलवारकी धार द्वारा बलवान् राजमण्डलको भयभीत करनेवाला था। (यहांसे विरोधाभास द्वार।राजपुत्रका

राजमण्डलः, सुबाहुरपि रामानन्दी, समदृष्टिरपि महेश्वरः, मुक्तामयोऽप्यतरलमध्यः, वंशप्रदीपोऽप्यक्षतदशस्तनयोऽभूत्कन्दर्पकेतुर्नाम।

जलादिपाते संतत्याम्।' इति च हैमः। पक्षे—विमलतराभिः अतिशयेन स्वच्छाभिः वारिधाराभिर्जलसंपातैः संत्रासितं राजहंसानां 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः' इत्युक्तलक्षणानां हंसविशेषाणां मण्डलं समूहो येन सः। हंसानां राजान इति राजहंसाः। राजदन्तादित्वात् हंसशब्दस्य परनिपातः। वर्षासमये तद्भीता इव हंसा मानसं व्रजन्तीति कविसमयप्रसिद्धिः। इतो विरोधाभासेन कन्दर्पकेतुं वर्णयति—सुबाहुरपीति—सुबाहुनामा राक्षसो मारीचभ्राता यो विश्वामित्रयज्ञे रामेण निहितः। रामं लक्ष्मणाग्रजमानन्दयतीति रामानन्दी, सुबाहोः रामानन्दित्वं न संभवतीति विरोधः। परिहारपक्षे—शोभनौ बाहू भुजौ यस्य सः। रामाः सुन्दर्यः, आनन्दयतीति तथोक्तः। 'सुन्दरी रमणी रामा' इत्यमरः। समेति—समाः समसंख्याका दृष्टयो लोचनानि यस्य सः तथोक्तः। महेश्वरो महादेव इति विरोधः। शिवस्य विषमलोचनत्वात्। परिहारपक्षे—समा सर्वत्र तुल्या पक्षपातशून्येत्यर्थः। दृष्टिर्दर्शनं यस्य स तादृशः, समा सलक्ष्मीका दृष्टिर्लोचनं यस्येति वा। मुक्तेति—मुक्ताभिर्मौक्तिकैः प्रचुरो मुक्तामयः। प्राचुर्ये मयट् मुक्ताहार इत्यर्थः। तरलो हारमध्यमणिर्मध्ये यस्य न भवति सोऽतरलमध्यः। मुक्ताहारस्य अतरलमध्यत्वं विरुद्धम्। परिहारपक्षे—मुक्तः परित्यक्त आमयो रागो येन सः। नीरोग इत्यर्थः। 'रोगव्याधिगदामयाः' इत्यमरः। अतरलमचञ्चलं मध्यं हृदयं यस्य स तथोक्तः, स्थिरबुद्धिरिति यावत्। तरला चञ्चलाः स्थिरबुद्धयो मध्या नीचाश्च न विद्यन्ते यस्य सः। उत्तमाः स्थिरबुद्धय एवास्य सहचरा इति भावः। इति वा। वंशेति—वंशे वेणौ उद्दीपितः प्रदीपो वंशप्रदीपः। अक्षता अदग्धा दशा वर्तिर्यस्य सेति विरोधः। प्रदीपस्य दग्धवर्तित्वावश्यम्भावित्वात्। पक्षे—वंशस्य कुलस्य प्रदीप इव, स्वसत्कर्मभिस्तस्य समुज्ज्वलकत्वात्। अक्षता अनष्टा शोभेनेत्यर्थः। दश ।अवस्था जीविकाद्यागमविधिर्यस्येति परिहारः। 'दशा वर्त्यामवस्थायां वस्त्रान्ते भूम्नि पुंस्त्रियोः' इति रभसः। एतादृशः कन्दर्पकेतुर्नाम तनयोऽभूदिति संबन्धः।

वर्णन है) वह राजपुत्र, दशरथपुत्र रामको आनन्दित करनेवाला सुबाहु था (वस्तुतः) विशाल भुजासम्पन्न तथा सुन्दरियोंको आनन्दित करनेवाला था। वह समदृष्टि (दो नेत्रवाला) होते हुए भी शिव था (वस्तुतः) सबके साथ समान व्यवहार करनेवाला एवं सम्राट् था। वह मध्यमणिविहीन मोतियोंका हार था (वस्तुतः) नीरोग तथा स्थिरचित्त था। वह बत्तीको न जलानेवाला यष्टिदीप था (वस्तुतः) कुलको उज्ज्वल करनेवाला तथा उत्तम दशा संपन्न था।

येन च चन्द्रेणेव सकलकलाकुलगृहेण, शर्वरीतिहारिणा, दलितकैरवेण, प्रसाधिताशेन विलोकिताः, जलधय इव समुल्लसितगोत्राः, सुदूरविवर्द्धितजीवनाः, प्रसन्नसत्त्वाः सन्तः, परामृद्धिमवापुः।

पुनरपि कन्दर्पकेतुमेव वर्णयति—येन चन्द्रेणेवेत्यादिना—चन्द्रेण विलोकिता जलधय इव येन विलोकिताः सन्तः परामृद्धिमवापुरित्यन्वयः। सकलकलाकुलगृहेणेत्यादीनि विशेषाणान्युपमानिर्वाहकाणि। सकलेति—व्याख्यातमिदं पूर्वम्। शर्वरीति—शर्वस्य महादेवस्य रीतिं शीलं, ऐश्वर्यवत्त्वेऽपि तदनासक्तिरूपादिकं हरति अनुहरति अनुकरोतीति तेन। शर्वरीत्या हारी मनोहर इति वा। पक्षे—शर्वर्या रात्रेः ईतिरिवेतिस्तमस्तद्धारिणा तद्विनाशकेन। दलितेति—दलिता मर्दिता विनाशिता इति यावत्, कैरवाः शत्रवो येन सः, तथोक्तेन। पक्षे—दलितानि विकासितानि कैरवाणि कुमुदानि येन तादृशेन। 'कैरवः कितवे रिपौ। नपुंसकं च कुमुदे चन्द्रिकायान्तु कैरवी' इति केशवः। क्वचित्कैरवविबन्धुनेति पाठः। विबन्धुरप्रियः। पक्षे विशेषेण बन्धुः। प्रसाधितेति—प्रकर्षेण साधिताः स्वायत्तीकृता आशा दिशो येन तथोक्तेन, स्वाधीनीकृतसकलदिङ्मण्डल इत्यर्थः। प्रकर्षेण साधिता पूरिता आशा अर्थिनामभिलाषो येनेति वा। पक्षे—प्रसाधिता अलङ्कृता दिशो येन तथोक्तेन। समुल्लसितेति—समुल्लसितमुद्दीपितं प्रख्यापितमित्यर्थः, गोत्रं कुलं यैस्ते तथोक्ताः। उल्लसिता विवृद्धा गोत्रा भूमिर्गोसमूहो वा येषां ते तादृशाः। यत्कृपावशतः सन्तो भुवः गवां वा स्वामिनः सञ्जाता इति भावः। गवां समूह इति विग्रहे गोशब्दात् 'इनित्रकट्यचश्च' इति त्रप्रत्ययः। 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावा' इत्यमरः। सुदूरेति—सुदूरमत्यन्तं विवर्द्धितं जीवनं जीविका येषान्ते, पक्षे-सुदूरमत्यन्तमुच्चैः विवर्द्धितमुत्थापितं जीवनं जलं येषान्ते प्रसन्नेति—प्रसन्नं निर्मलं सत्त्वं मनो येषान्ते तथोक्ताः। पक्षे-सत्त्वाः प्राणिनः। 'सत्त्वं गुणे

जिसप्रकार सम्पूर्ण (षोडश) कलाओंके आश्रय, रात्रिके इति (अतिवृष्ट्यादि उपद्रव) तुल्य अन्धकारादिका विनाशक, कौरवोंको विकसित करनेवाले, समस्त दिशाओंके शोभाजनक, चन्द्रमाके दर्शनसे अपनी तरङ्गोंसे पर्वतों पर (तटास्थित पर्वतोंके मूल पर) आघात करनेवाले, अत्यन्त परिवृद्ध जलसम्पन्न, (अन्तःस्थित) जन्तुओंके प्रसादक (जिनके अन्दर प्रसन्न सत्व हैं) समुद्र पर समृद्धिको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार चतुःषष्टिकलाओंके आश्रय, महादेवके स्वभावका अनुहरण करनेवाले, शत्रुओंके विनाशक, (सबकी) अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले (अथवा अपने यशःसौरभसे सब दिशाओंको अलंकृत करनेवाले), उस कन्दर्पकेतुकी कृपामात्रसे सज्जन लोग परम समृद्धिको प्राप्त हुए; उनका वंश विख्यात हुआ (अथवा उसके द्वारा दी हुई भूमि अथवा गौवोंके स्वामी हुए), उनकी जीविकाएँ अच्छी तरह चलती थीं और उनके मन सदा प्रसन्न रहते थे।

यस्य च जनितानिरुद्धलीलस्य, रतिप्रियस्य, कुसुमशरासनस्य मकरकेतोरिव दर्शनेन, वनिताजनस्य हृदयमुल्ललास।

यस्मै चानुगतदक्षिणसदागतये, नेत्रश्रुतिसुखदाय, कोमलकोकिलरुताय, विकासितपल्लवाय, कृतकान्तारतरङ्गाय, सुरभिसुमनोऽभिरामाय,

---

पिशाचादौ बले द्रव्यस्वभावयोः। आत्मत्वव्यवसायासु वित्तेष्वस्त्री तु जन्तुषु' इति मेदनी। सन्तः साधवः। ऋद्धिं समृद्धिम्।

यस्य चेति—मकरकेतोरिव यस्य कंदर्पकेतोर्दर्शनेन वनिताजनस्य हृदयमुल्ललासेत्यन्वयः। जनितेति—जनिताः समुत्पादिताः कृता इति यावत्। अनिरुद्धा अनिवारिताः लीलाः खेला विलासा वा येन सः, तस्य। पक्षे जनिता अनिरुद्धस्य स्वपुत्रस्य लीला येन तस्य। मन्मथपुत्रो ह्यनिरुद्धः। रतीति—रतिः रागः क्रीडा वा प्रिया अभीष्टा यस्य तस्य। पक्षे—रतिः कामपत्नी। कुसुमेति—कुसुमशरं काममस्यति क्षिपति तिरस्करोति स्वसौन्दर्येणेति कुसुमशरासनः। बाहुलकात्कर्तरि ल्युट् बोध्यः। पक्षे—कुसुमानि शरासनं धनुर्यस्य, तस्य। मकरकेतोः कामस्येव दर्शनेन वनिताजनस्य प्रमदाजनस्य हृदयमुल्ललास हल्लासं हर्षं प्राप।

यस्मै इति—वसन्ताय उपवनलता इव यस्मै तरुण्यः स्पृहयाञ्चक्रुरित्यन्वयः। अनुगतेति—अनुगतानां सेवकानां दक्षिणानां कुशलानां पण्डितानां वा, सतां साधूनाञ्च आगतिरागमनस्थानं, तेषां पोषकत्वादिति भावः। पक्षे—अनुगतोऽनुसृतो दक्षिणो दक्षिणदिग्भवः सदागतिर्वायुर्यं स तस्मै, वसन्तागमनेन सह दक्षिणपवनोऽप्यागच्छतीति प्रसिद्धमेव। नेत्रेति—नेत्राभ्यां श्रुतिभ्यां च रूपेण कीर्तिश्रवणेन च सुखप्रदाय आनन्ददात्रे लोकानामिति भावः। पक्षे—नेत्रमेव श्रुतिर्येषां ते नेत्रश्रुतयः सर्पास्तेषां सुखप्रदाय। वायुभक्षकाणां तेषां कोमलदक्षिणपवनसञ्चारणाद्वसन्तस्य सुखप्रदत्वमिति भावः। कोमलेति—कोमलं मधुरं कोकिलस्येव रुतं शब्दो यस्य सः तस्मै। पक्षे—कोमलं कोकिलरुतं यत्रेति विग्रहः। अत्र 'श्रुतिसुखदकोमलकोकिलरुताय' इति पाठान्तरम्। विकासितेति—विकासितः पल्लवो बलं येन तादृशाय,

---

(अपने पुत्र) अनिरुद्धकी (बाल) लीलाओंके उत्पादक, रतिप्रिय, कुसुमायुध कामदेवके तुल्य उस कंदर्पकेतुके दर्शनसे रमणियोंका हृदय उल्लसित हो उठता था क्योंकि (कन्दर्पकेतु सर्वथा कामदेवके अनुरूप था), वह भी निरन्तर विलासोंका उत्पादक, रति क्रीडाप्रिय और अपनी कान्तिसे कुसुमायुधको भी नीचा दिखाता था।

जिसप्रकार, हजारों कलियोंसे पूर्ण, भ्रमरयुक्त, नवपल्लवोंसे मनोरम, पक्षियोंसे सुशोभित लताएँ दक्षिणपवनसे युक्त, सर्पोंको आनन्ददायक, कोमलके मधुर शब्द-संपन्न, नवपल्लवोंके विकासक, वनोंको हिलानेवाले, सुगन्धित पुष्पोंसे मनोरम, और जिसमें कमल आसानीसे प्राप्त हो सकते हैं, विकसित चम्पक सब जगह व्याप्त हो रहे हैं, तथा (एक

सर्वजनसुलभपद्माय, विस्तृतकनकसम्पदे अतिक्रान्तदमनकाय वसन्तायेव, उपवनलता इवोत्कलिकासहस्रसङ्कुलाः, भ्रमरसङ्गताः, प्रवालहारिण्यः

विकासिता शृङ्गारचेष्टा येनेति वा 'पल्लवः किसलये बले। विटपे विस्तरेऽलक्तरागे शृङ्गारषिङ्गयोः' इति हैमः। अत्र केचित् 'बले' इत्यस्य स्थाने 'चले' इति पाठान्तरं मन्यमानाः पूर्वोक्तार्थेऽस्वारस्यं प्रकटयन्ति। परं 'पल्लवो बलम्' इति शब्दकल्पद्रुम-प्रामाण्यात् सोऽर्थोऽपि युक्त एव। पक्षे—विकासिताः पल्लवाः किसलयानि येन, तस्मै। कृतेति—कृतो जनितः कान्तासु प्रमदासु रते सुरतविषये सुरतस्य वा रङ्गो रागोऽभिलाषो येन सः, तस्मै। कन्दर्पकेतुं दृष्ट्वा कान्तानां चेतसि मदनविकारः संजायते। वसन्तस्य तु कामोद्दीपकत्वं प्रसिद्धमेव। अत उभयत्र समानमेतत्। यद्वा—वसन्तपक्षे, कृतः कान्ताराणां वनानां तरङ्गः कम्पनं येन स तस्मै। सुरभीति—सुरभिभिः सुगन्धिभिः सुमनोभिः पुष्पैरभिरामो मनोज्ञः, तस्मै। उभयत्र समानमेतत्। यद्वा—राजपक्षे, सुरभयः प्रसिद्धाः सुमनसो विद्वांसस्तैरभिरामः। सुरभिः श्रेष्ठः, सुमनाः पण्डितः, अभिरामः सुन्दरश्चेति वा 'सुरभिः सौरभे ख्याते वसन्ते पण्डितेऽपि च।' 'श्रेष्ठेऽपि निगद्यते सुरभिः' इति विश्वः केशवश्च। सर्वेति—सर्वजनानां सुलभा सुप्रापा पद्मा लक्ष्मीर्यस्य तस्मै। सर्वजनभोग्यलक्ष्मीक इति यावत्। पक्षे पद्मं कमलम्। 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा'। 'वा पुंसि पद्मं नलिनम्' इत्यमरः। विस्तृतेति—विस्तृता प्रचुरेत्यर्थः, कनकसम्पत् स्वर्णसम्पद् यस्य, तस्मै। पक्षे—कनकः धत्तूरः किंशुकः चम्पको वा। 'कनकं हेम्नि पुंसि स्यात् किंशुके नागकेसरे। धत्तूरे काञ्चनारे च कालीये चम्पकेऽपि च' इति मेदिनी। अतिक्रान्तेति—अतिक्रान्ताः स्वशौर्येणाभिभूता दमनका वीरा येन सः, तस्मै। पक्षे—अतिक्रान्ता अत्यन्तं व्याप्ताः प्रभूता इत्यर्थः। दमनकाः सुगन्धिलताविशेषा यस्मिन् तस्मै। 'दमनौ शत्रुमूलौ च' इत्यजयः। 'मूलो गन्धवीरुद्विशेषः' इति तद्व्याख्या। अतिक्रान्ता दमनकाः कुन्दपुष्पाणि येन तस्मै इति वा। कुन्दस्य माघजत्वात्तस्यातिक्रमो बोध्यः। 'दमनकः कुन्दवृक्षः' इति राजनिघण्टुः। अयमेवार्थः शिवरामसम्मतः। 'मदनकाय' इति पाठान्तरम्। तत्र वसन्तपक्षे—मदनको लताविशेषः, राजपक्षे च मदनः शत्रुः। 'मदनौ शत्रुकन्दर्पौ' इति कोशः। उत्कलिकेति—उत्कलिकानामुत्क-

प्रकारकी) सुगन्धित लताएँ छाई हुई हैं ऐसे वसन्तकी, कामना करती हैं उसी प्रकार, अनेक प्रकारकी उत्कण्ठाओंसे पूर्ण, कामुकजनोंसे घिरी हुई, उत्तम केशोंसे मनोहर (अथवा—विद्रुमोंकी मालाएँ धारण किये हुए) यौवनसे सुशोभित युवतियाँ, अनुचरों, पण्डितों तथा सज्जनोंका पालन करनेवाले, (रूप तथा कीर्तिके श्रवणसे) नेत्र तथा कानोंको आनन्द देनेवाले, कोकिलके समान मधुरभाषी, शृङ्गारप्रिय, रमणियोंके रतिविषयक राग (इच्छा) को उत्पन्न करनेवाले, सुगन्धित पुष्पोंसे मनोरम (अथवा श्रेष्ठ, पण्डित और सुन्दर), तथा

विलसद्वयसस्तरुण्यः स्पृहयाञ्चक्रुः।

यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शराः, शरैररिशिरः, अरिशिरसा भूमण्डलं, भूमण्डलेनानुभूतपूर्वो नायकः, नायकेन कीर्त्तिः, कीर्त्त्या च सप्त सागराः, सागरैः कृतयुगादिराजचरितस्मरणम्, स्मरणेन स्थैर्यम्, स्थैर्येण प्रतिक्षणमाश्चर्यमासादितम्।

ण्ठानां सहस्रेण, अनेकोत्कण्ठाभिरित्यर्थः, अहमनेनैवं रंस्ये, एवमालपिष्यामीत्यादिमनोऽभिलाषसहस्रैरिति यावत् संकुला व्याप्ताः। पक्षे—हृद्गतानामाविर्भूतानां कलिकानां कोरकाणां सहस्रेण संकुलाः। 'उत्कण्ठोत्कलिके समे।' 'कलिका कोरकः पुमान्' इत्यमरः। यद्वा तरुणीपक्षे रलयोरभेदेन उद्गताः करिकाः नखक्षतानि इति केचित्। 'करिका नखरेखिका' इति वैजयन्ती। भ्रमरेति—भ्रमरैः कामुकैः सङ्गताः मिलिताः। कामुकान्विता अपि कन्दर्पकेतवे स्पृहयाञ्चक्रुरिति अहो तासां तस्मिन्नभिलाषातिशयः। भ्रमरैः ललाटालकैः सङ्गता इति वा। 'भ्रमरः कामुके भृङ्गललाटालकयोरपि' इति विश्वः। यद्वा—भ्रमरसं भ्रमानुभवं गताः, भ्रमं भ्रान्तिं रसमादरं च गता इति वेति केचित्। पक्षे—भ्रमरैः भृङ्गैः संगताः। भ्रमराधिष्ठिता इत्यर्थः। प्रबालेति—प्रबालानां विद्रुमाणां तन्निर्मित इत्यर्थः। हारो यासां ताः। बवयोरभेदात् प्रकृष्टैः शोभनैर्बालैः केशैर्हारिण्यो मनोहारिण्यः। पक्षे—प्रवालं किसलयम्। 'चिकुरः कुन्तलो बालः' इत्यमरः। 'प्रवालोऽस्त्री किसलये वीणादण्डे च विद्रुमे' इति मेदिनी। विलसदिति—विशेषेण लसत् प्रस्फुरत् अङ्गेषु विद्यमानमित्यर्थः। वयो यौवनं यासां ताः। पक्षे-विलसन्ति शोभमानानि वयांसि पक्षिणो यासु ताः। 'वयः पक्षिणि बाल्यादौ यौवने च नपुंसकम्' इति मेदिनी।

यस्य चेति—समरभुवि यस्य भुजदण्डेन कोदण्डमासादितम्, कोदण्डेन शरा आसादिताः, इत्येवमासादितपदस्य तत्तद्विशेष्यानुसारेण विभक्तिविपरिणामो बोध्यः। अत्र मालादीपकमलङ्कारः। 'सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्। (दीपकम्) मालादीपमाद्यं चेद्यथोत्तरगुणावहम्।' इति तल्लक्षणम्। अननुभूतेति—पूर्वमनुभूतो न भवतीत्यननुभूतपूर्वः।

जिसका ऐश्वर्य सर्वजन-भोग्य था, जिसके यहा सुवर्ण प्रचुर मात्रामें था, और जिसने सब शत्रुओंको नीचा दिखाया था ऐसे उस कन्दर्पकेतुको चाहती थीं।

युद्ध भूमिमें, जिसके भुजदण्डने प्रतिक्षण धनुष, धनुषने बाण, बाणोंने शत्रुमस्तक, शत्रु-मस्तकने भूमण्डल, भूमण्डलने अननुभूतपूर्व नायक, नायकने कीर्ति, कीर्तिने सात सागर, सागरोंने कृतयुगादिराजाओंके चरितोंका स्मरण, स्मरणने स्थिरता और स्थिरताने आश्चर्य प्राप्त किया।

यस्य च प्रतापानलदग्धदयितानां रिपुसुन्दरीणां करतलताडनभीतैरिव मुक्ताहारैः पयोधरपरिसरो मुक्तः।

यस्य च निशितनाराचजर्जरितमत्तमातङ्गकुम्भस्थलविगलितनिस्तल-

यस्य चेति—**यस्य कन्दर्पकेतोः प्रतापस्तेज एवानलस्तेन दग्धा भस्मीभूता दयिता स्वामिनो यासां तासां रिपुसुन्दरीणां मुक्ताहारैः मौक्तिकमालाभिः, करतलेन रिपुसुन्दरीणामेव हस्तेन यत्ताडनं वैधव्यदुःखेन वक्षस्ताडनं तस्मात् भीतैरिवोत्प्रेक्षा, स्वस्यापि तत्रैव सन्निधानात् वक्षस्ताडनेनास्माकमपि ताडनं भविष्यतीति मन्यमानैरित्यर्थः। पयोधरयोः कुचयोः परिसर उपान्तप्रदेशः, मुक्तः परित्यक्तः। पयोधरो मेघश्च। अत्रेदं तात्पर्यम्—कन्दर्पकेतोः प्रतापानलेन रिपुस्त्रीणां दयितदाहात् तच्छोकाग्नेश्च तासामपि हृदयदाहसंभवात् 'मास्म नाम वयमपि दग्धा भूम' इति मन्यमाना मुक्ताहाराः, अनलतप्तानां च तदपनोदनाय मेघोपसरणमेव शरणमिति पयोधरपरिसरपरिग्रहणे च कृतमतयः 'अहो बत दुर्भाग्यानामस्माकं क्व नु भविष्यति निर्वृतिः, यतो वयमेताभिः सततं धार्यमाणा अपि इतः परमाभिरेव 'करतलैस्ताडयिष्यामहे' इति भीताः पयोधरपरिसरं त्यक्तवन्तः' इति। रिपुस्त्रीभिर्वक्षसि मुक्ताहारो न धृतः। तदधारणं च वैधव्यचिह्नमिति भावार्थः।**

यस्येति—**सागर इव समरशिरसि यस्य खड्गो रराजेत्यन्वयः।** निशितेति—**निशितैः तीक्ष्णैः नाराचैः सर्वलोहमयबाणैः जर्जरितानि शिथिलितानि भिन्नानीत्यर्थः। मत्तानां मदस्राविणां मातङ्गानां गजानां कुम्भस्थलानि गण्डप्रदेशास्तेभ्यो विगलितैः प्रच्युतैः निस्तलैः वर्तुलैः मुक्ताफलनिकरैः मौक्तिकसमूहैः दन्तुरितः निम्नोन्नतः, व्याप्त इत्यर्थः। परिसरः प्रान्तप्रदेशो यस्य तस्मिन् तथोक्ते। 'सर्वलौहास्तु ये बाणा नाराचास्ते प्रकीर्तिताः।' इति बृहच्छार्ङ्गधरे। 'कुम्भो राश्यन्तरे हस्तिमूर्धांशे राक्षसान्तरे। कामुके वारनार्यां च घटे क्लीबे तु गुग्गुलौ' इति मेदिनी। 'वर्तुलं निस्तलं**

कन्दर्पकेतुके प्रतापानलसे शत्रुपत्नियोंके प्रिय (पति) दग्ध हो चुके थे, 'उनके संसर्गसे हम भी भस्म न हो जावें' यह समझकर मुक्ताहारोंने उन्हें छोड़ उनके पयोधरों (कुच, अथच मेघ) पर आश्रय ग्रहण करनेका विचार किया परन्तु 'अभागा जहां भी जाय वहीं दुर्दैव उसका पीछा करता है, इसी विचारसे उन्हें वह स्थान भी छोड़ना पड़ा क्योंकि वे जानते थे कि ये ही (शत्रुरमणियाँ ही) हमें अपने करतलोंसे मारेंगी अतः वे भयभीतसे हो गये और वहांसे चले गये। तात्पर्य यह है कि शत्रुस्त्रियोंने वैधव्यके कारण मोतियोंके हार उतार दिये।

जिसका खड्ग चोखे लोहेके बाणोंसे विदीर्ण मत्त मातंगके गण्डस्थलोंसे विगलित गोलाकार

मुक्ताफलनिकरदन्तुरितपरिसरे, पततपत्ररथे, रक्त[1]वारिसमुह्यमानद्विरदपद-कच्छपे विलसदुत्पलपुण्डरीके, वाहिनीशतसमाकुले, नृत्यत्कबन्ध[2]विधुरे, सुरसुन्दरीसमागमोत्सुकभटाहङ्कारभाषणरवभीषणे, सागर इव समरशि-

वृत्तम्' इत्यमरः। समुद्रस्य परिसरस्तु स्वत एव मुक्ताफलदन्तुरितः। पतदिति—पतन्तः पत्ररथा बाणपत्ता यस्मिन् तादृशे, बाणपुङ्खप्रदेशे हि कङ्कादिपक्षिणां पक्षा निबध्यन्ते। 'पत्ररथो बाणपक्षः' इति धरणिः। पतन्ति पत्राणि वाहनानि रथाः स्यन्दनाश्च यस्मिन्निति वा। पक्षे-पतन्तः सलिलपानार्थमागच्छन्तः पत्ररथाः पक्षिणो यस्मिन् तादृशे। 'पत्रं तु वाहने पर्णे स्यात्पक्षे शरपक्षिणोः' इति मेदिनी। 'पतत्पत्ररथाण्डजाः' इत्यमरः। रक्तेति—रक्तं रुधिरं वारि जलमिव, रक्तमेव वारि इति वा, तत्र समुह्यमानानि उत्प्लवमानानि द्विरदपदानि कच्छपा इव यत्र तथोक्ते। पक्षे-रक्तमिव वारि तत्र समुह्यमानानि द्विरदपदानीव कच्छपा यत्र तथोक्ते। विलसदिति—विलसन्ति शोभमानानि उद्गतं पलं मांसं येभ्यस्तानि उत्पलानि मांसशून्यानि अस्थिमात्रावशेषाणि शरीराणि पुण्डरीकाणि सितच्छत्राणि मृतपुरुषाणां हृत्पद्मानि वा यस्मिन् तथोक्ते। 'उत्पलं कुष्ठभूरुहे। इन्दीवरे मांसशून्ये' इति हैमः। 'पुण्डरीकं सिताम्भोजे सितच्छत्रेऽपि भेषजे।' इति विश्वः। पक्षे, उत्पलानि कुमुदानि पुण्डरीकाणि सिताम्भोजानि यस्मिन् तथोक्ते। वाहिनीति—वाहिनीनां सेनानां शतेन समाकुले व्याप्ते। पक्षे-वाहिनी नदी। नृत्यदिति—नृत्यद्भिः मस्तकच्छेदेन रक्तोष्मवशात् इतस्ततः प्रसर्पद्भिरित्यर्थः। कबन्धैः रुण्डैः बन्धुरे उन्नतानते। अन्यत्र—नृत्यद्भिरुच्छलद्भिः कबन्धैर्जलैर्बन्धुरे मनोहरे। 'कबन्धं सलिले रुण्डे' इति शाश्वतः। 'बन्धुरबन्धुरौ रम्ये नम्रे, हंसे तु बन्धुरः' इति विश्वः। सुरसुन्दरीति—सुरसुन्दरीणामप्सरसां समागमे सहवासे लाभे वा उत्सुका उत्कण्ठिता ये भटा योधास्तेषामहङ्कारेण गर्वेण यो भाषणरवः वीरवादकलकलस्तेन भीषणे भयावहे। यत्र योद्धारोऽ-

मोतियोंसे व्याप्त प्रान्त प्रदेशवाले, गिरते हुए बाणोंके पक्ष अथवा वाहन और रथवाले (सागर-पक्षमें-जलपानार्थ आते हुये पक्षियोंवाले), रक्तरूपी जलमें उतराते हुये हाथीके पांवरूपी कछुयेवाले, मांसशून्य मृत पुरुषोंके हृदयकमलसे सुशोभित (सागर-पक्षमें कुमुद तथा श्वेत कमलसे सुशोभित), सैकड़ों सेनाओंसे व्याप्त (सागर पक्षमें—सैकड़ों नदियोंसे व्याप्त), नाचते हुये कबन्धोंसे ऊँच-नीच बने हुये (सागर पक्षमें—नाचते हुए जलोंसे सुन्दर), अप्सराओंके सहवासमें उत्सुक वीरोंके (सागर पक्षमें—सुरसुन्दरी नामक मत्स्य विशेषकी प्राप्तिमें उत्सुक केवटोंके) अहङ्कारद्योतक भीषण शब्दोंसे भयङ्कर, सागरके

१ 'रक्तवारिसञ्चरदनेकच्छायोत्पलपुण्डरीकवाहिनीशतसमाकुले' इति पाठान्तरम्।
२ 'नृत्यत्कबन्धे' इति पाठान्तरम्।

रसि, भिन्नपदातिकरितुरगरुधिरार्द्रजयलक्ष्मीपादालक्तकरागरञ्जित इव खड्गो रराज।

अथ स कदाचिदवसन्नायां यामवत्यां दधिधवलकालक्षपणकग्रासपिण्ड इव, निशायमुनाफेनपुञ्ज इव, मेनकानखमार्जनधवलशिलाशकल इव, मधुच्छ-

ष्सरःसमागमोत्सुकाः सन्तः सक्ष्वेडं परस्परमाहूयन्तो युद्ध्यन्त इति भावः। पक्षे—सुरसुन्दरीणां मत्स्यविशेषाणां समागमे प्राप्तौ उत्सुकानां भटानां कैवर्तादीनामहङ्कारभाषणरवेण भीषणे। 'भटः पामरभेदे च वीरे च' इति विश्वः। यद्वा—तादृशभाषणमिव यो रवः कल्लोलकोलाहलस्तेन भीषणे। समरेति—युद्धप्राङ्गणे सागरे इव। भिन्नेति—भिन्नानां विदारितानां मृतानामित्यर्थः। पदातीनां पत्तीनां करिणां हस्तिनां तुरगाणामश्वानां च रुधिरेणार्द्रः क्लिन्नः। अत्रोत्प्रेक्ष्यते-जयलक्ष्मीति—जयलक्ष्म्याः पादयोः चरणयोः अलक्तकरागेण लाक्षारसेन रक्तिम्ना वा रञ्जितः रक्तवर्णीकृतः।

कन्दर्पकेतुं वर्णयित्वा कदाचित्कन्दर्पकेतुः प्राभातिके स्वप्ने अष्टादशवर्षदेशीयां काञ्चित् कन्यकां ददर्शेति कथामारचयिषुस्तावत्प्रभातं वर्णयति-अथेत्यादिना। कन्दर्पकेतुः कदाचित् स्वप्ने कन्यां ददर्शेत्यन्वयः। यामवात्यां रात्रौ। अवसन्नायां समाप्तायां, प्रभातप्रायायामित्यर्थः। अनेन स्वप्नस्य शीघ्रफलप्रदत्वं ध्वन्यते। तदुक्तं गुरुणा-'अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत्' इति। कुमुदनीनायके चन्द्रे। अपरजलनिधिपयसि पश्चिमोदधिनीरे। मज्जति-अन्तगते सति। कीदृशे कुमुदनीनायके इत्यत्रोत्प्रेक्षते—दधीत्यादिना-कालः समयो यमो वास एव क्षपणको बौद्धो जैनो वेति कालक्षपणकः। दध्ना मिश्रितत्वात् धवलः शुभ्रवर्णः यः कालक्षपणकस्य ग्रासपिण्डः कवलपिण्डः तस्मिन्निव स्थिते। क्षपणकस्य भक्षणार्थं दधिमिश्रितः पिण्डो दीयत इति लोकप्रसिद्धिः। यथा भक्षणार्थं दीयमानः पिण्डः क्षपणकेन ग्रस्यते तथाऽयमपि कालेन ग्रस्यत इति भावार्थः। निशेति—निशा रात्रिरेव यमुना नीलत्वसाम्यात्, तस्याः फेजपुञ्ज इव डिण्डीरसमूह इव। यथा फेनाः कदाचिदन्योन्यसंश्लेषेण पिण्डीभूयाऽचिरादेव विश्लिष्यन्तो नश्यन्ति तथैवायमपि शीघ्रमेव नङ्क्ष्यतीति भावः। मेनकेति—मेनकायाः स्ववैश्याया हिमवत्पत्न्या वा नखमार्जनाय नखशोधनाय यत् धवलं शुभ्रं शिलाशकलं प्रस्तरखण्डं स्फटिकोपलखण्डमिति यावत्, तादृश इव। मधुच्छत्रेति—मधुच्छत्रस्य मधुकोशस्य क्षौद्रपटलस्येव छाया

समान युद्धके मैदानमें मरे हुए पैदल सेना, हाथी और घोड़ोंके रुधिरसे आर्द्र होनेसे जयलक्ष्मीके चरणके महावर (लाक्षारस) से रंगे हुयेके समान सुशोभित हुआ।

जिस समय कुमुदनीनायक चन्द्रमा मानों शंख-कान्तिको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे पश्चिम समुद्रमें डूब रहा था (उस समय स्वप्न देखा) उस समय चन्द्रमा ऐसा प्रतीत

वच्छायमण्डलोदरे, पश्चिमाचलोपधानसुखनिषण्णशिरसो राजतताटङ्कचक्र इव, श्यामश्यामायाः, शेषमधुभाजि चषक इव विभावरीबध्वाः, अपरजलधिपयसि शङ्खकान्तिकामुक इव मज्जति कुमुदिनीनायके, शिशिरहिमशीकरकर्दमितकुमुदमध्यबद्धचरणेषु षट्चरणेषु, कलप्रलापपरागबोधितचकिता-

---

कान्ति यस्य तत् मधुच्छत्रच्छायम्। यद्वा—मधुच्छत्रस्य छाया मधुच्छत्रच्छायम्, अस्मिन्विग्रहे 'विभाषा सेनासुरेति' क्लीबत्वम्। तादृशं तद्वद्वा मण्डलोदरं बिम्बमध्यं यस्य तस्मिन्। चन्द्रमण्डलान्तर्वर्त्तिकलङ्कमभिप्रेत्येयमुत्प्रेक्षा। यथा क्षौद्ररूपं मधुसिक्थमन्तः कृष्णवर्णमितस्ततश्च श्वेतं भवति तथाऽयमपीति भावः। पश्चिमेति—पश्चिमाचलः अस्ताद्रिरेव उपधानमुपबर्हः शिरोऽवलम्बनं तत्र सुखेन निषण्णं स्थितं शिरो यस्यास्तस्याः। श्यामेति—श्यामा रात्रिरेव श्यामा षोडशवार्षिकी युवतिः तस्याः। राजतेति—राजतं रजतनिर्मितं यत् ताटङ्कचक्रं वर्तुलाकारकर्णभूषणविशेषः तस्मिन्निव स्थिते। यथा सुप्तायास्तरुण्यास्ताटङ्कः लम्बमानो न सम्यगवलोक्यतेऽपि तु उपबर्हादिषु संलग्नस्य कियानेवांशोऽवलोक्यते तथैवास्तगिरिसन्निहितस्यास्यापि क्रमेणाल्पाल्पांशो विलोक्यत इत्युत्प्रेक्षार्थः। 'रात्रिस्तु वासतेयी वसतिः श्यामानिशानिशीथिन्यः।' इति बाणः। 'श्यामा षोडशवार्षिकी' इति कोशः। 'शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे या सुखशीतला। तप्तकाञ्चनवर्णाभा या स्त्री श्यामेति कथ्यते।' इति भरतः। विभेति—विभावरी रात्रिरेव वधूस्तस्याः, शेषं पीतावशिष्टं यन्मधु मद्यं तद्भजतीति तादृशे। चषके पानपात्रे इव वर्तमाने। 'चषकोऽस्त्री पानपात्रम्' इत्यमरः। कलङ्कानुरोधेनेयमप्युत्प्रेक्षा। शङ्खेति—शङ्खस्य शुक्तेः कान्तिं शोभां कामयत इति तस्मिन् तथोक्ते। शङ्खकान्तिमभिलष्यन् तत्प्राप्तये समुद्रे मज्जतीवेति भावः। अत्र क्रियोत्प्रेक्षा। पूर्वत्र च द्रव्योत्प्रेक्षा। षट्चरणेषु भृङ्गेषु। शिशिरेति—शिशिराः शीतला ये हिमशीकरा हिमजलविन्दवस्तैः कर्दमितस्य कर्दमवदाचरितस्य पङ्कतां नीतस्येत्यर्थः। कुमुदानां कैरवाणां परागस्य किञ्जल्कस्य मध्येऽन्तः बद्धाः संसक्ताः चरणा येषां तादृशेषु सत्सु। कलेति—सारिकासु कलोऽव्यक्त-

---

होता था मानों, कामरूपी बौद्धका दहीसे शुभ ग्रास-पिण्ड हो, निशारूपी रात्रिका फेनसमूह हो, मेनकाके नख साफ करनेका शुभ्र पाषाणखण्ड हो। उस समय उसके (चन्द्रमाके) बिम्बका मध्य भाग शहदके छत्तेके समान सुशोभित हो रहा था। उस समय वह (चन्द्रमा) अस्ताचलरूपी तकिये पर सिर रखकर लेटी हुई रात्रिरूपी युवतीके रजतनिर्मित ताटङ्कके समान सुशोभित हो रहा था और रात्रिरूपी कामिनीके पीनेसे शेष बचे हुए मद्यसे परिपूर्ण पात्र-सा प्रतीत होता था। उस समय भ्रमर, शीतल हिमकणोंके (सम्पर्कसे) कर्दमरूप बने हुए कुमुदोंके परागमें फंसे हुए थे, सारिकाएँ अपनी मधुर

भिसारिकासु सारिकासु, प्रबुद्धाध्ययनकर्मठेषु मठेषु, विभासरागमुखरकार्पटिकजनोपगीयमानकाव्यकथासु रथ्यासु, सकलनिपीतनैशतिमिरसंघात-

मधुरो यः प्रलाप उच्चैर्घोष इति यावत् तेन बोधिताः, स्वापाज्जागरिताः 'प्रभातकालः सञ्जातः' इति सूचिता वा अतएव चकिताः, अन्यपुरुषदर्शनाशङ्कया भीताः, अभिसारिकाः नायिकाविशेषा याभिस्तादृशीषु सतीषु। अभिसारिकालक्षणं दर्पणकारैरुक्तम्—'अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा। स्वयं वाऽभिसरत्येषा धीरैरुक्ताऽभिसारिका' इति। प्रबुद्धेति—मठेषु छात्रावासेषु। प्रबुद्धाः स्वापोत्थिता अध्ययनकर्मठाः अध्ययनकुशला येषु तादृशेषु सत्सु। कर्मणि घटन्त इति कर्मठाः। कर्मशब्दात् 'कर्मणि घटोऽठच्' इत्यठच्प्रत्ययः। 'कर्मशूरस्तु कर्मठः'। 'मठश्छात्रादिनिलयः' इत्यमरः। रथ्यासु—प्रतोलीषु। विभासेति—विभासरागेण रागविशेषेण मुखरा वाचालाः गायन्तः (गानापाटवसूचनाय मुखरपदम्) ये कार्पटिका वस्त्रयाचकभिक्षवस्तैरुपगीयमाना काव्यकथा यासु तादृशीषु सतीषु। यद्वा, विभया समुदीयमानादित्यरक्तिम्ना सरागाः स्वयाचनकार्यसमुत्सुका अत एव मुखराः, शेषं पूर्ववत्। 'हासरागमुखरकार्पटिकोपगीयमानकाव्यकथ्यासु' इति पाठान्तरम्। हासः शीघ्रगमनं तत्र रागेण अभिनिवेशेन मुखराः स्वजनाह्वानादिना वाचालाः ये कार्पटिका नित्ययात्राशीलाः तैरुपगीयमानः काव्यस्य शुक्रस्य कथ्या उदयो यासु तासु तथोक्तासु। 'हासो हास्यरसे शीघ्रगमनानन्दयोरपि' इत्यजयः। 'नित्ययात्रः कार्पटिकः' इति भागुरिः। 'कथ्योद्गमकथार्हयोः' इत्युत्पलः। परे तु 'काल्यकथ्यासु' इति पाठं मन्यमानाः, हासरागेण रागविशेषेण मुखरा ये कार्पटिका जीर्णवस्त्रधारिणो निस्पृहाः पुरुषाः तैरुपगीयमानानि काल्यानि कल्यसंबन्धीनि प्रभातकालोचितानि कथ्यानि कथनीयानि भगवन्नामादीनि यासु तासु। इति व्याचक्षते। अतोऽग्रे सकलेत्यारभ्य प्रदीपेष्वित्यन्तं प्रभातकालिकदीपवर्णनम्। प्रदीपेषु एवं विधेषु सत्सु इति संबन्धः। सकलेति—सकलं समग्रं निरवशेषं यथा स्यात्तथा, इति क्रियाविशेषणम्, सकलानि समग्राणि वेति तिमिरविशेषणं, यानि नैशानि निशाभवानि 'निशाप्रदोषाभ्याञ्च' इत्यण्। तिमिराणि अन्धकारास्तेषां संघातं समूहम्। अतनीयस्तया पीततमसामतिप्रभूतत्वेन।

ध्वनिसे अभिसारिकाएँ जगा रही थीं, वे (अभिसारिकाएँ प्रभात समय जानकर प्रियवियोग अथवा देखे जानेके भयसे) भयभीत हो रही थीं। मठोंमें अध्ययनरत छात्र उठ चुके थे, मार्गोंमें विभास नामक रागविशेष द्वारा वस्त्रयाचकभिक्षु काव्य-कथाओंका गान कर रहे थे। (पाठान्तरमें—शीघ्रतापूर्वक चलते हुए तथा अपने सहचरोंसे बुलाने आदिके कारण वाचाल यात्रियोंसे शुक्रोदयकी कथा कही जारही थी) उस समय (प्रभात समय) दीपक, पूर्णरूपसे पिये हुए रात्रिके अन्धकार समूहको, अत्यधिक होनेके कारण धारण

मतनीयस्तया वोढुमसमर्थेष्विव, कज्जलव्याजादुद्वमत्सु, कामिमिथुननिधुवनलीलादर्शनार्थमिवोद्ग्रीविकाशतदानखिन्नेषु, विविधविभ्रमसुरतक्रीडासाक्षिषु, शरणागतमिवाधोनिलीनं तिमिरमवत्सु, दुर्जनवचनेष्विव दग्धस्नेहतया मन्दिमानमुपगतेषु, अतिवृद्धेष्विव दशान्तमुपगतेषु, विपन्नसदीश्वरेष्विव

वोढुं स्वस्मिन् धारयितुम्। कज्जलेति—कज्जलं मषी एव व्याजं व्यपदेशस्तस्मात्। उद्वमत्सु उद्गिरत्सु। अतितनीयस्तयेति पाठे पात्राणामत्यल्पतयेत्यर्थः। अतिशयेन तनूनि कृशानि इति तनीयांसि (तिमिराणि) इति कृशार्थकात्तनुशब्दात् ईयसुनि निष्पन्नात्तनीयश्शब्दात् भावे तलि तनीयस्ता इति रूपम्। कामीति—कामिनोर्यूनोर्मिथुनं द्वन्द्वस्तस्य या निधुवनलीला सुरतक्रीडा तस्या दर्शनार्थम्, उद्ग्रीविकाशतस्य बहुशः ग्रीवोन्नमनस्य यत् दानं करणं तेन खिन्नेषु श्रान्तेष्विव। ज्वालाया ऊर्ध्वप्रसरणमुद्ग्रीविकात्वेन, दीपानां निस्तेजस्कत्वं च तेषां श्रान्तत्वेन संभाव्यते। विविधेति—विविधैर्नानाप्रकारकैर्विभ्रमैः विलासैः, याः सुरतक्रीडाः, विविधा विलासा यासु इति वा। तासां साक्षिषु साक्षाद्द्रष्टृषु। विविधबन्धेति पाठे विविधा बन्धाः कामशास्त्रोक्ताः मयूरादिबन्धा यासु ताः सुरतक्रीडा इति व्याख्येयम्। दीपानामधोभागे तमस्तिष्ठतीति प्रत्यक्षमेव तत्रोत्प्रेक्ष्यते। शरणेति—शरणप्राप्तम् अधोनिलीनमधः स्थितं तिमिरमवत्सु रक्षत्सु। दग्धेति—दग्धो विनष्टः स्नेहः तैलं येषां ते दग्धस्नेहास्तेषां भावः दग्धस्नेहता तया, मन्दिमानं कृशताम्, निस्तेजस्कतामित्यर्थः। पक्षे—दग्धस्नेहतया दुष्टानां प्रेम्णः क्षणिकत्वेन नष्टप्रेमत्वेन मन्दिमानं सुहृत्कर्मणि शिथिलतामुपगतेषु। दशेति—दशाया वर्तेः अन्तमुपागतेषु प्राप्तेषु। पक्षे दशाया अवस्थायाः। 'दशा वर्तिर्दशा वयः' इति हारावली। विपन्नेति—विपन्ना विपदङ्गता ये सन्तः साधव ईश्वराः राजानो धनिका वा तेष्विव, पात्रमात्रमेव केवलं स्नेहाधारभाजनमेवावशेषो येषान्ते तथोक्ताः। इदं पक्षद्वयेऽपि समानम्। क्षीणानां धनवतामपि भोजनपात्रमात्रावशेष-

करनेमें असमर्थ होकर मानों काजलके बहाने उगल रहे थे। वे कामियोंके जोड़ोंको सुरतक्रीडाके दर्शनके लिये बार-बार गर्दन उठानेके कारण खिन्न हो रहे थे, वे अनेक प्रकारके विलासमय सुरतक्रीड़ाओंको साक्षात् देख चुके थे, वे, अपने नीचे स्थित अन्धकारकी मानों शरणागतकी तरह रक्षा कर रहे थे। (वे) तेल जल जानेके कारण इसी प्रकार निस्तेज हो रहे थे जैसे कि प्रेम नष्ट हो जाने से दुर्जनों के वचन मित्र-कार्य में शिथिल हो जाते हैं, अन्तिम अवस्था को प्राप्त वृद्ध पुरुषों के समान दीपवत्ती के अन्तभाग को प्राप्त हो चुके थे, उस समय उनके (दीपकों के) केवल पात्र ही शेष रह गये थे। (तेल जल चुका था) और वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे कि विपत्तिग्रस्त साधु (स्वामी) जनों के पास (अन्य संपत्तिके नष्ट हो जानेसे) पात्र मात्र ही शेष रह जावे। रात्रिके शेषभाग तथा

पात्रमात्रावशेषेषु, दानवेष्विव निशाऽन्तमध्यचारिषु, अस्तगिरिशिखरेष्विव पतत्पतङ्गेषु प्रदीपेषु, अनवरतनिपतन्मकरन्दबिन्दुसन्दोहास्वादमदमुग्धमधुकरनिकुरम्बझङ्कारमुखरितेषु, म्लानिमानमुपगच्छत्सु वासागारकुसुमोपहारेषु, विगलत्कुन्दैरलकैः प्रियविरहशोकाद्बाष्पबिन्दूनिवोत्सृजतीषु, प्रियतम-

---

त्वस्योचितत्वात्। पात्रमात्रावशेषेषु देहमात्रावशेषेषु। तथा च कालिदासः-'शरीरमात्रेण नरेन्द्र! तिष्ठन्नाभासि पात्रप्रतिपादितर्धिः' इति। 'पात्रं तु भाजने योग्ये देहे तीरद्वयान्तरे' इति महीपः। इति केचित्। पात्रमात्रावशेषेषु योग्यपुरुषावशेषेषु। अन्येषां स्वामिनं परित्यज्येतस्ततो गतत्वात्। अनुरक्तास्तु प्रभुं विपद्यपि न मुञ्चन्तीति भावः' इत्यपरे। विपन्ना मृताः सदोश्वराः सत्स्वामिनो येषां ते वियुक्तस्वामिन इत्यर्थः। पात्रं पूर्वसञ्चितधनं भाजनं च। 'पात्रं तु भाजने योग्ये विभवे पूर्वसञ्चिते' इति गोपालः।' इत्यन्ये। निशान्तेति—निशान्तस्य गृहस्य मध्ये सञ्चरितुं शीलं येषां तथोक्तेषु। पक्षे-निशाया अन्तः मध्यञ्च तत्र सञ्चरणशीलेषु। 'निशान्तपस्त्यसदनम्' इत्यमरः। पतत्पतङ्गेषु इति—पतन्तः इतस्तत आगत्य दीपकोपरि उपविशन्तः पतङ्गाः शलभाः येषु तेषु। पक्षे पतन् अस्तङ्गच्छन् पतङ्गः सूर्यो येषु तथोक्तेषु। 'पतङ्गः शलभः शालिप्रभेदे पक्षिसूर्ययोः' इति मेदिनी। वासागारकुसुमेषु म्लानिमानमुपगच्छत्सु इत्यन्वयः। कुसुमानि विशिनष्टि-अनवरतेति—अनवरतं निरन्तरं यथा स्यात्तथा निपतन् स्रवन् यो मकरन्दबिन्दूनां पुष्परसविप्रुषां सन्दोहः समूहस्तस्यास्वादेन पानेन यो मदो हर्षस्तेन मुग्धा अत्यन्तं हर्षाविष्टा ये मधुकरा भ्रमराः, यद्वा, मदोऽचैतन्यं तेन मुग्धा मत्ता ये भ्रमरास्तेषां निकुरम्बस्य वृन्दस्य झङ्काररवेण झंझमित्याकारकभृङ्गाणां ध्वनिना मुखरितेषु शब्दायमानेषु। वासेति—वासागारेषु गर्भगृहेषु विकीर्णाः ये कुसुमोपहाराः उपहारकुसुमानि तेषु म्लानिमानं म्लानत्वमुपगच्छत्सु सत्सु। 'भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः' इति रघौ प्रभातवर्णने कालिदासः। विगलदित्यादि-विगलदित्यादिना वर्णितासु कामिनीषु 'प्रियैः आलिङ्ग्यमानासु सतीषु' इत्यन्वयः। विगलन्ति अधःपतन्ति कुन्दानि माघ्यपुष्पाणि येभ्यस्तैः तादृशैः,

---

मध्यमें विचरनेवाले दानवोंके समान (वे) गृहमें जल रहे थे, उनपर गिरते हुए शलभ (कीड़े) अस्ताचल पर्वतके शिखरपर उतरते हुए सूर्यके समान शोभित हो रहे थे।

उस समय, शयनगृह (अथवा रतिगृह) के उपहारस्वरूप पुष्प, निरन्तर टपकते हुए पुष्परसके बिन्दुसमूहके आस्वादसे प्रसन्न तथा मनोहर भ्रमर-पंक्तिकी झंकारके शब्दसे मुखरित हुए, मलीन (मुरझाये) हो रहे थे। उस समय, (प्रातःकाल होनेसे विदाके समय) प्रियजन रमणियोंको आलिङ्गन कर रहे थे, वे (रमणियां) अपनी अलकों तथा चरणपल्लवोंसे सुशोभित हो रही थीं, उनकी अलकें (गुथे हुए) गिरते हुए कुन्दपुष्पों

गमननिषेधमिव कुर्वतीषु वाचालतुलाकोटिभिश्चरणपल्लवैः, रजनिशेषसुरतभरपरिश्रमविगलितकेशपाशदरदलितमाधवीमालापरिमललुब्धमधुकर-

अलकैश्चूर्णकुन्तलैः। करणे तृतीया। प्रियाणां दयितानां विरहस्य शोकात् बाष्पबिन्दून् *अश्रूणि उत्सृजतीषु मुञ्चतीषु इव। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। तथा* वाचालाः शब्दायमानाः तुलाकोटयो नूपुरा येषु तैः तादृशैः चरणपल्लवैः पादैः। अत्रापि करणे तृतीया। प्रियतमानां गमननिषेधमिव कुर्वतीषु। अत्राप्युत्प्रेक्षा। 'पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। अभिनवभट्टबाणास्तु अस्मिन्पाठेऽस्वारस्यं मन्यमानाः– 'विगलत्कु······निव विसृजद्भिः, प्रियतम······कुर्वद्भिः······पल्लवैः विलसितासु' इति पाठमङ्गीकृत्य 'विगलत्कुन्दैः अत एव प्रियतमविरहशोकात् बाष्पबिन्दून् विसृजद्भिरिव स्थितैः अलकैः वाचालतुलाकोटिभिः अत एव प्रियतमगमननिरोधं कुर्वद्भिरिव स्थितैः चरणपल्लवैः विलसितासु' इति व्याचक्षते। परन्तु पूर्वस्मिन्पाठे किमस्वारस्यमिति न प्रदर्शितं तैः। वयन्तु कामिनीनामेव प्रियतमविरहात् बाष्पबिन्दुमोक्षणं गमननिषेधवचनोच्चारणञ्च युज्यत इति, अमुमेव पाठं युक्तं मन्यामहे। अलकानान्तु न प्रियतमविरहो येन तेषां बाष्पोत्सर्जनमुत्प्रेक्ष्येत। कामिनीनां प्रियतमा एव तदलकानामपि प्रिया अतो युक्तमेव तेषां बाष्पोत्सर्जनमिति कल्पना तु अतिक्लिष्टा। न च पूर्वस्मिन्पाठे साक्षादेव बाष्पमोक्षणं गमननिषेधोच्चारणञ्च कर्तुं समर्थासु कामिनीषु किमर्थमयमर्थ उत्प्रेक्ष्यत इति शङ्क्यम्। अवश्यम्भाविनि वस्तुनि स्वमुखेन निषेधवचनमनुक्त्वा भङ्ग्यन्तरेण तदर्थप्रकाशनस्य चमत्कारित्वात्। अभिनवभट्टबाणानां शिवरामसम्मते पाठे कटाक्षावलोकनमेवात्रास्वरसोक्तिबीजमिति मन्यामहे। रजनीति—रजनिशेषे रात्रेरन्तिमे यामे यः सुरतभरः सुरतातिशयस्तत्र परिश्रमेण जनितः (रतावेव) विगलिते विश्लथे केशपाशे कचकलापे दरदलिताया ईषद्विकसिताया माधवीमालाया अतिमुक्तपुष्पमाल्यस्य परिमले गन्धे लुब्धानामभिलाषुकाणां मधुकराणां भ्रमराणां निकुरम्बस्य वृन्दस्य पक्षानिलेन पक्षमरुता निपीताः शोषिताः निदाघजलकणिकाः स्वेदजललवा यासां तासु तथोक्तासु सतीषु। रजनिशेषेत्यनेन कामिनीनां पद्मिनीत्वमुक्तं भवति। तासामेव तुर्ययामे सुरतविधानात्, तदुक्तं रतिरहस्यकारेण—'व्रजति रतिसुखार्थं चित्रिणीमग्रयामे—व्रजति दिनरजन्यो र्हस्तिनीञ्च द्वितीये। गमयति च तृतीये शङ्खिनीमार्द्रभावं—रमयति रमणीयां पद्मिनीं

द्वारा मानों, प्रियतमके विरह-शोकसे आँसू बहा रहे थे और चरण, शब्द करते हुए नूपुरों द्वारा प्रियतमको जानेसे रोकसा रहे थे। किन्हीं रमणियोंके रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें सुरत-परिश्रमसे उत्पन्न पसीनेकी बूंदें, (रतिमें) ढीले हुए केशपाशमें, कुछ खिली हुई माधवीमालाके परिमलके लोभी भ्रमर-समूहके पंखोंकी हवासे सूख रहीं थीं। वे (रमणियाँ),

निकुरम्बपवनानिलनिपीतनिदाघजलकणिकासु, उद्वेल्लद्भुजवल्लिकङ्कणक्वणत्कारसुभगासु, नखपदसंसक्तकेशपाशविनिर्मोकवेदनाकृतसीत्कारविनिर्गतदुग्धमुग्धदशनकिरणच्छटाधवलितभोगावासासु, पुनर्दर्शनप्रश्नविधुरसखीजनानुक्षणवीक्ष्यमाणप्रियतमासु, क्षणदागतसुरतवैयात्यवचनसंस्मारकगृहशुकचाटुव्याहृतिक्षणजनितमन्दाक्षासु, शरद्वासरलक्ष्मीष्विव नखालङ्कृत-

---

तुर्ययामे।' इति। 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे।' इत्यमरः। 'दरोऽस्त्री शङ्खभीगर्तेष्वल्पार्थे दरमव्ययम्।' इति वैजयन्ती। 'घर्मो निदाघः स्वेदः स्यात्।' इत्यमरः। उद्वेल्लदिति—उद्वेल्लन्त्यो विवर्तमाना या भुजवल्ल्यो बाहुलताः तासां वलयानां कङ्कणानां क्वणत्कारेण सुभगासु मनोरमासु, 'विवर्तनोद्वेष्टनं च' इति वैजयन्ती। नखेति—नखपदेषु नखक्षतस्थानेषु संसक्तः संलग्नो यो केशपाशः केशसमूहस्तस्य विनिर्मोकेण मोचनेन या वेदना कष्टं तया कृतो यः सीत्कारः दुःखसूचक सी० सी० इति शब्दस्तस्मात् विनिर्गतया बहिर्निष्क्रान्तया दुग्धमुग्धानां क्षीरवद्रम्याणां दशनानां दन्तानां छव्या शोभया कान्त्या धवलितः शुभ्रीकृतः भोगावासो रतिगृहम् आवासगृहं वा याभिस्तासु तथोक्तासु। 'मुग्धः मूढे रम्ये।' इति हैमः। पुनरिति—पुनर्दर्शनप्रश्ने 'पुनः कदा दर्शनं भविष्यती'त्येवं प्रश्नविषये विधुराः कातरा गद्गदवाच इति यावत्, तादृशैः सखीजनैः अनुक्षणं सातत्येन वीक्ष्यमाणोऽवलोक्यमानः प्रियतमो यासां ताः, तासु। 'विधुरास्त्वरिताधीरकष्टविश्लेषिता अपि।' इत्यजयः। क्षणदेति—क्षणं कामोत्सवं निर्व्यापारस्थितिं वा ददातीति क्षणद रात्रिस्तद्गतानि यानि वैयात्यवचनानि 'मा मा मानद' इत्यादीनि धार्ष्ट्यवचनानि तत्स्मारिकाभिः गृहशुकानां चाटुव्याहृतिभिः प्रियवचनोक्तिभिः क्षणं क्षणमात्रं जनितं मन्दाक्षं लज्जा यासां तथोक्तासु। सुरतेषु वैयात्यं च कामिनीनां भूषणमेव। तथा च माघः—'अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः। पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव।' इति। 'चटु चाटु प्रियं वाक्यम्।' इति हरिः। 'वैयात्यं धृष्टता मता।' इति हारावली। 'मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा।' इत्यमरः। शरदिति—शरदः शरदृतोः वासरलक्ष्मीषु दिनश्रीषु

हिलती हुई भुजलताओंके कङ्कणोंकी झणत्कारसे सुशोभित थीं। कुछ रमणियोंने रति-गृहको, नख-क्षतमें लगे हुए केशोंको छुड़ानेकी वेदनासे सीसी करनेके कारण चमकते हुए दुग्धके समान सुन्दर दाँतोंकी किरणोंसे धवलित (शुभ्र) कर दिया था। 'आपके दर्शन पुनः कब होंगे' इस प्रकार पूछनेमें अधीर सखियाँ, जिनके प्रियतमोंको अनुक्षण देख रही थीं, जो, रात्रिके सुरतकालमें कहे हुए (मा मा मानद आदि) धृष्ट वचनोंको स्मरण करानेवाले, पालतू शुकोंके प्रिय-वचनोंसे क्षणभरके लिये लज्जित हो गई थीं, आकाशमें कहीं २ (विरलरूपसे) विद्यमान मेघोंसे सुशोभित, शरत्कालीन दिवस-श्रीके समान, जिनके पयोधर (स्तन)

पयोधरासु, आसन्नमरणास्विव जीवितेशपुराभिमुखीषु, वसन्तराजिष्विव उत्कलिकाबहुलासु, प्रियैरालिङ्ग्यमानासु कामिनीषु, आन्दोलितकुसुमकेसरे केसरेणुमुषि रणितनूपुरमणीनां रमणीनाम्, विकचकुमुदाकरे मुदा-

---

इव। नखेति—नखैः नखक्षतैः अलंकृतौ मण्डितौ पयोधरौ स्तनौ यासां तासु तथोक्तासु। पक्षे–खे अकाशे अलं पर्याप्ततया कृता विस्तारिता अलंकृताः शोभिता वा पयोधरा मेघा याभिस्ताः खालंकृतपयोधरास्तादृश्यो न भवन्तीति नखालंकृतपयोधरास्तासु। शरदि आकाशे मेघानां बाहुल्यं न भवत्येव। केचित्तु–उपमानपक्षे, 'न खेनाकाशेनालंकृताः। मण्डनं मण्डनानामितिवत् आकाशभूषणानामाकाशस्यैव भूषणत्ववर्णनम्। यद्वा, नखे अलंकृताः भूषिताः सजलाः अतिनीला इति यावत्। इति व्याचक्षते। आसन्नेति—आसन्नं समुपस्थितं मरणं यासां तास्विव। जीवितेशेति—जीवितेशस्य प्रियतमस्य पुरस्य देहस्याभिमुखीषु सम्मुखे वर्तमानासु। पक्षे जीवितेशस्य यमस्य पुराभिमुखीषु नगराभिमुखीषु। 'जीवितेशो यमे पत्यौ' इति वैजयन्ती। 'पुरं नगरदेहयोः' इत्यजयः। वसन्तेति—वसन्ते वसन्तकाले या वनराजयः अरण्यपङ्क्तयस्तास्विव। उत्कलिकेति—उत्कलिकाः उत्कण्ठा बहुलाः प्रचुरा यासु यासां वा तासु तथोक्तासु। पक्षे–उत्कलिका उद्भूतकोरका बहुला यासु तासु। एतादृशीषु कामिनीषु प्रियैरालिङ्ग्यमानासु इति संबन्धः पूर्वमुक्त एव। इतः परं प्राभातिकमारुतवर्णनम्। एतादृशे मारुते वायौ वहति वाति सतीति संबन्धः। आन्दोलितेति—आन्दोलिताः कम्पिताः कुसुमानां पुष्पाणां केसराः परागा येन स तस्मिन् तथोक्ते। अनेन वायोर्मन्दता सूचिता। अन्यथा हि पुष्पाणामेव भङ्गापत्त्या केसरान्दोलनासम्भवः। केसरेति—शसयोरभेदः। यमकानुरोधेनैवमुक्तम्। यद्वा, 'केश' इत्येव पाठः। 'केसरे केशरे' इत्यत्र च स्वभेदयमकं द्रष्टव्यम्। तथा च सरस्वतीकण्ठाभरणे भोजराजः 'शालं वहन्ती सुरतापनीयं सालं तडिद्वा सुरतापनीयम्। रक्षोभरक्षोभरसात्त्रिकूटा लङ्काकलङ्काकलिकाद्रिकूटे॥' इत्यत्र शालं सालमिति स्वभेदयमकं वर्ण्यते। केशेषु विद्यमानाः ये रेणवः सिन्दूरादिपरागास्तान्मुष्णातीति तस्मिन्। यद्वा, केशपदेन केशस्थपुष्पाणि लक्ष्यन्ते तद्गतरजोहारक इत्यर्थः। कासां केसरेणुमुषि तत्राह–रणितेति—रणिताः शब्दायमाना नूपुरमणयः मञ्जीररत्नानि यासां तासां रमणीनां प्रमदानाम्। विकचेति—अस्य सङ्गभाजीतिमारुतविशेषणेऽन्वयः। मुदः प्रसन्नताया

नख-क्षतोंसे सुशोभित हो रहे थे, यम-पुरकी तरफ गमनोन्मुख आसन्नमृत्यु-जनोंके समान, जो प्रियतमके शरीरके अभिमुख (सामने) हो रही थीं। जिसमें (पुष्पोंमें) कलियाँ निकल रही हैं ऐसी वसन्तकालीन वनपंक्तिके समान, जिनमें उत्कण्ठाएं भरी हुई थीं (ऐसी रमणियोंको प्रिय आलिङ्गन कर रहे थे)।

उस समय, पुष्प-परागको आन्दोलित करनेवाला, जिनकी नूपुर-मणियाँ शब्द कर

करे सङ्गभाजि, प्रियविरहितासु रहितासु सुखेन मुर्मुरचूर्णमिव समन्तादर्पके दर्पकेषु दहनस्य, दूरप्रसारितकोकप्रियतमारुते मारुते वहति जघन-

आकरो निधिस्तस्मिन् तादृशे कुमुदाकरे, मारुते वा उभयोरपि विशेषणं सम्भवति। यद्वा, दिशानिशादिशब्दवत् भागुरिमतेन मुदाशब्द आकारान्तोऽपि तां करोतीति मुदाकरस्तस्मिन्। 'मुदम् आसमन्तात्करोतीति मुदाकरः' इत्यपि कश्चित्। विकचो त्रिकसितो यः कुमुदाकरस्तस्मिन् यद्वा-विकचानां कुमुदानां कैरवाणाम् आकरस्तस्मिन्, विकसितकैरवसरसीत्यर्थः। सङ्गं संसर्गं भजतीति तथोक्ते मारुति। विकसितकैरवषण्डसंस्पर्शसुभगे इति भावः। एतेन वायोः शैत्यं सौरभ्यं च लभ्यते। कविरयमस्मिन्नेव वर्णने कदाचित् 'शिशिरहिमशीकरकर्दमितकुमुदपरागमध्यबद्धचरणेषु षट्चरणेषु' इति वदन् परागस्य कर्दमितत्वं प्रकटयति कदाचिच्च वायुना परागमपहारयति, अतः श्लेषलोलुपोऽयं पूर्वापरविरोधम् उचितानुचितत्वं च न लक्षयतीति अभिनवभट्टबाणोक्तिर्युज्यत एव। अनेन विशेषणेन वायोः परागवाहित्वमाकलय्योत्प्रेक्षते-प्रियविरहितास्वित्यादिना-सुखेन दयितसंसर्गजन्यानन्देन रहितासु शून्यासु प्रियैः दयितैः विरहितासु वियुक्तासु विरहिणीष्वित्यर्थः। दर्पकस्य कामस्य (दर्पयति हर्षयति मोहयति वेति 'दृप-हर्षमोहनयोः' इत्यस्मात् ण्यन्ताण्ण्वुल्) यः इषुदहनो वाणाग्निस्तस्य मुर्मुरचूर्णं तुषाग्निभस्म समन्तात् सर्वेष्ववयवेषु अर्पके विकिरिष्यतीव वायौ वहति सतीति संबन्धः। प्राभातिकेन मरुता वियोगिनीषु विकीर्यमाणः कैरवपरागः तुषाग्निभस्मवद् दुःसह इति भावः। 'अर्पके' इत्यत्र 'तुमुण्ण्वुलौ क्रियायाम्'-इति भविष्यति ण्वुल्। अत एव 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः' इति षष्ठीप्रतिषेधात् मुर्मुरचूर्णमित्यत्र कर्मणि द्वितीया। 'मुर्मुरस्तु तुषानलः' इति हरिः। 'कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः' इत्यमरः। दूरेति—दूरं प्रसारितं नीतं कोकप्रियतमानां चक्रवाकीनां रुतं करुणकूजितं येन तस्मिन् वायौ। यद्वा, दूरप्रसारितं सर्वथैव विनाशितं कोकप्रियतमानां रुतं येन तस्मिन्, प्राभातिकवायुसंस्पर्शात् अचिरभाविसूर्योदयानुमानेन प्रियसङ्गमसम्भावनया सकलरात्रिविहितं स्वरुतमिदानीं ताभिः परित्यक्तमिति भावः। इतः परं स्वप्नदृष्टायाः कन्यकाया वर्णनम्। एतादृशेन मेखलादाम्ना काञ्चीगुणेन परिकलितं परिवृतं जघनस्थलं कटिपुरोभागो यस्यास्तामिति

रही हैं ऐसी रमणियोंके केशपाशमें (लगे हुए सिन्दूर आदिके) रेणुको हरण करनेवाला, सन्तोषप्रद विकसित कुमुद-पुञ्जके संसर्गसे (मनोहर) प्रियतमसे वियुक्त अतएव दुःखिनी (ललनाओं पर) कामदेवकी बाणाग्निके तुषानल चूर्णको पूर्णरूपसे बखेरता हुआ सा चक्रवाक-प्रियतमाओंके शब्दको दूरतक फैलानेवाला प्रातःकालीन वायु धीरे-धीरे चल रहा था ऐसे समयमें (प्रातःकाल) कन्दर्पकेतुने स्वप्नमें एक कन्या देखी। (कन्यावर्णन)

मदननगरतोरणस्रजा, मन्मथमहानिधिजघनकोशमन्दिरकनकप्राकारेण, रोमराजिलतालवालवलयेन, जघनचन्द्रमण्डलपरिवेषेण, मदनत्रिभुवनविजयप्रशस्तिवर्णावलीकनकपत्रेण, सकलहृदयबन्दीजननिवासगृहपरिखावलयेन, सकलजगल्लोचनलासकविहङ्गमावासकनकशलाकागुणेन, मेख-

संबन्धः। मेखलादामैव विशिनष्टि—जघनेत्यादिना—जघनं कटिपुरोभाग एव मदननगरं मन्मथपुरं तस्य तोरणस्रजा बहिर्द्वारमालया या हि लोके 'वन्दनमाले'ति प्रसिद्धा 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः।' 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्।' इत्यमरः। अत्र 'सर्वत्र इवकारसत्त्वे उत्प्रेक्षा, इवशब्दाभावे 'जघन'·····'स्रजेत्यादौ रूपकमिति-केचित्। अपरे तु तत्रापि वाच्योत्प्रेक्षामेव मन्यन्ते। एवं च सर्वत्रोत्प्रेक्षैव। जघन—मदननगरमित्यादौ तु रूपकं स्पष्टमेव। मन्मथेति—मन्मथः काम एव महानिधिर्यस्य तादृशं यत् जघनं तदेव कोशमन्दिरं रत्नागारं तस्य कनकप्राकारेण स्वर्णमयसालेन। रोमेति—रोमराजिः रोमावलिरेव लता व्रततिः तस्या आलवालवलयेन आवापपरिमण्डलेन 'स्यादालवालमावालमावापः' इत्यमरः। जघनेति—जघनमेव चन्द्रमण्डलं मनस आह्लादकत्वादिसाधर्म्यात् तस्य परिवेषेण परिधिना। मदनेति—मदनस्य कामस्य त्रिभुवनविजयेन लोकत्रयविजयेन समुत्पन्नायाः प्रशस्तेः प्रशंसायाः सूचिकाया वर्णावल्या अक्षरपङ्क्तेः कनकपत्रेण तल्लेखनार्थं स्थितेन स्वर्णमयपट्टेनेत्यर्थः। अत्र 'प्रशस्तिरोमावली' इति पाठान्तरम्। 'प्रशस्तिः प्रशस्तिवर्ण एव रोमावली तस्याः कनकचित्रेण पत्रेणेति तद्व्याख्यानञ्चेति शिवरामपण्डिताः। सकलेति—सकलानां सकलजनानां हृदयानि, सकलानि हृदयान्येव। वन्द्यः कारास्थितजनास्तेषां यत् निवासगृहं जघनरूपं वासमन्दिरं तस्य परिखावलयेन खातचक्रेण 'खाई' इति भाषायाम्। सर्वेषामपि हृदयानि तत्रैव निवसन्तीति भावः। हृदयबन्धश्च मा कदापि ततो निस्सर्तुं शक्नुयुरिति मेखलादाम्नि परिखात्वमुत्प्रेक्ष्यते। सकलेति—सकलजगतां लोचनान्येव लासकविहङ्गमा मयूरपक्षिणः तेषामावासार्थं कनकशलाकागुणेन स्वर्णमययष्टिरूपेण 'मयूराणां चावासार्थं यष्टयः स्थाप्यन्ते' इति प्रसिद्धमेव।

वह (बाला) कमरमें मेखला पहने हुए थी उसकी वह मेखला ऐसी शोभित हो रही थी मानों जघनरूपी कामनगरीकी वन्दनमाला हो, अथवा, मन्मथरूपी महानिधिके जघनरूपी कोशागारका स्वर्णनिर्मित प्राकार हो, किंवा जघनरूपी चन्द्रमण्डलकी परिधि हो, अथवा, कामदेवके, तीनों लोकोंको विजय करनेसे (उत्पन्न) प्रशस्ति की वर्णमालाके (लिखनेके लिये) स्वर्णमय पट्टी हो, अथवा, समस्त पुरुषोंके हृदयरूपी बन्दीजनोंके निवासगृह (जघन) की खाई हो, अथवा, समस्त संसारके नेत्ररूपी पक्षियोंके बैठनेके लिये (निर्मित) पींजरेकी स्वर्णमयशलाकाओंके बांधनेका धागा हो। वह रमणी, मानों, ऊँचे उठे हु ए स्तनरूपी ऊपर

लादाम्ना परिकलितजघनस्थलाम्, उन्नतपयोधरभारान्तरितमुखचन्द्रदर्शनाप्राप्तिखेदेनेव, गुरुतरनितम्बबिम्बकुचकुम्भनिरुद्धोभयपार्श्वजनितायासेनेव, मम मूर्ध्नि स्थितयोरियत्प्रमाणयोः पयोधरकलशयोः कथं मय्येव पातो भविष्यतीति चिन्तयेव, गृहीतगुरुकलत्रानुशयेनेव, विधातुरति

तथा च बाणभट्टः कादम्बर्याम्—'उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिणः।' इति। 'लासकौ केकिनर्तकौ' इति रत्नमाला। 'सकलजगल्लोचनविहङ्गमावासलासक' इति पाठान्तरे तु 'सकलजगल्लोचनान्येव विहङ्गमाः पक्षिणस्तेषामावासार्थं यः लासकः पञ्जरः तस्य कनकशलाकागुणेन स्वर्णमयशलाकाबन्धनसूत्रेण। यद्वा, शलाकाया गुण इव गुणो यस्येति विग्रहेण स्वर्णमयशलाकास्वरूपेणेत्यर्थः। 'लासकः पञ्जरस्समौ' इत्यजयः। 'विहङ्गमजघनवासलासक' इति पाठे तु 'लोचनान्येव विहङ्गमास्तेषां जघनमेव वासलासको निवासपञ्जरः' इत्यर्थो बोध्यः। क्षीणतां कृशतामुपगतेन मध्यभागेन अलङ्कृतामिति संबन्धः। तत्र मध्यभागस्य क्षीणतायां हेतूनुत्प्रेक्षते—उन्नतपयोधरेत्यादिना—उन्नतौ उत्तुङ्गौ पयोधरौ कुचावेव उन्नतपयोधरा ऊर्ध्वस्थितमेघाः तैरन्तरितस्य व्यवहितस्य मुखचन्द्रस्य दर्शनाप्राप्त्या अवलोकनालाभेन जनितो यो खेदश्चेतसः क्षुभितता तेनेव। गुरुतरेति—एकस्मिन् भागे अधःप्रदेशे गुरुतरे अतिविशाले ये नितम्बबिम्बे नितम्बमण्डले, अपरस्मिन्नूर्ध्वभागे गुरुतरौ विशालौ यौ कुचकुम्भौ घटसदृशौ स्तनौ ताभ्यां निरुद्धाभ्यामाक्रान्ताभ्यामुभाभ्यां पार्श्वाभ्यां जनित उत्पादितः य आयासः श्रमस्तेनेव। ममेति—मम मूर्ध्नि उपरिभागे शिरसि च स्थितयोः, इयत्प्रमाणं ययोस्तयोः अतिबृहतोरित्यर्थः। पयोधरकलशयोः कुचकुम्भयोः जलभृतघटयोरिति गम्यते, मयि पातः पतनं भविष्यतीति चिन्तयेव। अत्र 'प्रथमं तावत् एकस्यापि घटस्य पातो दुस्सहो भवति। तत्रापि घटौ द्वौ। तावपि जलपूर्णौ। तयोरपि न दूरेऽवस्थितिः अपि तु मूर्ध्नि एवेति पर्याप्तं चिन्ताकारणमिति मूर्धपयोधरपादाभ्यां प्रतीयते। गृहीतेति—गृहीतं भार्यात्वेनाङ्गीकृतं यत् गुरुकलत्रं गुरुपत्नी तदुत्पन्नेन अनुशयेन पश्चात्तापेनेव। वस्तुतस्तु—

विद्यमान मेघसे छिपे हुए मुखरूपी चन्द्रमाके दर्शन न मिलनेके खेदसे, अथवा, (नीचेसे) भारी नितम्बों एवं (ऊपरसे) घटतुल्य (पीन) कुचोंसे दबाये जानेके श्रमसे, अथवा, 'सिरपर (ऊर्ध्वभागमें) रक्खे हुए इतने बड़े स्तनरूपी कलश मेरे ही ऊपर न गिर जावें' इस चिन्तासे (यहां जलपूर्ण घड़ोंकी भी प्रतीति होती है, प्रथम तो एक ही घटका पात असह्य होता है तिसपर ये दो घट हैं और वे भी जलपूर्ण, उसपर भी बहुत दूर नहीं किन्तु सिरपर ही रक्खे हैं, इस प्रकार चिन्ताका कारण पर्याप्त है)। अथवा विशाल नितम्बरूपी गुरुपत्नीके ग्रहणसे उत्पन्न पश्चात्तापसे, (निर्माणके समय) मानों क्लेश पहुँचानेवाले

पीडयतो हस्तपरामर्शजनितपरिक्लेशेनेव, क्षीणतामुपगतेन मध्यभागेन अलङ्कृताम्। अनुरागरत्नपूरितकनकमयपरुवकाभ्याम्, चूचुकमुद्रासनाथाभ्याम्, अतिगुरुपरिणाहतया पतनभयात् चूचुकच्छलेन विधिना गिरिसारेणेव कीलिताभ्याम्, सकलावयवनिर्मितिशेषलावण्यपुञ्जाभ्या-

---

गृहीतः कृतो गुरुकलत्रं बृहच्छ्रोणिभागमनु शयः शयनमवस्थितिर्येन। 'कलत्रं श्रोणिभार्ययोः' इत्यमरः। शिवरामपण्डितास्तु 'बृहत्कलत्रे'ति पाठं स्वीकृत्य 'गृहीतो बृहत्कलत्रस्य पृथुश्रोणिमण्डलस्यानुशयो दीर्घद्वेषो येन। बृहत्कलत्रपदेन युवतीपतेः पौगण्डे वयसि वर्तमानस्य वृत्तान्तोऽपि प्रतीयते। गुरुकलत्रानुशयेनेति पाठस्त्वयुक्तत्वादुपेक्षितः' इत्याहुः। परमत्र काऽयुक्ततेति न प्रदर्शितं तैः। वस्तुतस्तु-गुरुपदेनापि तदभिमतस्य बृहत्पदार्थस्य द्योतनसम्भवान्नानुचितत्वमस्ति प्रत्युत प्रदर्शितार्थानुसारेण श्लेषेणार्थान्तरस्यापि सूचनाच्चमत्कारातिशय एव। विधातुरिति--अतिपीडयतः अतिक्लेशयतः विधातुर्ब्रह्मणः हस्तपरामर्शेन करस्पर्शेन जनितो यः परिक्लेशः तेनेव। अतिमृदुत्वात्तस्य करसंस्पर्शोऽपि अतिपीडेति भावः। 'हस्तपाशे'ति पाठान्तरे 'हस्त एव पाशः अथवा हस्तपाशो हस्तपीडनम्' इत्यर्थः। पयोधराभ्यामुद्भासमानामिति वर्णयिष्यन् पयोधरौ विशिनष्टि—अनुरागेत्यादिना—अनुरागः स्नेह एव रत्नानि तैः पूरितौ पूर्णौ स्तनरूपौ यौ कनकमयौ स्वर्णनिर्मितौ परुवकौ समुद्गकौ ताभ्याम्। 'संपुट स्यात्परुवकः समुद्गकः' इति हरिः। क्वचित् 'कनकमयसमुद्गकाभ्यामि'त्येव पाठः। 'कनकरुचकाभ्याम्' इति पाठमभ्युपगम्य 'रुचकौ गुलिकामणी रत्नमये गुलिके' इति शिवरामपण्डिताः। अत्रापि इवशब्दाभावेन गम्योत्प्रेक्षा। चूचुकेति—स्तनयोः रत्नपूर्णसंपुटत्वात् तद्रक्षार्थं, चूचुके स्तनाग्रभागावेव मुद्रे जतुमयौ नामाक्षराद्यङ्कितौ चिह्नविशेषौ ताभ्यां सनाथाभ्यां युक्ताभ्याम्। महार्घवस्तुपूर्णानां भाजनानामुपरि रक्षार्थं मुद्रा क्रियत इति लौकिकाचारः। अतिगुर्विति—अतिगुरुः अतिमहान् परिणाहः आभोगो विशालतेत्यर्थः। ययोस्तौ अतिगुरुपरिणाहौ तयोर्भावस्तेन हेतुना। पतनभयात्, अनयोः पतनमाशङ्क्य विधिना चूचुकच्छलेन चूचुकमिषेण गिरिसारेण लोहकीलेन कीलिताभ्यां सम्यक् संयोजिताभ्यामिव। गुरु वस्तु हि भित्त्यादौ लोहकीलेन निखन्यत इति लोके प्रसिद्धमेव। 'गिरिसारं चाश्मसारं लोहं कालायसं तथा।' इति हरिः। सकलेति—सकलानां समग्राणां हस्तपादाद्यवयवानां

विधाताके हस्तस्पर्शसे उत्पन्न दुःखसे अत्यन्त कृश मध्यभागसे सुशोभित हो रही थी। वह ललना, अपने उन्नत पयोधरोंसे अलंकृत हो रही थी, (उस कालमें) उसके स्तन ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों, चूचुक (स्तनाग्रभाग) रूपी मुहरसे चिह्नित, अनुरागरूपी रत्नोंसे पूर्ण स्वर्णमय (दो) पिटारियाँ हों, अत्यन्त विशाल होनेके कारण गिरनेके भयसे मानों ब्रह्माने चूचुकके बहाने लोह-कीलसे (उन्हें) जड़ दिया हो, अथवा, (अन्य)

मिव, हृदयतटाककमलमुकुलाभ्यामिव, हृच्छयविलासचातुरकविभ्रमाभ्याम्, रोमावलीलताफलभूताभ्याम्, कन्दर्पदर्पवर्धनचूर्णपूर्णकनककलशाभ्यामिव, अशेषजनहृदयपतनादिव सञ्जातगौरवाभ्याम्, संसारतरुमहाफलाभ्याम्, हारलतामृणाललोभनीयचक्रवाकाभ्याम्, हारलतारोमराजि-

---

या निर्मितिः निर्माणं तस्यामुपयुक्ताच्छेषभूतं यल्लावण्यं तस्य पुञ्जाभ्यां पिण्डाभ्यामिव स्थिताभ्याम्। सर्व एव अवयवा लावण्यनिर्मिता विशेषतस्तु पयोधराविति भावः। 'मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते।' इति सुधाकरमेदिन्यौ। हृदयेति—हृदयमेव तटाकः सरोवरस्तस्य कमलमुकुलाभ्यां पद्मकोरकाभ्यामिव स्थिताभ्याम्। हृच्छयेति—हृच्छयस्य कामस्य विलासार्थं यौ चातुरकौ वर्तुलाकारावुपधानविशेषौ तयोरिव विभ्रमो विलासो ययोस्ताभ्याम्। 'विलेपनचातुरीक' इति पाठान्तरे 'हृच्छयस्य कामस्य विलेपनमङ्गरागस्तन्न्यासार्थं यः चातुरीकः करण्डकः तस्येव विभ्रमो विलासो ययोस्ताभ्याम्।' इत्यर्थः। अयं पाठः युक्ततरः प्रतिभाति। 'चातुरीकः कलहंसे करण्डे च' इति वैजयन्ती। रोमावलीति—रोमावली रोमराजिरेव लता तस्याः फलभूताभ्याम्। कन्दर्पेति—कन्दर्पस्य कामस्य दर्पं गर्वं वर्धयतीति कन्दर्पवर्धनम्। बाहुलकात्कर्त्तरि ल्युट्। तादृशं यच्चूर्णं तेन पूर्णौ यौ कनककलशौ स्वर्णकुम्भौ ताभ्यामिव स्थिताभ्याम्। एतौ दृष्ट्वा यूनां कामो वर्धत इति भावः। अशेषेति—अशेषाणां सकलानां जनानां हृदयस्य मनसः पतनात् तत्रासञ्जनादिव संजातं गौरवं भारवत्त्वं ययोस्ताभ्याम्। यथैकस्मिन्नाधारे बहूनां वस्तूनां संसर्गेण तस्मिन् गुरुत्वं जायते तथैवात्रापीति भावः। अन्ये तु 'यथा कठिनद्रव्यान्तराभिघाताच्छरीरे ग्रन्थिसंभवस्तथैतद्वक्षसि युवमनसां पातात् पयोधरसंभवः। एतेनैतच्छरीरमार्दवं कुचयोः काठिन्यं च वर्णितम्।' इति भावार्थं वर्णयन्ति। संसारेति—संसार एव महातरुस्तस्य महाफलाभ्यां बृहत्फलाभ्यामिव स्थिताभ्याम्। संसारस्येमावेव सारवस्तुनी इति भावः। हारेति—हारलतैव मृणालं बिसदण्डस्तस्य लोभनीयौ लुब्धौ कामुकावित्यर्थः। यौ चक्रवाकौ कोकपक्षिणौ ताभ्यामिव स्थिताभ्याम्। 'लोभनीय' इत्यत्र बाहुलकात् कर्त्तरि अनीयर्।'''लोभ-

---

समस्त अङ्गोंके निर्माणके पश्चात् बचे हुए लावण्यके ढेर हों, अथवा, हृदयरूपी सरोवरके कमल-मुकुल हों, अथवा, कामदेवके विलासके लिये गोलाकार दो उपधान (तकिये) हों, अथवा रोम-पङ्क्तिरूपी लताके फल हों, अथवा कामदेवके मदको बढ़ानेवाले चूर्णसे भरे हुए स्वर्णमय कलश हों, समस्त मनुष्योंके हृदयोंके लगनेसे मानों उनमें गुरुता (भारीपन) आ गई हो, अथवा संसाररूपी वृक्षके विशाल फल हों, हारलतारूपी कमलनालके लोभसे मानों (दो) चक्रवाक छिपे हुए हों, हारलता तथा रोमावलीरूपी

व्याजगङ्गायमुनासङ्गमप्रयागतटाभ्याम्, त्रिभुवनविजयपरिश्रमखिन्नस्य, मकरकेतोर्विश्रमविजनावासगृहाभ्याम्, पयोधराभ्यां समुद्भासमानाम्। मुखचन्द्रमण्डलसततसन्निहितसन्ध्यारागेण, द्विजमणिरक्षासिन्दूरमुद्रानुकारिणा, निस्सरता हृदयानुरागेणेव रञ्जितेन, रागसागरविद्रुमशकले-

---

निलीनचक्रवाकाभ्याम्' इति पाठान्तरे 'हारलतामृणाले यो लोभ आस्वादनाकाङ्क्षा तेन निलीनौ गूढं स्थितौ यौ चक्रवाकौ ताभ्यामिव वर्तमानाभ्याम्। हारलतेति-हारलता रोमराजिरिति व्याजो मिषं ययोस्ते तादृशे ये गङ्गायमुने तयोः सङ्गमस्थानभूतः, यः प्रयागः तीर्थविशेषस्तस्य तटाभ्यां कूलाभ्यामिव वर्तमानाभ्याम्। हारलतायाः श्वैत्याद् गङ्गात्वम् ?, रोमावल्याश्च कृष्णत्वाद् यमुनात्वं, प्रयागपदेन च त्रिवलीस्थानं बोध्यम्। स्तनयोरुत्तुङ्गतया कूलत्वेनोत्प्रेक्षणं विज्ञेयम्। त्रिभुवनेति—त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विजयेन समुत्पन्नो यः श्रमः क्लान्तिस्तेन खिन्नस्य श्रान्तस्य मकरकेतोः कामस्य विश्रमाय श्रमापनोदाय कल्पिते विजने एकान्तभूते ये वासगृहे निवासवेश्मनी ताभ्याम्। अत्र स्तनयोः सर्वजनादृश्यत्वात्, सर्वजनागम्यत्वाच्च विजनत्वम्, अत्यन्तं कामोद्दीपकतया च तयोः कामाधिष्ठिततन्निवासाश्रयत्वोत्प्रेक्षणं च बोध्यम्। वक्ष्यमाणेन अधरपल्लवेनोपशोभमानामिति संबन्धः। मुखचन्द्रेति—मुखमेव चन्द्रमण्डलं तस्य सततं सर्वदा सन्निहिता समीपवर्तिनी या सन्ध्या तस्या रागेण आरुण्येनेव स्थितेन। गम्योत्प्रेक्षा। द्विजमणीति—द्विजा दन्ता एव मणयः रत्नानि तेषां रक्षार्थं सिन्दूरेण कृता या मुद्रा लाक्षाचिह्नविशेषः। तद्वत्स्थितेनेत्यर्थः। अधरस्यारुणत्वात् सिन्दूरमुद्रोत्प्रेक्षा। केचित्—'द्विजमणयो ब्राह्मणश्रेष्ठाश्च रक्षासिन्दूरमुद्रा रक्षार्था सिन्दूरेण ललाटे क्रियमाणा रेखा। दुर्गाया मूर्तिविशेषं पूजयद्भिर्ब्राह्मणोत्तमैरात्मरक्षायै दुर्गार्चनोपयुक्तसिन्दूरेण ललाटिका रेखा क्रियत' इत्याचारः।' इति व्याचक्षते। क्वचित् 'दन्तमणि' इति पाठः। 'दन्तमणीनां रक्षा कान्तिविशेषसंरक्षणम्' इति तदर्थश्च। निस्सरतेति—हृदये मातुमशक्यतया बहिर्निर्गच्छता हृदयस्य अनुरागेण प्रेम्णा रञ्जितेन रक्ततामापादितेन। कीर्तौ श्वैत्यवदनुरागे लौहित्यवर्णनं कविसम्प्रदायः। तथा च माघः—'छादितः कथमपि त्रपयाऽन्तर्यः प्रियं प्रति चिराय रमण्याः। वारुणीमदविशङ्कमथाविश्चक्षुषोऽभवदसाविव रागः।' इति। रागेति—राग एव

गङ्गा–यमुनाके सङ्गम स्थल प्रयागके (प्रयागस्थित गङ्गा–यमुनाके) तट हों, तीनों लोकोंके विजय करनेके श्रमसे खिन्न कामदेवका मानो विजयप्रद एकान्त निवास स्थल हो।

सर्वदा मुखरूपी चन्द्रमण्डलके समीपवर्तिनी सन्ध्याकी लालिमा (तुल्य), दाँतरूपी रत्नोंकी रक्षाके लिये सिन्दूरकी मुद्रा (मोहर) के समान स्थित, (अन्दर न समानेपर) बाहर निकलते हुए हृदयके अनुरागसे रक्तवर्ण, प्रेमरूपी समुद्रके विद्रुम (लाल मोती)

नेव अधरपल्लवेनोपशोभमानाम् । तरुणकेतकदलद्राघीयसा, पक्ष्मलचटुलालसेन, हृदयावासगृहावस्थितस्य हृच्छयविलासिनो गवाक्षशङ्कामुपजनयता, सरागेणापि निर्वाणं जनयता, गतिप्रसरनिरोधकश्रवणकृतकोपेनेवोपान्तलोहितेन, धवलयतेव जगदखिलम्, उत्फुल्लकमलकाननसनाथमिव गगनतलं कुर्वता, दुग्धाम्भोधिसहस्राणीवोद्वमता, सकुन्दकुसुम-

---

सागरः समुद्रस्तस्य विद्रुमशकलेन प्रवालखण्डेन । अतः परं नेत्रयोर्वर्णनम् । नयनयुगलेन विभूषितामिति संबन्धः । नेत्रे विशिनष्टि—तरुणेत्यादिना—तरुणं संप्राप्तयौवनं पूर्णतापन्नमित्यर्थः । यत् केतकदलं केतकीपत्रं तद्वत्–द्राघीयसा दीर्घेण विशालेनेत्यर्थः । दीर्घशब्दादीयसुनि 'प्रियस्थिरबहुलगुरुदीर्घ—'इत्यादिना द्राघादेशः । 'दलं पर्णं छदः पुमान्' इत्यमरः । क्वचित् 'कैतकदलम्' इति पाठः । 'विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकवर्हमन्यः' इत्यादौ 'केतक' शब्द एव दृश्यते । पक्ष्मलेति—पक्ष्मलं पक्ष्मशोभान्वितं चटुलं चञ्चलम् अलसं मन्दञ्च तादृशेन । हृदयेति—हृदयमेव आवासगृहं तत्रावस्थितस्य । हृच्छयः काम एव विलासी भोगिजनः तस्य गवाक्षशङ्काम् वातायनसन्देहम् उपजनयता उत्पादयता । किमिदं नयनयुगलं कामविलासिना स्वनिवासहृदयगृहस्य प्रकाशादिसम्पत्तये वातायनं कृतमिति जनैः शङ्कमानेनेत्यर्थः । सरागेति—रागो विषयाभिलाषस्तेन सहितेन विषयाभिलाषवताऽपीत्यर्थः । 'निर्वाणं मोक्षं जनयता' इति विरोधः । स्वयं रागिणो मोक्षजनकत्वविरोधात् । परिहारपक्षे—रागो लौहित्यं, निर्वाणं सुखम् । विषयान्तरेभ्यो निवृत्तिर्वा । 'निर्वाणमस्तं गमने निर्वृतौ गजमज्जने । संगमेऽप्यपवर्गे च' इति मेदिनी । गतीति—स्वस्य गतिप्रसरस्य विस्तारस्य निरोधके निवारके ये श्रवणे कर्णौ तयोरुपरि कृतः कोपो येन तादृशेनेव । उपान्ते अपाङ्गप्रदेशे लोहितेन रक्तवर्णेन । अत्र हेतूत्प्रेक्षा । अस्मद्गतिप्रसरनिरोधकः कश्चिदस्तीति श्रवणमात्रेणेत्यपि गम्यते । कर्णान्तविश्रान्तमस्या नयनयुगलमिति भावः । धवलयतेति—अखिलं जगत् धवलयता शुभ्रं कुर्वतेव । एतच्च नयनयोः श्वेतांशमादायोत्प्रेक्षणम् । उत्फुल्लेति—गगनतलमाकाशम् उत्फुल्लानां विकसितानां कमलानां काननेन सनाथं सहितं कुर्वतेव । नेत्रप्रभाया दूरप्रसारित्वं धावल्यातिशयश्चानेन द्योत्यते । दुग्धेति—धावल्यातिशयादेव दुग्धाम्भोधिसहस्राणि अनेकान्

खण्डके समान सुशोभित अधरोष्ठसे अलंकृत, पूर्णरूपसे विकसित केतकी-पत्रके समान विशाल; बरौनीसे सुशोभित, चञ्चल तथा अलसाए हुए, हृदयरूपी घरमें रहनेवाले मदनरूपी विलासी जनके वातायनका सन्देह करानेवाले, विषयोंमें अभिलाषा रखते हुए भी मोक्षदायक (वस्तुतः लाल होते हुए भी सुखदायक), (अपनी) गतिके विस्तारको रोकनेवाले कानोंपर मानों क्रोधके कारण रक्तवर्ण, समस्त संसारको शुभ्रसा करते हुए,

नीलोत्पलमालालक्ष्मीमुपहसता नयनयुगलेन विभूषिताम्। दशनरत्नतुलादण्डेनेव, नयनामृतसिन्धुसेतुबन्धेनेव, यौवनमन्मथमत्तवारणयोर्वरण्डकेनेव नासावंशेन परिष्कृताम्। विलोचनकुवलयभ्रमरपङ्क्तिभ्याम्, मुखमदनमन्दिरतोरणमालिकाभ्याम्, रागसागरवेणिकाभ्याम्, यौवननर्तकलासिकाभ्याम्, भ्रूलताभ्यां विराजिताम्। घनसमयाकाशलक्ष्मीमिव उल्लसच्चारुपयोधराम्, जयघोषणापन्नजनमूर्तिमिव तुलाकोटिप्रति-

---

क्षीरसमुद्रान् उद्वमता उद्गिरतेव। अत्र सर्वत्र क्रियोत्प्रेक्षा। मकुन्देति—कुन्दकुसुमानि माघ्यपुष्पाणि श्वेतानि तैः सहिता या नीलोत्पलमाला कुवलयस्रक् तस्याः लक्ष्मीं शोभामुपहसता तिरस्कुर्वता। नयनयोः कृष्णश्वेतांशौ अन्तराऽन्तरा कुन्दपुष्पैर्ग्रथिताया नीलोत्पलमालाया अपि शोभनाविति भावः।

दशनेति- दशनरत्नानि दन्तरत्नानि तेषां तुलादण्डेन तोलनदण्डेन, नयनामृतसिन्धोः नेत्रामृतसरितः सेतुबन्धेन इव, यौवनमन्मथौ एव मत्तवारणौ मत्तकरिणौ तयोर्वरण्डकेन 'अगड' इतिलोकप्रसिद्धेन इव एतादृशेन नासावंशेन नासारूपवंशदण्डेन परिष्कृताम् विभूषिताम्। विलोचनकुवलयस्य नयननीलोत्पलस्य भ्रमरपंक्ती षड्पदश्रेणी ताभ्याम्।

मुखेति—मुखमेव मदनमन्दिरं कामावासगृहं तस्य तोरणमालिकाभ्यां बहिर्द्वारमालाभ्याम्। 'तोरणाभ्याम्' इति पाठान्तरे तु बहिर्द्वाराभ्यामिति व्याख्येयम्। 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः। रागेति—राग एव सागरस्तस्य वेणिकाभ्यां प्रवाहाभ्याम्। 'वेणी सेतुप्रवाहयोः। देवताडे केशबन्धे' इति हैमः। 'रागसागरवेलाभ्याम्' इति पाठे वेला तटभूमिः। यौवनेति—यौवनं तारुण्यमेव नर्तकः तस्य लासिकाभ्यां नर्तकीभ्याम्। सविलासं चलन्तीभ्यामिति भावः। एतादृशीभ्यां भ्रूलताभ्यां विराजिताम्। इतः परं श्लेषेण वासवदत्तामेव वर्णयति-घनसमयेति—घनसमयो वर्षाकालस्तस्मिन् या आकाशलक्ष्मीः आकाशशोभा तामिव। उल्लसदिति—उल्लसन्तौ शोभमानौ चारू मनोहरौ पयोधरौ कुचौ यस्यास्ताम्। पक्षे—उल्लसन्तः चारवः पयोधरा यस्यां यस्या वा ताम्। 'उल्लसद्धारपयोधराम्' इति पाठे उल्लसन्

आकाशमण्डलको खिले हुए कमल-वनसे परिपूर्णसा करते हुए, हजारों क्षीरसमुद्रोंको प्रकटसा करते हुए, बीच-बीचमें कुन्द-पुष्पोंसे युक्त कुवलय-मालाका उपहाससा करते हुए नेत्रोंसे अलंकृत; दांतरूपी रत्नोंके तुला-दण्डके समान, नेत्ररूपी दुग्धसमुद्रके सेतु-तुल्य, युवावस्था तथा मदनरूपी मत्त हाथियोंके वरण्डके मध्य वेदी (टीला) के समान स्थित, नासिकासे विभूषित; नेत्ररूपी कुवलयोंपर भ्रमर-पङ्क्ति मुखरूपी मदनगृहको वन्दनमाला, रागरूपी समुद्रके प्रवाह, यौवनरूपी नटकी नटी भ्रूलताओंसे सुशोभित; धाराओंसे अलंकृत मेघमाला-सम्पन्न वर्षाकालीन आकाश-सुषमाके समान हारसे मनोरम कुच-मण्डिता; तुलादण्डपर

ष्ठिताम्, सुयोधनधृतिमिव कर्णविश्रान्तलोचनाम्, वामनलीलामिव दर्शितवलिविभङ्गाम्, वृश्चिकराशिरविस्थितिमिव अतिक्रान्तकन्यातुलाम्, उषामिव अनिरुद्धदर्शनसुखाम्, शचीमिव नन्दनेक्षणरुचिम्, पशुपति-

हारो ययोस्तौ उल्लसद्धारौ तथोक्तौ कुचौ यस्यास्तां तादृशीम्। पक्षे उल्लसन्ती धारा प्रवाह इतस्ततो गमनं येषान्ते तादृशाः पयोधरा मेघा यस्यास्तां तादृशीम्। जयघोषणेति—जयघोषणा जयवादध्वनिः तामापन्नः प्राप्तो यो जनःपरीक्षितो नरः तस्य मूर्तिं शरीरमिव। तुलाकोटीति—तुलाकोट्योः नूपुरयोः प्रतिष्ठा स्थितिः सञ्जाता अस्या इति तां तादृशीम्। तुलाया उपमानस्य कोटौ प्रकर्षे प्रतिष्ठितां स्थिताम्। सर्वोपमानमूर्धन्यामित्यर्थः। अयमर्थः पक्षद्वयेऽपि समानरूपेण घटते परीक्षायां शुद्धस्य जनस्यापि उपमानकोटौ प्रतिष्ठितत्वात्। अस्मिन्पक्षे–तुलाकोटौ धटाग्रे तुलोपरिभागे प्रतिष्ठितां स्थिताम्। 'तुलापरीक्षायां परीक्षितस्य शुद्धौ जयजयेति जनैरुच्चैरुद्घोष्यत' इति व्यवहारः। सुयोधनेति—सुयोधनस्य दुर्योधनस्य धृतिः धैर्यम्। कर्णेति—कर्णयोः श्रवणयोः विश्रान्ते तत्पर्यन्तं गते कर्णान्तायते इत्यर्थः। तादृशे लोचने यस्यास्तां तादृशीमित्यर्थः। पक्षे–कर्णे राधेये विश्रान्तं समवस्थितं तदधीनमित्यर्थः। लोचनं निरूपणं कर्तव्यविचारो यस्यास्तां तथोक्ताम्। 'लोचनं दृशि निरूपणयत्ने चूषणे मुकुलिते सुखिते च' इति केशवः। 'यावत्कर्णं पश्यति तावत्तस्य धृतिरिति भावः।' इति शिवरामपण्डिताः। वामनेति—वामनस्य धृतवामनावतारविष्णोः। दर्शितेति—दर्शितः प्रकटितो वलीनां त्रिवलीनां विभङ्गः कौटिल्यं विच्छित्तिर्वा यया सा तादृशीम्। 'भङ्गो विच्छित्तिः' इति शब्दकल्पद्रुमः। पक्षे–दर्शितो बलेस्तन्नामकदैत्यस्य विभङ्गो नाशो यस्यां सा तथोक्ताम्। बवयोरभेदः। वृश्चिकेति—वृश्चिकराशौ या रविस्थितिः सूर्यसंक्रमः तामिव। अतिक्रान्तेति—अतिक्रान्ता कन्यातुला कन्यासादृश्यं यया तां तथोक्ताम्। अतिक्रान्तकन्याभावां युवतिमित्यर्थः। अतिक्रान्ता उल्लङ्घिता कन्यानां तुला सादृश्यम् उपमानं ययेत्यर्थो वा, यत्सदृशी अन्या काऽपि कन्या न विद्यत इति भावः। पक्षे–अतिक्रान्ते कन्यातुले वृश्चिकराशेः पूर्वस्थितौ राशी यस्यां सा इत्यर्थः। उषामिवेति—उषा वाणासुरस्य पुत्री। तामिव। अनिरुद्धमनिवारितं दर्शनसुखं यस्याः ताम्। लोकानामिति शेषः। यद्वा, स्वप्ने कन्दर्पकेतोरेव। पक्षे–अनिरुद्धस्य प्रद्युम्नपुत्रस्य स्वपत्युः दर्शनेन सुखं यस्यास्तां तथोक्ताम्। अनिरुद्धस्य दर्शनसुखं यस्या इति वा। शचीमिति—शचीम् इन्द्राणीमिव। नन्दनेति—नन्दय-

स्थित अतएव परीक्षामें उत्तीर्ण जय-घोषणा किये जाते हुए मनुष्यके समान समस्त उपमान-पदार्थोंमें सिरमौर, राधा-पुत्र कर्णपर निर्भर सुयोधनकी धृतिके समान, कर्णपर्यन्त विस्तीर्ण नेत्रोंवाली, बलिनामक दैत्यका नाश करनेवाली वामनलीलाके समान त्रिवलीसे सुशोभित, कन्या और तुला राशिका उल्लङ्घन कर वृश्चिकराशिपर सूर्यकी स्थितिके समान, कन्याभावसे,

ताण्डवलीलामिव उल्लसच्चक्षुःश्रवसम्, विन्ध्याटवीमिव उत्तुङ्गश्यामल-कुचाम्, वानरसेनामिव सुग्रीवाङ्गदशोभिताम्, भास्वताऽलङ्कारेण, श्वेतरोचिषा स्मितेन, लोहितेनाधरेण सौम्येन दर्शनेन गुरुणानितम्बबिम्बेन,

तीति नन्दना आनन्दप्रदा। नन्द्यादित्वात्कर्त्तरि ल्युः। अजादित्वाट्टाप्। तादृशी ईक्षणयोर्नेत्रयोः रुचिः कान्तिर्यस्याः ताम्। पक्षे-नन्दनस्य उद्यानस्य ईक्षणे विलोकने रुचिः अभिलाषो यस्याः सा तां तथोक्ताम्। पशुपतीति—पशुपतेः शिवस्य ताण्डवलीला नृत्यविलासमिव। उल्लसदिति—उल्लसत् शोभमानं चक्षुःश्रवः नेत्रे कर्णौ च यस्यास्ताम्। चक्षुषी श्रवसीचेति चक्षुःश्रवः, प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः। पक्षे-उल्लसन्तः शोभमानाः प्रमुदिता वा चक्षुःश्रवसः सर्पा यस्यां सा तथोक्ताम्। 'चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी' इत्यमरः। उत्तुङ्गेति—उत्तुङ्गौ पीनौ श्यामलौ कृष्णवर्णौ कुचौ यस्यास्ताम्। अत्र केवलं चूचुकयोरेव श्यामत्वेऽपि दग्धः पट इतिवत् अवयवधर्मस्य समुदाये समारोपात् कुचयोरेव श्यामत्वं वर्ण्यते। पक्षे-उत्तुङ्गा उन्नताः श्यामाः तमालाः लकुचा लिकुचवृक्षा यस्यां सा तथोक्ताम्। 'लकुचो लिकुचो डहुः' इत्यमरः। 'तमालः श्यामलः कालः' इत्यजयः। सुग्रीवेति—शोभनया ग्रीवया, शोभनाभ्यामङ्गदाभ्यां केयूराभ्यां च शोभिताम्। पक्षे-सुग्रीवेण वानराणां महाराजेन अङ्गदेन बालिपुत्रेण च शोभिताम्। 'अङ्गदः कपिभेदे ना केयूरे तु नपुंसकम्' इति मेदिनी। ग्रहमयीमिवेति वक्ष्यति तच्छ्लेषेण समर्थयते-भास्वतेत्यादिना—भास्वता दीप्तिमता अलंकारेण भूषणेन पक्षे अलं पर्याप्तं कारयति जनानां व्यवहारान् इति अलंकारस्तथोक्तेन भास्वता सूर्येण। श्वेतेति—श्वेतं धवलं रोचिः कान्तिर्यस्य तथोक्तेन। स्मितेन ईषद्धास्येन। पक्षे-स्मयते अल्पं प्रकाशत इति स्मितः तेन। सूर्यापेक्षया मन्दप्रकाशेनेत्यर्थः। श्वेतरोचिषा चन्द्रेण। 'चन्द्रेण वदनमण्डलेने'ति पाठान्तरम्। चन्द्रेण आह्लादकेन मुखेन। लोहितेनेति—लोहितेन रक्तवर्णेन अधरेण अधरोष्ठेन। पक्षे-अधरेण अन्यग्रहापेक्षयाऽधः स्थितेन लोहितेन भौमेन। मङ्गलं खल्वन्यग्रहापेक्षयाऽधः स्थित इति ज्योतिर्विदः। 'लोहितं रक्तगोशीर्षे कुङ्कुमे रक्तचन्दने। पुमान्नदान्तरे भौमे वर्णे च त्रिषु तद्वति।' इति मेदिनी। सौम्येनेति—सौम्येन रम्येण दर्शनेन

उन्मुक्त-युवति, अनिरुद्धके दर्शनसे आनन्दित ऊषाके समान अनिवारित दर्शनोंसे सुखप्रद। नन्दनवनके दर्शनमें रुचि रखनेवाली इन्द्राणीके समान (अपनी) नेत्रशोभासे (दर्शकोंको) आनन्दित करनेवाली, सर्पोंको आनन्दप्रद महादेवके ताण्डवनृत्यके समान मनोहर नेत्र तथा कानोंसे अलंकृत, ऊँचे, तमाल तथा लकुच वृक्षोंसे पूर्ण विन्ध्यटावीके समान पीन, श्यामवर्ण (चूचुकवाले) कुचोंसे, विभूषित, सुग्रीव तथा अङ्गदसे सुशोभित बानरसेनाके समान, मनोरम ग्रीवा तथा केयूरोंसे अलंकृत, दीप्यमान अलङ्कारों (सूर्य), शुभ्रकान्ति

सितेन हारेण, शनैश्चरेण पादेन, तमसा केशपाशेन, विकचेन लोचनोत्पलेन, ग्रहमयीमिव, संसारभित्तिचित्रलेखामिव त्रैलोक्यचित्तरङ्गस्य, रसायनसमृद्धिमिव यौवनमहायोगिनः; सङ्कल्पसिद्धिमिव शृङ्गारस्य,

---

विलोकनेन । पक्षे–सौम्येन बुधेन । 'सौम्यः सोमात्मजेऽनुग्रे मनोज्ञे सोमदैवते ।' इति हैमः । गुरुणेति—गुरुणा महता विपुलेनेत्यर्थः । नितम्बबिम्बेन श्रोणिप्रदेशेन । पक्षे–गुरुणा बृहस्पतिना । सितेति—सितेन शुभ्रेण हारेण मुक्तामालया पक्षे सितेन शुक्रेण 'सितस्त्ववसिते बद्धे शुक्रे वर्णे च तद्वति ।' इत्यजयः । शनैश्चरेति—शनैः चरतीति शनैश्चरः सविलासमन्दगमनः, तादृशेन । पक्षे पादेन ग्रहाणां पादस्थानभूतेन शनैश्चरेण शनिना । तमसेति—अन्धकारेण तद्वन्नीलेनेत्यर्थः । पक्षे कस्य सुखस्येशाः केशा ग्रहाः, अनुकूलतया तेषां सुखप्रदत्वात् । तेषां तेषु वा कुत्सितः इति केशपाशस्तेन । ग्रहेषु निकृष्टेनेत्यर्थः । तमसा राहुणा । 'तमस्तु राहुः स्वर्भानुः' इत्यमरः । विकचेनेति—विकचेन विकसितेन, लोचनमेवोत्पलं तेन । पक्षे विकचेन केतुना 'विकचः क्षपणे केतुग्रहे ना स्फुटितेऽन्यवत् ।' इति विश्वः । अतो ग्रहमयीं सूर्यादिग्रहमयीमिव स्थिताम् । अत्र 'सितेन हारेण' इत्यस्य स्थाने 'विकचेन नेत्रकमलेन' इति पाठान्तरे पक्षे–विगतः कचोबृहस्पतिपुत्रो यस्मात्स विकचः शुक्रः । 'शुक्रे केतौ च विकच उत्फुल्ले च निगद्यते ।' इति विश्वः । अस्मिन्पाठे 'राहुकेत्वोरेकत्वात् 'शुक्रे केतौ च विकच' इति विश्वकोशाद्विकचशब्देन केतोरपि ग्रहणात् नवग्रहा बोध्याः । अत्र रत्नावली अलङ्कारः । 'क्रमिकं प्रकृतार्थानां न्यासं रत्नावलीं विदुः' इति तल्लक्षणम् । संसारेति—त्रयो लोका एव त्रैलोक्यं, स्वार्थे ष्यञ् । तस्य चित्तमेव रङ्गो नाट्यशाला तस्य । संसार एव भित्तिः कुड्यं तस्याः चित्रलेखाम् आलेख्यलेखामिव स्थिताम् । त्रैलोक्यसारसर्वस्वभूतामित्यर्थः । रसायनेति—रसायनं जराव्याधिविनाशक औषधविशेषः, तथा च वैद्यकशास्त्रम् 'यज्जराव्याधिविध्वंसि वयसः स्तम्भकं तथा । चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम्' इति । यौवनमेव महायोगी तस्य रसायनसम्पदमिव स्थिताम् । यथा रसायनं प्राश्य योगी जराव्याधिविनिर्मुक्तः सञ्जायत एवमेनां प्राप्य यौवनमपि स्थिरं भवति, अतिशययौवनवतीमिति तात्पर्यम् । सङ्कल्पेति—शृङ्गारस्य शृङ्गाररसस्य, सङ्कल्पो मानसं कर्म अध्यवसायः तस्य सिद्धिमिव स्थिताम् ।

मुस्कराहट (चन्द्र), रक्तवर्ण अधर (मङ्गल), मनोरम दर्शन (बुध), विशाल नितम्ब मण्डल (बृहस्पति), श्वेत हार (शुक्र), मन्दगामी चरण (शनैश्चर), नीलवर्ण केशपाश (राहु) और प्रफुल्ल नेत्रकमल द्वारा (केतु) ग्रहमयीसी, तीनों लोकोंके चित्तरूपी नाट्यशालाके संसाररूपी भित्तिकी चित्रलेखाके समान स्थित, यौवनरूपी महायोगीके

निधानमिव कौतुकस्य, विजयपताकामिव मकरध्वजस्य, आजिभूमिमिव मदनस्य, संकेतभूमिमिव लावण्यस्य, विहारस्थलीमिव सौन्दर्यस्य, एकायतनशालामिव सौभाग्यस्य, उत्पत्तिस्थानमिव कान्तेः, स्तम्भनचूर्णमिव इन्द्रियाणाम्, आकर्षणमन्त्रसिद्धिमिव मनसः, चक्षुर्बन्धनमहौषधिमिव मन्मथेन्द्रजालिनः, त्रिभुवनविलोभनसृष्टिमिव प्रजापतेः, अष्टादशवर्षदेशीयां कन्यामपश्यत्स्वप्ने ।

निधानेति—कौतुकस्य कुतूहलस्य निधानं निधिमिव स्थिताम् । एनां विलोक्य सर्वे एव जनाः कुतूहलिनो भवन्ति यद्वा, कुतूहलजनकसौन्दर्यादेः निधिरियमित्यर्थः । विजयेति—मकरध्वजस्य कामस्य विजयसूचिकां पताकां वैजयन्तीमिव स्थिताम् । आजीति—मदनस्य आजिभूमिः युद्धस्थानम् । अत्र स्थितो मदनः सर्वान् विजयते इति भावः । सङ्केतेति—लावण्यस्य सङ्केतभूमिः सङ्केतस्थानमित्यर्थः । प्रत्यङ्गवर्ति सर्वविधमपि लावण्यमत्र स्थितमिति भावः । विहारेति—सौन्दर्यस्य 'अङ्गप्रत्यङ्गकानां यो सन्निवेशो यथोचितम् । सुस्निग्धसन्धिबन्धः स्यात्तत्सौन्दर्यमितीर्यते ।' इति लक्षितस्य सौन्दर्यस्य विहारस्थानं क्रीडास्थलीमिव स्थितामित्यर्थः । सर्वावयवसुन्दरीमित्यर्थः । एकेति—सौभाग्यस्य सुभगतायाः एका अद्वितीया आयतनशाला निवासशाला तामिव स्थिताम् । नान्या काचित् एतादृशी सौभाग्यशालिनीति भावः । 'एका प्रधाना आयतनशाला चैत्यशाला तामिव स्थिताम् ।' इति शिवरामपण्डिताः । आश्रयार्थे प्रयुज्यते बहुशः कविभिरयं शब्दः । तथा च—'नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्' इति चाणक्यः । 'स्नेहस्तदेकायतनं जगाम' इति कुमारसम्भवे । उत्पत्तेरिति—'सा शोभा रूपभूषाद्यैर्यत्स्यादङ्गविभूषणम् । शोभैव कान्तिराख्याता मन्मथाप्यायनोज्ज्वला ।' इत्युक्तायाः कान्तेः प्रभवस्थलमिव स्थिताम् । स्तम्भनेति—इन्द्रियाणां स्तम्भनचूर्णमिव व्यापारनिरोधकचूर्णमिव स्थिताम् । एनां दृष्ट्वा सर्वेन्द्रियाणि जनानां स्वस्वव्यापारं परित्यजन्तीति भावः । आकर्षणेति—मनसः आकर्षणम् आकर्षणोच्चाटनादिषु षट्सु कर्मस्वेकं बलादानयनरूपम्, यत्सिद्धाः स्वर्णादिकमन्यतः समानयन्ति तत् । इयं सर्वेषां मनांस्याकर्षयतीति भावः । चक्षुरिति—मन्मथः काम एव इन्द्रजाली इन्द्रजालोपजीवी तस्य । दर्शकानां दृष्टिनिरोधकरी या महौषधिः, तामिव स्थिताम् । सकलजनानां चक्षूंष्यत्र प्रतिबध्यन्त इति भावः । त्रिभुवनेति—प्रजापतेः ब्रह्मणः, त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विलोभनाय आकर्षणाय या

रसायन-ऐश्वर्यके समान, शृङ्गारकी सङ्कल्प-सिद्धिके समान, कुतूहल (आश्चर्य) की निधि, कामदेवकी विजयपताका, मदनकी युद्धभूमि, लावण्यका सङ्केतस्थान, सौन्दर्यकी विहार-भूमि, सौभाग्यका निवासगृह, कान्तिका उत्पत्तिस्थान, इन्द्रियको अपने २ व्यापारसे निवृत्त करनेवाला चूर्ण, मनको आकृष्ट करनेवाला मन्त्र, कामरूपी ऐन्द्रजालिककी दृष्टि-

अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबन्निव जनितेर्ष्ययेव निद्रया चिरसेवितया स मुमुचे। अथ प्रबुद्धस्तु विषसरसीव दुर्जनवचसीव निमग्नमात्मानमवधारयितुं न शशाक। तथा हि—निर्लक्ष्यमाकाशतले आलिङ्गनार्थं प्रसारितबाहुयुगलः, एह्येहि प्रियतमे! मा गच्छ, मा गच्छेति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव, उत्कीर्णामिव चक्षुषि, निखातामिव हृदये प्रियतमामाजुहाव। ततस्तत्रैव शय्यातले निलीनो निषिद्धाशेषपरि-

सृष्टिः रचना तामिव स्थिताम्। सर्वजनलोभनीयेति तात्पर्यम्। अष्टादशेति—अष्टादश वर्षा यस्याः सा अष्टादशवर्षा ईषदूना अष्टादशवर्षेति अष्टादशवर्षदेशीया। एतादृशीं कन्यां स्वप्नेऽपश्यदिति सम्बन्धः।

अथेत्यादि—अथ स्वप्नेऽवलोकनानन्तरं स्नेहविकसितेन चक्षुषा पिबन् सादरं पश्यन्। अत एव चिरसेवितया निद्रया जनितेर्ष्यया सञ्जातेर्ष्ययेव निद्रया असौ मुक्तः। अत्र 'मयि विद्यमानायां मत्सम्बन्धादेव च प्राप्तायामस्यामत्यासक्तिरिति सेर्ष्यत्वम्। नवनवयुवतिसङ्गमकामुका युवानोऽसकृद्भुक्तां कामिनीमनाद्रियन्ते विमानिताश्च तास्तान् परित्यजन्त्येवेत्यपि गम्यते। प्रबुद्धः जागरितः। अवधारयितुं—सावधानतया व्यवहारे प्रवर्तयितुम्। निर्लक्ष्येत्यादि—आलिङ्गनार्थम् आकाशतले निर्लक्ष्यं लक्ष्यशून्यं प्रसारितं विस्तृतं बाहुयुगलं येन तथोक्तः सः। दिक्षु पूर्वादिषु विदिक्षु अन्तरालदिशासु च विलिखितां चित्रितामिव, चक्षुषि उत्कीर्णामिव टङ्कादिना परितक्ष्य आकारमापादितामिव। चक्षुषोऽग्रे सर्वदा तस्या एव वर्तमानत्वात् 'उत्कीर्णां विक्षिप्तामिव 'कॄ विक्षेपे' इति दर्पणकाराः। 'उत्कीर्णां विन्यस्ताम्' इत्यपरे। निखातां स्थापिताम्। 'स्थापनं निखननं च समे द्वे' इत्यजयः। एवम्भूतां प्रियतमाम् 'एह्येहि मा गच्छ मा गच्छे'ति आजुहाव आकारयामास। निलीनः स्थितः। 'निमीलितनयनः' इति पाठान्तरम्। निषिद्धेति—निषिद्धाः स्वसमीपमागन्त

बन्धक महौषधि, प्रजापतिकी तीनों लोक को लुभानेवाली रचनाके समान स्थित (अठारह वर्षके लगभग आयुकी कन्याको स्वप्नमें देखा।)

अनन्तर, प्रेमसे प्रफुल्ल दृष्टिसे उस कन्याका पानसा करते हुए राजकुमारको, मानों ईर्ष्या उत्पन्न होनेके कारण चिरकाल तक सेवित निद्राने छोड़ दिया। (वह जाग कर उठा)। जागनेपर मानों विषसरोवरमें अथवा दुर्जन के वचन में डूबे हुए अपने आपको वह सम्भाल न सका। जैसा कि उसकी चेष्टाएँ बता रही थीं—वह, आलिङ्गन करनेके लिये आकाशमें बिना लक्ष्य ही दोनों भुजाएँ फैलाकर; आओ-आओ, प्रियतमे! मत जाओ, मत जाओ (कहकर) दिशाओं तथा उपदिशाओं में चित्रितसी, नेत्र में खुदी हुई सी और हृदयमें स्थापितसी प्रियतमाको बुलाने लगा। अनन्तर वहीं शय्यापर ही लेटे हुए, समस्त

जनो दत्तकपाटः परिहृतताम्बूलादिसकलोपभोगस्तं दिवसमनयत्। तथैव निशामपि स्वप्नसमागमेच्छया कथमप्यनैषीत्। अथ तस्य प्रियसखो मकरन्दो नाम कथमपि लब्धप्रवेशदर्शनः कन्दर्पसायकप्रहारपरवशं कन्दर्पकेतुमुवाच—

सखे! किमिदमसाम्प्रतमसाधुजनोचितमध्वानमाश्रितोऽसि। तवैतच्चरितमालोक्य वितर्कदोलासु निवसन्ति सन्तः। खलाः पुनस्त्वदनुचितमनिष्टमाचरन्ति। अनिष्टोद्भावनरसोत्तरं हि भवति खलहृदयम्। को ना-

---

निवारिता अशेषपरिजनाः सकलानुचरा येन सः। कपाटम् अररम्। परिहृतेति—परिहृतः त्यक्तः ताम्बूलादेः सकलः उपभोगः भोगो येन सः। स्वप्नेति—स्वप्ने यः समागमस्तस्येच्छया। दिवासमागमासम्भवात् स्वप्न एव समागमोऽस्त्वित्याशया। कथमपि—महता प्रयासेन। लब्धेति—लब्धे प्राप्ते प्रवेशः कन्दर्पकेतोः शयनगृहे इति भावः। दर्शनं च कन्दर्पकेतोरेव येन सः। कन्दर्पेति—कन्दर्पसायकानां कामबाणानां प्रहाराणां परवशं पराधीनं कामपीडितान्तःकरणमित्यर्थः। असाम्प्रतम् अनुचितम्। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः। असाधुजनेति—असाधुजनानामसताम् उचितं योग्यम्, तैरुचितमभ्यस्तमिति वा। 'अभ्यस्तेऽप्युचितं न्याय्यम्' इत्यमरः। वितर्केति—वितर्कदोलासु संशयदोलासु। अतिधीरस्य महाप्रज्ञस्य कन्दर्पकेतोः कथमीदृशी दशा संजाता। यत्कपाटौ पिधाय परिहरति परैः सम्भाषणं नाचरति च आहारादिविधिं किमस्य कारणमिति सन्दिहाना न वाचा किमपि प्रकाशयन्तीति समुदितार्थः। सतामग्रणीः महाप्रज्ञः कन्दर्पकेतुर्यदा ईदृशमाचारमाचरति तत्किमयमपि आचारः सतां सेव्य उतासेव्य इति सन्तोऽप्याचारनिरूपणे सन्दिग्धा भवन्ति। 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' इति न्यायात् सद्भिराचरितस्यैवाचारस्य सदाचारावधारणादिति वा भावार्थः। खलाः—दुर्जनाः। त्वदनुचितं त्वदीययोग्यताया अननुरूपम्। अनिष्टम्—अस्माकमनभिमतमनर्थकारि वा। आचारं

परिजनोंका वहाँ आना निषिद्धकर तथा किवाड़ बन्द करके पान आदि सम्पूर्ण वस्तुओंका परित्याग कर किसी प्रकार उसने दिन व्यतीत किया। इसीप्रकार स्वप्नमें (कन्याके) समागमकी इच्छासे बड़े कष्टसे रात भी व्यतीत की। इसके बाद, उसके प्रियमित्र मकरन्दने बड़े यत्नसे अन्दर जा और उससे मिलकर उसे कामके बाणोंसे व्यथित हुआ देखा; तब उसने (मकरन्दने) कहा।

'मित्र! यह क्या बात है? तुम दुर्जनोचितमार्गमें, कामवासनामें क्यों प्रवृत्त हुए हो? तुम्हारे इस आचरणको देखकर सज्जनलोग संशयमें पड़ गये हैं और दुष्टलोग तुम्हारी योग्यताके प्रतिकूल, हमारे लिये अवाञ्छनीय तुम्हारी निन्दा करते हैं; क्योंकि दुष्टोंका

माऽस्य तत्त्वनिरूपणे समर्थः । तथाहि—भीमो नवकद्वेषी, आश्रयाशोऽपि मातरिश्वा, अतिकटुरपि महारसः, सर्षपस्नेह इव करयुगलालितोऽपि

निन्दारूपं व्यवहारम् । आचरन्ति कुर्वन्ति । सर्वथा त्वां निन्दन्तीति भावः । यद्वा—त्वदनुचितम् त्वयाऽऽचरितममुमयोग्यं व्यवहारम् अनिष्टं सद्भिरग्राह्यमाचारम् आचरन्ति कुर्वन्ति । सज्जनास्तु विचारयन्त्येव खलैः पुनस्त्वदाचारानुकरणं प्रारब्धमपीति भावः । तत्रैव हेतुमाह— अनिष्टेति—अनिष्टस्य उद्भावने उत्पादने, अनिष्टस्य अपख्यातिरूपस्य उद्भावने आरोप्य सर्वतः प्रचारणे वा यः रसः तृप्तिः प्रीतिर्वा तस्मिन्नुत्तरं प्रवणम् । स उत्तरः प्रधानभूतो यस्येति वा । 'उत्तरं प्रवणोर्ध्वयोः' इति हैमः । तत्त्वेति—तत्त्वस्य याथार्थ्यस्य निरूपणे ज्ञाने । को नाम समर्थः, न कोऽपीति भावः । भीमोऽपीति— भीमो भीमसेनोऽपि, वकस्य वकासुरस्य द्वेषी द्वेष्टा नेति विरोधः । भीमेन वकराक्षसस्य हतत्वात् । पक्षे—भीमो भयङ्करः परपीडकत्वात्, नवकद्वेषीत्येकं पदम् । वबयोरभेदः । नवः सौम्यः कः मनः आत्मा वा येषान्ते नवकाः सज्जनास्तान् द्वेष्टीति नवकद्वेषीति परिहारः । नवकान् स्तुत्यान् द्वेष्टीति 'नवकद्वेषी' इति दर्पणकारः, आश्रयाशोऽपीति— आश्रयं स्वाधारभूतं काष्ठादिकमश्नाति भक्षयतीति आश्रयाशो वह्निरपि । मातरि आकाशे श्वयति गच्छतीति मातरिश्वा वायुः इति विरोधः । पक्षे—आश्रयाशः आश्रयनाशकः । मातरि जनन्यां स्वपोषक इति भावः । श्वा कुक्कुरः । तद्वत् क्रूरः अनुचिताचरणो वा । अतिकटुक— इति । अत्यन्तं कटुरसविशिष्टोऽपि महारसः महान् अतिमिष्टो रसोऽस्येति महारसः इक्षुः 'महारसोऽसिपत्रः स्यान्मृत्युपुष्पो मधुतृणः । इक्षुर्वंशककाण्डारभीरुपौण्ड्रादिभेदवान् ।' इति वैद्यकरत्नमाला । इक्षोर्मधुरत्वादतिकटुकत्वं विरुद्धम् । पक्षे—अकार्यबहुलः, अत्यन्तमत्सरी, दूषणयुक्तो वा । 'कटुवकार्ये मत्सरे च दूषणे च कटू रसे । तिक्ते' इति हैमः । महान् अरसः, रलयोरभेदात् महान् अलसो वा । सर्षपेति - सर्षपस्नेहः, सर्षपतैलम् । करयुगेति—करयुगेन हस्तयुगलेन लालितः पूजितः । पक्षे—लालितः स्पृष्टः ।

हृदय, (दूसरोंकी) निन्दाके प्रचारमें तृप्ति अनुभव किया करता है । इन (दुर्जनों) की असलियतका पता कौन लगा सकता है । जैसे कि—भीमसेन होते हुए भी वकराक्षसका द्वेषी नहीं होता (यह विरोध है) (वस्तुतः) भयंकर तथा सज्जनोंसे द्वेष करनेवाला होता है । अग्नि होते हुए भी वायु है, (वस्तुतः) अपने आश्रयदाताका नाश करनेवाला तथा मातृतुल्य अपने पालकोंके प्रति भी (कुत्तेके समान) अनुचित आचरण करता है । अत्यन्त कड़ुवा होते हुये भी मधुर होता है, (वस्तुतः) अनेक अनुचित कार्य करनेवाला एवं बड़ा अरसिक होता है । जिसप्रकार दोनों हाथोंसे मला हुआ और सिरपर धारण (लगाया हुआ) किया हुआ भी सरसोंका तेल अपना कड़ुआपन नहीं छोड़ता इसी तरह

शिरसा धृतोऽपि न कटुत्वं जहाति । तालफलरस इवापातमधुरः परिणामविरसस्तिक्तश्च । पादपराग इवावधूतोऽपि मूर्धानं कषाययति । विषतरुप्रसूनमिव यथा यथाऽनुभूयते, तथा तथा मोहमेव द्रढयति । नीच-

---

शिरसेति—पादप्रणामेन मस्तकेन धृतः । पक्षे-अधिकरणस्य करणत्वेन वर्णनम् । कटुत्वम—क्रूरतां, कटुरसत्वञ्च । 'अत्र 'काटवम्' इति पाठान्तरम् । 'तत् असभ्यस्मारकत्वादुपेक्ष्यम्' इति दर्पणकारः । 'कटुः स्त्री कटुरोहिण्यां लताराजिकयोरपि । नपुंसकमकार्ये स्यात्पुँल्लिङ्गे रसमात्रके ॥ त्रिषु तद्वत्सुगन्ध्योश्च मत्सरेऽपि खरेऽपि च' इति मेदिनी । आपातेति—आपाते तदात्वे परिचयारम्भ इत्यर्थः । मधुरः मृदुव्यवहार इत्यर्थः । परिणामे अन्ते विरसः नीरसः । पक्षे-आपाते पानसमये मधुरो मिष्टः । परिणामे अवसाने परिपाक इत्यर्थः । विरसो ःमदजनकत्वात् । तिक्तः तिक्तरस इव वर्जनीयः, अप्रिय इत्यर्थः । पक्षे तिक्तरसविशिष्टः । 'आपातमधुरः परिणामामधुर' इति पाठान्तरम् । परिणामे अमधुरः माधुर्यरहितः । पक्षे-परिणामे जीर्णतायाम् आमस्य आमव्याधेः धूः भारो यस्य येनेति वा । पादप इति—पादपरागः चरणधूलिः । अवधूतः उपेक्षितः तिरस्कृतो वा कषाययति पीडयति । पक्षे अवधूतो विक्षिप्तः । कषाययति कलुषयति । 'पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति । स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥' इति माघः । विषेति—विषतरोः विषवृक्षस्य प्रसूनं कुसुमम् । अनुभूयते परिचीयते । मोहम् अज्ञानम् । द्रढयति दृढं करोति प्रकाशयतीत्यर्थः । पक्षे-अनुभूयते जिघ्रयते । मोहं मूर्च्छाम् । द्रढयति दृढं करोति । नवेति—खलपक्षे न वा अरिविरह इति, नीचदेशपक्षे च न वारिविरह इति पदच्छेदः । अस्य खलस्य अरिविरहः शत्रुविरहो न जायते । सर्वेषामयं शत्रुरिति भावः । पक्षे-वारिविरहो जलाभावः । न । निम्नप्रदेश एव जलस्थितेः इति भावः । यद्वा पक्षद्वयेऽपि 'वारिविरह' इत्येव च्छेदः । वारिः वाक् तस्या विरहो विरामः । न । सर्वदा परदूषणलम्पटतया

दुष्ट पुरुष भी, हाथ जोड़कर प्रणाम तथा चरणोंमें सिर रखनेपर भी अपनी क्रूरता नहीं छोड़ता । आस्वादकालमें मधुर परन्तु अन्तमें नीरस तथा तीखे ताल (ताड़ी) फलके समान (परिचयके) प्रारम्भमें मधुर परन्तु अन्तमें नीरस तथा तीखा-तीव्रस्वभाव होता है । (ऊपर) फेंकी हुई पैरकी धूलके समान उपेक्षा किये जानेपर भी मस्तक (बुद्धि) को कलुषित कर देता है । विषवृक्षका पुष्प जितना अधिक काममें लाया जाता है उतनी ही अधिक मूर्च्छा उत्पन्न करता है, दुर्जन पुरुष इसीतरह अधिकाधिक सम्पर्कमें आनेपर अज्ञान ही बढ़ाता है । जिस प्रकार निम्न स्थान (गड्ढे आदि) में कभी जलका अभाव नहीं होता—सर्वदा जल बना ही रहता है इसी तरह, दुर्जन पुरुष कभी शत्रुओंसे रहित नहीं होता—सर्वदा उसके शत्रु बने ही रहते हैं । (अथवा वह कभी चुप नहीं रहता सर्वदा

देशस्येव नवारिविरहोऽस्य जायते । निदाघदिवस इव बहुमत्सरस्सुमनसां सन्तापं वहति । अन्धकार इव दोषानुबन्धचतुरः विश्वकर्मावलोपनोद्यतश्च । रुद्र इव विरूपाक्षः, विष्णुरिव चक्रधरः । शक्राश्व इवोच्चैःश्रवाः

यत्किञ्चिदुक्त्यैवेति भावः । 'वारिर्वाग्गजबन्धन्योः स्त्री क्लीबेऽम्बुनि बालुके ।' इति मेदिनी । निदाघेति—निदाघदिवस इव ग्रीष्मर्तुदिनमिव । बहुः मत्सरो मात्सर्यमीर्ष्या यस्य सः । सुमनसां शुद्धान्तःकरणानां सज्जनानाम् । सन्तापं पीडां वहति जनयति । 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः' इत्यमरः । पक्षे—बहवो मत्सरा मक्षिका यस्मिन् सः । सुमनसां पुष्पाणां सन्तापं म्लानतां वहति करोति । 'मत्सरा मक्षिकायां स्यान्मात्सर्यक्रोधयोः पुमान् । असह्यपरसंपत्तौ कृपणे चाभिधेयवत् ।' इति मेदिनी । दोषेति—दोषाणामनुबन्धे आरोप्य कथने चतुरः समर्थः । यद्वा, अनुबन्धेऽनुवर्तने चतुरो निपुणः । खला हि परेषां दोषान् झटित्यनुसरन्ति न तु गुणान् । विश्वानि समग्राणि सन्ध्यावन्दनादीनि कर्माणि तेषामवलोपने परित्यागे उद्यतस्तत्परः । यद्वा विश्वेषामपि जनानां यानि कर्माणि तेषामवलोपने नाशने उद्यतः । पक्षे—दोषा रात्रिस्तस्या अनुबन्धेऽनुवृत्तौ चतुरः । विश्वकर्मेत्यादिकन्तु अस्मिन्नपि पक्षे समानार्थकम् । अन्धकारे हि सर्वेषां कार्याणि स्थगितानि भवन्ति । यद्वा विश्वकर्मा सूर्यः तस्यावलोपने आच्छादने अस्तमने वा उद्यतः । 'विश्वकर्मा देवशिल्पी विश्वकर्मा दिवाकरः ।' इत्युत्तरतन्त्रम् । विरूपेति—विरूपो विपरीतः अक्षो ज्ञानं व्यवहारो वा यस्य सः विरूपाक्षः । 'अक्षो रथस्यावयवे व्यवहारे बिभीतके । सायके शकटे कर्षे ज्ञाने चात्मनि रावणौ ।' इति हैमः । पक्षे—विविधानि रविचन्द्राग्निरूपाणि अक्षीणि नेत्राणि यस्य सः । विरूपेष्वपि अक्षि कृपादृष्टिर्यस्येति वा । चक्रेति—चक्रं दम्भविशेषः । तस्य धरः धारकः । पक्षे चक्रायुधम् । 'चक्रः कोके पुमान्क्लीबं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः । राष्ट्रे दम्भान्तरे कुम्भकारोपकरणास्त्रयोः । जलावर्तेऽपि ।' इति मेदिनी । शक्रेति—शक्राश्वः इन्द्राश्वः । उच्चैः अधिकं श्रवः श्रवणं यस्य स तथोक्तः । परकीयालापश्रवणे तत्पर इत्यर्थः । परकीय

दूसरोंके दूषणोंका उद्घाटन करता ही रहता है) । जिसमें मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं ऐसे ग्रीष्मऋतुके दिन पुष्पोंको सन्तप्त करते हैं; दुर्जन पुरुष भी इसी तरह ईर्ष्यावश विद्वानोंको क्लेश पहुँचाता रहता है । रात्रिको अनुसरण करनेमें चतुर तथा सूर्यका विनाश करनेमें (आच्छादन करनेमें) तत्पर अन्धकारके समान दुर्जन पुरुष दूसरोंपर दोष लगानेमें चतुर तथा सबकी जीविकाओंके नाश करनेमें तत्पर रहता है । उसका व्यवहार त्रिलोचन महादेवके समान विपरीत ही होता है । वह चक्रधारी विष्णुके समान सर्वदा चक्र-कपट व्यवहारमें तत्पर रहता है । वह उच्चैःश्रवा नामक समुद्रसे उत्पन्न प्रशंसनीय इन्द्रके घोड़ेके समान उच्चैःश्रवा-दूसरोंके कार्य सुननेमें बहिरा बन जाता है । तथा वह

नदेशजप्रशंसी च। शरस्येव विभिन्नस्यापि सतः स्नेहं दर्शयतः खलः तक्राट इव हृदयं विलोडयति। यक्षबलिरिव आत्मघोषमुखरो मण्डलभ्रमणकश्च। मातङ्ग इव स्ववशालोलमुखोऽधरीकृतदानश्च, वृषभ इव सुरभियान-

---

कार्यश्रवणे बधिर इति वा। उच्चैःश्रवाः एतन्नामको घोटकः। नदेशजेति—देशे स्वजनपदे जाता देशजाः तान् प्रशंसितुं शीलमस्येति देशजप्रशंसी स न भवतीति नदेशजप्रशंसी। देशजानां प्रशंसा यस्य नास्ति स इति वा। पक्षे–नदानामीशो नदेशः समुद्रस्तस्माज्जातः नदेशजः। प्रशंसी प्रशंसावांश्च, प्रशस्यमान इति भावः। ततो द्वन्द्वः, कर्मधारयो वा। शरस्येवेति—विभिन्नस्यापि स्नेहं दर्शयतः सतः शरस्येव हृदयं खलः तक्राट इव विलोडयतीत्यन्वयः। विभिन्नस्य सङ्गतस्यानुवर्तमानस्य, भेदितस्य च। स्नेहं प्रेमाणं घृतञ्च, दर्शयतः प्रकटयतः सतः सज्जनस्यः, शरस्य दध्यग्रभागस्य दध्नो वा, हृदयं मनः मध्यभागञ्च। तक्राटो मन्थनदण्डः इव खलः विलोडयति अतितरां खेदयति मथ्नाति च। 'शरस्तु तेजने बाणे दध्यग्रे ना शरं जले।' इति विश्वः। 'शरं दधि शरो बाणे' इत्यजयः। 'स्नेहोऽनुरागश्चैक्कण्यं तैलेऽपि च निगद्यते।' इति धरणिः। 'समास्तक्राटवैशाखमन्थमन्थानमन्थनाः' इति वैजयन्ती। यक्षेति—यक्षार्थं निहितो बलिः यक्षबलिः। आत्मेति—आत्मघोषेण आत्मस्तुतिवादेन मुखरो वाचालः। मण्डले देशे भ्रमतीति मण्डलभ्रमणः स एव मण्डलभ्रमणकः। पक्षे–आत्मघोषेण काकेन तच्छब्देनेत्यर्थः मुखरः सशब्दः। मण्डलाः श्वानः तान्भ्रमयतीति मण्डलभ्रमणकः। पिण्डप्राप्तिलोभेन श्वानः बलिसमीपे परिभ्रमन्तीति स्थितिः। 'ध्वाङ्क्षात्मघोषपरभृद्बलिभुग्वायसा अपि।' 'स्यान्मण्डलं द्वादशराजके च देशे च बिम्बे च कदम्बके च। कुष्ठप्रभेदेऽप्युपसूर्यके च भुजङ्गभेदे शुनि मण्डलः स्यात्।' इति विश्वः। मातङ्ग इवेति—मातङ्गो गजः। स्ववशेति—स्ववशं स्वाधीनम् आलोलं चपलं मुखं यस्य स तथा स्वमुखं स्वस्य वशमिति कृत्वा चपलतया परान् प्रति यत्किञ्चिद्भाषणशीलः। पक्षे–स्ववशायां निजकरिण्यामालोलं स्नेहप्रदर्शनचञ्चलं मुखं यस्य सः। अधरीकृतेति—अधरीकृतं तिरस्कृतं वर्जितमित्यर्थः। दानं परेभ्यो

कभी भी अपने देशनिवासी जनोंकी प्रशंसा नहीं करता। जिस तरह खूब मथनेके कारण ऊपर घृत–बिन्दुओंके दिखाई पड़नेपर भी मन्थन दण्ड दहीको विलोडित करता ही जाता है; दुर्जन पुरुष भी इसी तरह पृथक किये हुए तथा प्रेम प्रदर्शित करनेवाले सज्जन पुरुषोंके अन्तःकरणको क्लेश पहुँचाता रहता है। जिस तरह यक्षके उद्देश्यसे स्थापित बलि कौवोंके शब्दसे युक्त तथा कुत्तोंको इधर–उधर (आसपास) घुमाती है दुष्टजन भी इसी तरह आत्म–प्रशंसामें तत्पर तथा (व्यर्थ ही) इधर–उधर घूमता रहता है। अपनी करिणीके प्रति चंचल–मुख तथा मदस्रावी हस्तीके समान दुष्ट पुरुष, अपने मुखको स्वतन्त्र मानकर

विकलः, कामीव गोत्रस्खलनविधुरो वामाध्वानुरक्तश्च। जीर्णरोग इव कलेवरे वचसि मन्दिमानमावहति। वञ्चक इव रक्तः, कटपले विभावरी-

वितरणं येन सः तथोक्तः। पक्षे—अधरीकृतमतिवर्षणादधस्तात्कृतं प्रच्यावितं प्रच्युतं वा दानं मदजलं येन यस्येति वा तथोक्तः। सुरभीति—सुरभीणां विपश्चितां यानेन आगमनेन सुरभीन् प्रति यानेन गमनेन वा विकलः शून्यः। बुधसंसर्गरहित इत्यर्थः। 'सुरभिर्ना विपश्चिति' इति हरिः। 'सुरभिया न विकलः' इति पदच्छेदः। सुरभिया देवभयेन न विकलो विह्वलो भीतो न। अकृत्यकृत्याचरणे देवा मां दण्डयिष्यन्तीति भयशून्य इति भावः।' इति दर्पणकारः। पक्षे—सुरभिं गां यानेन उपसर्पणेन तदनुधावनेन वा विकलः परिश्रान्तः। सुरभेर्यानेन प्राप्त्या विकलो विशेषेण दर्पितः। 'कलस्त्रिषु रवेऽव्यक्तमधुरे दर्पिते तु ना' इति वैजयन्ती' इति केचित्। गोत्रेति—गोत्रात् वंशात् वंशाचारादिति भावः, यत् स्खलनं प्रच्युतिः तत्परित्याग इत्यर्थः। तेन विधुरो हीनः सर्वेषां कष्टकर इत्यर्थः। पक्षे—गोत्रे नाम्नि यत्स्खलनं तस्य व्यत्यासेनोच्चारणम्, अन्यस्योच्चारणे कर्तव्येऽन्यस्य भाषणमित्यर्थः तेन विधुरो व्याकुलः। कामिनो हि भार्यादिसम्मुखे चेतसो वैक्लव्यात् हृदि स्थितप्रेयसीनामोच्चारणेन लज्जन्त एव। वामेति—वामे विपरीते लोकवर्जित इत्यर्थः। अध्वनि मार्गे आचारे अनुरक्तस्तत्परः। पक्षे—वामानां स्त्रीणाम् अध्वनि तत्प्रसादनपद्धतावित्यर्थः। अनुरक्तः, कामिनीपरिचर्यातत्पर इत्यर्थः। जीर्णेति—जीर्णः प्राचीनः, अधिकालव्यापी यो रोगः स इव। कले मधुरे वरे श्रेष्ठे वचसि अन्यदीयसुभाषिते मन्दिमानम् औदासीन्यं वहति धारयति। अन्यदीयसुभाषितमसूयया न प्रशंसतीत्यर्थः। यद्वा मन्दिमानं मूढतां वहति धत्ते। स्वयं तादृशं वचो वक्तुमसमर्थो भवतीत्यर्थः। पक्षे—'कलेवरे' इत्येकं पदम्। कलेवरे शरीरे वचसि भाषणे च मन्दिमानं कृशतां वहति धारयति उत्पादयतीत्यर्थः। वञ्चकेति—वञ्चको जम्बुकः श्वा वा 'श्वप्रतारकचौरेषु वञ्चकः परि-

अन्य जनोंकी मनमानी निन्दा करता एवं दानसे सर्वदा पृथक् ही रहता है—कभी दान नहीं देता। गौके पीछे दौड़नेसे परिश्रान्त (अथवा गौकी प्राप्तिसे विशेषरूपसे दृप्त) वृषभके समान विद्वज्जनोंके पास जानेसे सर्वथा शून्य होता है—वह कभी भी विद्वानोंकी सेवा नहीं करता। (अथवा) पापाचरण करनेमें देवताओंसे भी भयभीत नहीं होता। कामी पुरुष (कामावेशके कारण) कुछका कुछ नाम उच्चारण करनेसे व्याकुल एवं रमणियोंके मार्गमें अनुरक्त रहता है, दुर्जन पुरुष भी अपने वंशोचित आचार-व्यवहारसे पृथक् हो प्रतिकूल-अनुचित-मार्गमें अनुरक्त रहता है। जिस प्रकार पुराना रोगी शरीरमें दुर्बल एवं और वचनमें (बोलनेमें) अक्षम हो जाता है इसी प्रकार दुर्जन पुरुष दूसरेके उत्कृष्ट एवं मधुर सुभाषितके विषयमें असूयाके कारण उदासीन हो जाता है असूयावश उसकी प्रशंसा नहीं करता। जिस तरह जम्बुक शव-मांसका प्रेमी होता है तथा रात्रिको पसन्द

रक्तश्च। परेत इव बन्धुतापदर्शनः। परशुरिव भद्रश्रियमपि खण्डयति। कुदाल इव दलितगोत्रः क्षमाभाजः प्राणिनश्च निकृन्तति। रतिकील इव

कीर्तितः।' इति शाश्वतः। कटेति—कटपले उत्कोचे रक्तः। 'उत्कोचोऽस्त्री कटपलम्' इति वैजयन्ती। पक्षे—कटपले शवमांसे रक्तः। 'शवे श्रोणौ किलिञ्जे च गजगण्डे भृशे कटः' इति शाश्वतः। 'पलोऽस्त्री पललं मांसम्' इति भागुरिः। विभेति—विभावर्यां विवादे, कुट्टन्यां कुटिलयोषिति वा रक्तः सस्नेहः। 'विभावरी निशाराम्योः, कुट्टन्यां वक्रयोषिति। विवादे वस्त्रकुट्यां च' इति मेदिनी। यद्वा—विभौ प्रभौ स्वामिनि अरिः सन्नपि धनलोभादिना रक्त इव रक्तः। अन्तर्द्विषन्नपि बहिरनुरागप्रदर्शक इति भावः। स्वामिद्रोही रक्तो विषयैकसक्त इति वा। विभा बुद्धिः। तस्या अवरीः अवक्षेपणम्। अवपूर्वात् 'री—गतिक्षेपणयोरिति'धातोः भावे क्विप्। तत्रानुरक्तः। परबुद्धेराक्षेपक इत्यर्थः इति केचित्। पक्षे—विभावर्यां रात्रौ रक्तः। 'अरी रक्त' इति पदच्छेदे 'रोरी'ति लोपे 'ढ्लोपे०' इति दीर्घः। परेत इति परेतो मृतः। बन्धुतापेति—तापयतीति तापं ताप-करमित्यर्थः। ण्यन्तात्कर्तरि अच्। बन्धूनां तापं कष्टप्रदं दर्शनं यस्य सः तथोक्तः। बन्धूनां तापं कष्टं पश्यतीति बन्धुतापदर्शन इति वा, तेषां क्लेशं दृष्ट्वापि तत्प्रती-कारपराङ्मुख इत्यर्थः। पक्षे—अपगतं दर्शनं यस्य सः अपदर्शनः। बन्धूनां समूहो बन्धुता। बन्धुशब्दात् समूहार्थे 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्' इति तल्। बन्धुताया बन्धु-समूहस्य अपदर्शन इति तथोक्तः। बन्धुभिरदृश्यमान इत्यर्थः। भद्रेति—भद्राणां साधूनां श्रियं सम्पदं खण्डयति विनाशयति। भद्रं कल्याणं, श्रियं लक्ष्मीं वा। भद्रश्रियं मङ्गलसमृद्धिं वा। पक्षे—भद्रश्रियं चन्दनवृक्षम्। 'सश्रीके चन्दनेऽपि स्यात् भद्रश्रीः साधुसम्पदि' इति धरणिः। कुदालः—'कुदाल' इति लोकप्रसिद्धो भूदारणो-पकरणविशेषः। दलितेति—दलितं विनाशितं स्वाचारेणाप्रतिष्ठां नीतं वा गोत्रं स्ववंशो येन सः। पक्षे—दलिता खाता गोत्रा भूमिर्येन स तथोक्तः। क्षमेति—क्षमाभाजः शान्तियुतान् प्राणिनो मनुष्यान् निकृन्तति क्लिश्नातीत्यर्थः। पक्षे—क्षमाभाजः भूमि-स्थान् कीटादीन् छिनत्ति। 'क्षमाभाजः प्राणिनो वृक्षादीन्। वृक्षादीनां प्राणित्वं 'भक्षेरहिंसार्थस्य ने'ति वार्तिके आकरे स्पष्टम्, इति दर्पणकारः। रतिकीलः—श्वा। 'मण्डलः कुक्कुरश्चासौ रतिकीलमृगद्विषौ' इत्यजयः। अत्र 'रतकील' इत्यपि शब्दः

करता है; दुर्जन पुरुष भी इसी तरह रिश्वत लेनेमें उत्सुक तथा विवादप्रिय होता है। (अथवा स्वामिद्रोही एवं विषय-लम्पट होता है।) कुटुम्बीजनोंसे अदृश्यमान मृतपुरुषके समान खलजन बन्धुजनोंको भी पीडा पहुंचाते हैं। कुठार चन्दन वृक्षको भी काट देता है—उसे चन्दन तथा अन्य वृक्षोंमें कोई भेद प्रतीत नहीं होता; इसी तरह दुर्जनजन भी सत्पुरुषोंकी लक्ष्मी-ऐश्वर्य-का नाश करडालते हैं। जिस प्रकार कुदाल पृथ्वीको खोदकर पृथ्वी-स्थित कीटादि प्राणियोंको काटदेता है; दुर्जनजन भी ठीक इसी तरह अपने कुलका

जघन्यकर्मलग्नो ह्रेपयति साधून्। दुष्टशूर्पश्रुतिरिव काननरुचिरनुगतमपि यवसं सततं नानुमोदते। अबीजादेव जायन्ते, अकाण्डादेव प्ररोहन्ति

साधुः 'कुक्कुरो रात्रिजागरः। रसनालिड् रतपराः कौलशायिभ्रणान्दुकाः' इति हैमः। रतपराः रतशब्दात्पराः कौलादयश्चत्वारः शब्दाः कुक्कुरवाचका इति तदर्थः। जघन्येति—जघन्ये नीचे कर्मणि लग्नः तत्परः। पक्षे—जघने भवं जघन्यं कर्म सुरतं तत्र लग्नः संसक्तः। ह्रेपयति—लज्जयति। 'जघन्यं क्ली तु सुरते नीचकर्मणि चान्यवत्' इत्यजयः। दुष्टेति-शूर्पवत् श्रुतिः श्रवणं यस्य स शूर्पश्रुतिर्गजः। 'शूर्पश्रुतिर्गजो दन्ती' इत्यजयः। दुष्टश्चासौ शूर्पश्रुतिर्दुष्टशूर्पश्रुतिः। काननेति—का ईषत् कुत्सिता वा लोकधिक्काराद्धीनेत्यर्थः। आननरुचिः मुखकान्तिर्यस्य स तथोक्तः। ईषदर्थस्य कुशब्दस्य 'ईषदर्थे' इति सूत्रेण,कादेशः। 'कः आत्मा तस्य अनने प्राणने रुचिः प्रीतिर्यस्य सः तथा। कुक्षिम्भर इत्यर्थः। इति केचित्। पक्षे—कानने वने रुचिः प्रीतिर्यस्य स तथा। अनुगतमपीति—अनुगतं पश्चात् गतं प्रातिलोम्येन पठितमित्यर्थः। सततं सेन सकारेण ततं व्याप्तं युक्तमित्यर्थः। अन्ते सकारस्य योजनेति भावः। यवसम् प्रतिलोमपठितः सकारयुक्तश्च यो यवसशब्दः सवयसमित्याकारको जातः तद्वाच्यं सुहृदमपीत्यर्थः। न अनुमोदते। 'दिवसेशयः खलुशयः' इत्यादौ वर्णानां प्रातिलोम्येन पठने 'यशः' इत्यादिसिद्धये अनुस्वारविसर्गादीनामादितः स्थितानामप्यन्त एव संयोजनमिति कविसम्प्रदायः। 'संतत' मिति पाठे तु 'सं' इत्यनुस्वारविशिष्टेन सकारेण ततमिति बोध्यम्। 'अनुगतिरन्ववसाने स्थाने प्रतिलोमतश्च संदिष्टा।' इति भागुरिः। पक्षे सततं सर्वदा अनुगतं सौकर्येण प्राप्तमपि यवसं तृणं नानुमोदते। 'यवसं तृणमर्जुनम्' इति भागुरिः। अयमर्थः साम्प्रदायिक इत्यभिनवभट्टबाणाः। अपरे-तु इं काममवस्यति स्वसौन्दर्येण निराकरोतीति यवसः कामादप्यधिकसुन्दर इत्यर्थः। अनुगतोऽनुकूलस्तादृशमपि जनं नानुमोदते। ईर्ष्यावशान्न प्रशंसतीत्यर्थः। अस्मिन्व्याख्याने 'सन्ततमि'ति पाठे समन्तात् ख्यातमित्यर्थः। गजपक्षे-अनुगतमभिमतं समीचीनमपीत्यर्थः। सततं ततेन वीणादिवाद्येन सहितम्। यवसं घासं नानुमोदते दौष्ट्यात् भक्षयतीत्यर्थो वा।'संततमिति' पाठे सम्यक् विकीर्णमित्यर्थः। महागजानां समीपे भोजनादिकाले तदुत्साहवर्धनाय मृदङ्गादिकं वाद्यत इत्याचारः। दर्पणकारस्तु खलपक्षे-'अनुगतमपि यवसं दत्तं ततं वीणादिवाद्यं' च नानुमोदते 'यवसो दत्तघासयोः।' 'ततं वीणादिवाद्येऽपि विस्तारेऽपि ततं मतम्।' इत्युभयत्रापि

विनाशकर शान्ति-सम्पन्न साधुजनोंको पीडित करता है। सुरतमें प्रवृत्त कुत्तेके समान वह नीच कार्योंमें संलग्न हो सत्पुरुषोंको लज्जित करता है। जिस तरह दुष्टजन वनमें जानेकी अभिलाषासे सदा पासमें रक्खे हुए भी तृणादिको आँख उठाकर नहीं देखता—उसे खाता नहीं, इसी तरह अनेक पापाचरण करनेसे दुष्टजनकी मुखश्री फीकी पड़ जाती

खलव्यसनाङ्कुराः। दुरुच्छेदाश्च न भवन्ति। असतां हृदि प्रविष्टो दोषलवः करालायते। सतां तु हृदि न प्रविशत्येव। यदि कथमपि प्रविशति तदा पारद इव क्षणमपि न तिष्ठति। मृगा इव विनोदविन्दोर्वशगा न

विश्वः' इत्याह। अबीजादित्यादि—खलैर्दुर्जनैरुत्पादिता व्यसनानां दुःखानामङ्कुराः प्ररोहाः। अबीजादेव हेतुं विनैव बीजं विनैव च जायन्ते उत्पद्यन्ते। अकाण्डादेव अवसरं विनैवं, स्कन्धं विनैव च प्ररोहन्ति वर्धन्ते। प्रसिद्धास्त्वङ्कुरा बीजादेवोत्पद्यन्ते काण्डादेव च प्ररोहन्ति एते तु न तथेति ततो व्यतिरेकः। अतएव दुरुच्छेदा उन्मूलयितुमशक्या भवन्ति। अमूर्तत्वात्। इतराङ्कुरास्तु मूर्तत्वान्न दुरुच्छेदा भवन्ति। विभावनालङ्कारः, 'विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिस्तदुच्यते। उक्तानुक्तनिमित्तत्वात् द्विधा सा परिकीर्तिता' इति दर्पणोक्तेः।

असतामित्यादि—दोषलवः दोषलेशः। करालायते करालं भीषणमिवाचरति भयावहो भवतीत्यर्थः। करालायते बहुलीभवतीति वा। अन्येषामल्पोऽप्यपराधो दुर्जनदृष्टौ बहुलः प्रतिभासत इति भावः। मृगा इवेत्यादि—विनोदस्य कौतुकस्य बिन्दुर्लेशस्तस्य वशगा अधीनाः साधवो न भवन्ति। विनोदस्यालिङ्गनस्य तदाश्रयाङ्गनाविषयकरतेरित्यर्थः। विन्दुः प्रकृतिः स्वभावस्तस्येत्यर्थो वा। साधवः खलु पामरा इवाङ्गनालिङ्गनादिकामव्यापारे मनो न प्रवर्तयन्तीति भावः। पक्षे—वीनां पक्षिणां नोदः प्रेरणं विनोदः तत्र विन्दुः ज्ञाता विनोदविन्दुः पक्षिरमणपटुः तस्य विनोदविन्दोः। मृगा हरिणा वशगा न भवन्ति। पक्ष्याखेटशीलस्य मृगाखेटपरिज्ञानाभावेन यथा मृगास्तस्य वश्या न भवन्ति एवं साधवोऽपि विनोदलेशस्य वश्या न भवन्तीति तात्पर्यम्। यद्वा—यथा मृगा विनोदविन्दोर्व्याधस्य वश्या भवन्ति तथा साधवः विनोदविन्दोर्वश्या न भवन्तीति व्यतिरेकी दृष्टान्तः। 'विप्रुड् ज्ञाता च विन्दुः स्यात्' इति त्रिकाण्डशेषः। विन्दुरित्यत्र 'वेत्ति तच्छील'इत्यर्थे विद्धातोः 'विन्दुरिच्छुः' इति

है; वह सकारसे युक्त एवं प्रतिलोमपठित यवस-सवयसम्-मित्रका भी अभिनन्दन नहीं करता। यद्यपि साधारणतया लोकमें अङ्कुर बीजसे ही उत्पन्न होते तथा शाखाओं द्वारा ही बढ़ते देखे जाते हैं परन्तु इन दुर्जनोंसे उत्पादित दुःखरूपी अङ्कुर बिना कारण ही उत्पन्न होते एवं अवसर बिना ही बढ़ते देखे जाते हैं अतएव उनका नाशकरना भी बड़ा कठिन होता है। जहां दुर्जनोंके हृदयमें प्रविष्ट हुआ (अन्यजनोंका) थोड़ासा भी दोष बड़ा भयङ्कररूप धारण करलेता है वहां वह सत्पुरुषोंके हृदयमें प्रथम तो प्रविष्ट ही नहीं होता परन्तु यदि किसी प्रकार प्रविष्ट हो भी जाय तो वह पारेके समान क्षणभर भी वहां ठहरता नहीं—तुरन्त ही सज्जन पुरुष उसको भूल जाते हैं। जिस तरह मृग पक्षियोंका शिकार

भवन्ति साधवः। सुखं जना हि भवादृशाः शरत्समया इव हरन्ति मित्र-मण्डलस्य। न च सचेतना विसदृशमुपदिशन्ति। अचेतनानामपि मैत्री

सूत्रेण उप्रत्ययो मुमागमश्च निपात्यते। सुखमित्यादि—भवादृशा जना हि शरत्समया इव मित्रमण्डलस्य सुखं हरन्तीत्यन्वयः। हि किन्तु भवादृशा भवद्विधाः जनाः कामासक्तचेतस्तया दूयमानाः, कुपथप्रवृत्ता वा इत्यर्थः। मित्रमण्डलस्य सुहृत्समूहस्य सुखं हर्षं हरन्ति नाशयन्ति। कुपथप्रवृत्तं विषण्णमनसं वा सुहृदं दृष्ट्वा मित्राणि खिद्यन्त एवेति भावः। यद्वा—भवादृशाः सतां धौरेया जनाः मित्रमण्डलस्य सुखं हरन्ति प्रापयन्ति। तथा च भवतोऽपि सुहृत्सुखकरत्वमेव युक्तमिति न साम्प्रतं मद्वचसि विमाननां कर्तुमर्हतीति भावः। भारं हरतीत्यादाविव प्रकृते हरतेः प्रापणार्थकत्वम्। पक्षे—शरत्समयाः मित्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलस्य सुखं हरन्ति जनयन्ति। तदा मेघाद्युपद्रवाभावेन सूर्यस्य तेजस्वितया तावता तत्सुखकरत्वं शरत्समयानामिति बोध्यम्। सुखं शोभनमाकाशं हरन्ति प्रापयन्तीत्यर्थो वा। मेघाद्युपद्रवं निरस्य शरत्समयाः सूर्यमण्डलस्य निराबाधमध्वानं प्रयच्छन्तीति भावः। यद्वा—'सुखञ्जनाः' इति पदच्छेदः। शोभनाः खञ्जनाः खञ्जरीटपक्षिणो यस्यां सा सुखञ्जना शरत् मित्रमण्डलस्य सूर्यस्य समं दीप्तिसहितं यथा स्यात्तथा यान्तीति समयाः किरणास्तान् मित्रमण्डलस्य हरन्ति हरतीति एकवचनव्यत्यासः। प्रापयतीत्यर्थः। यद्वा सुखञ्जनाः सखञ्जरीटाः शरत्समयाः मित्रमण्डलस्य हरन्ति। 'भजे शम्भोश्चरणयोरि'त्यादाविव कर्मणः शेषत्वविवक्षया षष्ठी। हरन्तीत्यस्य च स्वीकुर्वन्तीत्यर्थः। अनन्तरातीते वर्षाकाले मेघैराच्छादितस्य सूर्यस्य शरत्काले प्रकाशमानत्वात् तत्स्वीकरणमेतेषामिति बोध्यम्। दर्पणकारस्तु 'साधवो मृगा इव विनोदविन्दोः श्रवणवशगाः सुखं जनाः शरत्समया इव भवादृशा मित्रस्य हृदयं हरन्ति।' इति पाठमभ्युपेत्य 'साधवो मृगा इव विनोदविन्दोः मृगरमणपटोः पुंसः श्रवणेनाकर्णनेन वशगा भवन्ति। वीणा श्रूयते मृदङ्गः श्रूयत इत्यादौ तद्ध्वनिवत् पुंसः श्रवणेन तद्गीतश्रवणं लक्ष्यते। पक्षे-विनोदविन्दोः ज्ञातुः। 'आख्यातोपयोग' इति पञ्चमी। श्रवणेन समुपदेशश्रवणेन वशगास्तदधीनास्तादृशाः' इत्याह। ननु त्वया नोचितमुपदिष्टमतस्त्वदीयं वाक्यं न शृणोमीत्याशङ्क्य तथा नेत्याह—न चेति—सचेतना ज्ञानवन्तः, मित्र-

---

करनेमें प्रवीण (परन्तु मृगोंके आखेटमें अनभिज्ञ) शिकारीके वशमें नहीं आते इसी तरह सज्जन पुरुष, अल्पमात्र भी कौतुकके अधीन नहीं होते। जिस तरह शरत्काल (मेघादि उपद्रवोंका नाशकर) सूर्यमण्डलको सुख पहुंचाता है (अथवा खञ्जरीट पक्षियोंसे सुशोभित शरत्काल सूर्यमण्डलको ग्रहण करता है) इसी तरह आप जैसे पुरुष सुहृद्वर्गको आनन्द पहुंचाते हैं। ज्ञानी-विवेकी-पुरुष कभी भी अपने मित्रमण्डलको उलटा उपदेश नहीं करते। न केवल चेतन-प्राणी-ही मैत्रीका अनुरोध करते हैं अपितु अचेतन-जड़-वर्ग भी

समुचितपक्षे निक्षिप्ता। तथाहि—माधुर्यशैत्यशुचित्वसन्तापशान्तिभिः पय इति शब्दसाम्याच्च मित्रतामुपगतस्य तत्संगमादभिवर्धितस्य क्षीरस्य क्वाथे पुरतो ममैव क्षयो युक्त इति विचिन्त्येव वारिणा क्षीयते। तदिदमसाम्प्रतमाचरितम्। सखे! गृहाण साधुजनोचितमध्वानम्। साधवो हि दिङ्मोहादुत्पथप्रवृत्ता अपि पुनर्गृहीतसत्पथा भवन्ति।' इत्यादि वदति तस्मिन्मकरन्दे प्रियसखे, कथमपि स्मरशरप्रहारपरवशः कन्दर्पकेतुः परिमिताक्षरमुवाच—

हितमाकाङ्क्षमाणा इत्यर्थः। विसदृशमननुरूपम्, अयोग्यमित्यर्थः। नोपदिशन्ति, मित्रमण्डलस्येति पूर्ववाक्यस्थं सम्बध्यते। 'न केवलं सचेतनैरेव मैत्री पाल्यतेऽपि तु अचेतनैरपि' इत्याह—अचेतनानामपीत्यादि—अचेतनानां जडानामपि मैत्री स्नेहः समुचितपक्षे योग्यकोटौ निक्षिप्ता तदा का कथा सचेतनानामिति भावः। तदुपपादयति—तथा हीत्यादिना—शुचित्वं निर्मलत्वम्। पयो दुग्धं जले च माधुर्यादिगुणसाम्यात् नामसादृश्याच्च। तत्सङ्गमात् दुग्धसंसर्गात्। अभिवर्धितस्य बहुमूल्यतामापन्नस्य। एतच्च 'ममैव' इत्यनेनान्वेति। क्वाथे पाके। पुरतः पूर्वम्। क्षयो नाशः। क्षीयते नश्यते। 'क्षि—क्षये' इत्यस्माद्भावे लट्। अत्र मीलितालङ्कारः, 'समेतलक्ष्मणा वापि वस्तुना यन्निगूह्यते। निजेनागन्तुना वापि तन्मीलितमिति स्मृतम्।' इति लक्षणात्। तत् तस्मात्, तत् इति आचरितविशेषणं वा। असाम्प्रतमनुचितम्। अध्वानं व्यवहारम्। युक्तं च तव स्खालित्यान्निवर्तनमित्याह—साधवो हीति—दिङ्मोहात् गन्तव्यदिशोऽज्ञानात् कर्तव्यकार्याविवेकाच्च। उत्पथे विमार्गेऽसद्व्यवहारे च गन्तुं प्रवृत्ता अपि पुनः गृहीतः प्रतिपन्नः सत्पथः गन्तव्यमार्गः सदाचारश्च यैस्ते तथोक्ता भवन्ति। कथमपि महता प्रयासेन। स्मरेति—स्मरस्य कामस्य शराणां बाणानां प्रहारैः समाकुलो व्याकुलः। परिमितेति—परिमितानि स्वल्पानि अक्षराणि यस्मिन् क्रिया विशेषणमेतत्। संक्षेपेणेत्यर्थः।

मैत्रीका पालन करता है। जैसे मधुरता, शीतलता, निर्मलता और तापनिवारण आदि गुणों तथा 'पय' इस नामसादृश्यसे मैत्रीभावको प्राप्त हुए और मेरे (जलके) संसर्गसे बढ़े हुए दूधका नाश (जलनेसे) उपस्थित होनेपर प्रथम मेरा ही विनाश समुचित है, मानो यही सोचकर जल जलजाता है। तुम्हारा यह आचरण समुचित नहीं है। सज्जनोचित मार्गका अवलम्बन करो। क्योंकि सज्जन पुरुष कर्तव्यकार्यके अविवेकके कारण कभी कुमार्गमें प्रवृत्त होकर भी फिर (विवेक होनेपर) सन्मार्गका अवलम्बन कर लेते हैं। प्रियमित्र मकरन्दके इस प्रकार कहनेपर कन्दर्पकेतुने कामबाणकी व्यथासे उत्पन्न असमर्थताके कारण बड़े कष्टसे थोड़ेसे शब्दोंमें कहा—

वयस्य ! दितिरिव शतमन्युसमाकुला भवत्यस्मादृशजनचित्तवृत्तिः। नायमुपदेशकालः। पच्यन्त इव मेऽङ्गानि। कृथ्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि। निस्सरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृतिः। अधुना तदलमनया कथया। यदि त्वं सहपांसुक्रीडासमदुःखसुखोऽसि तन्मया सममागम्यतामित्युक्त्वा परिजनालक्षित एव तेन सह पुरान्निर्जगाम।

ततोऽनेकनल्वशतमध्वानं गत्वा तेनागस्त्यवचनसंहृतब्रह्माण्डखण्डगतशिखरसहस्रः, कन्दरान्तराललतागृहसुप्तप्रबुद्धविद्याधरमिथुनगीताकर्ण-

वयस्येति—वयस्य सखे! वयसा तुल्यो वयस्यः। 'नौवयोधर्म—' इत्यादिना यत्। शतेति—शतं शतसंख्यका ये मन्यवः शोकाः तैः समाकुला व्याकुला। पक्षे—शतं मन्यवो यज्ञाः यस्य स शतमन्युरिन्द्रः तेन समाकुला। 'मन्युः पुमान् क्रुधि। दैन्ये शोके च यज्ञे च' इति मेदिनी। 'पुरा इन्द्रः स्वविमातरं दितिं कपटेन सेवमानः कदाचिद् दुःस्वापायास्तस्या उदरं प्रविश्य गर्भं सप्तधा विभज्य पुनः सप्तधा विभक्तं प्रतिव्यक्ति सप्तधा बभञ्ज। त एवोनपञ्चाशद्वाता बभूवुरि'ति कथात्राऽनुसन्धेया। पच्यन्त इवे त—अङ्गानि हस्तपादादीनि, पच्यन्ते स्वयमेव पक्वा भवन्ति, विशीर्यन्त इत्यर्थः। कर्मकर्तरि लकारः। क्वथ्यन्ते स्वयमेव तपन्ति। मर्माणि जीवस्थानानि भिद्यन्ते स्वयमेव भेदं प्राप्नुवन्ति विदीर्यन्त इत्यर्थः। विवेकाः कर्तव्याकर्तव्यबुद्धयः, उन्मूल्यन्ते समूलमुत्पाट्यन्ते, विनाश्यन्त इत्यर्थः। अलक्षितः अज्ञातः।

तत इति—ततस्ताभ्यां विन्ध्यो नाम गिरिरदृश्यतेति सम्बन्धः। अनेकेति—अनेकनल्वशतं अनेकहस्तचतुःशतानि परिमाणं यस्य तं तादृशम् 'प्रमाणे द्वयसच्'-इत्यादिना विहितस्य मात्रच्प्रत्ययस्य 'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमि'ति लुक्। 'नल्वः किष्कुचतुःशतम्।' 'किष्कुर्हस्ते वितस्तौ च' इत्यमरः। इतः परं विन्ध्यपर्वतं वर्णयति अगस्त्येत्यादिना—अगस्त्यवचनेन संहृतं सङ्कोचितं ब्रह्माण्डखण्डगतमाकाशमध्यवर्ति शिखरसहस्रं शृङ्गसहस्रं येन सः। 'पुरा मेरुस्पर्धया वर्धमानेन विन्ध्यगिरिणा सूर्यमार्गे

'मित्र! हमारे जैसे (कामपीडित) पुरुषोंकी मनोवृत्ति इन्द्र-संयुक्त दितिके समान अनेक प्रकारके शोकोंसे व्याप्त रहती है। यह उपदेशका अवसर नहीं है' मेरे अंग भस्मसे हो रहे हैं, इन्द्रियाँ खौलसी रही हैं, मर्मस्थल फटसे रहे हैं, प्राण निकलसे रहे हैं, कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान समूल नष्ट हो रहा है, स्मरणशक्ति लुप्त हो गई है, इसलिये अब इस चर्चाको छोड़ो। यदि तुम बाल्यकालसे मेरे सुख-दुःखोंके साथी रहे हो तो मेरे साथ आओ यह कहकर परिजनोंकी आँख बचाकर उसके साथ ही नगरसे चल पड़ा।

अनन्तर अनेक नल्वपरिमित (नल्व=४०० हाथ) मार्ग पार करके उन्हें विन्ध्याचल

नसुखितचमरीगणमारणोत्सुकशबरकुलसम्बाधकच्छतटः, कटकतटगतकरिकराकृष्टभग्नहरिचन्दनस्यन्दमानरसामोदहरगन्धवाहशिशिरितशिलातलः, सुदूरपतनभग्नतालफलरसार्द्रकरतलास्वादनोत्सुकशाखामृगकदम्बकः, प्रलम्बमाननिर्झरोपान्तोपविष्टजीवंजीवकमिथुनलेलिह्यमानविविध-

---

स्थगिते सर्वदेवैः प्रार्थितस्यागस्त्यमहर्षेर्वचसा विन्ध्यः स्वशिखराणि सङ्कोचितवानि'ति पौराणिकी कथाऽत्राऽनुसन्धेया। कन्दरेति—कन्दराणां दरीणामन्तराले मध्यप्रदेशे लतागृहेषु निकुञ्जेषु सुप्तप्रबुद्धानां सुप्त्वा जागरितानां विद्याधरमिथुनानां देवयोनिविशेषद्वन्द्वानां (स्त्रीपुरुषयुग्मानां) गीतस्य गानस्य आकर्णनेन श्रवणेन सुखितस्य आनन्दनिमग्नस्य असावधानस्येत्यर्थः, चमरीगणस्य मृगविशेषसमूहस्य मारणे हनने उत्सुकेन उत्कण्ठितेन शबरकुलेन पुलिन्दनिकरेण सम्बाधः संकटः व्याप्त इत्यर्थः, कच्छतटो जलप्रायप्रदेशो यस्य सः, तथोक्तः। 'दरी तु कन्दरो वाऽस्त्री'। 'स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वम्'। 'जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः' इत्यमरः। 'संबाधः संकटे भगे' इति विश्वः। कटकेति—कटकस्य अद्रिनितम्बस्य तटगतानां तीरस्थितानां करिणां गजानां करैः शुण्डाभिः आकृष्टानामत एव भग्नानां त्रुटितानाम्, आकृष्टेन आकर्षणेन भग्नानां वा, भावे क्तः, हरिचन्दनानां चन्दनविशेषाणां स्यन्दमानस्य स्रवतः रसस्य निर्यासस्य आमोदहरेण गन्धवाहिना गन्धवाहेन मरुता शिशिरितं शीतलीकृतं शिलातलं यत्र सः तथोक्तः। 'कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः'। 'आमोदः सोऽतिनिर्हारी' इत्यमरः। सुदूरेति—सुदूरात् अत्युच्चप्रदेशात् पतनेन भग्नानां विदलितानां तालफलानां तृणराजफलानां रसेन द्रवेण आर्द्रयोः करतलयोः आस्वादने लेहने उत्सुकमासक्तं शाखामृगकदम्बकं वानरसमूहो यत्र सः, तथोक्तः। 'शाखामृगवलीमुखाः। मर्कटो वानरः कीशः।' 'स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्युभयत्राप्यमरः। प्रलम्बमानेति—प्रलम्बमानानां गिरेः प्रस्रवतां निर्झराणां वारिप्रवाहाणामुपान्तेषु समीपतटेषु उपविष्टानां स्थितानां जीवञ्जीवकानां चकोराणां मिथुनैः द्वन्द्वैः लेलिह्यमानानां भृशं पुनः पुनर्वा आस्वाद्यमानानां विविधफलानां नानाफलानां रसस्य

दृष्टिगोचर हुआ। जिस (विन्ध्याचल) ने अगस्त्यऋषिके कहनेसे आकाशमें फैले हुए अपने हजारों शिखरोंको संकुचित कर लिया था, जिसका जलप्राय प्रदेश, पर्वतकन्दराओंके भीतर बने हुए लतागृहोंमें सोकर उठे हुए विद्याधर-मिथुनोंके गीतोंके सुननेसे आरामसे आनन्दित चमरी-मृगोंका शिकार करनेके लिये उत्सुक व्याध-गणसे व्याप्त हो रहा था, जिसके शिलातल, पर्वत-मध्यभागके तटोंपर स्थित हाथियोंके शुण्डाओंसे खींचकर तोड़े हुए अतएव टपकते हुए हरिचन्दनके रस-गन्धयुक्त पवनसे शीतल हो रहे थे। जिसपर बहुत ऊँचेसे गिरनेके कारण भग्नप्राय तालफलों के रससे सने हुए अपने हाथोंको चाटनेमें संलग्न वानरसमूह दिखाई पड़ रहे थे, जिसके प्रान्तप्रदेश बहते हुए झरनोंके किनारोंपर

फलरसामोदसुरभितपरिसरः, सरभसकेसरिसहस्रखरनखरधाराविदारितमत्तमातङ्गकुम्भस्थलविगलितस्थूलमुक्ताफलशबलशिखरतया शिखरावलग्नं तारागणमिवोद्वहन्, सुग्रीव इव ऋक्षगवयशरभकेसरिकुमुद-

---

आमोदेन सुगन्धेन सुरभितः सुगन्धितः परिसरः प्रान्तप्रदेशो यस्य स तथोक्तः। लेलिह्यमानेति यङ्लुगन्तात् कर्मणि शानच्। 'उत्सः प्रस्रवणं वारिप्रवाहो निर्झरो झरः।' 'जीवञ्जीवश्चकोरकः।' 'पर्यन्तभूः परिसरः' इति त्रिष्वप्यमरः। सरभसेति—सरभसं सवेगं यथा स्यात्तथा, सरभसमिति विदारणक्रियाविशेषणम्। केसरिसहस्रेण अनेकैः सिंहैः, कर्तरि तृतीया, खराभिः तीक्ष्णाभिः नखराणां कररुहाणां धाराभिः अग्रभागैः, करणे तृतीया, केसरिसहस्रस्य खरनखरधाराभिरिति वा, विदारितेभ्यः पाटितेभ्यः मत्तमातङ्गानां मदस्राविगजानां कुम्भस्थलेभ्यः कपोलप्रदेशेभ्यः विगलितैः प्रच्युतैः अधःपतितैः मुक्ताफलैः गजमौक्तिकैः शबलानि विचित्रवर्णानि शिखराणि यस्य सः तथोक्तः, तस्य भावः तया। 'रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः। 'हर्यक्षः केसरी हरिः।' इत्यमरः। 'धारोत्कर्षे खड्गाद्यग्रे सैन्याग्रे वाजिनां गतौ।' इति हैमः। अत्रोत्प्रेक्षते—शिखरेति—शिखरेषु अवलग्नं संसक्तं तारागणं नक्षत्रसमूहमिव उद्वहन् धारयन्। 'नक्षत्रे नेत्रमध्ये च तारा स्यात्तार इत्यपि।' इति व्याडिः। पुनः श्लेषेणाह—ऋक्षेति—ऋक्षैः भल्लूकैः गवयैः गोसदृशैर्मृगविशेषैः शरभैः हस्तिशत्रुभिः अष्टापदैः मृगभेदैः (एतेषां पुराणेषु वर्णनमुपलभ्यते न तु क्वचिद् दृश्यन्ते) केसरिभिः सिंहैः कुमुदैः कैरवैः, दिग्गजेन वा, पनसैः 'कटहर' इति लोकख्यातवृक्षैश्च सेव्यमाना आश्रीयमाणा पादानां प्रत्यन्तपर्वतानां छायाऽनातपः कान्तिर्वा यस्य स तथोक्तः। पक्षे ऋक्षो जाम्बवान् गवयादयः तत्तत्संज्ञका वानरास्तैः सेव्यमाना पादच्छाया चरणकान्तिर्यस्य स तथोक्तः। 'ऋक्षाच्छभल्लभल्लूकाः।' 'पादाः प्रत्यन्तपर्वताः।' इत्यमरः। 'गवयः स्याद्वनगवो गोसदृशोऽश्ववारणः।' 'शरभः कुञ्जरारातिरुत्पादकोऽष्टपादपि' इत्युभयत्रापि हैमः। 'कुमुदं कैरवे रक्तपद्मे स्त्री कुम्भिकोषधौ। गम्भार्यां पुंसि दिङ्नागे नागशाखामृगान्तरे।' इति मेदिनी। 'गजो गवाक्षो गवयः शरभो

स्थित जीवञ्जीवक नामक पक्षियोंके जोड़ोंसे खाये जाते हुए अनेक फलोंके रस-गन्धसे सुगन्धित हो रहे थे। उसके शिखर अनेक सिंहोंके तीक्ष्ण नखोंकी धाराओं (अग्रभाग) द्वारा शीघ्रतासे विदीर्ण मस्त हाथियोंके गण्डस्थलसे गिरे हुए मोटे-मोटे मुक्ताफलोंसे चित्रित हो रहे थे अतएव वह पर्वत ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उसने अपने शिखरपर नक्षत्रमण्डलको धारण किया हुआ हो। उसके आसपासके पर्वतोंकी छायामें भालू, नीलगाय, शरभनामक मृग तथा सिंह विश्राम कररहे थे तथा कुमुद एवं कटहर वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे उस समय वह जाम्बवान् आदि वानरोंसे सुशोभित (वानराधिपति)

पनससेव्यमानपादच्छायः, पशुपतिरिव नागनिश्वाससमुत्क्षिप्तभूतिः, जनार्दन इव विचित्रवनमालः, सहस्रकिरण इव सप्तपत्रस्यन्दनोपेतः, विरूपाक्ष इव सन्निहितगुहः शिवानुगतश्च, कामीव कान्तारोषरसानुगतः

गन्धमादनः' इत्यादि रामायणे द्रष्टव्यम्। पशुपतिः-- महादेवः। नागेति—नागानां गजानां सर्पाणां वा निश्वासेन श्वासमारुतेन समुत्क्षिप्ता इतस्ततो विकीर्णा विस्तारिता वा भूतिः गैरिकादिरजः सम्पत्तिर्वा यस्य स तथोक्तः। पक्षे—नागानामलङ्काररूपेण धृतानां सर्पाणां निश्वासेन समुत्क्षिप्ता परितो विकीर्णा भूतिर्भस्म यस्य सः तथोक्तः। 'नागो मतङ्गजे सर्पे।' इति हैमः। 'भूतिर्भस्मनि संपदि।' इत्यमरः। जनार्दन इति—जनान् दुष्टान् असुरान् वा अर्दयति पीडयतीति जनार्दनो विष्णुः। विचित्रेति—विचित्रा नानावर्णा वनमाला वनपङ्क्तिर्यस्य सः तथोक्तः। पक्षे—विचित्रा वनमाला वैजयन्त्यपरपर्याया विष्णुना धार्यमाणा माला यस्य सः। 'आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला। मध्ये स्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता।' 'पत्रपुष्पमयी माला वनमालेति कीर्तिता' इति केचित्। सहस्रकिरणः सूर्यः। सप्तपत्रेति—सप्तपत्रैः सप्तच्छदाख्यैः स्यन्दनैः तिनिशवृक्षैरुपेतः युक्तः। सप्तपत्राणां सप्तपर्णपुष्पाणां स्यन्दनेन रसक्षरणेन उपेत इति वा। पक्षे–सप्त सप्तसंख्याकानि पत्राणि वाहनानि यस्मिन् स सप्तपत्रः सप्ताश्वः, तादृशेन स्यन्दनेन रथेन उपेतः। 'पत्रं तु वाहने पर्णे पक्षे च शरपक्षिणोः' इति विश्वः। 'स्यन्दनस्तिनिशे रथे।' इति हैमः। विरूपाक्षः शिवः–सन्निहितेति—सन्निहिताः समीपस्थाः गुहाः कन्दरा यस्य सः। शिवाभिः जम्बुकाभिः धात्रीभिर्वा अनुगतो युक्तः। पक्षे–सन्निहितः समीपस्थितः गुहः कार्तिकेयस्तत्पुत्रो यस्य सः। शिवया पार्वत्याऽनुगतोऽनुसृतश्च। 'शिवा गौरी शिवा क्रोष्ट्री भवेदामलकी तथा।' इति शाश्वतः। 'गुहः स्कन्दे गुहा पुनः। गह्वरे सिंहपुच्छ्यां च।' इति हैमः। कान्तेति—कान्तारं दुर्गमवर्त्म ऊषरं क्षारमृत्तिकामयप्रदेशं सानु प्रस्थं वनं वा च गतः प्राप्तः। पक्षे–कान्ताया वल्लभायाः रोषे क्रोधे प्रणयकोप इत्यर्थः। रसेन अनुरागेण अनुगतः। प्रणयकुपितवल्लभाप्रसादनपर इत्यर्थः।

सुग्रीवके समान प्रतीत हो रहा था। वहां हाथियोंके निश्वाससे गेरु आदि धातुओंकी रज उड़ाई जा रही थी अतएव वह आभरणरूपसे धारण किये हुए सर्पोंके निश्वास-वायुसे जिसकी (शरीरपर मली हुई) भस्म उड़ाई जा रही हो ऐसे महादेवके समान सुशोभित हो रहा था। वह अपनी विचित्र वनपङ्क्ति-द्वारा वैजयन्ती-धारी विष्णुभगवान्का अनुकरण कररहा था। सप्तच्छद तथा तिनिश वृक्षोंसे सुशोभित वह सात अश्वोंसे जुते हुए रथमें स्थित सूर्यभगवान्का दर्शन करारहा था। वह अनेक गुफाओं एवं सियारोंसे युक्त होनेके कारण कार्तिकेय तथा पार्वतीसे अनुगत महादेव शिवसा प्रतीत होरहा था। दुर्गममार्ग, ऊसर

समदनश्च, श्रीपर्वत इव सन्निहितमल्लिकार्जुनः, नरवाहनदत्त इव प्रियङ्गुश्यामासनाथः, शिशुरिव कृतधात्रीधृतिः, वासरारम्भ इवारुणप्रभापा-

यद्वा–कान्तानां स्त्रीणां रोषरसाभ्यां स्नेहप्रीतिभ्यामनुगतः। 'कान्तारं वर्त्मदुर्गमम्।' 'स्यादूषः क्षारमृत्तिका। ऊषवानूषरो द्वावप्यन्यलिङ्गौ।' इत्यमरः। 'सानुः शृङ्गे बुधे मार्गे वात्यायां वल्लवे वने।' इति विश्वः। समदनेति—मदनेन धत्तूरेण कपित्थ-वृक्षेण वा सहितः। पक्षे–सकामः। 'कपित्थो मदनो ग्राही' इति वैजयन्ती। 'मदनः सिक्थके स्मरे। राढे वसन्ते धत्तूरे।' इति हैमः। श्रीपर्वतः—पर्वतविशेषः। सन्निहिता विद्यमाना मल्लिका मल्लीलता अर्जुनाः ककुभाख्या वृक्षा यत्र सः। पक्षे–सन्निहितः सम्यक् निहितः प्रतिष्ठापितः मल्लिकार्जुनः शिवलिङ्गविशेषो यत्र स तथोक्तः। नर-वाहनदत्तः उदयनपुत्रो विद्याधरचक्रवर्ती। प्रियङ्ग्विति—प्रियङ्गुः राजसर्षपः, फलि-नीलता वा, श्यामा सोमलता ताभ्यां सनाथः सहितः। पक्षे–प्रियङ्गुश्यामया तन्ना-मकभार्यया सनाथः। 'प्रियङ्गू राजसर्षपे पिप्पल्यां फलिनीकङ्ग्वोः' 'श्यामा सोम-लतानिशोः' इति हैमः। कृतेति—कृता धात्र्याः भूमेः धृतिः धारणं येन स तथोक्तः। पर्वतानां भूधरत्वात्। धात्र्या आमलक्या वा। पक्षे–कृता जनिता धात्र्या उपमातुः मातुर्वा धृतिः सन्तोषो येन सः तथोक्तः। यद्वा–कृता धात्र्याः धृतिः धात्रीकर्तृकं धारणं यस्य सः। कृता धात्र्या धृतिः अङ्गुल्यादिधारणं येन स इति वा। 'धात्री-जनन्यामलकी वसुमत्युपमातृषु।' इति मेदिनी। 'धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वर-तुष्टिषु' इति विश्वः। वासरेति—वासरस्य दिवसस्य आरम्भः प्रारम्भः प्रभातकाल इत्यर्थः। अरुणेति—अरुणया रक्तवर्णया गैरिकादिकान्त्या पाटलितानि रक्तीकृतानि पत्राणि पर्णानि यस्याः तादृशी वनराजिः वनपङ्क्तिर्यस्य सः तथोक्तः। पक्षे–अरुणस्य सूर्यस्य सूर्यसारथेर्वा प्रभया कान्त्या पाटलितानीत्यादिपूर्ववत्। यद्वा–अरुणप्रभया पाटलिता पत्राणां पर्णानां वनानां जलानां राजिः समूहो यस्मिन्निति तथोक्तः। 'राजीव' इति पाठे तु तादृशीं वनराजिं वाति गच्छतीति तथोक्तः 'वा गतिगन्धनयोः'

तथा शिखर-संयुक्त एवं कैथ अथवा धतूर-वृक्षोंसे अलंकृत वह कामिनियोंके कोप तथा प्रीतिसे समन्वित एवं मदनसन्तप्त कामीजनके समान दृष्टिगोचर हो रहा था। मल्लिका नामक लताओं तथा अर्जुन नामक तरुओंसे सुशोभित वह मल्लिकार्जुन नामसे प्रसिद्ध शिवलिङ्गसे अलंकृत श्रीपर्वतके समान विभूषित हो रहा था। फलिनी (खिरनी नामसे प्रसिद्ध वृक्षविशेष) तथा सोमलतासे व्याप्त वह 'प्रियङ्गुश्यामा' नामक राजमहिषीसे सुशो-भित 'नरवाहनदत्त' के समान भासित हो रहा था। पृथ्वीको धारण करनेवाला वह धाय द्वारा (गोदमें) लिये हुए बालकके समान प्रतीत-मालूम हो रहा था। जिस प्रकार प्रातः काल सूर्यकी रक्तप्रभासे पत्तों तथा जलकी पंक्तियाँ लाल हो जाती हैं, इसी तरह पर्वत-

टलितपत्रवनराजिः, कृष्णपक्ष इव बहुलतागहनः, कर्ण इवानुभूतशतकोटिदानः, भीष्म इव शिखण्डिमुक्तैरर्धचन्द्रैराचिततनुः, कामसूत्रविन्यास इव मल्लनागघटितकान्तारसामोदः, हिरण्यकशिपुरिव शम्बरकुलाश्रयः,

---

पक्षे—अरुणप्रभया सूर्यकान्त्या पाटलितानि पर्णसमूहा येषां तानि तादृशानि राजीवानि कमलानि यस्मिन्निति तथोक्तः। इति केचित्। अस्मिन्नपि पाठे अरुणप्रभया गैरिकादिरक्तकान्त्या पाटलितानि पत्रवनानि पर्णसमूहाः राजीवा हरिणविशेषाश्च यस्मिन् स तथोक्तः, इति गिरिपक्षेऽपि व्याख्येयमिति परे। 'अरुणोऽव्यक्तरागेऽर्के संध्यारागेऽर्कसारथौ। निःशब्दे कपिले कुष्ठे भव्ये वाच्यवदिष्यते।' इति विश्वः। वनं प्रस्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानने' इति हैमः। 'राजीवं नलिने। ना तु भेदे हरिणमीनयोः' इति मेदिनी। बहुलतेति—बह्वीभिः प्रभूताभिः लताभिः वल्लीभिः गहनः निबिडो दुर्गमो वा। पक्षे—बहुलतया कृष्णतया गहनः 'बहुलः कृष्णपक्षेऽग्नौ शितौ च बहुला गवि।' इति विश्वः। अनुभूतेति—अनुभूतं भुक्तं शतकोटिना वज्रेण दानं पक्षकर्तनं येन स तथोक्तः। यद्वा अनुभूतं कृतं शतकोटिभिः अनेकश्रेणिभिः दानमाकाशकीलनं येन सः। पक्षे—अनुभूतं कृतं शतकोटीनाम् अनेककोटिसंख्यापरिमितधनानां दानं वितरणं येन सः तथोक्तः। शिखण्डीति—शिखण्डिभिः मयूरैः मुक्तैः पातितैः, अर्धचन्द्रैः अर्धचन्द्राकृतिमेचकसहितैः पिच्छैः, आचिता व्याप्ता तनुः शरीरं यस्य सः तथोक्तः। पक्षे—शिखण्डिना एतन्नामकेन द्रुपदपुत्रेण मुक्तैः प्रक्षिप्तैः अर्धचन्द्रैः बाणविशेषैः आचिततनुः व्याप्तशरीरः। 'शिखण्डी मयूरे द्रुपदात्मजे' इति केशवः। 'अर्धचन्द्रस्तु गलहस्तेन्दुखण्डयोः। चन्द्रके बाणभेदे च' इति हैमः। 'अर्धचन्द्रस्तदाकारे बाणे बर्हे शिखण्डिनः' इत्युत्पलः। कामेति—कामसूत्रं कामशास्त्रं तस्य विन्यासो रचना। मल्लनागेति—मल्लैः बलवद्भिः नागैः गजैः घटितः संकुलः, अत एव कान्तारे दुर्गममार्गे वने वा सामोदः मदजलगन्धसहितः। घटितेति

पर गेरु आदि धातुओंकी लालिमासे वन-मालाके पत्र-समूह रक्तवर्ण हो रहे थे। कालिमासे व्याप्त कृष्णपक्षके समान वह अनेक लताओंसे व्याप्त हो रहा था। महादानी कर्ण, अनेक कोटि धन वितरणकर शोभा पाते थे, यह पर्वतभी उन्हींके समान वज्रसे खण्डित हो शोभा पा रहा था। जगह-जगह पर मयूरोंसे छोड़े हुए चन्द्राकार उनके पंख पड़े हुए थे उनके द्वारा वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो द्रुपदपुत्र शिखण्डीके अर्धचन्द्र नामक बाणोंसे आच्छन्न महामहिम भीष्म पड़े हुए हों, पर्वतके अनेक दुर्गम बनोंमें मदमत्त हाथी घूम रहे थे अतएव उनके मद-जलका गन्ध चारों ओर फैल रहा था; अपने इस गुणसे वह कामशास्त्रकी रचना (अथवा अधिकरण) का अनुकरण कर रहा था जिस (कामशास्त्र) में वात्स्यायन मुनिने, स्त्रियोंके अत्यन्त उत्कृष्ट शृङ्गार रसका सङ्कलन किया है। वहाँ अनेक शम्बर (जातिके) मृग

गैरिकव्याजादुपरिरविरथमार्गमार्गणार्थमिवारुणेनोपास्यमानः, शिखरगतसूर्याचन्द्रमस्तया विस्तारितलोचनोऽगस्त्यमार्गमुद्वीक्षमाणः, कुलिशक्षतरन्ध्रस्रस्तान्त्रजाल इव जरदजगरभोगैः, कुम्भकर्ण इव दन्तान्तरालगतै-

कान्तारविशेषणं वा यद्वा मल्लनागैः घटितायां कान्तारसायां जलान्तिकभूमौ आमोदो मदगन्धो यस्य स तथोक्तः। जलसौकर्याय हस्तिनां जलसमीपदेशनिवासः। अस्मिन् पक्षे 'कान्ता' इत्यत्र पुंवद्भावाभावः प्रियादित्वं परिकल्प्य समाधेयः। पक्षे—मल्लनागेन कामसूत्रप्रणेत्रा वात्स्यायनमुनिना घटितः संकलितः कान्तानां प्रमदानां रसस्य शृङ्गारस्य आमोदः परिमलः उत्कर्षो यस्मिन् सः। रसः प्रीतिः आमोदः सन्तोष इति वा। 'मल्लः पात्रे कपाले च मत्स्यभेदे बलीयसि।' इति मेदिनी। 'मल्लनागोऽभ्रमातङ्गे वात्स्यायनमुनावपि' इति विश्वः। शम्बरेति—शम्बराणां मृगविशेषाणां कुलस्य वंशस्य, शम्बरस्य जलस्य द्रव्यस्य वा कुलस्य समूहस्य आश्रयः। पक्षे शम्बरो नाम दैत्यविशेषः तस्य कुलं वंशः आश्रयो यस्य सः। तस्य कुलमाश्रयत इति वा। गैरिकेति—गिरौ भवं गैरिकं धातुविशेषः। तस्य व्याजात् मिषात्। उपरि स्वोपरिप्रदेशे रविरथस्य सूर्यरथस्य यो मार्गः पन्थाः तस्य मार्गणार्थं याचनाय अन्वेषणाय वा आगतेन अरुणेन सूर्यसारथिना उपास्यमानः आराध्यमानः। मेरुमत्सरेण विवृद्धेन विन्ध्येन तिरोहिते सूर्यरथमार्गे त्वं मार्गं देहीति याचितुमिव समागतोऽरुण इति भावः। 'मार्गणं याचनेऽन्वेषे मार्गणस्तु शरेऽर्थिनि।' इति हैमः। शिखरेति—सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेति सूर्याचन्द्रमसौ। 'देवताद्वन्द्वे चे'ति पूर्वपदस्यानङ् शिखरं मूर्धस्थानीयं गतौ सूर्याचन्द्रमसौ यस्य सः तस्य भावस्तेन। विस्तारितलोचनः विकासितनेत्रोऽगस्त्यमार्गम् उद्वीक्षमाणः पश्यन्निव स्थित इत्यर्थः। यावदहं परावर्त्स्यामि तावत्त्वया खर्वेणैव स्थीयतामित्युक्त्वा अगस्त्यो दक्षिणां दिशमगात्। स आयाति नवेति मार्गावलोकनम्। कुलिशेति—जरतां वृद्धानामजगराणां महासर्पाणां भोगैः शरीरैः कृत्वा कुलिशक्षतेन वज्रप्रहारेण जातं यत् रन्ध्रं विवरं तस्मात् स्रस्तानि

विचरते थे अतएव वह शम्बर-कुलोत्पन्न हिरण्यकशिपुके समान प्रतीत हो रहा था। उस पर्वतपर गैरिक (गेरु) के रूपमें अरुण भगवान् (सूर्य-सारथि) विराजमान हो रहे थे, मानों वे (पर्वतसे) सूर्यके रथके लिये मार्ग-याचना कर रहे थे। (पर्वतके ऊपर) सूर्य और चन्द्रमा भी सुशोभित हो रहे थे, मानों, इन्हींको नेत्र बनाकर, विन्ध्यपर्वत अगस्त्य मुनिके मार्गका दर्शन कर रहा था। स्थान-स्थानपर पुराने अजगरोंके शरीर पड़े हुए थे, वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों, वज्र-प्रहारसे पड़े हुए विवरोंमेंसे उसकी (पर्वतकी) अँतड़ियाँ बाहर निकल आई थीं। उसके शृङ्गोंपर वानर-वृन्द क्रीड़ा कर रहे थे उस समय वह दाढ़में वानरोंको दबाये हुए कुम्भकर्णके समान शोभा पा रहा था। वहाँ केतकी मण्डप

वानरव्यूहैः, पिण्डालक्तकरागपल्लवितपदपङ्क्तिसूचितसञ्चारशचीपतिपुरवारविलासिनीसङ्केतकेतकीमण्डपः, अकुलीनोऽपि सद्वंशभूषितः, दर्शिताभयोऽपि मृत्युफलदायी, सप्रस्थोऽप्यपरिमाणः, सनदोऽपि निश्शब्दः,

---

गलितानि अन्त्रजालानि पुरीततसमूहा यस्य स तथोक्तः। दन्तेति—दन्तानां सानूनामन्तरालं मध्यभागं गतैः प्राप्तैः। वानरव्यूहैः वानरयूथैः कुम्भकर्ण इव स्थितः। दन्तः कटकः सानुतिर्यग्विनिर्गतः शिलाविशेषो वा तद्गतैः। पक्षे—दन्तानां दशनानामन्तरालं गतैः प्रविष्टैः। 'दन्तो गिरिनितम्बे च दशने सानुनि स्मृतः।' इति विश्वः। दन्तकास्तु बहिस्तिर्यक्प्रदेशान्निःसृता गिरेः।' इति हैमः। 'कुम्भकर्ण इव दन्तान्तरालगतवानरव्यूहः' इति दर्पणधृतपाठः। पिण्डेति—पिण्डीभूतो योऽलक्तकः यावकः, पिण्डेतिविशेषणेन यावके लौहित्यातिशयः सूच्यते। तस्य रागेण रक्तिम्ना पल्लविताभिः शोभमानाभिः अङ्किताभिर्वा पदपङ्क्तिभिः चरणविन्यासलेखाभिः सूचितः प्रकटितः संचारो येषु तादृशा, इति मण्डपविशेषणम्, सूचितः संचारो यासां तासाम्, इति विलासिनीविशेषणं वा, शचीपतिपुरविलासिनीनां स्वर्वेश्यानामुर्वश्यादीनां सङ्केताः कामिजनसङ्केतस्थानभूताः केतकीमण्डपा यस्मिन् स तथोक्तः। इतो विरोधाभासेनाह—अकुलीन इत्यादिना—कुलस्य सद्वंशस्यापत्यं कुलीनः न कुलीनः अकुलीनः नीचवंशप्रसूत इत्यर्थः। तादृशोऽपि सता उत्तमेन वंशेन कुलेन भूषितः शोभित इति विरोधः। कौ पृथिव्यां लीनो मग्नः कुलीनः खर्वः, तादृशो न भवतीति अकुलीनो महोन्नतः, सद्भिः श्रेष्ठैः वंशैः वेणुभिः अलङ्कृत इति परिहारः। 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी।' इत्यमरः। दर्शितेति—दर्शितं प्रकाशितं दत्तमभयं येन स दर्शिताभयः तथोक्तोऽपि मृत्युफलं मरणरूपं फलं मृत्युजनकं फलं वा दातुं शीलं यस्य स इति विरोधः। दर्शिता अभया हरीतकी येन सः, मृत्युफलं कदलीफलं दातुं शीलं यस्य स इति परिहारः। 'अभया त्वन्यथा पथ्ये'त्यमरः। 'मृत्युफलं महाकाले कदल्यां मृत्युफल्यपि।' इति विश्वः। सप्रस्थः—इति—प्रस्थः परिमाणविशेषः तेन सहितोऽपि परिमाणरहित इति विरोधः। प्रस्थः सानुः, अपरिमाणः मानातीतः अत्युच्चः। 'प्रस्थः

शोभित हो रहे थे; जिनमें पिण्डाकार यावक रससे सुशोभित पदचिह्न बने हुए थे जिनसे प्रतीत होता था कि यहाँ उर्वशी आदि सुराङ्गनाएँ विचरती रही हैं और ये (मण्डप) उनके सङ्केत-स्थल थे। वह, उत्तम कुलमें उत्पन्न न होते हुए भी उत्तम वंशसे विभूषित था (विरोध) वस्तुतः, वह अत्यन्त ऊँचा और उत्तम जातिके वेणुओंसे विभूषित था। अभय दिखा कर भी मृत्युरूप फल दे रहा था; वस्तुतः, जगह-जगह हरीतकी तथा कदलीफल दृष्टिगोचर हो रहे थे। वह प्रस्थ (परिमाण विशेष) युक्त होते हुए भी परिमाणशून्य था, वस्तुतः शृङ्गोंसे सुशोभित और अत्यन्त विशाल था। ध्वनियुक्त होते हुए भी निःशब्द था

भीमोऽपि कीचकसुहृत्, पिहिताम्बरोऽपि विलसदंशुकः, विन्ध्यो नाम गिरिरदृश्यत ।

यश्च प्रवृद्धगुल्मतया रोगीव दृश्यमानबहुधातुविकारः, साधुरिव

सानौ मानभेदे' इति हैमः । सनद इति—नदेन शब्देन सहितः सशब्दोऽपि निःशब्दः शब्दरहितः इति विरोधः । नदैः प्रत्यक्स्रोतोभिः नदीभिः नर्मदादिभिः सहितः; क्वचिद्विजनतया शब्दरहितश्चेति विरोधपरिहारः । 'नदः समुद्रे निनदे सरिद्भेदे' इति रत्नमाला । 'प्रत्यक्स्रोता नदी नदः' इति केशवः । भीम इति—भीमः भीमसेनो युधिष्ठिरानुजः । कीचकस्य विराटश्यालस्य सुहृन्मित्रम् इति विरोधः । कीचकस्य भीमेनैव निहितत्वात्तच्छत्रुत्वस्यैवौचित्यात् । भीमो भयानकः, कीचकानां वेणुविशेषाणां सुहृत्, तेषां वर्धनादेरिति परिहारः । 'वेणवः कीचकाः स्युस्ते ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः ।' इत्यमरः । पिहितेति—पिहितमाच्छादितमम्बरमाकाशं येन सः । दिगम्बरो वस्त्रशून्य इत्यर्थः । एवंविधोऽपि विलसदंशुकः विलसत् शोभमानम् अंशुकं वस्त्रं यस्य स इति विरोधः, वस्त्रशून्यस्य वस्त्रेण शोभाविरुद्धत्वात् । पिहितमाच्छादितं व्योमेत्यर्थः, अम्बरमाकाशं येन स तथोक्तः । विलसन्तः स्फुरन्तः, विसर्पन्तो वा अंशव एव अंशुकाः किरणा यस्य सः तथोक्तः । स्वार्थे कः । इति परिहारः । 'अम्बरं व्योमवस्त्रयोः' इति हैमः । 'वस्त्रमाच्छादनं वासश्चेलं वसनमंशुकमि'त्यमरः । 'किरणोऽस्रमयूखांशु' इत्यमरः ।

य इति—यः विन्ध्यगिरिः । प्रवृद्धेति—प्रवृद्धाः वृद्धिं गता गुल्माः स्तम्बाः यत्र स तस्य भावस्तया, पक्षे—प्रवृद्धो गुल्मो रोगविशेषः, प्लीहा वा यस्य स तस्य भावस्तया । दृश्यमानेति—दृश्यमानाः बहूनां धातूनां गैरिकादीनां विकारा रजांसि यत्र स तादृशः । पक्षे—दृश्यमानः बहूनां धातूनां वातपित्तादीनां रसरक्तादीनां वा विकारः असात्म्यस्थितिर्यस्य सः तथोक्तः । 'धातुः स्यादश्मविकृतौ विषयेष्विन्द्रियेषु च । भूवादिरसरक्तादिश्लेष्मादिवसुधादिषु । वर्तते धातुशब्दोऽयं विशेषास्थनि गैरिके ।'

(वस्तुतः)शोण नामक नदसे अलंकृत और कहीं-कहीं विजन होनेसे निःशब्द हो रहा था । भीमसेन होते हुए भी कीचकका मित्र था (वस्तुतः) भयङ्कर तथा कीचक नामक वेणुओंका (उनको उत्पन्न करनेसे) परम मित्र था । वह, वस्त्रशून्य दिगम्बर होते हुए भी वस्त्रोंसे सुसज्जित था (वस्तुतः) उसने आकाशको आच्छादित कर रक्खा था तथा उसकी किरणें चारों ओर फैल रही थीं ।

विन्ध्य पर्वतके स्तम्बप्रदेश अत्यन्त उन्नत थे अतएव उसपर अनेक गेरु आदि धातुओंके रजःकण (इतस्ततः) फैल रहे थे उस समय वह गुल्म वात-पित्त आदि धातुओंके विकारसे युक्त रोगीके समान प्रतीत हो रहा था । उसकी ऊँचाई (आश्चर्यमें डाल रही थी) क्योंकि

सानुग्रहप्रचारप्रकटितमहिमा, मीमांसान्याय इव पिहितदिगम्बरदर्शनः, यश्च हरिवंशैरिव पुष्कराक्षप्रादुर्भावरमणीयैः, राशिभिरिव मीनमकरकुलीरमिथुनसंगतैः, करणैरिव शकुनिनागभद्रवालबकुलोपेतैः,

इति विश्वः। सानुग्रहेति—सानुषु शिखरेषु ग्रहाणां सूर्यादीनां प्रचारेण भ्रमणेन प्रकटितः प्रकाशितः महिमा औन्नत्यं यस्य येन वा सः तथोक्तः। पक्षे-सानुग्रहः सकृपः यः प्रचारः प्रकृष्ट आचारो व्यवहारः तेन प्रकटितः महिमा माहात्म्यं स्वोत्कर्षो येन सः तादृशः। मीमांसान्यायः—मीमांसाशास्त्रम् जैमिनीयं तन्त्रम्। पिहितेति—पिहितं छादितं दिशाम् अम्बरस्य आकाशस्य च दर्शनमवलोकनं येन सः तथोक्तः। विस्तारेणौन्नत्येन च दिशमाकाशं च व्याप्य स्थित इत्यर्थः। पक्षे-पिहितं निराकृतं दिगम्बराणां दिगम्बरजैनानां दर्शनं शास्त्रं मतं वा येन सः तादृशः। 'दिगम्बरस्तु शंकरे। अन्धकारे क्षपणके स्याद्वस्त्ररहितेऽपि च।' 'दर्शनं दर्पणे धर्मोपलब्ध्योर्बुद्धिशास्त्रयोः। स्वप्नलोचनयोश्चापि।' इति हैमः। यश्चेति—यो विन्ध्यगिरिः देवखातैः स्वाभाविकैः केनाऽप्यनिर्मितैर्जलाशयैः उपशोभितोऽलङ्कृतः उपान्तः समीपप्रदेशो यस्य तथोक्तो वर्तते इत्यन्वयः। हरिवंशैः—श्रीकृष्णकथाप्रधानैः महाभारतैकदेशैः। पुष्करेति—पुष्कराणि कमलानि अक्षाणि इन्द्रियाणीव तेषां प्रादुर्भावेनोत्पत्त्या रमणीयैः मनोहरैः। ये खलु कमलनेत्रैः विन्ध्यशोभां पश्यन्त इव प्रेक्षकाणां मनो हरन्तीति भावः। 'पुष्कराक्षाः पद्माक्षाः पद्मबीजानि। यद्वा-पुष्करं कमलं अक्षं सौवर्चलाख्यं मधुरलवणम्। यद्वा-पुष्करं जलम् अक्षाः सर्पाः बिभीतका वा' इति परे। पक्षे-पुष्कराक्षस्य पुण्डरीकाक्षस्य श्रीकृष्णस्य प्रादुर्भावेन अवतारेण तद्वर्णनेनेत्यर्थः। रमणीयैः। 'पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखेऽपि च। व्योम्नि खड्गफले पद्मे तीर्थौषधिविशेषयोः।' इत्यमरः। 'अक्षो ज्ञानात्मशकटव्यवहारेषु पाशके। रुद्राक्षेन्द्राक्षयोः सर्पे बिभीतकतरावपि। चक्रे कर्णे पुमान्क्लीबं तुत्थे सौवर्चलेन्द्रिये।' इति मेदिनी। मीनेति—मीनानां मत्स्यानां मकराणां नक्राणां कुलीराणां कर्कटानां मिथुनैः द्वन्द्वैः

उसके शृङ्गोंपर सूर्यादि ग्रह सञ्चार कर रहे थे, अतएव उसे दयापूर्ण व्यवहारसे महिमा प्रदर्शित करनेवाले सत्पुरुषकी उपमा दी जा सकती थी। उसने (अपने विस्तार एवं औन्नत्यसे) दिशाओं तथा आकाशको छिपा रक्खा था, इसी कारण वह मीमांसाशास्त्रके समान शोभा पा रहा था; जिसने कि दिगम्बर जैन सम्प्रदायके तर्कशास्त्रका भलीभांति खण्डन किया है। उसके आसपास स्वतः निर्मित जलाशय अपनी शोभा बढ़ा रहे थे। जो कमलबीजोंके प्रादुर्भावसे मनोहर थे जिनमें मत्स्य, मकर, केकड़ोंके जोड़े विहार कर रहे थे तथा जिनके आसपास पक्षी, सर्प, नागरमोथा और बाल-वकुल सुशोभित थे। इसलिये वे, भगवान् कृष्णके अवतार-वर्णनसे रमणीक महाभारतान्तर्गत हरिवंश नामक कथाभाग, मीन आदि राशिविशेषोंसे युक्त राशियों एवं शकुनि आदि विशेष २ करणोंसे

देवखातैरुपशोभितान्तः । यश्च छन्दोविचितिरिव कुसुमविचित्राभिः, वंशपत्रपतिताभिः, पुष्पिताग्राभिः, प्रहर्षिणीभिः शिखरिणीभिर्लताभिर्दर्शितानेकवृत्तविलासः । यश्च समदकलहंससारसरसितोद्भ्रान्तभाकूट-

---

संगतैः सहितैः । पक्षे-मीनादिसंज्ञकै राशिविशेषैः सङ्गतैः । करणैरिति—करणं नाम तिथ्यर्धपरिमितो बवाद्येका दशसंज्ञकः कालविशेषः । शकुनीति— शकुनिभिः पक्षिभिः, नागैः गजैः सर्पैश्च, भद्रेण मुस्तया, बालेन ह्रीबेरेण, बकुलेन केशरवृक्षेण, बालबकुलेन लघुकेसरेण उपेतैः युक्तैः । पक्षे-शकुनिः नागं भद्रं बालव इति करणविशेषास्तेषां कुलेन समूहेन उपेतैः । यश्च एतादृशीभिः लताभिः छन्दोविचितिरिव दर्शितानेकवृत्तविलासः इत्यन्वयः । छन्दोविचितिः-छन्दसामुक्थादीनां वैदिकच्छन्दसां विचितिः विस्तारो यत्रेति छन्दोविचितिः छन्दःप्रतिपादको ग्रन्थविशेषः । कुसुमेति-कुसुमैः पुष्पैः विचित्राभिः शोभमानाभिः, वंशेति— वंशपत्रेषु वेणुपर्णेषु पतिताभिः प्ररूढाभिः । सुकुमारेति—सुकुमाराः कोमलाः ललिता मनोरमास्ताभिः । पुष्पितेति—पुष्पितानि संजातपुष्पाणि अग्राणि यासां ताः ताभिः । प्रहर्षिणीभिः—प्रहर्षयन्ति प्रकर्षेण आनन्दयन्ति पश्यतां चेत इति प्रहर्षिण्यस्ताभिः । शिखरिणीभिरिति—शिखरमग्रं यासां ताः शिखरिण्यस्ताभिः । अत्र प्राशस्त्ये इनिः । प्राशस्त्यं च अभग्नत्वं, तेन अभग्नाग्राभिरित्यर्थः । पक्षे-कुसुमविचित्रेत्यादीनि तत्तद्वृत्तनामानि । तेषां लक्षणानि यथा—नयसहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा'। 'दिङ्मुनि वंशपत्रपतिता (तं) भरनमनलगैः ।' 'कुमारललिता जसौग् ।' 'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।' 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ।' रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी । दर्शितः प्रकटितः अनेकवृत्तः नानाविधः विलासो येन सः तथोक्तः । पक्षे वृत्तानि छन्दांसि। यश्चेति—यो विन्ध्यः एतादृश्या रेवया नर्मदया नद्या उपगूढः । रेवां वर्णयति—समदेत्यादिना । समदानां हर्षाविष्टानां कलहंसानां राजहंसानां सारसानां पुष्कराख्यानां पक्षिणां रसितेन शब्देन उद्भ्रान्तानां भाकूटानां

युक्त करणोंके समान अलंकृत था । वह पर्वत, अपनी लताओं द्वारा अनेक प्रकारका विलास प्रकटित कर रहा था; वे लताएँ (विविध) फूलोंसे विचित्र थीं । वेणुदलोंपर फैली हुई थीं, वे कोमल और मनोहर थीं, दर्शकोंका मन लुभाती थीं और उनके अग्रभाग साबूत थे—टूटे न थे अतएव उस काल वह कुसुमविचित्रा आदि वृत्तों द्वारा अनेक छन्दोंका विलास प्रकट करनेवाले 'छन्दोविचिति' नामक ग्रन्थका अनुकरण कर रहा था ।

उस पर्वतके चारों-ओर सिप्रा नदी बह रही थी । उस नदी-तटपर मदोन्मत्त कलहंस तथा सारस शब्द कररहे थे, उनके शब्दसे चकित मछलियोंके विशाल मुखरोमोंके स्पर्शसे

विकटकुञ्जकूर्चव्याधूतकमलषण्डगलितमकरन्दबिन्दुसन्दोहसुरभितसलिलया, सायन्तनसमयमज्जत्पुलिन्दराजसुन्दरीनिम्ननाभिमण्डलपीतप्रतिहतरयसलिलया, मदमुखरराजहंसकुलकोलाहलमुखरितकूलपुलिनया, तटनिकटस्थितमत्तमातङ्गगण्डस्थलविगलन्मदधाराविन्दुप्रकरस्तबकितसलिलया,

---

मत्स्यविशेषाणां विकटेन विशालेन कुञ्जकूर्चेण हनुप्रदेशस्थश्मश्रुसमूहेन व्याधूतेभ्यः कम्पितेभ्यः कमलषण्डेभ्यः पद्मसमूहेभ्यः गलितैः पतितैः स्रवद्भिः मकरन्दबिन्दूनां पुष्परसविप्रुषां सन्दोहेन समूहेन सुरभितं सुगन्धितं सलिलं जलं यस्याः तया तथोक्तया। 'भाकूटविकटपुच्छच्छटाव्याधूत-' इति दर्पणधृतपाठः। 'कादम्बः कलहंसः स्यात्।' 'पुष्कराह्वस्तु सारसः।' इत्यमरः। 'भाकूटः कथ्यते मीनभेदे शैलान्तरेऽपि च।' 'विकटः सुन्दरे प्रोक्तो विशालविकरालयोः।' इति विश्वः। 'कुञ्जोऽस्त्रियां निकुञ्जेऽपि हनौ दन्ते च दन्तिनाम्।' इति मेदिनी। 'कूर्चो विकत्थने। श्मश्रुणि दम्भे भ्रूमध्ये।' इति हैमः। सायन्तनेति—सायं भवः सायन्तनः। 'सायं चिरम्' इत्यादिना ट्युप्रत्ययः तुडागमश्च। 'सायं समय' इति पाठान्तरम्। सायन्तनसमये सायंकाले मज्जन्तीनामवगाहन्तीनां पुलिन्दराजस्य शबराधिपतेः सुन्दरीणां कान्तानां निम्नेन गभीरेण नाभिमण्डलेन पीतमत एव प्रतिहतः प्रतिबद्धः रयो वेगो यस्य तादृशं सलिलं यस्याः तया तथोक्तया। 'सायन्तनमज्जनपुलिन्दसुन्दरीनाभिमण्डलनिपीतसलिलये'ति पाठान्तरम्। मदेति—मदेन हर्षातिशयेन तारुण्यजनिताहङ्कारेण वा मुखराणां वाचालानां शब्दायमानानामित्यर्थः। राजहंसानां कलहंसविशेषाणां कुलस्य समूहस्य कोलाहलेन कलकलेन मुखरितं सशब्दं कूलपुलिनं तटसिकतामयप्रदेशो यस्याः सा तथोक्तया। 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः।' 'तोयोत्थितं तु तत्पुलिनम्।' इत्यमरः। तटेति—तटस्य निकटे समीपे स्थितानां मत्तमातङ्गानां मदस्राविगजानां गण्डस्थलेभ्यः कपोलप्रदेशेभ्यः विगलन्त्याः स्रवन्त्या मदधाराया दानवारिलेखाया विन्दुप्रकरेण बिन्दुसमूहेन स्तबकितं सञ्जातस्तबकं 'तदस्य संजातम्' इति इतच्। सलिलं यस्यास्तथाभूतया। 'गण्डः कटो मदो दानम्' इत्यमरः। अत्र

हिलते हुए कमलवनोंसे नीचे गिरे हुए मकरन्द-विन्दुओंसे उस नदीका जल सुगन्धित हो रहा था। सायंकालके समय शबरसुन्दरियां उसमें स्नान करने आया करती थीं, उनकी गहरी नाभिमें भर जानेके कारण नदी-जलका वेग कुण्ठित हो जाता था। मन्दोन्मत्त राजहंसोंके शब्दसे उसका तट सर्वदा कोलाहलमय रहता था। नदी तटपर (जलपानके लिये प्रायः) स्थित मत्त हाथियोंके गण्डस्थलसे टकपते हुए मद जलके बिन्दुमण्डलसे उसका जल नाना-वर्ण हो शोभित होता था। नदी-तटवर्ति उपवनोंमें किनारेपर स्थित केतकी-

तीरप्ररूढकेतकीकाननपतितधूलीनिकुरम्बसंजातसितसैकतसुखोपविष्टतरुणसुरमिथुननिधुवनलीलापरिमलसाक्षिकूलोपवनया, तटावटविघटिताम्भोजषण्डमण्डपावस्थितजलदेवतावगाह्यमानपयसा, तीरप्ररूढवेतसलताभ्यन्तरलीनदात्यूहव्यूहमदकलकुहकेलीकुहकुहारावकौतुकाकृष्टसुरमिथुनसंस्तूयमानकूलोपवनोपभोगया, उपकूलसंजातनलीनकुञ्जपुञ्जितकुला-

'तटिनीतट……' इति पाठान्तरम् । तीरेति—तीरे तटप्रदेशे प्ररूढं समुत्पन्नं यत् केतकीकाननं केतकीवनं तस्मात् पतितायाः धूल्याः परागस्य निकुरम्बेण समूहेन संजाते समुत्थिते सिते शुभ्रे, केतकीरजसः शुभ्रत्वात्सैकतस्य सितत्वं बोध्यम् । सैकते वालुकामयप्रदेशे सुखोपविष्टानां तरुणसुरमिथुनानां युवदेवद्वन्द्वानां निधुवनलीलायाः सुरतक्रीडायाः परिमलस्य विमर्दस्य साक्षि साक्षाद्द्रष्टृ कूलोपवनं तीरारामो यस्याः सा तथोक्तया। उपवनस्य परिमलसाक्षित्वदर्शनेन सर्वथा जनराहित्यं ध्वन्यते । परागसमूहेन सैकतवर्णनेन परागभूयस्त्वं व्यज्यते। अत्र सैकतशब्दप्रयोगस्तत्सदृशे औपचारिकः। 'मैथुनं निधुवनं रतम्।' 'आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्।' इत्यमरः । तटेति—तटावटस्थं तीरगर्तस्थितं विघटितं प्रस्फुटितं यत् अम्भोजषण्डं कमलवनं तदेव मण्डपः तत्रावस्थिताभिः जलदेवताभिः अवगाह्यमानं स्नानाय प्रविश्यमानं पयो यस्याः सा तथोक्तया । 'तटाटवीनिकटनिपतितजम्बूखण्डमण्डप' इति पाठान्तरम् । 'तटेऽटवी वनं तस्याः निकटे निपतितानि जम्बूखण्डानि तेषां मण्डपेषु…' इति तदर्थः । तीरेति—तीरप्ररूढानां तटप्रदेशे समुत्पन्नानां वेतसलतानां वानीरवीरुधाम् अभ्यन्तरेऽन्तःप्रदेशे निलीनस्य गुप्तस्थितस्य दात्यूहव्यूहस्य कालकण्ठकाख्यपक्षिविशेषसमूहस्य मदकले तारुण्यमदेन अव्यक्तमधुरे केलीकुहकुहारावे सुरतजनितकुहकुहेत्याकारकरणिते कौतुकेन कौतूहलेन आकृष्टं दत्तावधानं यत् सुरमिथुनं तेन संस्तूयमानः प्रशस्यमानः कूलोपवनस्य कूलस्थितोपवनस्य उपभोगः उपयोगो यस्याः सा तथोक्तया । 'संस्तूयमानः परिचीयमानः आरभ्यमाण इत्यर्थः, उपभोगः सुरतानुभवो यस्याः' इत्यभिनवभट्टबाणाः । 'व्यूहो निर्माणतर्कयोः । समूहे बलविन्यासे ।' इति हैमः । उपकूलेति—कूलस्य समीपमुप-

वनसे गिरे हुए पुष्प-परागके कारण उसका सैकतप्रदेश श्वेत हुआ रहता था जिसपर आरामके साथ बैठकर युवक-देवताओंके जोड़े सुरत-क्रीड़ा किया करते थे। तट-स्थित गर्तोंमें खिले हुए कमलवनरूपी मण्डपमें बैठी हुई जलदेवियाँ, उसके जलमें (स्नानके लिये) प्रवेश किया करती थीं। तीरवर्ति वेतस-लताओंके अन्दर छिपे हुए कृष्णकाक रति-समय उत्तम हो कुहकुह शब्द किया करते थे उनके उस शब्दसे आकृष्ट हो सुरमिथुन उसकी उस सुरत-क्रीडा की प्रशंसा किया करते थे। किनारे पर समुत्पन्न नल-कुञ्जों में सङ्घशः बने हुए

यकुक्कुटघटाघटितघूत्कारभैरवतीरया, आतपसेवासमुत्सुकजलमानुषीमृदितसुकुमारतरपुलिनया, उपवनपवनान्दोलिततरलतरतरङ्गया, नलिनीनिकुञ्जपुञ्जनिविष्टदुष्टबकोटककुटुम्बिनीनिरीक्ष्यमाणवृद्धशफरया पोताधानलुब्धकोयष्टिकस्तम्भनभीमवेतसवनलतया, तरङ्गमालासन्तरदुद्दण्डबाल-

कूलम्। सामीप्येऽव्ययीभावः। तत्र सञ्जातेषु उत्पन्नेषु नलनिकुञ्जेषु नडाख्यतृणविशेषलतागृहेषु पुञ्जितेषु सङ्घशो निर्मितेषु कुलायेषु नीडेषु विद्यमानानां कुक्कुटानां घटया समूहेन घटितेन कृतेन घूत्कारेण 'घूघू' इत्याकारकशब्देन भैरवं भयानकं तीरं तटप्रदेशो यस्याः सा तथोक्तया। 'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे'। 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्।' 'घटा घटनगोष्ठीभघटनासु च दृश्यते।' इति विश्वः। 'भैरवो भीषणे रुद्रे रागभेदे।' इति हैमः। आतपेति—आतपसेवायां घर्मसेवने समुत्सुकाभिः उत्कण्ठिताभिः जलमानुषीभिः वनमानुषवत्प्राणिविशेषैः मृदितम् अतएव सुकुमारतरमतिशयेन कोमलं पुलिनं यस्याः सा तादृशया। उपवनेति—उपवनस्य पवनेन मरुता आन्दोलिताः कम्पिताः अतएव तरलतरा अतिशयेन चञ्चलाः तरङ्गा वीचयो यस्याः सा तथोक्तया। नलिनीति—नलिनीनां पद्मिनीनां निकुञ्जपुञ्जेषु लतागृहसमूहेषु निविष्टाभिः स्थिताभिः दुष्टाभिः बकोटककुटुम्बिनीभिः बकस्त्रीभिः निरीक्ष्यमाणा भक्षयितुमवलोक्यमाना वृद्धा जरन्तः इतस्ततो गन्तुमसमर्था इति भावः। शफरा मत्स्यविशेषा यस्यां, तादृश्या। 'बको बकोटकश्चाथ बलाका तु बकी स्मृता।' इति हारावली। 'अर्धशफरया' इति पाठान्तरम्। पोतेति—पोताधाने क्षुद्राण्डमत्स्यसङ्घाते, अल्पमत्स्यसमूहे वा लुब्धा भक्षणलालसा ये कोयष्टिका दीर्घगलाः पक्षिविशेषाः तेषां स्तम्भनेन निश्चलावस्थानेन भीमा भयङ्कर्यो वेतसवनलता वानीरकाननलता यस्यां यस्या वा सा तादृश्या। 'क्षुद्राण्डमत्स्यसङ्घातः पोताधानम्।' 'कोयष्टिको दीर्घगलः' इति वैजयन्ती। 'कोयष्टिकस्कभन' इति पाठान्तरम्। कोयष्टिकानां स्कभनेन शब्देन। धातूनामनेकार्थत्वात्स्कभिः शब्दार्थः। तरङ्गेति—तरङ्गमालासु वीचिश्रेणिषु सन्तरतां प्लवमानानाम् उद्दण्डवालानां मत्स्यविशेषाणां दर्शनेन धावतां सवेगं गच्छतामत एव

घोंसलों में कुक्कुट घूघू शब्द किया करते थे उससे उसका तीर बड़ा भीषण प्रतीत होता था। उसके सुकोमल पुलिनपर, धूप-सेवनके लिये उत्कण्ठित जल-मानुषियाँ बैठती थीं। उपवन-वायुसे कम्पित होनेके कारण उसकी लहरें अत्यन्त चञ्चल हो रही थीं। नदी पर कमलिनियोंके कुञ्जोंमें बैठी हुई दुष्ट बक-स्त्रियाँ वृद्ध मछलियोंको देखा करती थीं। नदीतटवर्ती वेतसवनमें (जगह-जगह) छोटे-छोटे मत्स्योंको पकड़नेकी इच्छासे कोयष्टि-नामक पक्षी ध्यानावस्थितसे बैठे हुए थे, अतएव वह बन बड़ा भीषण प्रतीत हो रहा था। कहीं कहीं तटवर्ति जलमें, लहरोंमें तरते हुए उद्दण्डवाल नामक मत्स्योंको देखकर दौड़ती हुई

दर्शनधावदतिचपलराजिलराजिराजितोपकूलसलिलया, खञ्जरीटमिथुननिधुवनदर्शनोपजातनिधिग्रहणकौतुककिरातशतखन्यमानस्थपुटिततीरया, क्रुद्धयेव दर्शितमुखभङ्गया, मत्तयेव स्खलद्गत्या, दिनारम्भलक्ष्म्येव वर्धमानवेलया, भारतसमरभूम्येव नृत्यत्कबन्धया, प्रावृषेव विजृम्भमाणशत-

---

अतिचपलानां राजिलानां सर्पविशेषाणां राजिभिः पङ्क्तिभिः राजितं शोभितम् उपकूलसलिलं तीरस्थजलं यस्याः सा, तयोक्तया। 'निर्विषो द्विमुखः सर्पो राजिलः।' इति सुधा। 'उद्दण्डवालो विपुलो दीर्घदेहो झषो मतः।' इति वैजयन्ती। खञ्जरीटेति—खञ्जरीटानां खञ्जनाख्यपक्षिविशेषाणां निधुवनदर्शनेन मैथुनावलोकनेन उपजातं निधिग्रहणस्य द्रव्यादानस्य कौतुकमभिलाषो येषां तादृशैः किरातशतैः शबरगणैः खन्यमानम् अवदार्यमाणं स्थपुटितं विषमोन्नतीकृतं तीरं कूलं यस्याः सा तथोक्तया, 'स्थपुटं विषमोन्नतम्।' इति हैमः। खञ्जना यत्र रतं कुर्वन्ति तत्र निधानं भवतीति लोकप्रवादः। तथा च—'अङ्गारखण्डं किल भूमिभागे तस्मिन् भवेद्यत्र करोति विष्ठाम्। यत्रावनौ खञ्जनको विधत्ते रतं भवेत्तत्र महानिधानम्।' इत्युच्यते। दर्शितेति—दर्शितः मुखे उद्गमस्थाने भङ्गः कुटिलगमनं यया सा तथोक्तया, भङ्गाः तरङ्गाः, मुखं समुद्रसङ्गमप्रदेशो वा। पक्षे-मुखभङ्गः कोपचिह्नस्वरूपो मुखविकारः। 'भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा।' इत्यमरः। मत्तया—मद्यपानजनितमदाकुलया। स्खलदिति—स्खलन्ती यत्र तत्र पाषाणेषु प्रतिरुद्धा गतिः प्रवाहो यस्याः सा तादृश्या। पक्षे-स्खलद्गतिः मुहुर्मुहुः निपतन्ती। दिनेति—दिनारम्भः प्रभातसमयः तस्य लक्ष्म्या श्रियेव। वर्धमानेति—वर्धमाना विस्तारं गच्छन्ती वेला कूलं यस्याः सा तथोक्तया। यथा यथा नद्य उद्गमस्थानादग्रे गच्छन्ति तथा तथा तासां विस्तरो वर्धत एव। पक्षे-वेला समयः। 'वेला काले च सीमायामब्धेः कूलविकारयोः। अक्लिष्टमरणे रोग ईश्वरस्य च भोजने।' इति मेदिनी। नृत्यदिति—नृत्यत् नृत्यं कुर्वदिव प्रवहत् कबन्धो जलं यस्यां सा तादृश्या। पक्षे-कबन्धः अपमूर्धकलेवरम्। 'कबन्धः सलिले रुद्रे कबन्धो राक्षसान्तरे।' इति विश्वः। 'कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्।' इत्यमरः। प्रावृट् वर्षाकालः। विजृम्भेति—विजृम्भमाणैः विकसद्भिः शतपत्रैः कमलैः पिहितस्य आच्छादितस्य विषस्य जलस्य धरया, तादृशं जलं धारयन्त्येत्यर्थः। पक्षे-विजृम्भमाणैः शतपत्रैः कमलैः पिहिताः छन्नाः

राजिल नामक सर्पोंकी श्रेणियाँ सुशोभित हो रही थीं। कहीं पर, खञ्जरीट नामक पक्षीकी रति-क्रीडा देखकर निधि प्राप्त करनेकी आशासे अनेक किरातोंने नदी-तट खोद दिया था अतएव वह ऊँचा-नीचा हो शोभित हो रहा था। मुख पर क्रोधका भाव प्रदर्शित करनेवाली क्रुद्ध (स्त्री) के समान, जिसका उद्गमस्थान तथा लहरें दिखाई पड़ रही थीं। लड़खड़ाती हुई मद-मत्त स्त्रीके समान जिसकी गति (जहां-तहां शिलाओं पर) कुण्ठित

पत्रपिहितविषधरया, धनकामयेव कृतभूभृत्सेवया, रेवया प्रियतमयेव प्रसारिततरङ्गहस्तयोपगूढः ।

यश्च—हरिखरनखरविदारितकुम्भस्थलविकलवारणध्वानैः ।
अद्यापि कुम्भसम्भवमाह्वयतीवोच्चतालभुजः ॥

व्याप्ता इत्यर्थः । विषधरा जलाशया यस्यां सा । विजृम्भमाणैः हर्षातिशयात् विलसद्भिः, पिच्छादिना वर्धमानैर्वा शतपत्रैः मयूरैः पिहिता आच्छादिता आक्रान्ता इति यावत् विषधराः सर्पा यस्यां तया तथोक्तया । पिहिता मयूरकर्तृकभयादात्मनैव संरक्षिता विषधरा यस्यां तयेति वा । विजृम्भमाणैः उद्गच्छद्भिः शतपत्रैः दार्वाघाटैः पिहिताः विषधरा मेघा यस्यां तयेति वा । 'शतपत्रः शिखण्डिनि । दार्वाघाटे सारसे च कमले तु नपुंसकम् ।' इति । 'विषं क्ष्वेडे जलेऽपि च ।' इति च विश्वः । धनकामेति—धने द्रव्ये कामः अभिलाषो यस्याः सा । कृतेति—कृता भूभृतां पर्वतानां सेवा निजतरङ्गैः तच्छैलचरणक्षालनरूपा यया सा तथोक्तया । पक्षे भूभृतो राजनः । 'भूभृत्स्यात्पर्वते राज्ञि ।' इत्यजयः । प्रसारितेति—प्रसारिताः आलिङ्गनार्थं प्रलम्बिताः तरङ्गा एव हस्ता यया तथोक्तया । उपगूढः आश्लिष्टः यश्च विन्ध्यः, इदमुत्तरपद्येनान्वेति ।

हरीति—हरीणां सिंहानां खरैस्तीक्ष्णैः नखरैः कररुहाग्रैः विदारितानि पाटितानि कुम्भस्थलानि येषान्ते अत एव विकला विह्वला ये वारणा गजास्तेषां ध्वानैः शब्दैः, विदारितैः कुम्भस्थलैर्विकला इति वा । उच्चः प्रलम्बः ताल एव भुजो यस्य स तथोक्तो यो विन्ध्यः सः अद्यापि इदानीमपि कुम्भसम्भवमगस्त्यम् आह्वयतीव आकारयतीवेत्युत्प्रेक्षा ' उच्चतालभुजैः' इति पाठान्तरम् । 'हर्यक्षः केसरी हरिः ।' 'कुञ्जरो वारणः करी ।' 'अगस्त्यः कुम्भसम्भवः ।' विन्ध्यं शासित्वा दक्षिणां दिशं प्रस्थितोऽगस्त्यो नाद्यापि प्रत्यावर्तत इति पुराणेषु दृश्यते ।

हो रही थी । (उत्तरोत्तर) दिनमान बढ़ानेवाली प्रातःकालीन लक्ष्मीके समान जिसका तट-प्रदेश बढ़ रहा था । जिसमें धड़ नाच रहे हैं ऐसी भारतीय युद्धकी भूमिके समान जिस नदीमें जल नाचसा रहा था । जिस प्रकार वर्षाकालमें दार्वाघाट नामक पक्षी निकलकर मेघोंको ढक लेता है उसी प्रकार खिले हुए कमलोंने नदी-जलको ढक लिया था । राजाओंकी सेवा करनेवाली धनाकाङ्क्षिणी स्त्रीके समान, वह पर्वतकी सेवा कर रही थी । इस प्रकारकी रेवा नदी उस पर्वतको प्रियतमाके समान अपनी तरङ्गरूपी भुजाओंसे आवेष्टित कर रही थी ।

जो पर्वत—आजभी, अपनी ऊँची तालरूपी भुजाएँ उठाकर, सिंहके तीक्ष्ण नखोंसे अपने गण्डस्थलोंके विदीर्ण होनेके कारण विह्वल हाथियोंके शब्दों द्वारा मानों अगस्त्यको बुला रहा है ।

तत्रान्तरे मकरन्दस्तमुवाच—

पश्योदञ्चदवाञ्चदञ्चितवपुःपूर्वार्धपश्चार्धभाक्,
स्तब्धोत्तानितपृष्ठनिष्ठितमनाग्भुग्नाग्रलाङ्गूलभृत्।
दंष्ट्राकोटिविशङ्कटास्यकुहरः कुर्वन् सटामुत्कटा-
मुत्कर्णः कुरुते क्रमं करिपतौ क्रूराकृतिः केसरी॥

अपि च—उत्कण्ठोऽयमकाण्डचण्डिमपटुः स्फारस्फुरत्केसरः,

पश्येति—उदञ्चन् उन्नमन् अवाञ्चन् अवनमन् अञ्चितः शोभमानश्च वपुषः शरीरस्य यः पूर्वार्धः देहपूर्वभागः पश्चार्धः शरीरापरभागः। अत्र पूर्वभागस्योन्नमनम् अपरभागस्य चावनमनमिति क्रमेण बोध्यम्। तं भजतीति तादृशः। अपरश्चासावर्धश्चेति पश्चार्धः। 'अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः' इति वार्तिकेन पश्चादेशः। स्तब्धं निश्चलम् उत्तानितमूर्ध्वीकृतं पृष्ठनिष्ठितं पृष्ठभागस्थितं मनाक् किञ्चित् भुग्नाग्रम् कुटिलाग्रभागं च लाङ्गूलं पुच्छं बिभर्तीति तादृशः। दंष्ट्राकोटिभिः दन्ताग्रभागैः विशङ्कटं भयावहम् आस्यकुहरं मुखरन्ध्रं यस्य सः। विशङ्कटशब्दस्य भयावहे कथासरित्सागरे प्रयोगः 'मांसासृग्मत्तवेतालताल-वाद्यविशङ्कटः। अभून्नृत्यत्कबन्धोऽसौ भूतप्रीत्यै रणोत्सवः।' इति। दंष्ट्राकोटिभिर्युतं विशङ्कटं विशालं च' इति वा। 'विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्।' 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डम्।' 'अथ कुहरं सुषिरं विवरं बिलम्।' इत्यमरः। उत् ऊर्ध्वस्थितौ कर्णौ यस्य सः। क्रूराकृतिः भीषणः केसरी सिंहः सटां केसरम् उत्कटामुत्क्षेपणेन भीषणां कुर्वन् करिपतौ हस्तिनाथे क्रमं पादविक्षेपम्, आक्रमणमित्यर्थः। कुरुते कर्तुं सन्नद्ध-इत्यर्थः। 'सटा जटाकेसरयोः' इति विश्वः। अत्र क्रामतः सिंहस्य यथावद्वर्णितत्वात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः। 'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः यथावद्वस्तुवर्णनम्। इति तल्लक्षणम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। 'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।' इति तल्लक्षणम्।

उत्कण्ठेति—उत् ऊर्ध्वं कण्ठो ग्रीवा यस्य तथोक्तः। उन्नमितकन्धर इत्यर्थः। न काण्डः

इसी अवसर पर मकरन्दने उससे कहा—

देखो, यह भयङ्कर सिंह गजपति पर आक्रमण कर रहा है। इसके शरीरका अग्रभाग उठा हुआ तथा पिछला भाग झुका हुआ है। पूँछ निश्चल और खड़ी हुई है, उसका (पूँछका) अगला भाग कुछ मुड़ा हुआ और पीठपर रक्खा हुआ है। इसका मुख दाँतोंकी नोकसे भयङ्कर और विशाल है। इसने अपने अयाल उठाये और कान खड़े किये हुए हैं।

और भी—

वेदनासे धीट् शब्द करते हुए पर्वत कन्दरामें हाथीके विशाल मस्तक पर स्थित इस

क्रूराकारकरालवक्त्रकुहरः स्तब्धोर्ध्वलाङ्गूलभृत् ,
चित्रे चापि न शक्यतेऽभि(वि)लिखितुं सर्वाङ्गसङ्कोचभाक् ,
फीट्कुर्वद्गिरिकुञ्जकुञ्जरबृहत्कुम्भस्थलस्थो हरिः ॥

अवसरो यस्य सः अकाण्डः अवसररहितः निर्निमित्तकः स्वाभाविक इति यावत् । यः चण्डिमा उग्रत्वं तेन पटुः परविदलने शक्तः । यद्वा—अकाण्डे अकुत्सिते प्रशस्त इत्यर्थः । चण्डिम्नि शौर्ये पटुः प्रवीणः । प्रशस्तशौर्यशालीत्यर्थः । 'काण्डः स्तम्बे तरुस्कन्धे बाणेऽवसरनीरयोः । कुत्सिते वृत्तभिन्नाडीवृन्दे रहसि न स्त्रियाम् ।' इति मेदिनी । 'पटुस्तीक्ष्णे स्फुटे दक्षे निष्ठुरे निर्दयेऽपि च ।' इति रुद्रः । चण्डिमेत्यत्र पृथ्वादित्वाद्भावे इमनिच् । स्फारं बहु यथा स्यात्तथा, स्फारा अधिका वा स्फुरन्तः दीप्यमानाः केसराः सटा यस्य स तादृशः । 'तुरङ्गसिंहयोः स्कन्धकेशेषु बकुलद्रुमे । पुंनागवृक्षे किञ्जल्के केसरः' इति हैमः । क्रूरः आकार आकृतिर्यस्य तादृशं भयानकं करालं विशालं वक्त्रकुहरं मुखविवरं यस्य स तथोक्तः । स्तब्धं निश्चलम् ऊर्ध्वम् उत्क्षिप्तं च लाङ्गूलं पुच्छं बिभर्तीति तथोक्तः । सर्वेषामङ्गानां हस्तपादादीनां सङ्कोचमाकुञ्चनं भजतीति तादृशः । फीट्कुर्वन् वेदनया फीट् इति शब्दं कुर्वन् यः गिरिकुञ्जे पर्वतगह्वरे स्थितो गजस्तस्य बृहति विशाले कुम्भस्थले गण्डप्रदेशे तिष्ठतीति तथोक्तः। एष हरिः सिंहः चित्रेऽपि आलेख्येऽपि विलिखितुं चित्रयितुं न शक्यते । अत्र 'उत्कर्णः' 'वक्त्रविकटः' 'चित्रेणापि' 'सर्वाङ्गसङ्कोचनात्' 'चीत्कुवद्' कुञ्जरशिरःकुम्भ' इति तत्र तत्र पाठान्तराणि । तत्र 'सर्वाङ्गसङ्कोचनात्' इति लेख्याभावे हेतुः । 'कुञ्जरशिरःकुम्भस्थले'ति पाठे शिरःपदमधिकमिति दर्पणकारः । 'गजशिरो गजपतिः, यद्वा—गजस्य यत् शिरः मस्तकः तस्य यत् कुम्भस्थलमेकदेशः इति व्याख्येयम् । करिकलभन्यायेन अत्र कुम्भपदस्य केवलैकदेशपरत्वम् । शिरः शिखरमिव स्थितं कुम्भस्थलम् इति वा । 'शिरः प्रधाने सेनाग्रे शिखरे मस्तकेऽपि च ।' इति मेदिनी । 'कुम्भौ घटेभमूर्द्धांशौ । 'इत्यमरः' इति अभिनवभट्टबाणाः । अत्र लिखतेरकुटादित्वात् 'विलिखितुम्' इति चिन्त्यम् । 'विलेखितुम्' इति तु न्याय्यम् । इत्यभिनवभट्टबाणाः । वयं तु कुटस्य आदिः कुटादिः, कुट आदिर्येषां ते कुटादयः, कुटादिश्च कुटादयश्चेत्येकशेषमाश्रित्य लिखधातोरपि कुटादित्वेन विलिखितुमिति युक्तमेवेत्युत्पश्यामः । अत्रापि आक्रमणं कुर्वतः सिंहस्य यथावद्वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः ।

सिंहका चित्रभी नहीं खींचा जासकता है । इसके अयाल उठे हुए हैं, यह अपनी स्वाभाविक उग्रतासे (शत्रुओंको नष्ट करनेमें) समर्थ है। इसके केसर (अयाल) अत्यधिक चमकीले हैं, मुख भयङ्कर और विशाल है, पूँछ निश्चल और उठी हुई है, इसके सबही अङ्ग सङ्कुचित हो रहे हैं—सिकुड़े हुए हैं ।

अनन्तरं नीचदेशनद्येव न्यग्रोधोपचितया, उत्तरगोग्रहणसमरभूम्येव विजृम्भमाणबृहन्नलया, कुरुदेशढक्कयेव घनसारसार्थवाहिन्या, विदग्धमधु-

अनन्तरमिति--अनन्तरमेतादृश्या विन्ध्याटव्या कतिपयपदमध्वानं गत्वा कस्य-चिजम्बूतरोरधश्छायायां विशश्रामेत्यन्वयः । विन्ध्याटवीमेव वर्णयति-नीचदेशे-त्यादिना—नीचदेशे निम्नभागे प्रवहन्ती या नदी तयेव । न्यग्रोधेति—न्यग्रोधैः वटपादपैरुपचिता व्याप्ता तया । पक्षे-न्यग्रोधेनाऽधः प्रदेशावरोधनेन उपचिता वृद्धा तया । 'न्यक् नीचमधोगतं यत् रोधः कूलं तेन अपचिता कृशा' इति केचित् । उत्तरेति—उत्तरेण विराटपुत्रेण गवां सुयोधनादपहृतानां ग्रहणं प्रत्यानयनं तस्य यः समरो युद्धं तस्य भूम्येव । विजृम्भमाणेति—विजृम्भमाणाः प्रवर्धमानाः बृहन्तो नलाः नडाख्यास्तृणविशेषा यस्यां सा तया तादृश्या । पक्षे—विजृम्भमाणः पराक्रमेण द्योतमानः बृहन्नडः एतदाख्योऽर्जुनो यस्यां सा तया । 'बृहन्नलो गुडाकेशे नडे कौशिकनन्दने ।' इति विश्वः । कुरुदेशेति— कुरुदेशे कुरुक्षेत्रे विद्यमाना ढक्का कर्पूरा-करभूता कुल्या । 'ढक्का सिताभ्रकुल्या च' इति कोशः । घनसारेति-- घनो महान् सारो धनं यस्य स घनसारः महाधनसम्पन्नः, सार्थः वणिक् समूहः तं वहतीति तथोक्तया । पक्षे-घनसारः कर्पूरस्तस्य सार्थं समूहं वहतीति तादृश्या । इति साम्प्रदायिकानां व्याख्यानम् । अपरे तु 'ढक्का यशःपटहः। घनः दृढः सारो बलं येषान्ते घनसाराः महा-बलाः कौरवाः पाण्डवाश्च तेषां सार्थं समूहं वाहयति युद्धाय प्रेरयतीति तथोक्तया । घनसारसार्था महाबला वाहिनी सेना यस्या इति वा। कुरुक्षेत्रयुद्धे ढक्कायां वाद्यमानायां सर्वेऽपि योधाः युद्धोद्यता अभवन्नित्यर्थः । इति व्याचक्षते 'स्याद्यशःपटहो ढक्का' इत्यमरः । 'घनः सान्द्रे दृढे दार्ढ्ये विस्तारे मुद्गरेऽपि च ।' 'सारो बले स्थिरांशे च मज्ज्ञि पुंसि जले धने' इति, 'सार्थो वणिक्समूहे स्यादपि सङ्घातमात्रके ।' इति च मेदिनी । 'घनसारस्तु कर्पूरे वृक्षभेदे जलेऽपि च' इति विश्वः । दर्पणकारस्तु 'मरुदेश-ढक्कायात्रयेव' इति पाठमभ्युपगम्य 'ढक्काया ढक्काध्वनेःयात्रागमनं।' घनो मेघस्तत्सारः पानीयं तदर्थं सार्थः समूहस्तद्वाहिनी तत्प्रापिका । यद्वा, ढक्केत्यनेन तद्ध्वनिः सा चासौ यात्रोत्सवः, उदक्तमुदकं कूपादित्येवंरूपः तद्वत्या । 'गमनोत्सवयोर्यात्रा'

अनन्तर, प्रवाहको रोकर ऊपर लाइ हुइ निम्न देशमें बहनेवाली नदीके समान वटवृक्षोंसे व्याप्त, जिसमें बृहन्नला वेषधारी अर्जुन अपने पराक्रमसे सुशोभित हुए थे ऐसी विराट-पुत्र उत्तरकुमारके गोग्रहणकी युद्धभूमिके समान, बड़े-बड़े बांसों अथवा नल नामक तृण विशेषसे सुशोभित, कर्पूर-राशिको धारण करनेवाली कुरुदेशस्थ ढक्का—कपूरकी खान, नहरके समान, महाधनी पुरुषोंसे अधिष्ठित, (अथवा) महावली कौरव-पाण्डवोंके समूहको युद्धमें प्रवृत्त करनेवाली कुरुदेशकी ढक्का-यशोदुन्दुभि, वाद्य-विशेषके समान

गोष्ठ्येव नानाविटपीतासवया, नलकूबरचित्तवृत्त्येव सततधृतरम्भया, मत्तमातङ्गगत्येव घण्टारवावेदितमार्गया, सदीश्वरसेवयेव अदूरोद्गतबहु-

इति विश्वः। मरुदेशे जलार्थिनो ढक्काध्वनिश्रवणाज्जलमुद्गतमन्धोरिति निकषा प्रयान्तीति प्रसिद्धम्। पक्षे-घनसारः कर्पूरम्। पुष्पफलहीनः करवीरसमानाकारपत्रः क्षुपभेदो वा। इति व्याचष्टे। अयमेव पाठोऽस्मभ्यं रोचते यतो मरुदेशे इदानीमपि कूपाज्जलोद्धरणसमये कूपानामतिगभीरत्वात् जलपात्रं कूपस्थजले ब्रुडितं न वेति न ज्ञायतेऽतः तदानीमेकः पुमान् कूपान्तः प्रविश्य जले पात्रमज्जनसमये ढक्कां वादयति तेन जलेन पूर्णं पात्रमिति ज्ञात्वा उपरिस्थाः पुरुषाः पात्रमुदञ्चन्तीति व्यवहारो दृश्यते। कुरुक्षेत्रे कर्पूराकरभूता न कापि कुल्या वर्तते। व्याख्यानान्तरे च कुरुदेशोपादानस्य न किमपि स्वारस्यं प्रतीयते सर्वेष्वेव युद्धेषु तादृशव्यवहारसत्त्वात्। विशेषस्तु विद्वद्भिर्विमर्शनीयः। विदग्धेति—विदग्धानां नागरकाणां मधुगोष्ठी मधुपानसभा तया 'विदग्धो नागरस्समौ' इति त्रिकाण्डशेषः। 'समज्या परिषद्गोष्ठी सभासमितिसंसदः' इत्यमरः। नानेति—नानाविटपिषु अनेकेषु वृक्षेषु इतः समुत्पन्नः आसवः पुष्परसः लाक्षादिकं वा यस्यास्तया तथोक्तया। पक्षे-नानाविटैः अनेकैः षिङ्गैः पीतः आसवो मद्यविशेषो यस्यां सा तया। 'षिङ्गः पल्लवको विटः' इत्यमरः। 'शीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत्।' इति माधवः। नलकूबरः—कुबेरपुत्रः। तस्य चित्तवृत्तिः मनोवृत्तिस्तयेव। सततेति—सततं धृता रम्भाः कदल्यो वेणवो यया सा तादृश्या। पक्षे—सततं धृता रम्भा अप्सरोविशेषो यया। 'रम्भा कदल्यप्सरसोर्ना वेणौ वारणान्तरे।' इति मेदिनी। घण्टारवाभिः शणपुष्पिकाभिः आच्छादितत्वात् अवेदितम् अज्ञातं मार्गं मृगाणां समूहो मार्गः पन्था वा यस्यां सा तादृश्या। पक्षे-घण्टानां भूषणरूपेण बद्धानां घण्टानां रवेण शब्देन आवेदितः सूचितः मार्गो गजगमनमार्गो यस्यास्तया तथोक्तया। 'घण्टारवया शणपुष्पिकया तत्कुसुमेनेत्यर्थः। अवेदितः अज्ञापितः तिरस्कृत इत्यर्थः। मार्गः मृगमदः यस्यां तया' इत्यपि केचित्। 'घण्टारवा तु शणपुष्पिके'त्यमरः। 'मार्गो मृगमदे मासे सौम्यर्क्षेऽन्वेषणे पथि।' इति हैमः। सदिति—सतः सज्जनस्य भृत्यवत्सल-

महाधनी वैश्यवृन्दसे अधिष्ठित, जिसमें अनेक धूर्त मनुष्य मद्यपान करते हैं ऐसी नागरिकजनोंकी मधुपान-गोष्ठीके समान, पुष्परससे सुशोभित अनेक वृक्षोंसे युक्त, सर्वदा रम्भा नामक अप्सराको धारण करनेवाली नलकूबरकी चित्तवृत्तिके समान, कदलीवनसे अलङ्कृत, (भूषणार्थ बांधे हुए) घण्टोंके शब्दसे (हाथीके जानेके) मार्गको सूचित करनेवाली मत्त हाथीकी गतिके समान, शणपुष्पी नामक घाससे जिसका मार्ग छिपा हुआ है (अथवा) जिसमें शणपुष्पी नामक घाससे मृग-गण छिपे हुए हैं, शीघ्र ही उत्तम फल

फलया, विराटलक्ष्म्येव आनन्दितकीचकशतया, विन्ध्याटव्या कतिपयपदमध्वानं गत्वा कामिन इव मदनशलाकाङ्कितस्य, विकर्तनस्येव स्निग्धच्छायस्य, वैकुण्ठस्येव लक्ष्मीभृतः, यात्रोद्यतनृपतेरिव घनपत्रशोभितस्य, वेदस्येव

स्येत्यर्थः । ईश्वरस्य स्वामिनः सेवया इव । अदूरेति—अदूरं समीपं यथा तथा उद्गतानि समुत्पन्नानि नात्युच्चानीति भावः । बहूनि बहुविधानि भूयांसि वा फलानि वृक्षफलानि वा यस्यां सा तथोक्तया । पक्षे—अदूरम् अचिरादेव किञ्चित्कालसेवानन्तरमेव उद्गतानि प्राप्तानि बहूनि फलानि धनप्राप्तिप्रभृतीनि प्रयोजनानि यस्यास्तया तथोक्तया । 'दूरोद्गत' इति पाठे तु दूरोद्गता अत्युन्नता बहुफला वृक्षविशेषा यस्यां सा तथा । पक्षे दूरोद्गतानि अत्यन्ताधिकानि' इति व्याख्येयम् । 'गजोल्वणा बहुफला' इति वैजयन्ती । बहुफलः कदम्बतरुर्वा । आनन्दितेति—आनन्दितं वर्धितं कीचकानां वेणुविशेषाणां शतं यया सा तादृश्या । पक्षे—आनन्दितं स्वोपभोगेन संतर्पितं कीचकानां विराटश्यालानां शतं यया तथोक्तया । एतादृश्या विन्ध्याटव्या विन्ध्यवनेन । कतीति—कतिपयानि अल्पानि पदानि यस्मिन् यस्य वा तादृशमध्वानं, किञ्चिद्दूरं गत्वेत्यर्थः । मदनशलाकेति—मदनशलाकया शारिकया अङ्कितस्य चिह्नितस्य, तयाधिष्ठितस्येत्यर्थः । पक्षे—मदनशलाकया विदग्धयोषिता अङ्कितस्य मदनशलाका कामवर्धकौषधिविशेषः इति केचित् । 'शारी मदनशलाका विदग्धयोषित्स्वाम्रं च ।' इत्यजयः । 'स्यान्मदनशलाकाऽपि शार्यां कामोदयोषधौ ।' इति विश्वः । विकर्तनः—सूर्यः । स्निग्धेति—स्निग्धा मसृणा छाया अनातपो यस्य सः तस्य । पक्षे—स्निग्धा स्नेहवती छाया स्वप्रिया यस्य तथोक्तस्य । वैकुण्ठे—विष्णुः लक्ष्मीं शोभां बिभर्तीति लक्ष्मीभृत् । पक्षे—लक्ष्मीं श्रियं बिभर्ति स्वोरसि धारयतीति तथोक्तः । यात्रेति—यात्रायै विजयप्रस्थानाय उद्यतस्य तत्परस्य नृपतेरिव । घनैः निबिडैः पत्रैः पर्णैः शोभितस्य । पक्षे घनैः दृढैः पत्रैः, स्यन्दनादिवाहनैः, घनैर्बलवद्भिरश्वादिभिर्वा शोभितस्य । 'घनः सान्द्रे दृढे दार्ढ्ये' इति हैमः । 'पत्रं तु वाहने पर्णे पक्षे च

देनेवाली उदार स्वामीकी सेवाके समान, जिसमें वृक्षोंपर फल पास ही (हाथसे तोड़ने योग्य) लगे हुए हैं, कीचकोंको आनन्दित करनेवाली विराट-लक्ष्मीके समान, वेणु—बाँसोंको आनन्दित करनेवाली विन्ध्याटवीसे कुछ दूर जाकर मदनशलाका धारण किये हुए कामीके समान सारिकासे सुशोभित, स्नेहवती छाया—निजपत्नी-से समन्वित सूर्यके समान शीतल (घनी) छाया-संपन्न, लक्ष्मीधारी विष्णुके समान शोभाशाली, अनेक वाहनोंसे अलङ्कृत दिग्विजयके लिये प्रस्थान करनेवाले राजाके समान घने पत्तोंसे सुशोभित, अनेक शाखा-मण्डित वेद भगवान्‌के समान अनेक शाखा—स्कन्ध आदि भागोंसे अलङ्कृत, अनेक विटोंसे दीप्यमान वेश्यावृन्दके समान अनेक पत्तोंसे सुशोभित

भूरिशाखालङ्कृतस्य गाणिक्यस्येव अनेकपल्लवोज्ज्वलस्य, जम्बूतरोरधश्छायायां विशश्राम। अत्रान्तरे भगवानपि मरीचिमाली आतपक्लान्तवनमहिषलोचनपाटलमण्डलश्चरमाचलमारुरोह। ततो मकरन्दः फलमूलान्यादाय कथं कथमपि तमभिनन्दिताहारमकार्षीत्। स्वयमपि तदुपभुक्तशेषमकरोदशनम्। अथ तामेव प्रियतमां हृदयफलके संकल्पतूलिकया लिखितामिवावलोकयन्निस्पन्दकरणग्रामः कन्दर्पकेतुर्मकरन्दविरचिते पल्लवशयने सुष्वाप। अथ याममात्रावखण्डितायां यामवत्यां तत्र जम्बूतरु-

शरपक्षिणोः' इति विश्वः। भूरीति—भूरिभिः प्रचुराभिः शाखाभिः स्कन्धोपस्कन्धैः अलंकृतस्य। पक्षे शाखाभिः काठकप्रभृतिभिः वेदभागैः। 'शाखा वेदविभागे च पादपाङ्गेऽन्तिकेऽपि च।' इति विश्वः। गाणिक्येति—गणिकानां वेश्यानां समूहो गाणिक्यं तेन। 'गणिकाया यञ्' इति वार्तिकात् समूहार्थे यञ्। अनेकेति—अनेकैः बहुभिः पल्लवैः पर्णैः उज्ज्वलस्य शोभमानस्य। पक्षे पल्लवैः विटैः। मरीचिमाली—सूर्यः। आतपेति—आतपेन सूर्यतापेन क्लान्तस्य खिन्नस्य वनमहिषस्य अरण्यसैरिभस्य लोचनवत् पाटलं श्वेतरक्तं मण्डलं बिम्बं यस्य सः तथोक्तः। अत्र 'स्वभावत एव महिषस्य नेत्रे रक्ते भवतः, आतपक्लान्ततया तु तदाधिक्यं भवति अतः 'आतपक्लान्ते'ति पदोपादानम्। 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः। अस्ताचलम् अस्तगिरिशिखरम्। तं कन्दर्पकेतुम्। अभिनन्दितेति—अभिनन्दितः प्रणयीकृतः भुक्त इत्यर्थः। आहारो येन स तादृशम्। भोजनमकारयदित्यर्थः। अशनम् भोजनम्। हृदयेति—हृदयमेव फलकं चित्रपट्टस्तस्मिन्। संकल्पेति—संकल्पः मानसी भावनैव तूलिका चित्रलेखनी कूर्चिका तया। 'संकल्पः कर्म मानसम्' इत्यमरः। 'तूलिका तूलशय्या स्यादालेख्यस्य च लेखनी।' इति हैमः। लिखितेत्यादि—तां स्वप्नदृष्टामेव प्रियां ध्यायन्निति समुदितार्थः। निस्पन्देति—निस्पन्दः निश्चलः करणानामिन्द्रियाणां ग्रामः समूहो यस्य स तथोक्तः। 'करणं कारणे कार्ये साधनेन्द्रियकर्मसु। कायस्थे रतबन्धे च नाट्यगीतप्रभेदयोः। पुमान् शूद्राविशोः पुत्रे।' इत्यजयः। 'ग्रामः स्वरे संवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वकः।' इति विश्वः। यामेति—याममात्रेण एकेन प्रहरेण अव-

जम्बूवृक्षके नीचे विश्राम करने लगा। इसी अवसर पर भगवान् सूर्य भी अस्ताचल शिखर पर चढ़ गये, उस समय सूर्यमण्डल, धूपसे क्लान्त जंगली भैंसेके नेत्रके समान रक्तवर्ण हो रहा था।

तब, मकरन्दने फल-मूल लाकर किसी प्रकार उसे भोजन कराया। अनन्तर उसने स्वयं भी बचे हुए फल-मूलादिसे भोजन किया। उसके बाद हृदयरूपी पट्टिकापर संकल्परूपी तूलिकासे चित्रित उस प्रियतमाको देखते हुए कन्दर्पकेतु मकरन्द-निर्मित पत्तोंकी शय्या पर सो गया, उस समय उसकी सब इन्द्रियाँ शिथिल हो गई थीं। एक प्रहर रात

शिखरे मिथः कलहायमानयोः शुकशारिकयोः कलकलं श्रुत्वा कन्दर्पकेतुर्मकरन्दमुवाच—'वयस्य शृणुमस्तावदनयोरालापम्' इति । ततो जम्बूनिकुञ्जस्थिता शारिका काचिच्चिरादागतं शुकं प्रकोपतरलाक्षरमुवाच—'कितव ! शारिकान्तरमन्विष्य समागतोऽसि । कथमन्यथा रात्रिरियती तव' इति । अथ तच्छ्रुत्वा शुकस्तामवादीत्—'भद्रे ! मुञ्च कोपम् । अपूर्वाद्य बृहत्कथा मया श्रुता प्रत्यक्षीकृता च तेनायं कालातिपातः ।' इति । अथ समुपजातकुतूहलया शारिकया मुहुर्मुहुरनुबध्यमानः कथां कथयितुमारेभे ।

अस्ति मन्दरगिरिशृङ्गैरिव प्रशस्तसुधाधवलैः बृहत्कथालम्बैरिव शाल-

---

खण्डितायां विलोपितायां यामवत्यां रात्रौ । रात्रेः प्रहरैकमात्रे व्यतीत इत्यर्थः । कलहायमानयोः कलहं कुर्वतोः । कलहशब्दात्तु 'शब्दवैरा' इत्यादिना करणे क्यङ् प्रत्ययः । प्रकोपेति—प्रकोपेन क्रोधातिशयेन तरलानि चञ्चलानि अस्फुटानीति यावत्, अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि तत् । कितव ! कपटिन् । अन्विष्य उपभुज्येत्यर्थः । अन्यथा नायिकान्तरसंबन्धाभावे । इयती इदं परिमाणा । एतावती । रात्रिः, जातेति शेषः । अपूर्वा अभिनवा। कालातिपातः बिलम्बः । बृहत्कथा महती कथा । प्रत्यक्षीकृता दृष्टा । शब्दप्रधानरूपायाः कथायाः प्रत्यक्षासम्भवात् तदाश्रयजनप्रत्यक्षीकरणमेव कथायाः प्रत्यक्षीकरणम् । इति बोध्यम् । समुपेति-समुपजातं कुतूहलं श्रवणकौतुकं यस्याः सा तया । अनुबध्यमानः आग्रहेणाभ्यर्थ्यमानः ।

अस्तीति—एतादृशैः वेश्मभिः उद्भासितम्, एतादृशेन निवासिजनेन अनुगतम्, तादृशेन वेश्याजनेन अधिष्ठितम् कुसुमपुरं नाम नगरम् अस्तीति संबन्धः ।

व्यतीत होने पर जम्बू-वृक्षके शिखरपर आपसमें लड़ते हुए शुक-सारिकाका कोलाहल सुनकर कन्दर्पकेतुने मकरन्दसे कहा—'मित्र ! इन दोनोंकी बातचीत सुननी चाहिये ।' उस समय-निकुञ्ज (पत्तोंके झुरमुट) में बैठी हुई सारिका, देर करके आये हुए तोतेसे क्रोधपूर्वक लड़खड़ाती आवाज से कह रही थी-'धूर्त ! किसी दूसरी सारिकाको तलाश करने गया था, अन्यथा तुझे इतनी रात क्यों हो गई ।' यह सुनकर शुकने उससे कहा—'भद्रे ! क्रोध न करो । मैंने एक अद्भुत लम्बी कथा सुनी है और उसे स्वयं प्रत्यक्ष देखा भी है, इसी कारण इतनी देर हो गई है ।' इस पर सारिकाको बड़ा कुतूहल हुआ और सारिकाके बार-बार आग्रह करनेपर उसने कथा प्रारम्भ की—

कुसुमपुर नामक एक नगर है । जिसके प्रासाद, उत्तम सुधा-अमृतसे शुभ्रवर्ण, (अथवा) सुधा-शिलाओंसे मनोहर मन्दरपर्वतके शिखरोंके समान, कलईके लेपसे शुभ्र

भञ्जिकोपशोभितैः, वृत्तैरिव समाणवकक्रीडितैः, करियूथैरिव समत्त-वारणैः, सुग्रीवसैन्यैरिव सगवाक्षैः, बलिभवनैरिव सुतलसन्निवेशैः, वेश्म-

वेश्मानि तावद् वर्णयति—मन्दरेत्यादिना—मन्दरस्य समुद्रमथनवेलायां मन्थान-भूतस्य पर्वतविशेषस्य शिखरैः शृङ्गैः । प्रशस्तेति—प्रशस्ता उत्तमा या सुधा लेपनद्रव्यविशेषः 'कलई' इति लोके प्रसिद्धा तया तल्लेपेन धवलैः शुभ्रैः । पक्षे—सुधया अमृतेन । वेश्मपक्षे—'सुधा इष्टका ताभिः धवलैः रम्यैः 'सुधाऽमृते स्नुही मूर्वालेपगङ्गेष्टकासु च ।' इति विश्वः । 'अथ धवलो महोक्षे सुन्दरे सिते। धवलो गौः' इति हैमः । इति, केचित् । बृहत्कथेति—बृहत्कथा गुणाढ्यकविनिर्मितः पिशाचभाषामयः कथाप्रतिपादको ग्रन्थविशेषः तस्या लम्बैः सर्गादिवद् ग्रन्थावान्तर-*भागविशेषैरिव* । सालभञ्जिकेति—सालभञ्जिकाभिः पाषाणस्तम्भादिषूत्कीर्णाभिः पाञ्चा-*लिकाभिः, वेश्याभिर्वा उपशोभितैः । पक्षे सालभञ्जिका बृहत्कथायां वर्ण्यमाना* विद्याधरी । नायिकाभेदो वा । 'पाञ्चालिका तु पाञ्चाली पुत्रिका सालभञ्जिका । वेश्या तु गणिका क्षुद्रा वारस्त्री सालभञ्जिका ।' इति जटाधरः । वृत्तैः छन्दोभिरिव । समा-णवकेति—माणवकानां शिशूनां क्रीडितेन क्रीडया सह वर्तन्त इति समाणवकक्रीडि-तानि तैः । पक्षे—माणवकक्रीडितं नाम वृत्तविशेषः । 'भात्तलगा माणवकम्' इति तल्लक्षणम् । करीति—करिणां हस्तिनां यूथानि वृन्दानि तैरिव । समत्तेति—मत्तवार-णानि महाप्रासादानां परितो निर्मितः 'घेरा, हाता' इति लोकप्रसिद्धः प्राकारः। विशालभवनानामुपरिस्थिताः शेखरा वा 'बुर्ज' इति लोकप्रसिद्धाः । भवनानां वरण्डा नागदन्तका द्वाराणि वा तैः सह वर्तमानानि तैः । 'मत्तवारणमिच्छन्ति दानक्लिन्नकरे द्विपे । महाप्रासादवीथीनां वरण्डे चाप्यपाश्रये ।' इति विश्वः । 'निर्यूहो मत्तवारणम् ।' इति वैजयन्ती । 'निर्यूहः शेखरे द्वारे निर्यासे नागदन्तके ।' इति विश्वः । पक्षे मत्तवारणा मदस्राविगजाः । अयमर्थः पक्षद्वयेऽपि समानतामर्हति। धनिकानां भवनेषु मत्तगजानामपि सम्भवात् । यद्वा—वेश्मपक्षे—मत्तवारणाः, भवन-द्वारिपाषाणनिर्मितमहागजप्रतिकृतयः । सगवाक्षैः सवातायनैः । पक्षे—गवाक्षो नाम यूथाधिपतिर्वानरविशेषः तत्सहितैः । बलीति—बलिर्नाम विरोचनसुतः दैत्य-

वर्णे हैं । शालभञ्जिका नामक विद्याधरीसे अलंकृत बृहत्कथाके लम्बे-अवान्तर भेदोंके समान, स्तम्भादि पर खुदी हुई पुतलियों (अथवा) वेश्याओंसे सुशोभित हैं । माणवक-क्रीडित छन्दोविशेषसे समन्वित वृत्तोंके समान, बच्चोंकी क्रीडाओंसे मनोरम हैं । मदमत्त हाथियोंसे युक्त हस्ति-यूथके समान, सुन्दर वरामदोंसे अलंकृत हैं । गवाक्ष नामक सेना-पतिसे सुशोभित सुग्रीवकी सेनाके समान, गवाक्षोंसे मनोहर हैं । सुतल नामक पातालमें स्थित वलि भवनोंके समान, जिनकी (नगरके बाहर) विहारभूमि सम-चौरस है । (अथवा) जिनके स्थान पुत्रोंसे सुशोभित हैं ।

भिरध्यासितम् । धनदेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, प्रियंवदेनापि

विशेषः तस्य भवनैः प्रासादैरिव । सुतलेति-सु शोभनः तलसन्निवेशः भूमिसंस्थानं येषां तानि तैः । सुतलः सुभूमिकः सन्निवेशः गृहसंस्थानं येषां तैः इति वा । यद्वा-सुतलः समभूमिकः सन्निवेशः पुरादेर्बहिः क्रीडादिस्थानं येषां तैः । एते विकल्पाः पक्षद्वयेऽपि समानाः । यद्वा-वेश्मपक्षे-सुतैः पुत्रैः लसन्तः शोभमाना निवेशा द्वाराणि, अन्तर्भवनानि वा येषां तैः । वलिभवनपक्षे च सुतले सुतलाख्ये पातालविशेषे सन्निवेशः स्थितिर्येषां तानि, तैः । 'नगरादेर्बहिःस्वैरविहारचारुभूमिषु । तत्र द्वयं निगदितं संनिवेशो निकर्षणम् ।' इति रत्नावली । 'अतलं सुतलं चैव वितलं च तलातलम् । महातलं च विख्यातं ततो ज्ञेयं रसातलम् । ततः पातालमित्येवं सप्त पातालसंज्ञकाः ।' इति पाद्मम् । 'एवंभूतानुभावोऽयं बलिः सर्वसुखैकभाक् । आस्ते सुतलराज्यस्थो देवदेवप्रसादतः ।' इति देवीभागवतम् । वेश्मभिः-भवनैः 'वेश्म सद्म निकेतनम् ।' इत्यमरः । इति पुरवासिजनं वर्णयति । तत्र विरोधाभासेनाह-धनदेनापीत्यादिना-धनदेन कुबेरेणापि सता प्रचेतसा वरुणेनेति विरोधः । पक्षे-धनं ददातीति धनदः दानशीलः । प्रकृष्टमुत्तमं सदाशयं चेतो मनो यस्य स तादृश इति परिहारः । गोपालेति-गोपालः कृष्णः, रामो दाशरथिः बलरामः परशुरामो वा । गोपालस्य रामत्वं विरुद्धम् । पक्षे-गां वाचं स्वप्रतिश्रुतमित्यर्थः । पालयति निर्वहतीति गोपालः सत्यवागिति भावः । गोपालः गोधनसंपन्न इति वा । रमयतीति रामः सर्वसन्तोषप्रद इति परिहारः । अत्र 'अजापालेनापि रामेण' इति दर्पणधृतपाठः । तत्र 'अजापालो नाम रामपूर्वजो नृपविशेषः । तस्य रामत्वं विरुद्धम् । पक्षे-अकारो वासुदेवस्तस्माज्जातः अजः कामः तमापालयतीति अजापालः स्त्रीणां क्रीडाकारकः तादृशेन रामेणेति परिहारः । प्रियंवदेति-प्रियंवदो नाम गन्धर्वविशेषः । पुष्पकेतुः मदन इति विरोधः । पक्षे-पुष्पेण पुष्पाभरणेन केतुः द्युतिर्यस्य सः तेन । पुष्पालंकारधारिणेत्यर्थः । पुष्पं सौजन्यं वीरत्वं वा केतुः चिह्नं यस्य स तेन । अतिसुजनेन अतिवीरेण चेत्यर्थः । पुष्पवत् केतुः स्वच्छता यस्य स तेनेति वा ।

वहांके निवासी दानशील एवं उदारचेता थे अतएव वे धनद (कुबेर) और प्रचेता (वरुण) भी थे । वे गौवोंके रक्षक एवं सबको सन्तुष्ट करनेवाले थे अतएव गोपाल-कृष्ण और राम भी थे । वे प्रियभाषी थे तथा पुष्पों के धारण करनेसे उनकी अपूर्व शोभा रहती थी अतएव वे प्रियंवद-गन्धर्वविशेष होते हुए पुष्पकेतु-कामदेव भी थे । वे ज्योतिषशास्त्रमें प्रवीण एवं शोभासम्पन्न थे अतएव भरत तथा लक्ष्मण भी थे । वे पर्वादि तिथियोंमें विहित कर्मानुष्ठानमें तत्पर तथा सदा अभ्यागतोंके आदर-सत्कारमें रत रहते थे अतएव तिथिपर-तिथिविहित कार्य करनेवाले तथा अतिथिसत्कारपर-तिथिविहित कार्योंमें उदासीन भी

पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणाप्यतिथिगोपालेनापि रामेण, प्रियंवदेनापि पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणाप्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असंख्येनापि संख्यावता अमर्मभेदिनाऽपि वीरतरेण ।

प्रियं मधुरं वदतीति प्रियंवदस्तेन मधुरभाषणशीलेनेत्यर्थः। इति परिहारः। भरतेति-भरतेन कैकेयीपुत्रेण, लक्ष्मणेन सुमित्रातनयेन। भरतस्य सुमित्रातनयत्वं विरुद्धम्। पक्षे-बिभर्ति धनादिना पोषयति लोकान् याचकादीनिति भरतः तेन वदान्येनेत्यर्थः। भे नक्षत्रे रत आसक्त इति भरतः ज्यौतिषिकः तेन इति वा। 'नक्षत्रमृक्षं भं तारम्' इत्यमरः' लक्ष्मीरस्त्यस्येति लक्ष्मणः। लक्ष्मीवान्। 'लक्ष्म्या अच्च' इति गणसूत्रेण अकारादेशः नश्च प्रत्ययः। 'भरतेनापि शत्रुघ्नेन' इति पाठे तु-शत्रुघ्नः सुमित्रासूनुः। पक्षे शत्रुहन्ता च। तिथीति—तिथिः पर्वादितत्तत्तिथिविहितं कर्म परं प्रधानमाचार्यत्वेन यस्य स तेन, तदासक्तेनेत्यर्थः। अतिथीति—तिथेः तिथिविहितकर्मणः सत्कारे आदरे प्रवण आयत्तः तदनुष्ठानत इत्यर्थः। तिथिसत्कारप्रवणः स न भवतीत्यतिथिसत्कारप्रवणः। इति विरोधः। पक्षे-अतिथीनामभ्यागतानां सत्कारे शुश्रूषणे प्रवणो रत इत्यविरोधः। 'प्रवणः क्रमनिम्नोर्व्यां प्रह्वे च स्याच्चतुष्पथे। आयत्ते च तथा क्षीणे प्रगुणे समुदाहृतः।' इति धरणिः। असंख्येति—असंख्येन बहुत्वात् संख्याशून्येनापि सता संख्यावता संख्यायुक्तेनेत्यविरोधः। पक्षे—न विद्यते संख्यं युद्धं यस्य स असङ्ख्यः कलहशून्य इत्यर्थः। संख्या ज्ञानं बुद्धिः विचारो वा अस्त्यस्येति संख्यावान् तद्वता, पण्डितेन, बुद्धिमता सुविचारेणेत्यर्थः। 'मृधमास्कन्दनं संख्यम्।' 'संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्युभयत्राप्यमरः। अमर्मेति—मर्म जीवस्थानं भिनत्तीति मर्मभेदी स न भवतीत्यमर्मभेदी तेन, वीरतरेण काण्डेन बाणेनेति विरोधः। काण्डस्य मर्मभेदित्वप्रसिद्धेः। 'वीरतरः अतिशूरः अमर्मभेदिनो वीरतरत्वं विरुद्धम्' इति केचित्। पक्षे—मर्म तत्त्वं परेषां रहस्यं वा तत् न भिनत्ति प्रकाशयतीति अमर्मभेदी तेन परिहारः। 'ईः श्रीः। रा दाने। विशेषेण ईं श्रियं राति ददातीति वीरं तादृशं तलं पाणितलं यस्य स वीरतरः। रलयोरभेदः।'

थे। वे कभी परस्पर कलहमें प्रवृत्त न होते थे और ज्ञानी थे अतएव वे असंख्य-संख्याशून्य और संख्यावान्-संख्यायुक्त भी थे। वे कभी दूसरोंके मर्म-रहस्यको प्रकाश न करते थे और अत्यन्त वीर थे अतएव मर्मभेदी-अपने बाणोंसे शत्रुओंके कोमलस्थानका भेदन करनेवाले-न होते हुए भी अत्यन्त शूरवीर थे। सदा परमात्माके भक्त (अथवा अपातकी) एवं अनेक यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले थे अतएव वे नानासवासक्त-तरह तरहके

अपतितेनापि नानासवासक्तेन, सुदर्शनेनाप्यचक्रेण, अजातमदेनापि सुप्रतीकेन, हंसेनाप्यपक्षपातिना, अविदितस्नेहक्षयेणापि कुलप्रदीपेन,

इति कश्चित् । अपतितेन—पतितः पातकी । अपतितः परिशुद्धः । नानेति—नानाविधेषु आसवेषु मद्येषु आसक्तः निरतः । नानासवासक्तस्य अपतित्वं विरुद्धम् । मद्यपानस्य पातित्यप्रयोजकत्वात् । नानासवासक्तेनापि भूमौ अपतितेन आसवासक्तस्य मदेन पतनावश्यम्भावात्तदभावोक्तिर्विरुद्धेति वा । पक्षे—अपतितः अपातकी यद्वा अः विष्णुः तस्मिन् पतितः तद्भक्तिपर इत्यर्थ इति वा । नानाविधाः सवा यज्ञाः तेष्वासक्तेन । अनेकयज्ञानुष्ठानतत्परेणेत्यर्थः । 'मैरेयमासवः शीधुः ।' 'यज्ञः सवोऽध्वरो यागः' इत्यमरः । सुदर्शनेति—सुदर्शनं विष्णोश्चक्रायुधम् । अचक्रं चक्रायुधभिन्नम् । विष्णुचक्रस्य सुदर्शनसंज्ञत्वात्तस्याचक्रत्वं विरुद्धम् । पक्षे—शोभनं दर्शनं यस्य स सुदर्शनः मनोहरः । चक्रं दम्भविशेषस्तद्रहितेन । अकपटेनेत्यर्थः । 'जनावने समूहे च दम्भभेदरथाङ्गयोः । चक्रम्' इति रन्तिदेवः । अजातेति—न जातः समुत्पन्नः मदो दानजलं यस्य सः अजातमदः तेन तथोक्तेन । सुप्रतीकेन एतन्नामकदिग्गजेन । सुप्रतीकस्य अजातमदत्वं विरुद्धम् । पक्षे—अजातमदेन असञ्जाताहंकारेण । शोभनाः प्रतीका अङ्गानि यस्य स सुप्रतीकः । शोभनावयवः । 'अङ्गं प्रतीकोऽवयः ।' इत्यमरः । 'मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः ।' इति विश्वः । हंसेति—हंसेन पक्षिविशेषेण । पक्षेण गरुता पतति गच्छतीति पक्षपाती, स न भवतीति अपक्षपातीति विरोधः हंसस्य पक्षपातित्वात् । पक्षे—हंसेन विशुद्धेन निर्मलान्तःकरणेनेत्यर्थः । निर्लोभेन अमत्सरेणेति वा । अपक्षपातिना सर्वजनेषु समेनेत्यर्थः । इति परिहारः । अकारे विष्णौ पक्षपातो भक्तिरस्येति वा परिहारपक्षे । 'हंसो विशुद्धे निर्लोभे श्रेष्ठे च विहगान्तरे ।' इति विश्वः । अविदितेति—अविदितः अज्ञातः स्नेहक्षयः तैलविनाशो यस्य तथोक्तेन । कुलं गृहं दीपयति प्रकाशयतीति कुलदीपः तेन तथोक्तेन । दीपस्य तैलक्षयाऽवश्यम्भावित्वात्तदभावोक्तिर्विरुद्धा । पक्षे—न विदितः स्नेहक्षयः प्रेमनाशो यस्य तथोक्तेन । कुलस्य वंशस्य दीपः प्रकाशकः प्रतिष्ठाहेतुत्वात् । कुलश्रेष्ठ इत्यर्थः । 'स्नेहः प्रेम्णि घृतादिके ।' इति हैमः । 'कुलं जनपदे गोत्रे सजातीय-

मद्यपानमें रत होते हुए भी अपतित–भूमिपर न गिरनेवाले थे । वे सुदर्शन (विष्णु का चक्र) होते हुए भी चक्ररहित थे क्योंकि वे अत्यन्त सुन्दर और दम्भसे रहित थे । सुप्रतीक (एक दिग्गज) होते हुए भी मद (दानजल) रहित थे क्योंकि उनको किसी प्रकारका अहङ्कार न था तथा उनके सब ही अङ्ग बड़े सुडौल थे । वे हंस (पक्षिविशेष) होते हुए भी अपक्षपाती (पंखोंसे न चलनेवाला) थे क्योंकि उनको किसी प्रकार मत्सर–ईर्ष्या–डाह–न था और न वे किसी से विशेष स्नेह अथवा वैरभाव रखते थे किन्तु सबसे ही उदासीनभावसे रहते थे । वे कुलप्रदीप (गृह–दीपक) होते हुए भी स्नेहक्षय (तेल–नाश) से अपरिचित थे क्योंकि वे अपने कुलमें श्रेष्ठ थे अतएव उन्हें कभी प्रेम–विनाशका भान ही

अग्रन्थिनापि वंशपोतेन, अग्रहेणापि काव्यजीवज्ञेन, निदाघदिवसेनेव वृषवर्धितरुचिना, माघविरामदिवसेनेव तपस्यारम्भिणा, नभस्वतेव सत्पथ-

गणेऽपि च। भवने च तनौ क्लीबम्।' इति मेदिनी। अग्रन्थिनेति—अग्रन्थिना पर्वरहितेन। वंशपोतेन वंशाङ्कुरेणेति विरोधः। वंशपोतस्य पर्वराहित्यासम्भवात्। पक्षे—ग्रन्थिः कौटिल्यं तद्रहितस्तेन। शुद्धहृदयेनेत्यर्थः। वंशे सत्कुले जातः पोतोऽर्भकः इति वंशपोतः सद्वंशोत्पन्न इत्यर्थः। 'ग्रन्थिर्वस्त्रादिबन्धे रुग्भेदे कौटिल्यपर्वणोः।' 'वंशे संघेऽन्वये वेणौ पृष्ठाद्यवयवेऽपि च।' इति हैमः। अग्रहेणेति—न ग्रहः अग्रहः नक्षत्रभिन्नः। काव्येति—काव्यः शुक्रः, जीवः बृहस्पतिः, ज्ञः बुधः, तेषां समाहारः काव्यजीवज्ञं तेन। एतेषां ग्रहभिन्नत्वासंभवात् विरोधः। पक्षे—ग्रहः यस्मिन् कस्मिन्नपि वस्तुनि अभिनिवेशः आग्रहः तद्रहितेन। कुत्राप्यत्यन्तमभिनिवेशशून्येनेत्यर्थः। मुनिनेव उदासीनवृत्त्यैव लोकव्यवहारमात्ररतेनेत्याशयः। काव्यस्य कविनिर्मितप्रबन्धस्य जीवम् आत्मानं वास्तवाशयं जानातीति काव्यजीवज्ञः तेन। 'काव्यं ग्रन्थे पुमान् शुक्रे।' 'जीवः प्राणिनि वृत्तौ च वृक्षभेदे बृहस्पतौ'। 'ज्ञो ब्रह्मबुधविद्वत्सु' इति मेदिनी। निदाघेति—निदाघो ग्रीष्मर्तुः तस्य दिवसः वासरस्तेन। वृषेति—वृषे धर्मे वर्धिता वृद्धिं नीता रुचिः अभिलाषः येन स, तथोक्तेन यद्वा—वृषेण धर्मेण तदनुष्ठानेनेत्यर्थः, वर्धिता रुचिः शोभा यस्य तथोक्तेन धर्मात्मनां हि मुखे अपूर्वं तेजो भासत एवेति। पक्षे—वृषेण वृषभराशिना सूर्यस्य तत्सङ्क्रमणेनेत्यर्थः। वर्धिता समुद्दीपिता रुचिः दीप्तिः यस्य स तेन 'वृषो धर्मे बलीवर्दे शृङ्ग्यां पुंराशिभेदयोः।' इति मेदिनी। 'रुचिर्द्युतौ। स्पृहाभिष्वङ्गशोभासु।' इति हैमः। माघेति—माघस्य फाल्गुनादव्यवहितपूर्वमासस्य विरामदिवसेन समाप्तिदिनेन। तपस्येति—तपस्यां तपश्चर्याम् आरब्धुं शीलं यस्य स तथोक्तेन। सततं तपोऽनुष्ठानप्रवृत्तेनेत्यर्थः। पक्षे—तपस्यं फाल्गुनमासमारभत इति तपस्यारम्भी तेन। 'अथ फाल्गुने। स्यात्तपस्यः फाल्गुनिकः' इत्यमरः। नभस्वतेति—नभस्वान् वायुः तेनेव। सत्पथेति—सतां सज्जनानां पन्थाः मार्गः सत्पथः साधुसेवित आचार इत्यर्थः। तेन गच्छतीति सत्पथगामी तेन। महापुरुषविहिताचारवतेति भावः। पक्षे—सतां नक्षत्राणां पन्थाः सत्पथ आकाशः तेन

न होता था। वे वंशपोत (वासका अङ्कुर) होते हुए भी ग्रन्थि (गांठ, पर्व) रहित थे क्योंकि उनमें किसी प्रकारका छल-कपट तथा और वे अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए थे। वे काव्य-जीव-ज्ञ (शुक्र-बृहस्पति-बुध) होते हुए भी ग्रहभिन्न थे क्योंकि वे काव्य-मर्मके ज्ञाता थे और उनको किसी प्रकारका आग्रह न था। जिस तरह वृषराशिपर स्थित सूर्य की प्रचण्डतासे ग्रीष्मकालके दिनोंकी दीप्ति अत्यधिक हो जाती है उसी तरह धर्मके पालनमें उनकी रुचि बढ़ी हुई थी। वे, फाल्गुन मासको प्रारम्भ करनेवाले माघ-मासके अन्तिम दिवसके समान तपश्चरणका अनुष्ठान करनेवाले थे। वे, आकाशमार्गसे चलनेवाली वायुके समान

गामिना, विवस्वतेव गोपतिना, महेश्वरेणेव चन्द्रं दधता निवासिजनेनानुगतम्। घनापगमेनेव दर्शितखण्डाभ्रेण, वेलातटेनेव प्रवालमण्डनेन। देवाङ्गनाजनेनेव इन्द्राणीपरिचयविदग्धेन गजेन्द्रेणेव पल्लववर्धितरुचिना,

---

गामिना। 'सत्पथो दिवि सन्मार्गे तारामार्गे च कथ्यते।' इत्यजयः। विवस्वता सूर्येणेव। गोपतिना गवां धेनूनां वाचां भूमीनां वा अधिपतिना, प्रभूतधेनुमता वावदूकेन भूस्वामिना वेत्यर्थः। पक्षे—गवां किरणानां पतिः स्वामी गोपतिः तेन। महेश्वरेण शिवेन। चन्द्रं स्वर्णं, पक्षे शशिनं दधता धारयता। 'चन्द्रः कर्पूरकाम्पिल्यसुधांशुस्वर्णवारिषु।' इति मेदिनी।

वेश्याजनेनाधिष्ठितमित्यन्वयः। वेश्याजनं विशिनष्टि—घनापगमेनेवेत्यादिना। घनानामपगमः अभावो यत्र सः, शरत्काल इत्यर्थः, दर्शितं प्रकटितं खण्डाभ्रं दन्तक्षतविशेषो येन स तथोक्तेन। 'विचित्रमीषत्परिमण्डलं च क्षतैः समन्ताद्विषदैरुपेतम्। खण्डाभ्रकं तद्दशनाभ्रलेख्यं बिम्बाधरोत्सङ्गविभूषणायाः।' इति तल्लक्षणम्। 'खण्डाभ्रमभ्रावयये स्त्रीणां दन्तक्षतान्तरे' इति हैमः। पक्षे-दर्शितं खण्डभूतं शकलीभूतम् अभ्रं मेघो येन सः। शरत्काले हि मेघानां खण्डानि दृश्यन्ते नभसि। क्वचित् 'घनागमदिवसेनेवे'ति पाठः। घनागमदिवसः वर्षाकालिकवासरः। वेलेति-वेलातटं समुद्रकूलप्रदेशः। प्रवालेति-प्रकृष्टाः श्रेष्ठाः प्रलम्बा इति यावत्। बालाः केशा एव मण्डनं भूषणं यस्य स तेन। यद्वा प्रवालो विद्रुमो वीणादण्डो वा मण्डनं यस्य। पक्षे, प्रवालानि विद्रुमा मण्डनं यस्य स तेन। 'प्रवालमणिमण्डनेने'ति पाठान्तरम्। तत्र प्रवालमणिः दन्तक्षतविशेषः। 'गाढं दन्तौष्ठसंयोगात् स प्रवालमणिर्भवेत्।' इति वामनः। इन्द्राणीति-इन्द्राणी रतिबन्धविशेषः। तस्याः परिचये अनुष्ठाने बन्धने विदग्धः कुशलः तेन। 'निजकक्षद्वयसङ्गतजानुभ्यां भवति चाभ्यासात्। इन्द्राणी रचितत्वादिन्द्राणीत्याख्यया बन्धः।' पक्षे इन्द्राण्याः शच्याः परिचयात् चिरं साहचर्यात् विदग्धेन राजसंवासचतुरेणेत्यर्थः। 'इन्द्राणी करणे स्त्रीणां पौलोमीसिन्दुवारयोः' इति विश्वः। पल्लवेनि-पल्लवैः विटैः वर्धिता रुचिः दीप्तिः कामानुरागित्वं वा यस्य स तथोक्तेन। यद्वा-पल्ल-

---

सन्मार्गावलम्बी थे। भूमिकी रक्षा करनेवालेसूर्यके समान वे वाणीके अधीश्वर थे। जिसप्रकार महादेव।चन्द्र-चन्द्रमा-को धारण करते हैं इसी प्रकार वे भी चन्द्र-सुवर्णको धारण करते थे।

उस कुसुमपुरमें अनेक वेश्याजन विद्यमान थे। जिस प्रकार वर्षा कालके अनन्तर—शरद् ऋतुमें-मेघके छोटे-छोटे टुकड़े शोभित होते हैं उसी तरह उनके खण्डाभ्र-दन्तक्षत-शोभित होते थे। प्रवाल-विद्रुमोंसे सुशोभित समुद्रतटके समान उनके प्रवाल-लम्बे-लम्बे केश सुशोभित होते थे। इन्द्राणी-इन्द्रपत्नीके साथ परिचय होनेके कारण चतुर सुराङ्गनाओंके समान वे वेश्याएँ इन्द्राणी-सुरतसम्बन्धी आसनविशेषमें अत्यन्त चतुर थीं। जिसप्रकार गजेन्द्रकी रुचि पत्तोंके खानेमें अत्यधिक होती है उसी प्रकार विटों-कामुक-

कोकिलेनेव परपुष्टेन, भ्रमरेणेव कुसुमेषुलालितेन, जलौकसेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन यायजूकेनेव सुरतार्थिना, महानटबाहुनेव बद्धभुजङ्गाङ्केन, गरुडेनेव विलासिहृदयतापकारिणा बन्धकेनेव शूलानामुपरिगतेन वेश्याजनेनाधिष्ठितं कुसुमपुरं नाम नगरम्।

येन अलक्तेन लाक्षारसेन वर्धिता रुचिः शोभा यस्य सः तेन। पल्लवे प्रेमक्रीडायां वर्धिताभिलाष इति वा। पक्षे-पल्लवैः किसलयैः मूर्ध्नि स्थापितैरिति भावः, वर्धितरुचिः समुत्पन्नशोभः तेन। परेति-परमत्यर्थं पुष्टेन धनसम्पन्नेन सुस्वास्थ्येन वा। पक्षे-परैः अन्यैः काकैः पुष्टः पोषितः तेन। कुसुमेति-कुसुमेषुणा कामेन लालितेन विलासं प्रापितेन। पक्षे-कुसुमेषु पुष्पेषु लालितेन सन्तोषवता। जलौकसेति—जलम् ओकः स्थानं यस्य स जलौकाः जलजन्तुविशेषः 'जोंक' इति लोके प्रसिद्धः तेनेव। रक्तेति-रक्तेभ्यः स्वस्मिन्ननुरागवद्भ्यः या आकृष्टिः आकर्षणं धनस्येति शेषः, तत्र निपुणेन चतुरेण। रक्तानामनुरक्तानां या कृष्टिः आकर्षणं वशीकरणम् इति यावत्, तत्र निपुणेनेति वा। 'जलौकसेनेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन वेश्याजनेन' इति वासवदत्तायाम्। जलं च तदोकश्चेति जलौकः ततः अर्श आद्यचि एकवचनमदन्तत्वं चोपपन्नम्' इति मुकुटः। यायजूकेन-इज्याशीलेन 'इज्याशीलो यायजूकः' इत्यमरः। 'याजकेनेवे'ति पाठान्तरम्। सुरतेति-सुरतं रतिक्रीडाम् अर्थयते अभिलषतीति सुरतार्थी तेन। पक्षे-सुरस्य भावः सुरता देवत्वं तदर्थिना। महानटः शिवः तस्य बाहुना भुजेनेव। बद्धेति-बद्धः कृतः भुजङ्गैः कामुकैः अङ्कः क्रोडः यस्य स तथोक्तेन, कामुकाङ्कपलितेनेत्यर्थः। बद्धः स्वीकृतः भुजङ्गानामकः उत्साहः अपराधो वा येन स तथोक्तेनेति केचित्। पक्षे-बद्धाः कृताः भुजङ्गाः सर्पा एव अङ्कश्चिह्नं भूषणं वा येन तादृशेन। 'भुजङ्गः सर्पषिड्गयोः।' इति हैमः। 'अङ्कः स्थानेऽन्तिके मन्तौ रूपकोत्सङ्गलक्ष्मसु। नाटकादिपरिच्छेदे चित्रयुद्धे च भूषणे।' इति विश्वः। विलासीति-विलासिनां कामुकानां हृदयतापं

जनों-के समागसे व सुशोभित होती थीं। काक से पालित कोकिल के समान वे धनादिसे अत्यन्त परिपुष्ट-संपन्न थीं। फूलों पर प्रसन्न भ्रमरके समान वे कामावेशके कारण सदा विलासोचित वेश बनाये रखती थीं। जिस प्रकार जोंक रक्त-खूनके खींचनेमें बड़ी चतुर होती हैं उसी प्रकार वे वेश्याएँ अनुरक्त कामुकोंको अपनी ओर आकृष्ट करनेमें बड़ी प्रवीण थीं। सुरता देवत्वको चाहनेवाले याज्ञिक लोगोंके समान वे भी सुरत-मैथुन चाहनेवाली थीं। भुजंग-सर्प-रूपी भूषण धारण करनेवाले महादेवके समान वे भुजंग—कामुकजनोंके अङ्क-गोदमें लेटी रहती थीं। जिस प्रकार गरुड़ विलासी-सर्पों-के हृदयको सन्तप्त करता है उसी तरह वे भी विलासी-कामुकजनोंके हृदयतापको दूर करती थीं (अथवा अपने पास न आनेवाले कामुकोंके हृदयको सन्तप्त करती थी)। शूल पर चढ़े हुए अन्धकासुरके समान वे अन्य नगरों की वेश्याओंसे श्रेष्ठ थीं।

यत्र च सुरासुरमौलिमालालालितचरणारविन्दा, शुम्भनिशुम्भमहासुरबलमहावनदावज्वाला, महिषासुरगिरिवरवज्रधारा, प्रणयकलहप्रणतगङ्गाधरजटाजूटकोटिस्खलितजाह्नवीजलधाराधौतपादपद्मा, भगवती का-

मनःक्षोभं करोतीति तथोक्तेन। यदि पश्यन्तो युवानः दर्शनसमकालमेव मदनवेदनया खिद्यन्ते इति भावः। विलासिनां हृदयतापं कृणोति हिनस्ति अपगमयतीति तेन। 'कृञ् हिंसायाम्' इति केचित्। पक्षे-विले रन्ध्रे आसितुमुपवेष्टुं शीलं येषान्ते बिलासिनः बिलेशयाः सर्पास्तेषां हृदयतापं करोतीति तथोक्तेन। अन्धकः कश्चिदसुरः यः शिवेन हतः। शूलानां-प्रदेशान्तरस्थितानां गणिकानाम्, उपरि गतेन श्रेष्ठेन। पक्षे-शूलं नामायुधविशेषः। दारा इत्यादाविवावयवाभिप्रायेण बहुवचनम्। अन्धकासुरः शिवेन शूलाग्रे रोपित इति भारती कथा।

यत्रेति—यत्र यस्मिन् कुसुमपुरे चण्डाभिधाना चण्डिकानाम्नी कात्यायनी दुर्गा स्वयं निवसति। 'वेतालाभिधाना' इति पाठान्तरम्। कात्यायनीं वर्णयति—सुरासुरेत्यादिना। सुराणां देवानाम् असुराणां दानवानां च मौलिमालाभिः शिरःस्थितपुष्पदामभिः किरीटपङ्क्तिभिः मस्तकश्रेणिभिर्वा लालिते सत्कृते चरणारविन्दे पादपद्मे यस्याः सा तथोक्ता। शुम्भेति-शुम्भनिशुम्भौ महादानवौ तयोः बलं सैन्यं शक्तिर्वा तदेव महावनं महारण्यं तस्य दावानलज्वाला वनाग्निशिखा। यथा वनाग्निर्वनं भस्मसात्करोति तथा महासुरभस्मकारिणीत्यर्थः। 'दवदावौ वनारण्यवह्नी' इत्यमरः। अत्र महासुरे महावनत्वारोपः कात्यायन्यां दावानलत्वस्यारोपनिमित्तमिति परम्परितरूपकम्। महिषेति—महिषासुरः एव गिरिवरः पर्वतश्रेष्ठः तस्य वज्रधारा अश्रान्यग्रभागः। अत्रापि पूर्ववत् रूपकम्। प्रणयेति-प्रणयकलहे प्रणतः पादपतितः यः गङ्गाधरः शिवः तस्य जटानां जूटः बन्धः जटाजूटः कपर्दस्तस्य कोट्या अग्रभागात् स्खलितायाः प्रच्युतायाः जाह्नव्या गङ्गाया जलधारया जलप्रवाहेण धौतं क्षालितं पादपद्मं चरणकमलं यस्याः सा तथोक्ता। परिसरे-प्रान्तदेशे भगवती भागीरथी प्रव-

---

जिस कुसुमपुरमें स्वयं भगवती दुर्गा चण्डिका नामसे निवास करती थीं। भगवती दुर्गाके चरण-कमलोंको, देव तथा असुर अपनी पुष्पमालाओं (अथवा किरीटों) से अर्चित किया करते थे। जिस प्रकार दावानल बड़े-बड़े वनोंको भस्म कर देता है उसी प्रकार कात्यायनीदेवीने शुम्भ तथा निशुम्भ नामक महासुरोंके बलको भस्मीभूत कर दिया था। वह, महिषासुररूपी पर्वतके लिये वज्रकी धारके समान थीं। कभी-कभी उनका अपने पति महादेवके साथ प्रणयकलह हो जाया करता था उस समय (उनको मनानेके लिये) महादेव उनके चरणोंमें गिर पड़ते थे, तब महादेवके जटा-जूटके अग्रभागसे गिरती हुई गंगादेवीकी जलधारासे उनके चरण धुल जाया करते थे। जिस-

त्यायनी चण्डाभिधाना स्वयं निवसति । यस्य च परिसरे सुरासुरमज्जन-गलितकुसुममुकुटरजोराजिपरिमलवाहिनी, पितामहकमण्डलुविनिर्गतघर्मद्रवधारा, धरातलसगरसुतशतसुरनगरसमारोहणपुण्यरज्जुनिश्रेणिका, ऐरावतकपोलकषणकम्पिततटगतहरिचन्दनस्यन्दमानरससुरभितसलिला, सलीलसुरसुन्दरीनितम्बबिम्बाहतितरलिततरङ्गा, स्नानावतीर्णसप्तर्षिमण्डल-

---

इतीत्यन्वयः । गङ्गां विशिनष्टि—सुरासुरेत्यादिना । सुरासुराणां देवदानवानां मज्जने स्नानावसरे गलिता अधःपतिता या कुसुममुकुटेभ्यः पुष्पनिर्मितकिरीटेभ्यः रजसां परागाणां राजिः श्रेणिः तस्याः परिमलं गन्धं वोढुं शीलं यस्याः सा तथोक्ता । पितामहेति-पितामहस्य ब्रह्मणः कमण्डलोः जलाधारात्पात्रविशेषात् विनिर्गतः निष्क्रान्तो यो घर्मद्रवः घर्म एव किमीदृशः परिणतः इति शङ्क्यमानं सलिलं तस्य धारा । पुरा बलिनिग्रहे ऊर्ध्वोत्क्षिप्तं विष्णुपादपद्मं क्षालयितुं ब्रह्मणा समुपयुक्तं स्वकमण्डलुजलमेव गङ्गारूपेण समभूदिति पौराणिकी कथा चानुसन्धेया। धरातलेति—धरातले पाताले पतितानां सगरसुतशतानां षष्टिसहस्रसगरात्मजानाम्, 'अत्र शतशब्दोऽनेकपरः। सुरनगरम् अमरावतीं स्वर्गं समारोहणार्था पुण्या पवित्रा रज्जुनिश्रेणिका रज्जुनिर्मित-सोपानपङ्क्तिः । कपिलेन दग्धाः सगरसुताः भगीरथेन गङ्गयैव स्वर्गं प्रापिता इति रामायणम् । ऐरावतेति—ऐरावतस्य सुरगजस्य कपोलकषणेन गण्डस्थलघर्षणेन आन्दोलितं यत् तटगतं तीरस्थितं हरिचन्दनं देवतरुः तस्य स्यन्दमानः प्रक्षरन् यः रसः निर्यासः तेन सुरभितं सलिलं यस्याः सा तथोक्ता । सलीलं सविलासं यत् सुरसुन्दरीणां देवाङ्गनानां नितम्बबिम्बं नितम्बमण्डलं तस्य आहत्या ताडनेन तरलिताः क्षोभिताः चञ्चलीकृताः तरङ्गा वीचयो यस्याः सा तादृशी । स्नानेति—स्नानार्थम् अवतीर्णः अन्तःप्रविष्टस्य सप्तर्षिमण्डलस्य विमलायाः परिशुद्धायाः जटाटव्याः निविडस्य जटाबन्धनस्य केशसमूहस्य परिमलेन गन्धेन पुण्या पवित्रा वेणी प्रवाहो यस्याः सा तथोक्ता । 'वेणी सेतुप्रवाहयोः । देवताडे केशबन्धे' इति

(कुसुमपुर) के पासमें भागीरथी वहती थी । वहांपर सुर तथा असुर स्नानके लिये आया करते थे । स्नानके समय उनके पुष्प-निर्मित मुकुटोंसे गिरे हुए परागका गन्ध (आनन्दित करता था) । वह गंगानदी, ब्रह्माके कमण्डलुसे निकले हुए घर्मरूपी जलकी धारा है । पातालमें पड़े हुए सैकड़ों सगर-पुत्रोंके स्वर्गारोहणके लिये मानों पवित्र रज्जु-निर्मित सीढ़ी है । उसका जल, ऐरावतके कपोलोंके रगड़नेसे हिलते हुए (अपने) तटवर्ति चन्दनवृक्ष के टपकते हुए रससे सुगन्धित रहता था । उसकी लहरें, सुर-सुन्दरियोंके नितम्ब-मण्डलके आघातसे क्षुभित रहती थीं । उसका प्रवाह, स्नानके लिये उतरे हुए सप्तर्षिमण्डलकी स्वच्छ, घनी जटाओंके गन्धसे पवित्र रहता था । चन्द्रमौलि महादेवके

विमलजटाटवीपरिमलपुण्यश्रेणिः, एणतिलकमुकुटविकटजटाजूटकुहर-भ्रान्तिजनितसंस्कारेवाद्यापि कुटिलावर्ता, धरणीव सार्वभौमकरस्पर्शोप-भोगक्षमा, जलदकालसरसीव गन्धपरिभ्रमद्भ्रमरमालानुमीयमानजलमूल-मग्नकुमुदपुण्डरीका, छन्दोविचितिरिव मालिनीसनाथा, ग्रहपङ्क्तिरिव

हैमः। एणेति—एणः हरिणः तिलकं विशेषकं यस्य स एणतिलकः हरिणाङ्कः चन्द्रः। स मुकुटे यस्य स एणतिलकमुकुटः चन्द्रमौलिः शिवः। तस्य विकटे विशाले जटाजूटकुहरे कपर्दगह्वरे भ्रान्त्या चक्राकारभ्रमणेन जनितः उत्पादितः संस्कारो वासना यस्याः सा तथोक्ता। कुटिलेति—कुटिला वक्रा आवर्ताः अम्भसां भ्रमा यस्याः सा तथोक्ता। 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः। सार्वभौमेति—सार्वभौमस्य एतन्नामकस्य दिग्गजस्य करस्पर्शः शुण्डासंस्पर्शः तद्रूपस्य उपभोगस्य अनुभवस्य क्षमा योग्या। पक्षे—सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः चक्रवर्ती नृपः तस्य करस्पर्शः अन्यै राजभिर्दीयमानो राजग्राह्यभागः तत्पूर्वकस्योपभोगस्य क्षमा उचिता। जलदेति—जलदकालः वर्षाकालः तस्य सरसी सर इव। गन्धेति—गन्धेन मदजलगन्धवासनया परिभ्रमन्ती उपरिभागे इतस्ततः संचरन्ती या भ्रमरमाला मधुपश्रेणिः तया अनुमीयमानः तर्क्यमाणः जलमूले अन्तर्वारि मग्नः ब्रुडितः कुमुदः पुण्डरीकश्च दिग्गजः यस्यां सा तथोक्ता। कुमुदानि कैरवाणि पुण्डरीकाणि सिताम्भोजानि च यस्यां सा। 'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।' 'सिते कुमुदकैरवे।' 'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्।' इत्यमरः। छन्दोविचितिः ग्रन्थविशेषः। मालिनीति—मालिनी नामिका काचिन्नदी तया सनाथा युक्ता। पक्षे मालिनी नाम वृत्तविशेषः। तया सनाथा। ग्रहेति—ग्रहाणां सूर्यादीनां पङ्क्तिः श्रेणिरिव। सूर्येति—सूर्यात्मजया रविपुत्र्या यमुनया उपशोभिता मण्डिता। पक्षे सूर्यात्मजेन शनिना।

विकराल जटाजूटरूपी गर्तमें घूमनेके संस्कारवश मानों आज भी उसके (गंगाके) भंवर बड़े भीषण थे। अन्य राजाओंद्वारा दिये हुए करद्वारा चक्रवर्ती सम्राटके उपभोगयोग्य पृथ्वीके समान, वह ऐरावतके शुण्डस्पर्शरूप उपभोगके योग्य थी—ऐरावत उसमें शुण्डद्वारा जलस्पर्शकर विहार किया करता था। वर्षाकालमें तालाबोंमें (जल भर जानेके कारण कुमुद तथा कमल ऊपर दिखाई नहीं पड़ते परन्तु उनकी गन्धसे (जलके ऊपर) मंडराते हुए भ्रमरोंको देखकर उस स्थानपर जलमें उनके अस्तित्वका सहज ही अनुमान कर लिया जाता है। इसी प्रकार, मद-जलकी गन्धके कारण उड़ती हुई भ्रमर पंक्तिको देखकर जल-मग्न कुमुद तथा पुण्डरीक नामक दिग्गजका अनुमान करना कठिन न था। जिस प्रकार 'मालिनी' वृत्त 'छन्दोविचिति' नामक ग्रन्थको सुशोभित करता है एवं 'मालिनी' नदी गंगाको सुशोभित करती थी। जिस तरह शनि, चन्द्र और सूर्य ग्रहपंक्तिको अलंकृत करते

सूर्यात्मजोपशोभिता सराजहंसा च, शरत्कालदिनश्रीरिव उज्ज्वलत्कोकनदा, प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षा च, हृतान्धतमसापि तमसान्विता, वीचिकलिताप्यवीचिदुर्गमा, भगवती भागीरथी वहति।

अथ दिशि दिशि सन्तानकतरुकुसुमनिकरमिव शिखरावलग्नं तारा-

'कालिन्दी सूर्यतनया' 'समौ सौरिशनैश्चरौ।' इत्यमरः। सराजेति—राजहंसैः हंसविशेषैः सहिता। पक्षे राज्ञा चन्द्रेण हंसेन सूर्येण च सहिता। 'राजा तु पार्थिवे। निशाकरे प्रभौ शक्रे यक्षक्षत्रिययोरपि।' हंसोऽर्के मत्सरेऽच्युते। खगाश्वयोगिमन्त्रादिभेदेषु परमात्मनि।' इति हैमः। उज्ज्वलत इति—उज्ज्वलन्ति विकसन्ति कोकनदानि रक्तकमलानि यस्यां सा। उभयत्रापि समानमेतत्। यद्वा—गङ्गापक्षे, उज्ज्वलन् प्रसरन् कोकानां चक्रवाकानां नदः शब्दो यस्यां सा। प्रबुद्धेति—प्रबुद्धं विकसितं यत् पुण्डरीकं सिताम्भोजं तदेवाक्षि यस्याः सा तथोक्ता। पक्षे—प्रबुद्धः योगनिद्राया उत्थितः पुण्डरीकाक्षः विष्णुः यस्यां सा तथोक्ता। तथा च मात्स्ये-'शेते विष्णुः सदाषाढे भाद्रे च परिवर्तते। कार्तिके परिबुध्येत शुक्लपक्षे हरेर्दिने।' इति। हृतेति—अन्धयतीति अन्धम्, अच्प्रत्ययः। अन्धं तमः अन्धतमसम्। 'अवसमन्धेभ्यस्तमसः' इति समासान्तोऽच्प्रत्ययः। अन्धतमसम् गाढान्धकारः। हृतम् अन्धतमसं यया सा तथोक्ता। अन्धकारविनाशिका सत्यपि तमसा तिमिरेण अन्विता युक्तेति विरोधः। पक्षे—अन्धतमसम् अन्धतामिस्रापरपर्यायो नरकविशेषः। तमसा तन्नामिकया नद्या अन्विता युक्तेति परिहारः। 'ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसं क्षीणेऽवतमसं तमः' इत्यमरः। वीचीति—वीचिभिस्तरङ्गैः कलिता व्याप्ताऽपि, वीचिभिः दुर्गमा प्रवेष्टुमशक्या न भवति विरोधः। पक्षे वीचिदुर्गमौ नरकविशेषौ तौ यया न भवतः तथोक्ता। अवीचिः नरकभेदः इति वा।

यत् कुसुमपुरम्। उपवनपादपैः उपशोभितम् इत्यन्वयः। सन्तानकेति—सन्तानकस्य कल्पपादपविशेषस्य कुसुमनिकरं पुष्पसमूहमिव। शिखरावलग्नं—शिखर-

हैं इसी प्रकार भगवती भागीरथी यमुना तथा राजहंससे अलंकृत थी। शरद्कालमें कोकपक्षियोंका शब्द सुनाई पड़ने लगता है और भगवान् विष्णु महाराज भी योगनिद्रा त्यागकर उठ बैठते हैं। इस समय भागीरथीमें रक्तकमल खिले हुए थे और विकसित पुण्डरीक-श्वेतकमल-ही नेत्ररूपसे चमक रहे थे अतएव इस काल वह शरत्कालीन दिनश्री की शोभा धारण किये हुए थी। वह घने अन्धकारको मिटाती हुई भी तमस्-अन्धकार-से युक्त थी (वस्तुतः) भगवती भागीरथी अन्धतामिस्र नरकसे (स्नानकर्ताओंको) बचाती एवं 'तमसा' नदीसे सुशोभित थी।

जिसके चारों ओर उपवन-वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। उन वृक्षों पर सुशोभित पुष्प तारागणसे प्रतीत होते हैं। (वे अपनी ऊँचाईसे मानों) मेघोंको रोके हुए हैं।

गणमिव कुसुमनिकरमुद्वहद्भिः, उत्तम्भितजलदैः, अनूरुकशाभिघातपरवशरविरथतुरगग्रासविषमिताग्रपल्लवैः, चन्द्रचमूरुचरणसंक्रान्तामृतकणनिकरसेकसंजातबहुलसुकुमारनवकिसलयसहस्रदर्शिताकालसन्ध्याकालविभ्रमैः, भरतचरितैरिव सदारामाश्रितैः, महावीरैरिव नारिकेलिधरैः, असं-

संसक्तं तारागणं नक्षत्रवृन्दमिव स्थितं कुसुमनिकरमुद्वहद्भिः धारयद्भिः। वृक्षाणामौन्नत्येनेयं द्रव्योत्प्रेक्षा। उत्तम्भितेति—उत्तम्भिताः स्वोपरि ऊर्ध्वमेव स्थापिता जलदा मेघा यैस्ते तथोक्तैः। अनूरुकशेति—अनूरोः सूर्यसारथेः कशायाः ताडिन्या अभिघातेन प्रहारेण परवशानां पराधीनानां रविरथतुरगाणां सूर्यस्यन्दनवाजिनां ग्रासेन भक्षणेन विषमिताः न्यूनाधिकभावमापादिताः अग्रपल्लवाः शिखरकिसलयानि येषान्ते तैः। चन्द्रेति—चन्द्रचमूरुः शशिस्थितकुरङ्गः तस्य चरणेन संचरणेन पादेन वा संक्रान्ते। भरतेति—भरतः केकयीपुत्रः रामानुजः तस्य चरितैः चरित्रैरिव। सदेति—सन् श्रेष्ठः यः आरामः उपवनं तमाश्रितैः, तत्र स्थितैरित्यर्थः। पक्षे, सदा सर्वदा रामं स्वज्येष्ठभ्रातरं रामभद्रम् आश्रितैः, तदनुकूलतयाऽनुष्ठितैरिति भावः। 'आरामः स्यादुपवनम्' इत्यमरः। महावीरैः—महाशूरैः। धरन्तीति धराः, पचाद्यच्। नारिकेलीनां नारिकेलवृक्षाणां धराः नारिकेलिधराः, नारिकेलवृक्षसमन्विता इत्यर्थः। नारिकेलपर्यायः नारिकेलिशब्दोऽप्यस्ति। यद्वा—नारिकेलानि नारिकेलफलानि सन्त्यस्याः सा नारिकेलिनी। 'अत इनिठनौ' इति इनिः। तादृशी धरा भूमिः येषान्ते नारिकेलिधराः तैः। अपरे तु नारीणां प्रमदानां याः केलयः पीडाः तासां धरैः। येषु प्रमदाः डोलाविरादिकं कुर्वन्तीत्यर्थः, इत्याहुः। पक्षे—अरीणां शत्रूणां केलिः उपहासः, तस्य धराः सोढारः इति अरिकेलिधराः, तादृशा न भवन्तीति नारिकेलिधराः। शत्रूणामुपहासवाक्यानि ये कथमपि नोपेक्षन्ते इति भावः। यद्वा—महा अवीरैरिति छेदः, अत्यन्तं कापुरुषैरिति तदर्थः। तथा च, नारीणां कान्तानां केलिं क्रीडां, ताभिः सह विहारमित्यर्थः, धरन्तीति तादृशैः

(अथवा) मेघोंका स्पर्श कर रहे हैं। सूर्यके घोड़े (आकाशमें चलते हुए) उनके पत्ते खाने लगते हैं परन्तु सूर्यसारथि अनूरूकी दशाके आघातसे वे अच्छी तरह निश्चिन्त हो खा नहीं सकते अतः उनके पत्ते कहीं कहींसे कुतरे हुए हैं। चन्द्रमृगके चरणोंमें लगे हुए अमृतद्वारा सिञ्चन होनेके कारण उनमें अनेक कोमल नवीन पत्ते निकले हुए हैं जिनके कारण असमयमें ही सन्ध्याकालका भ्रम होता है। वे (ज्येष्ठभाई) रामके आश्रित भरत चरित्रके समान सर्वदा गृहारामोंमें सुशोभित हैं। अङ्गना-क्रीडामें आसक्त महावीरोंके समान (अथवा) शत्रु-प्रमोदका विनाश करनेवाले शूरवीरोंके समान उनमें अनेक नारियलके पेड़ हैं। दूर तक दृष्टि दौड़ानेवाले दुश्चरित्र युवकोंके समान उनमें

स्कृततरुणैरिव अतिदूरप्रसारिताक्षैः, तपस्विभिरिव जपासक्तैः, प्रसाधितैरिव कृतमालोपशोभितैः, मातङ्गकुम्भस्थलविदारणोत्सुकसिंहैरिव उत्फुल्लकेसरैः, सारिष्टैरपि चिरजीविभिः, मुनियुतैरपि मदनाधिष्ठितैः, उपवनपादपै-

स्त्रीपरायणैः न तु युद्धशूरैरिति भावः। असंस्कृतेति—असंस्कृताः कामकलायामशिक्षिताः, तरुणाः युवानः तैरिव । अतिदूरेति—अतिदूरं अत्यूर्ध्वं प्रसारिताः विस्तृताः, अत्युच्छ्रिता इत्यर्थः। अक्षाः विभीताख्यवृक्षा येषु ते तथोक्ताः तैः। यद्वा—अतिदूरं बहुदेशं प्रसारिता व्याप्ता अक्षा येषु तथोक्तैः। पक्षे—अतिदूरम् अत्यधिकं प्रसारितानि विस्तारितानि अक्षीणि इन्द्रियाणि यैस्तैस्तथोक्तैः। कटाक्षवीक्षणं हि कामशास्त्रकुशलानां नैसर्गिकम्। अक्षिशब्दात् 'ऋक्पूरब्धूपथामानक्षे' इति समासान्तोऽच्। जपेति-जपाभिः जवावृक्षैः तत्पुष्पैर्वा आसक्ताः संयुक्तास्तैः। पक्षे—जपे मन्त्रादीनामुपांशूच्चारणे वेदाध्ययने वा आसक्तैः तत्परैः। 'जवायां तु जपा स्मृता।' 'स्वाध्यायः स्याज्जपः' इत्यमरः। प्रसाधितैः अलंकृतैः। कृतमालोपेति-कृतमालैः वृक्षविशेषैः उपशोभितैः भूषितैः। पक्षे—कृतया प्रथितया मालया उपशोभितैः। मातङ्गेति—मातङ्गानां हस्तिनां कुम्भस्थलस्य गण्डस्थलस्य विदारणे उत्पाटने विदारणाय वा उत्सुका उत्कण्ठिताः ये सिंहास्तैरिव । उत्फुल्लेति-उत्फुल्लाः विकसिताः केसरा बकुलवृक्षा येषान्ते तैः। यद्वा—उत्फुल्लः केसरः किञ्जल्कः येषान्ते तथोक्तैः। पक्षे—उत्फुल्ला ऊर्ध्वस्थिताः केसराः सटा येषान्ते तथोक्तैः। 'सिंहाश्वयोश्च केशेषु किञ्जल्के केसरोऽस्त्रियाम् । नागकेसरपुंनागबकुलेषु पुमानयम् ।' इति नानार्थरत्नमाला। सारिष्टैः-अरिष्टानि मरणसूचकान्यशुभचिह्नानि तैः सहितैरपि, चिरं जीवन्तीति चिरजीविनः तै चिरजीविभिः तादृशैरिति विरोधः। पक्षे, अरिष्टः काकः कङ्कः गृध्रः 'रीठा' इति लोकप्रसिद्धो वृक्षो वा तैः सहितैः। चिरजीविभिः दीर्घकालस्थायिभिः। काकः चिरं जीवतीति लोकप्रसिद्धिः। तथा च—'काकोऽपि जीवति चिरं च बलिञ्च भुङ्क्ते' इति अभियुक्ताः। 'अरिष्टो लशुने निम्बे फेनिले काककङ्कयोः। अरिष्टमशुभे तक्रे सूतिकागार आसवे। शुभे मरणचिह्ने च' इति मेदिनी। 'रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते। तल्लक्षणमरिष्टं स्यात् रिष्टमप्यभिधीयते।' मुनि इति मुनयः ऋषयः तैर्युतैः, मदनेन कामेन अधिष्ठितैः युक्तैः, मुनियुतानां मदनाधिष्ठितत्वं विरुद्धम्। पक्षे—मुनयः अगस्त्यवृक्षाः। मदनाः वृक्षविशेषाः। 'मुनिः पुंसि वसिष्ठादौ

बिभीतक (बहेड़ा) के वृक्ष दूर तक फैले हुए हैं। जप और वेदाध्ययनमें तत्पर तपस्वीजनके समान जपापुष्पसे युक्त और मालासे सुशोभित शृङ्गार के समान सुन्दर कृतमाल वृक्ष से विभूषित हैं। मदमत्त हाथियोंके गण्डस्थल विदीर्ण करनेके लिये उद्यत अतएव उठे हुए अयालवाले सिंहोंके समान उनमें अनेक नागकेसरके वृक्ष विद्यमान हैं। वे अरिष्ट-मरणसूचक योग सहित होते हुए भी चिरस्थायी हैं (वस्तुतः)

रूपशोभितम्। अदितिजठरमिव अनेकदेवकुलाध्यासितम्। पातालमिव महाबलिशोभितं भुजंगाधिष्ठितं च। ससुरालयमपि पवित्रम्, भोगियुक्तमप्यनुपद्रवम्।

तत्र सुरतरभसखिन्नप्रसुप्तसीमन्तिनीरत्नताटङ्कमुद्राङ्कितबाहुदण्डः, प्रच-

बङ्गसेनतरौ जिने।' इति मेदिनी। 'मदनः सिक्थके स्मरे। राढे वसन्ते धत्तूरे' इति हैमः। अदितीति—देवमाता तस्या जठरमुदरम्। अनेकेति—अनेकैः देवकुलैः दैववंशैः अध्यासितमधिष्ठितम्। पक्षे—देवकुलैः देवालयैः समन्वितम्। महाबलीति—महान्तो ये बलिनः बलवन्तः तैः, महाशूरैः युक्तम्। यद्वा—महद्भिः बलिभिः पूजोपहारैः युतम्। पक्षे—महता महानुभावेन बलिना विरोचनपुत्रेण दैत्येश्वरेण शोभितम्। भुजंगेति—भुजंगैः सर्पैः विटैश्च अधिष्ठितं च। 'भुजंगः सर्पषिङ्गयोः' इति हैमः। ससुरालयमिति—सुरायाः मद्यस्य आलयाः स्थानानि मद्यविक्रयस्थानानि तैः सहितमपि पवित्रं शुद्धम् इति विरोधः। परिहारपक्षे—सुराणां देवानाम् आलयाः मन्दिराणि तैः सहितम्। 'सुरो देवे सुरा चषकमद्ययोः' इति हैमः। भोगीति—भोगिभिः सर्पैः युक्तमपि अनुपद्रवम् उपद्रवरहितम् इति विरोधः। नहि ससर्पं स्थानमुपद्रवशून्यं भवितुमर्हति। परिहारपक्षे—भोगिना राज्ञा युतमतएव अनुपद्रवम्। राजयुक्ते हि नगरे उपद्रवा न सम्भाव्यन्ते।

सुरतेति—तत्र तस्मिन् पुरे। शृङ्गारशेखरो नाम राजा प्रतिवसति स्मेति संबन्धः। सुरते निधुवने यो रभसो वेगः, सुरतस्य रभस इति वा, तेन खिन्नानां श्रान्तानामतएव प्रसुप्तानां निद्रितानां सीमन्तिनीनां प्रमदानां रत्नताटङ्कानां मणिखचितकर्णभूषणानां मुद्राभिः चिह्नैः अङ्कितश्चिह्नितो बाहुदण्डो भुजदण्डो यस्य स तथोक्तः। 'रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः। 'सुरतभरखिन्न' इति पाठान्तरम्। तत्र सुरतस्य भरः अतिशयः तेनेत्यर्थः। 'ताटङ्कः कर्णभूषणम्' इत्यजयः। प्रचण्डेति—प्रचण्डानां

वे अरिष्ट-फेनिल वृक्षोंसे परिपूर्ण हैं। जिसप्रकार अदितिके उदरमें अनेक देवताओंके वंश उपस्थित थे इसी प्रकार उस नगरमें अनेक देवालय सुशोभित हो रहे हैं। (दैत्यराज) बलिसे सुशोभित एवं सर्पाधिष्ठित पातालके समान उसमें अनेक बलवान् मनुष्य रहते हैं तथा विटलोग भी मौजूद हैं। यद्यपि उसमें अनेक सुरालय—मद्यस्थान हैं तोभी वह पवित्र है क्योंकि (वस्तुतः) उसमें अनेक सुरालय—देवगृह हैं। वह सर्पोंसे युक्त होते हुए भी उपद्रव रहित है क्योंकि (वस्तुतः) उसमें अनेक ऐश्वर्यशाली मनुष्य निवास करते हैं।

उस नगरमें शृंगारशेखर नामक राजा निवास करता है। जिसके भुजदण्ड, रतिक्रीडाके कारण क्लान्त अतएव सोती हुई अङ्गनाओंके रत्नजटित कर्णफूलोंके निशानोंसे चिह्नित हो रहे हैं। उसके करकमल, महाबली शत्रुओंकी लक्ष्मीके केशपाश (जूडे) में गुंफित पुष्प-

एडप्रतिपक्षलक्ष्मीकेशपाशकुसुममालामोदसुरभितकरकमलः, प्रशस्तकेदार इव बहुधान्यकार्यसम्पादकः, पार्थ इव सुभद्रान्वितः सभीमसेनश्च, कृष्ण इव सत्यभामोपेतः सबलश्च, शृङ्गारशेखरो नाम राजा प्रतिवसति स्म। यो बलभित्, पावकः, धर्मराट्, निर्ऋतिः, प्रचेताः, सदागतिः, धनदः, शंकर इत्यष्टमूर्तिरप्यनष्टमूर्तिः।

समुद्धतानां बलदर्पितानामिति यावत्। प्रतिपक्षाणां शत्रूणां लक्ष्म्याः श्रियः केशपाशस्य कचसमूहस्य, तत्र विन्यस्तानामित्यर्थः। कुसुममालानां पुष्पदाम्नामामोदेन गन्धेन सुरभितं सुगन्धितं करकमलं हस्तपद्मं यस्य सः तादृश्यः। प्रशस्तेति- प्रशस्तः श्रेष्ठः यः केदारः क्षेत्रम् , स इव। बहुधान्येति-बहुधा अनेकप्रकारेण अन्येषां कार्याणि प्रयोजनानि संपादयति निष्पादयतीति बहुधान्यकार्यसम्पादकः, सर्वप्रकारेण प्रजारञ्जनतत्पर इति भावः। पक्षे-बहूनि बहुविधानि धान्यानि व्रीहियवादीन्येव कार्याणि तानि सम्पादयति उत्पादयतीति तथोक्तः। 'धान्यानां कार्यं फलस्वरूपम्' इत्यपरे। सुभद्रेति- सुभद्राणि शोभनानि मङ्गलानि, शोभना भद्राः गजविशेषाः काञ्चनानि वा तैरन्वितः। पक्षे, सुभद्रया एतदाख्यया कृष्णभगिन्या समुपेतः। 'भद्रः शिवे खञ्जरीटे वृषभे तु कदम्बके। करिजातिविशेषे ना क्लीबं मंगलमुस्तयोः। काञ्चने च स्त्रियां रास्नाकृष्णाव्योमनदीषु च।' इति मेदिनी। सभीमेति-भीमया भीषणया सेनया सहितः। पक्षे भीमसेनेन वृकोदरेण सहितः। सत्येति-सत्येन यथार्थभाषितया भया दीप्त्या मया लक्ष्म्या च उपेतः समन्वितः। पक्षे-सत्यभामया एतदाख्यया निजप्रेयस्या समुपेतः। सबलेति-बलेन सामर्थ्येन शक्त्या सहितः। पक्षे-बलरामेण सहितः। यः शृंगारशेखरः, बलभित्-बलं शत्रुसैन्यं भिनत्ति विदारयति हन्तीति यावत् , तथोक्तः। पक्षे बलभित् इन्द्रः। पावकः-अन्येषां पवित्रयिता, सदाचारो वा। पक्षे-अग्निः। धर्मेति-धर्मेण राजते शोभते इति धर्मराट्। राजतेः क्विप्। पक्षे, यमः। निर्ऋतीति-निः नास्ति, ऋतिः दुःखं यस्य स, सर्वदा सुखी-

---

मालाओंके गन्धसे सुगन्धित हो रहे हैं। जिस प्रकार उत्तम खेत अनेक प्रकारके अनाज उत्पन्न करता है इसीप्रकार वह भी प्रायः अन्य जनोंके कार्यसम्पादन करनेमें व्यस्त रहता था। सुभद्रा तथा भीमसेनसे अन्वित अर्जुनके समान वह उत्तम कल्याण तथा भयङ्करसेनासे समन्वित है। सत्यभामा (पत्नी) तथा बलरामसे सुशोभित कृष्णके समान वह सत्य, तेज तथा ऐश्वर्यसे विभूषित एवं सेनासम्पन्न है। वह शृङ्गारशेखर, शत्रु-बलका नाशक, पवित्रकर्ता, धर्मात्मा, स्पर्धाशून्य, सज्जनोंका आश्रय, दाता और कल्याणकारी होनेसे इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, वायु, कुबेर और महादेव इन आठकी मूर्ति धारण किये हुए थे; ऐसा होनेपर भी उसकी मूर्तियाँ आठ न थीं (वस्तुतः) उसकी मूर्ति नष्ट न थीं।

सुराणां पाताऽसौ स पुनरतिपुण्यैकहृदयो
ग्रहस्तस्यास्थाने गुरुरुचितमार्गे स निरतः।
करस्तस्यात्यर्थं वहति शतकोटिप्रणयितां
स सर्वस्वं दाता तृणमिव नरेन्द्रं विजयते॥

स्यर्थः। 'ऋतिर्गमनदुःखयोः।' इत्यजयः। निर्ऋतिः निरुपद्रवः। 'निर्ऋतिर्निरुपद्रवे। अलक्ष्म्यां दिक्पतौ चापि।' इति हैमः। पक्षे, दिक्पालेष्वन्यतमः। प्रचेताः-प्रकृष्टमुन्नतं महानुभावं चेतः मनो यस्य सः, उदारचेता इत्यर्थः। पक्षे, वरुणः। सदागतिः-सतां सज्जनानामागतिः आगमनस्थानम्। अधिकरणे क्तिन् बाहुलकात्। सतामागतिर्यत्रेति वा। पक्षे, पवनः। धनदः-धनं ददातीति धनदः। पक्षे, कुबेरः। शंकरः-शं कल्याणं करोतीति शंकरः। शंपूर्वात् करोतेः अच्। पक्षे, महादेवः। इत्यष्टेति इत्थमष्टौ मूर्तयः दिक्पालस्वरूपाणि यस्य स तादृशः सन्नपि अनष्टमूर्तिः-न विद्यन्ते अष्टौ मूर्तयो यस्य स तादृशः इति विरोधः। पक्षे, अनष्टा नाशमप्राप्ता शोभना मूर्तिः शरीरं तस्य तथोक्त इति परिहारः। 'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः' इति मनुवचनम्।

सुराणामिति—असौ इन्द्रः सुराणां मदिराणां पाता पानकर्ता। पाधातोः तृचि पातेति रूपम्। अतएव नलोकाव्ययेति षष्ठीप्रतिषेधो न। सुराणां देवानां पाता रक्षकः इति वास्तविकोऽर्थः। स पुनः श्रृङ्गारशेखरः अतिपुण्ये अत्यन्तं पवित्रे यागादौ कर्मणि एव हृदयं मनो यस्य तादृशः वर्तते। स कदापि जघन्ये कर्मणि न प्रवर्तते इति भावः। तस्य इन्द्रस्य अस्थाने अनुचिते परदारगमनादौ विषये गुरुः अधिकः ग्रहः आग्रहः वर्तते। वस्ततस्तु तस्य आस्थाने सभायां ग्रहः सूर्यादिष्वन्यतमः गुरुः बृहस्पतिः अस्तीत्यर्थः। स श्रृङ्गारशेखरः उचितमार्गे न्याय्ये पथि निरतः आसक्तः। यद्वा-तस्य इन्द्रस्य अस्थानेऽनुचितकर्मप्रवृत्तौ गुरुः उपदेष्टा बृहस्पतिः ग्रहः प्रतिबन्धको निवारक इति यावत् अस्ति। श्रृङ्गारशेखरस्य तु सर्वदा उचितमार्ग एव प्रवृत्तेः निवारणप्रयोजनमेव नास्तीति भावः। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' आस्थानी क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सदः' इत्यमरः। 'गुरुर्महत्यां गिरसे पित्रादौ धर्मदेशके। अलघौ दुर्जरे चापि।' इति हैमः। तस्य इन्द्रस्य करः हस्तः, शतकोटी नाम अनेककोटिपरिमितधनानां प्रणयितां याचकत्वं अत्यर्थमत्यन्तं वहति धारयति। वस्तुतस्तु-शतकोटौ वज्रायुधे प्रणयितां स्नेहं वहतीत्यर्थः। स श्रृङ्गारशेखरः सर्वस्वं यत्किञ्चि-

राज श्रृंगारशेखरने अपने गुणों द्वारा इन्द्र को नीचा दिखा दिया है क्योंकि वह इन्द्र केवल देवताओंका रक्षक एवं मद्यपी है और इस (श्रृंगारशेखर) का हृदय अत्यन्त पवित्र है। उसकी सभामें भगवान् बृहस्पति ग्रहरूप हैं तथा वह अनुचित स्थानमें (बेमौके) आग्रह करने लगते हैं और यह सर्वदा उचित मार्गमें ही प्रवृत्त होते हैं।

जीवाकृष्टिं स चक्रे मृधभुवि धनुषः शत्रुरासीद्गतासु-
 र्लक्षाप्तिर्मार्गणानामभवदरिबले तद्यशस्तेन लब्धम् ।
मुक्ता तेन क्षमेति त्वरितमरिबलैरुत्तमाङ्गैः प्रतिष्ठा

दपि स्वीयं वर्तते तत्सर्वं तृणमिव अविगणय्य दाता दानकर्ता। अत दाधातोः तृन्प्रत्ययः। अतएव 'नलोकेति' षष्ठीप्रतिषेधात् कर्मणि द्वितीया। इत्थं चासौ शृङ्गारशेखरः सुरेन्द्रं देवाधिपतिं विजयते पराभवति। 'विपराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदम्। अत्र 'सुरेन्द्रं विजयते' इति वाक्यार्थं प्रति पूर्ववाक्यार्थानां हेतुत्वेनोपन्यासात्, काव्यलिङ्गमलङ्कारः। 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' इति तल्लक्षणम्। 'सुराणां पातेत्यादौ' श्लेषात् श्लेषश्च तयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः। शिखरिणीछन्दः। 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।'

जीवेति—स शृङ्गारशेखरो नृपः मृधभुवि समराङ्गणे। 'मृधमास्कन्दनं संख्यं समीकं साम्परायकम्।' इत्यमरः। धनुषः चापस्य, जीवायाः प्रत्यञ्चायाः आकृष्टिमाकर्षणं चक्रे कृतवान्। जीवस्य प्राणानामाकर्षणं चक्रे इत्यपि गम्यते। शत्रुः अरिः, गतासुः—गता निष्क्रान्ताः असवः प्राणा यस्य तादृशः आसीत्, मृत इत्यर्थः। 'जीवः प्राणिनि वृत्तौ च वृक्षभेदे बृहस्पतौ। जीवाजीवान्तिकामौर्वीवचाशिञ्जितभूमिषु।' इति मेदिनी। अरिबले शत्रुसैन्ये, मार्गणानां बाणानां लक्षस्य वेध्यस्य लक्ष्यस्य आप्तिः प्राप्तिः अभवत्। लक्षस्य लक्षसंख्याकस्य याचकानां प्राप्तिरभवत् इति च गम्यते। तद्यशः तेषां शत्रूणां यशः कीर्तिः तेन राज्ञा शृङ्गारशेखरेण लब्धम्। दातुरेव यशःप्राप्तिरुचिता अत्र तु दातृणि शत्रुसैन्यानि यशोलब्धा च नृप इत्यसंगतिः। 'सद्यशः' इति पाठान्तरम्। सत् शोभनं यश इति तदर्थः। तेन राज्ञा क्षमा क्षान्तिः मुक्ता त्यक्ता, क्षमां विहाय क्रोधश्चक्रे इत्यर्थः। त्वरितं सत्वरं नृपस्य क्षमात्यागसमकालमेव अरिबलैः शत्रुसैन्यैः कर्तृभिः, उत्तमाङ्गैः शिरोभिः करणैः प्रतिष्ठा स्थितिः गौरवञ्चेति गम्यते। युक्तेत्यनुषज्यते। राज्ञः क्रोधसमकालमेव तेषां शिरांसि छिन्नानीत्यर्थः। अत्रापि क्षन्तित्यक्तुरधैर्यवृत्तेरेव प्रतिष्ठानाश उचितः, परमत्र राज्ञा क्षन्तिः मुच्यते शत्रुसैन्यैश्चप्रतिष्ठेति असङ्गतिः। 'उत्तमाङ्गं शिरःशीर्षम्' इत्यमरः। अत्र 'प्रविष्टेति' पाठान्तरं, क्षमा भूमिः प्रविष्टा। शत्रुसैन्यान्यनेन हतानि भूमौ न्यपतन्नित्यर्थः।' इति तद्व्याख्यानञ्च। वयं तु असङ्गतिपरिपोषाय 'प्रतिष्ठे'ति पाठमेव युक्त-

---

इन्द्र सर्वदा वज्र हाथमें लिये रहते हैं और उनका हाथ मांगनेके लिये सदा उद्यत रहता है, लेकिन यह तृण के समान अपना सर्वस्व दे डालते हैं।

युद्धभूमिमें इधर तो श्रृंगारशेखरने धनुषकी प्रत्यञ्चाका आकर्षण किया उधर (उसी समय) शत्रु निष्प्राण हो गये। इधर, शत्रुसेनामें (श्रृंगारशेखरके) बाणोंने लक्ष्यभेदन किया उधर त्रुओंका यश श्रृंगारशेखरने प्राप्त कर लिया। इधर, उसने क्षमाका परित्याग किया तो

पञ्चत्वं द्वेषिसैन्यैर्गतमवनिपतिर्नापसंख्यान्तरं सः ॥

यत्र राजनि राजनीतिचतुरे, चतुरम्बुधिमेखलां शासति वसुमतीम्, पितृकार्येषु वृषोत्सर्गः, शशिनः कन्यातुलारोहणम्, योगेषु शूलव्याघात-

मुत्पश्यामः। प्रविष्टेति पाठे न तादृशोऽसङ्गतिपरिपोषः। द्वेषिसैन्यैः शत्रुबलैः पञ्चत्वं पञ्चसंख्याकत्वं, मरणञ्चेति गम्यते। गतं लब्धम्। भावे क्तः। स अवनिपतिः राजा संख्यान्तरम् अन्यां संख्यां, युद्धान्तरञ्चेति गम्यते न आप प्राप्तवान्। अद्वितीयत्वात् एक इत्येवव्यपदेशमभजत, सर्वेषां शत्रूणामेकदैव निहतत्वात् युद्धान्तरस्य प्रयोजनं च नाभूदित्यर्थः। 'पञ्चता पञ्चभावे स्यात् मरणेऽपि च योषिति।' इति मेदिनी। 'संख्यमाहवे। संख्यैकादौ विचारे च।' इति हैमः। अत्रासंगतिरलंकारः। 'विरुद्धं भिन्नदेशत्वं कार्यहेत्वोरसङ्गतिः।' इति तल्लक्षणम्। स्रग्धरा छन्दः। 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।'

यत्रेति—यत्र यस्मिन् राजनीतौ चतुरे निपुणे शृङ्गारशेखरनृपतौ। चतुरिति-चत्वारः अम्बुधयः सागरा मेखला काञ्ची यस्याः तथोक्तां चतुःसमुद्रपर्यन्तामित्यर्थः। वसुमतीं भुवं शासति परिपालयति सति। तस्य राज्य इति भावः। एवं पर एवमेव व्यवस्थितं व्यवस्थाविशिष्टमेव बभूवेति संबन्धः। पितृकार्येषु—पितृसंबन्धिक्रियासु। वृषेति-वृषस्य वृषभस्य उत्सर्गः मोचनं, स्वातन्त्र्यविचरणाय परित्यागः। न तु जनेषु वृषस्य धर्मस्य उत्सर्गः त्यागः, उल्लङ्घनम् इति। अत्र सर्वत्र परिसंख्यालंकारः। 'प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत्। तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा। परिसंख्या।' इति तल्लक्षणम्। अत्र प्रश्नं विनाऽऽर्थोऽयमलंकारः। शशिनः चन्द्रमसः। कन्येति-कन्या तुला चेति राशिद्वयम्। तयोः आरोहणं संक्रमणम्। न तु राष्ट्रे कन्यानां कुमारीणां तुलारोहणं घटारोहणम्। कन्याविषये तुलारोहणम् इति वा। कन्यारोहणं कन्यागमनं तुलारोहणम् इति वा। योगेषु—विष्कम्भादिषु सप्तविंशतिसंख्याकेषु ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धेषु। शूलेति शूलव्याघातौ योगविशेषौ तयोश्चिन्ता विचारः न तु प्रजासु शूलेन शूलायुधारोपणेन व्याघातस्य व्यापादनस्य चिन्ता

उधर शत्रु-सेनाके मस्तकोंने स्थिति छोड़ दी—वे कटकर पृथक् जा पड़े। शत्रुसेनामें पञ्चत्व (पांचसंख्या)—मृत्यु उपस्थित हुई परन्तु शृंगारशेखरको अन्यसंख्या, अन्य युद्ध प्राप्त न हुआ। क्योंकि एक ही युद्धमें समस्त शत्रुओंके विनष्ट हो जानेसे कोई युद्ध करनेवाला ही न रहा।

राजनीतिमें चतुर, समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके अधिपति जिसके शासनकालमें पितृकार्यमें ही बैल-सांड छोड़ा जाता था परन्तु प्रजामें वृष-धर्मका परित्याग न था। चन्द्रमा ही कन्या और तुलाराशि पर गमन करता था परन्तु प्रजामें कोई भी जन तुलापर नहीं चढ़ता था क्योंकि कोई इस प्रकारका अपराध ही न करता था और न कोई मनुष्य कन्याके साथ सम्भोग हो

चिन्ता, दक्षिणवामकरणं दिङ्निश्चयेषु, दानच्छेदः करिकपोलेषु, शरभेदोदधिषु, शृङ्खलाबन्धो वर्णग्रथनासु, उत्प्रेक्षाक्षेपः काव्यालङ्कारेषु, लक्षदानच्युतिः सायकानां, क्विपां सर्वविनाशः, कोषसंकोचः कमलाकरेषु,

---

आलोचना, तादृगतिमहापराधाभावात्। 'शूलोऽस्त्रीरोग आयुधे। मृत्युकेतनयोगेषु' इति मेदिनी। दिङ्निश्चयेषु-दिशां निर्धारणेष्वेव। दक्षिणेति इयं दक्षिणा इयं वामेति विभागकरणम्। न तु प्रजासु राष्ट्रेषु वा दक्षिणानां चतुराणां वामकरणं विरुद्धाचरणम्। 'दक्षिणस्य वामस्य च हस्तस्य पादस्य कर्णस्य वा करणं छेदनम्। कृञ् हिंसायां, भावे ल्युट्। 'दक्षिणः सरले प्राज्ञे' इति भागुरिः। 'वामं सव्ये प्रतीपे च द्रविणे चातिसुन्दरे।' इति विश्वः। दानेति-दानस्य मदवारिणः छेदः अभावः करिकपोलेषु हस्तिगण्डस्थलेषु न तु प्रजासु दानस्य वितरणस्य विच्छेदः। शरभेदः-शरस्य दध्यग्रस्य भेदः मथनम्। न तु प्रजासु शरेण बाणेन भेदो विदारणम्। 'शरस्तु तेजने बाणे दध्यग्रे ना शरं जले।' इति विश्वः। 'शरभेदः इषुधिषु' इति पाठे 'शरभेदः बाणानां बहुविधत्वमनेकत्वं वा। इषुधिषु तूणीरेषु। शृङ्खलेति-शृंखलाबन्धो नाम अलंकारशास्त्रप्रसिद्धो वर्णावृत्तिरूपो रचनाविशेषः। पूर्वपादस्यान्तिमौ वर्णावुत्तरपादस्यादितः कृत्वा पद्यरचना शृङ्खलाबन्ध उच्यते। स च वर्णग्रथनासु अक्षररचनासु। न तु प्रजानां शृंखलया निगडेन बन्धनमासीत्। 'शृङ्खला त्रिषु सन्दर्भविशेषे निगडेऽपि च।' इत्यजयः। उत्प्रेक्षेति-उत्प्रेक्षा आक्षेपश्चालंकारः। 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्, इति। वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेषप्रतिपत्तये। निषेधाभास आक्षेपः।' इति। काव्यालङ्काराः-काव्येषु वर्णिता अलंकाराः तेषु। न तु उत्प्रेक्षा अनवधानम्। आक्षेपः भर्त्सनम्। प्रजासु आसीत्। लक्षेति-लक्षस्य लक्ष्यस्य दानं खण्डनं वेधनमिति यावत्, तस्मात् च्युतिः भ्रंशः, सायकानां बाणानामेवासीत् न तु प्रजासु लक्षस्य लक्षसंख्याकद्रव्यस्य दानस्य त्यागस्य च्युतिः भ्रंशः अभाव इति यावत्, आसीत्। क्विपामिति-क्विपः प्रत्ययाः, येषामित्संज्ञालोपादिना सर्वथाऽश्रवणं जायते। तेषां सर्वविनाशः सर्वात्मना लोपः, न तु प्रजानां सर्वात्मना मरणमधोगतिर्वा।

करता था। विष्कम्भ आदि योगमें ही शूल और व्याघात नामक योग की चिन्ता-विचार होता था, परन्तु प्रजामें शूलीपर चढ़ाकर मारे जानेकी चिन्ता नहीं होती थी। दिशाओंके निश्चय करनेमें ही 'यह इससे दक्षिण अथवा वाम है' इत्यादि व्यवहार होता था परन्तु प्रजामें दक्षिण अथवा वाम हस्त-पादादिका छेदन नहीं किया जाता था। हाथियोंके गण्डस्थलमें ही दान-मदका विच्छेद पाया जाता था, प्रजामें दानका अभाव न होता था। दधिके अग्रभागका ही नाश होता था, प्रजामें बाणद्वारा किसी का नाश नहीं किया जाता था। काव्योंमें प्रसिद्ध मुरजबन्ध आदि वर्णरचनाओंमें ही शृंखलाबन्ध (एक बन्धविशेष) किया जाता था, प्रजामें जंजीरसे किसीको नहीं बांधा जाता था। काव्यलङ्कारोंमें ही उत्प्रेक्षा तथा आक्षेप (एत-

न जानेषु जातिविहीनता मालासु न कुलेषु, शृङ्गारहानिः जरत्करिषु न जनेषु, दुर्वर्णयोगः कटकादिषु न कामिनीकान्तिषु, गान्धारविच्छेदो रागेषु न पौरवनितासु, मूर्च्छाधिगमो गानेषु न प्रजासु, स्वर्माभावो नीच-

कोशेति कोशानां कुड्मलानां संकोचो मुकुलीभावः, कमलाकरेषु सरोवरेषु न तु जनेषु कोशस्य धनसंचयस्य संकोचः अल्पीभावः। इतः परं शाब्दी परिसंख्या द्रष्टव्या। 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधाने दलवित्तयोः' इत्युत्पलः। जातीति-मालासु पुष्पस्रक्षु एव जातिहीनता मालतीपुष्पराहित्यमासीत्, शरत्कालादिसर्वेषु कालेषु मालतीपुष्पाभावात् न तु कुलेषु वंशेषु जातिहीनता ब्राह्मणत्वाद्यपकर्षः आसीत्। सर्वेऽपि सत्कुलप्रसूता उत्तमजातयश्चेति भावः। शृङ्गारेति-शृङ्गारस्य गजभूषणस्य हानिः परिधानाभावः, जरत्करिषु वृद्धहस्तिषु अभवत्, न तु जनेषु लोकेषु शृङ्गारहानिः शृङ्गाररसविनाशः अभवत्। 'रसे नाट्ये च शृङ्गारः करिमण्डन एव च' इति विश्वः। दुर्वर्णेति-दुर्वर्णं रजतं तस्य योगः संसर्गः, कटकादिषु भूषणेषु, न तु कामिनीकान्तिषु प्रमदालावण्येषु दुर्वर्णस्य कुत्सितवर्णस्य योगः आसीत्' सर्वा हि कामिन्यः कान्ति-

रजतं रूप्यम्' 'कर्णिका कर्णभूषणम्' इति चामरः। गान्धारेति—गान्धारस्य स्वरविशेषस्य विच्छेदः अभावः, रागेषु षड्जादिस्वरेषु न तु पौरवनितासु नगराङ्गनासु गान्धारस्य सिन्दूरस्य विच्छेदः केशेषु दानाभावः आसीत्। तद्राज्ये कस्या अपि वैधव्याभावात्। सभर्तृका हि धम्मिले सिन्दूरं पातयन्ति इत्याचारः। 'गान्धारो रागसिन्दूरस्वरेषु नीवृदन्तरे।' इति हैमः। 'गान्धारः रतिः' इति केचित्। मूर्च्छेति—मूर्च्छायाः स्वरारोहावरोहक्रमभेदस्य अधिगमः प्राप्तिः, गानेषु गीतेषु न तु प्रजासु मूर्च्छाधिगमः संज्ञाविनाशः सम्मोहः आसीत्। गाने हि सप्तविंशतिः मूर्च्छना भवन्ति।

नामक अलंकार विशेष) होते थे, प्रजामें अनवधानताके कारण किसीकी निन्दा न होती थी। बाण ही लक्ष्यको काटकर गिरा देते थे, प्रजामें लाखोंके दानसे कोई विरत न होता था। क्विप् प्रत्ययका ही सर्वविनाश-पूर्णलोप होता था, परन्तु पक्षियोंका सर्वनाश न होता था। कमलाकरोंमें ही कलिका-संकोच पाया जाता था, प्रजामें कोष-खजाना-का संकोच-न्यूनता न होती थी। निकृष्ट कुलोंमें ही निकृष्ट जाति पाई जाती थी, पुष्पमालाओंमें जाति-पुष्पोंकी कमी न रहती थी। वृद्ध हाथियोंमें ही शृंगार-गजभूषण-का अभाव देखा जाता था परन्तु मनुष्योंमें शृंगाररसकी कमी न पाई जाती थी। कटक-कड़ा-आदि भूषणोंमें ही दुर्वर्ण-रजत-का सम्पार्क रहता था परन्तु कामिनियोंकी कान्ति कभी फीकी न पड़ती थी। गानोंमें ही गान्धारस्वरका विच्छेद पाया जाता था, नागरिक ललनाओंमें सिन्दूरका विच्छेद न होता था क्योंकि उसके राज्यमें कोई भी विधवा ही न होती थी। गानेमें मूर्च्छा-स्वरावरोहक्रम-प्राप्ति होती थी, प्रजामें मूर्च्छा-संज्ञानाश प्राप्ति नहीं होती थी नीच सेवकोंमें ही परम्परागत

सेवकेषु न परिजनेषु, मलिनाम्बरत्वं निशासु न जनेषु, चलरागता गीतेषु न विदग्धेषु, वृषहानिः निधुवनलीलासु न पौरेषु, भङ्गुरत्वं रागविकृतिषु न चित्तेषु, अनङ्गता कामदेवे न परिजने, मारागमो यौवनो-

तदुक्तं—सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः। इति। षड्जगान्धारमध्यमप्रभृतिषु स्वरान्तरगमनं स्वरसारणा मूर्च्छनोच्यते। खर्मेति—खर्मस्य पौरुषस्य अभावः, नीचसेवकेषु निकृष्टभृत्येषु आसीत् तेषां भीरुत्वात्। न तु परिजनेषु कुटुम्बिवर्गेषु खर्मस्य क्षौमस्य अभावः अभवत् सर्वेषां धनसम्पन्नत्वात्। 'खर्मः क्षौमे पौरुषे च' इत्यमरः। खर्मः परम्पराशुद्धिः। 'खर्मः परम्पराशुद्धौ वस्त्रभेदेऽपि पौरुषे' इति धरणिः। मलिनेति—मलिनमम्बरमाकाशं यासु ता मलिनाम्बराः तासां भावः मलिनाम्बरत्वं, निशासु रात्रिषु अभवत् न तु जनेषु मलिनवस्त्रताऽऽसीत्। चलेति—चलः कम्पिताख्यगमकस्वरविशिष्टः रागः येषां तेषां भावः चलरागता गीतेषु गानेषु आसीत् न तु विदग्धेषु दाक्षिण्ययुक्तेषु नरेषु चलरागता अस्थिरानुरागत्वमासीत्। 'रागः स्याल्लोहितादिषु। गान्धारादौ क्लेशादिकेऽनुरागे मत्सरे नृपे' इति हैमः। वृषेति—वृषस्य वीर्यस्य हानिः विनाशः क्षरणमिति यावत्। निधुवनलीलासु सुरतक्रीडासु जायते न तु पौरेषु पुरवासिषु वृषस्य धर्मस्य हानिः अनुष्ठानाभावः जायते। 'ज्येष्ठाम्बुधर्मशुक्रेषु स्मृतोऽसौ वृषभे वृषः' इत्युत्पलः। भङ्गुरत्वं—वक्रगतिविशेषः रागविकृतिषु मालवादिरागविस्तरेषु दृश्यते न तु चित्तेषु मनस्सु भङ्गुरत्वं कुटिलत्वमभवत्। अनङ्गता—अनङ्गता अङ्गराहित्यं कामदेवे मन्मथेऽभवत् न तु परिजने सेवकादिषु अनङ्गता हर्षाभावः आसीत्, तेषां प्रभुभ्यो नित्यसन्तुष्टत्वात्। 'क्षिप्रे च पुनरर्थे च सङ्गमासूययोस्तथा हर्षे सम्बोधने चैव ह्यङ्गशब्दः प्रयुज्यते।' इति यद्वा परिजनपक्षेऽपि अङ्गराहित्यमित्येवार्थः, सर्वेऽपि परिजनाः सम्पूर्णाङ्गा एवेति भावः। अङ्गम् उपायः सहाय इत्यर्थः। अनङ्गता असाधनत्वम्। 'अङ्गं गात्रे प्रतीकोपाययोः' इति मेदिनी। मारेति—मारस्य मन्मथस्य आगमः आविर्भावः, यौवनस्य तारुण्यस्य उदयेषु उत्पत्तिषु न तु प्रकृतिषु प्रजासु मारस्य शत्रोः विघ्नस्य मरणस्य वा आगमः

अशुद्धि पाई जाती थी, परिजनोंमें खर्म-पौरुष-का अभाव न था। रात्रियोंमें ही आकाशमें अस्वच्छता दिखाई पड़ती थी, मनुष्योंमें किसीके वस्त्र मलिन दिखाई न पड़ते थे। गानोंमें ही रागोंकी चञ्चलता मालूम होती थी परन्तु विदग्ध पुरुषोंमें राग-प्रेम-में चञ्चलता-अस्थिरता-न थी। काम-केलियोंमें ही वीर्य-स्खलन होता था, पुरवासियोंमें धर्मका परित्याग न देखा जाता था। राजविकारोंमें ही भङ्गुरता-उतार-चढ़ाव-पाई जाती थी, किसीके मनमें कुटिलता न रहती थी। कामदेवमें ही देह-शून्यता पाई जाती थी किन्तु परिजनोंमें अनङ्गता-असंबद्धता न थी। यौवनके आरम्भकालमें मार-कामदेवका उदय देखा जाता था, प्रजाओंमें मार-हत्या का उदय न था। रतिकालमें ही द्विज-दन्त-क्षत देखा जाता था, प्रजाओंमें

दयेषु न प्रकृतिषु, द्विजाघातः सुरतेषु न प्रजासु, रसनाबन्धो रतिकलहेषु न दानानुमतिषु, अधररागता तरुणीषु न परिजनेषु, कर्तनमलकेषु न पुरन्ध्रीषु, निस्त्रिंशत्वमसिषु न मनस्सु, करवालनाशो योधेषु न जनपदेषु, परमेवं व्यवस्थितम्।

तस्य चाभूदेवंविधस्य राज्ञो महिषी दिग्गजमदरेखेवानन्दितालिगणा,

प्राप्तिः। यद्वा प्रकृतिपक्षे मारागमः आभिचारकं शास्त्रम्। द्विजेति–द्विजैः दन्तैः आघातः ताडनं क्षत इति यावत्, सुरतेषु मैथुनेषु अभवत् न तु प्रजासु द्विजानां ब्राह्मणानामाघातः ताडनमभवत्। 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यमरः। रसनेति–रसनया काञ्च्या बन्धो बन्धनं रतिकलहेषु सुरतकोपेषु न तु दानस्य वितरणस्य अनुमतिषु सम्मतिषु रसनाया जिह्वायाः बन्धः अप्रवृत्तिः, मौनावलम्बनम् इति यावत् अभवत्। 'रसनं निस्वने स्वादे रसना काञ्चिजिह्वयोः' इत्यजयः। अधरेति—अधरे ओष्ठे रागः रक्तिमा यासां ताः अधररागाः तासां भावः अधररागता, ओष्ठलौहित्यं तरुणीषु युवतिषु आसीत् न तु परिजनेषु अधरः निकृष्टः रागः स्नेहः येषां तेषां भावः, स्नेहराहित्यमित्यर्थः, आसीत्। 'अधरस्तु पुमानोष्ठे हीनेऽनूर्ध्वेऽपि वाच्यवत्' इति मेदिनी। कर्तनमिति—कर्तनं छेदनम् अलकेषु केशेषु, न तु पुरन्ध्रीषु स्त्रीषु कर्तनमनुरागविच्छेदनमासीत्। अलकपक्षे 'कर्तनं परस्परवियोजनम्' इति परे। कर्तनं सूत्रोत्पादनम्, 'कर्तनं च द्वयोश्छेदे नारीणां सूत्रनिर्मितौ' इति विश्वः। इति दर्पणकारः। निस्त्रिंशत्वमिति—निर्गताः त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशाः, तेषां भावः निस्त्रिंशत्वं, त्रिंशदङ्गुल्याधिकपरिमाणवत्त्वम्, असिषु खड्गेषु न तु मनस्सु निस्त्रिंशत्वं क्रूरत्वं कृपणत्वं वा अभवत्। 'निस्त्रिंशः क्रूरखड्गयोः' इत्यजयः। करवालेति—करवालेन खड्गेन नाशः मरणं योधेषु भटेषु। न तु जनपदेषु देशेषु करस्य राजग्राह्यभागस्य हस्तस्य वा, बालानां केशानां वबयोरभेदात् बालानां शिशूनां वा नाशः अभवत्।

तस्य चेति—एवंविधस्य एतादृशस्य पूर्वोक्तप्रकारेण वर्णितस्य तस्य शृंगार-

---

ब्राह्मणोंकी हत्या दिखाई नहीं देती थी। रतिसंबन्धि-कलहोंमें ही रसना–काञ्ची–द्वारा (प्रियतमोंका) बन्धन होता था, दानसंबन्धि–अनुमतियोंमें रसना–जिह्वा–का बन्धन न था–दान देनेमें किसीकी जिह्वा बन्द न होती थी। युवतियोंके अधरोष्ठोंमें ही लालिमा देखी जाती थी, परिजनोंमें अधर–नीच जनोंके प्रति अनुराग दिखाई न पड़ता था। केशोंमें ही कर्तन–छेदन होता था, स्त्रियोंमें कर्तन–न होता था। तलवारोंमें ही निस्त्रिंशभाव–तीस अङ्गुलों से अधिक–देखा जाता था, पुरुषों के मन में निस्त्रिंशभाव क्रूरता और कृपणता न थी। केवल योधाओंमें ही तलवार द्वारा नाश होना व्यवस्थित था प्रजाओंमें कर–राजग्राह्यभाग अथवा हाथ का नाश एवं बालकों की हत्या नहीं होती थी।

समस्त अन्तःपुरकी शिरोमणिभूता अनङ्गवती नामक उसकी रानी थी। जो, भ्रमरमण्ड-

पार्वतीव सुकुमारा चन्द्रलेखालङ्कृता च, वनराजिरिव नवमालिकोद्भासिता सचित्रका च, अप्सरःसंहतिरिव संहतसुकेशी समञ्जुघोषा च, सर्वान्तःपुरप्रधानभूता अनङ्गवती नाम । तयोश्च मध्यमोपान्ते वयसि वर्तमानयोः

शेखरस्य राज्ञः सर्वान्तःपुरप्रधानभूता सकलावरोधजनमुख्या अनङ्गवती नाम महिषी राज्ञी अभवदिति सम्बन्धः । दिग्गजेति—दिग्गजस्य दिक्करिणः मदरेखा दानपंक्तिः । आनन्दितेति—आनन्दितः प्रहर्षितः आलिगणः सखिसमूहो यया सा तथोक्ता, पक्षे अलिगणः भ्रमरसमूहो यया सा तादृशी । 'आलिः सखी वयस्या च ।' 'षट्पदभ्रमरालयः ।' इत्यमरः । सुकुमारा—सौकुमार्ययुक्ता । पक्षे शोभनः कुमारः कार्तिकेयः यस्याः सा तथोक्ता । 'कुमारोऽश्वानुचारके युवराजे शिशौ स्कन्दे शुके वरुणपादपे ।' इति हैमः । 'सुकुमारी' इत्यपि प्रयोगदर्शनात् सुकुमारशब्दो बाह्वादिषु द्रष्टव्यः । चन्द्रेति—चन्द्रलेखया नखक्षतविशेषेण, चन्द्रकलाकारेण शिरसि धार्यमाणेन भूषणविशेषेण वा अलङ्कृता भूषिता । पक्षे-चन्द्रलेखया चन्द्रकलया भूषिता । 'ग्रीवायां स्तनपृष्ठे च वक्रो नखपदसंनिवेशोऽर्धचन्द्रकः । सर्वस्थानेषु नातिदीर्घालेखा' इति कामशास्त्रम् । नवमालिकेति—नवमालिकया नूतनमलया उद्भासिता शोभिता, पक्षे-सप्तलाख्यलताविशेषेण उद्भासिता । चित्रकेति—चित्रकेण तिलकेन सहिता सचित्रका, पक्षे, चित्रकैः वृक्षविशेषैः सहिता । 'चित्रकं तिलके ना तु व्याघ्रभिच्चक्षुपाठिषु ।' इति मेदिनी । सचित्रकाननेति पाठान्तरे सचित्रकमाननं मुखं यस्याः सा । पक्षे चित्रैः विचित्रैः काननैः सहेति व्याख्यानम् । अप्सरःसंहतिः—अप्सरःसमूहः । संहतेति—संहताः सुसंश्लिष्टाः सघना इति यावत् । शोभनाः केशा यस्याः सा संहतसुकेशी । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' इति ङीष् । समञ्जिति—मञ्जुः मनोहरः घोषः शब्दः तेन सहिता, मधुरभाषिणीत्यर्थः । पक्षे—सुकेशीमञ्जुघोषे अप्सरसौ । तयोः कथमपि दैववशात् भाग्यवशात् वासवदत्ता नाम तनया अभूत् इति संबन्धः । मध्यमेति—मध्यमस्य मध्यवयसः उपान्ते प्रान्ते, यौवनावसान इत्यर्थः । वयसि अवस्थाविशेषे । त्रिभुवनेति—त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विलोभनीया स्पृहणीया आकृतिः आकारः

लीको आनन्दित करनेवाली दिग्गजोंके कपोलस्थलकी मदलेखाके समान, अपनी सखियोंको आनन्दित करती थी और जो कुमार-कार्तिकेय-युक्त चन्द्रकला से विभूषित पार्वतीके समान अत्यन्त कोमल थी । सप्तलाख्य लता और चित्रक वृक्षसे युक्त वनसमूहके समान नवीन माला और तिलकसे सुशोभित थी, सघन सुन्दर केश और सुन्दर शब्दसे युक्त अप्सरा-समूहके समान स्वच्छ केशपाश और मधुर शब्दसे युक्त थी, उन दोनों के यौवनके उतार पर किसीप्रकार भाग्यवश वासवदत्ता नामक पुत्री उत्पन्न हुई । उसकी आकृति तीनों

12565 2

कथमपि दैववशात् त्रिभुवनविलोभनीयाकृतिः, पुलोमतनयेवानन्दित-सहस्रनेत्रा, मेरुगिरिमेखलेव सुजातरूपा, शरन्निशेव उल्लसत्तारका, सत्परिषदिव अच्छिद्रद्विजपंक्तिभूषिता, राक्षसकुललक्ष्मीरिव माल्यवत्सुकेशशोभिता, तनयाऽभूद्वासवदत्ता नाम। अथ सा रावणभुजवन इव उल्लसितगोत्रे, विन्ध्याचल इव मदनालंकृते, पारावार इव संजातलावण्ये,

सौन्दर्यमिति यावत् यस्याः सा तादृशी। पुलोमतनया—शचीव। 'पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमरः। आनन्दितेति—आनन्दितानि संजातानन्दानि प्रहर्षितानि पश्यतां सहस्राणां जनानां नेत्राणि नयनानि यया सा तादृशी। यद्वा, पश्यतां सहस्राणि नेत्राणि यया सा। पक्षे—आनन्दितः सहस्रनेत्रः इन्द्रः यया सा। मेरु इति—मेरुगिरेः सुमेरुपर्वतस्य मेखला कटकप्रदेश इव। सुजातेति—सुजातं सुसम्पन्नं रूपं सौन्दर्यं यस्याः सा तथोक्ता—अत्यन्तं रूपवतीत्यर्थः। पक्षे तु शोभनं जातरूपं सुवर्णं यस्यां सा तादृशी। 'चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने।' इत्यमरः। उल्लसदिति—उल्लसन्त्यः शोभमानाः तारकाः कनीनिका यस्यां सा तथोक्ताः। पक्षे—तारका नक्षत्रम्। शरन्निशानां निर्मलत्वात्तारकानामुल्लासमानत्वम्। 'तारको दैत्यभित्कर्णधारयोर्न द्वयोर्दृशि। कनीनिकायामृक्षे च न पुमांस्त्रातरि त्रिषु।' सत्परिषत्—सतां सज्जनानां परिषत् सभा, सती शोभना वा परिषत् सत्परिषत्। अच्छिद्रेति—अच्छिद्रा निर्विवरा निबीडेत्यर्थः। या द्विजानां दन्तानां पङ्क्तिः तथा भूषितालङ्कृता। पक्षे, अच्छिद्राणां निर्दोषाणां ब्राह्मणानां पङ्क्त्या भूषिता। 'छिद्रं विवररन्ध्रवत् गर्ते दोषे' इति हैमः। माल्येति—मालायै हितानि माल्यानि पुष्पाणि, तद्वद्भिः सुकेशैः शोभनैः कुन्तलैः शोभिता। दाक्षिणात्ययोषितः केशबन्धे पुष्पाणि समासञ्जयन्ति दृश्यते। पक्षे, माल्यवत्सुकेशो राक्षसौ। तत्र माल्यवान् दशग्रीवमातुलः प्रसिद्ध एव। रावणेति—रावणस्य दशकण्ठस्य भुजवनं बाहुसमूहः तस्मिन्निव। उल्लसितं वर्धितं गोत्रं बोधः ज्ञानं येन तत् तस्मिन्। यौवनाविर्भावे क्रमेण व्यावहारिकं ज्ञानं वर्धत एव। यद्वा उल्लसितं शोभितं गोत्रं कुलं येन तस्मिन् तथोक्ते। पक्षे, उल्लसितः उत्थापितः गोत्रः कैलाशपर्वतो येन स तादृशे। 'गोत्रा भूगव्ययोर्गोत्रः शले गोत्र कुलाख्ययोः। संभावनीयबोधे च काननक्षेत्रवर्त्मसु।' इति मेदिनी। मदनेति—मदनेन कामेन, पक्षे वृक्षविशेषेण अलंकृतं तस्मिन्। पारावारः—समुद्रः। संजातेति—

लोकको लुभानेवाली थी। वह इन्द्रको प्रसन्न करनेवाली पुलोमपुत्री-शची के समान (दर्शकोंके) हजारों नेत्रोंको आनन्दित करती थी। सुवर्णमयी सुमेरुकी मेखलाके समान सुन्दर नितम्बवाली, विकसित तारावाली शरद्कालकी रात्रिके समान मनोहर कनीनिकावाली, निर्दोष द्विजपंक्ति-ब्राह्मणसमूह-से भूषित सुन्दर सभाके समान छिद्ररहित दन्तपंक्तिसे सुशोभित थी, माल्यवान् और सुकेशसे समन्वित राक्षस कुलकी लक्ष्मीके समान पुष्पमालासे विभूषित केशवाली, अनन्तर पर्वत उठानेवाली रावणभुजाके समान वह अपने वंशको

नन्दनवन इव सदाकल्पतरुणाभिनन्दिते, पवन इव सुमनोहरे, परिणाममुपयात्यपि यौवने परिणयपराङ्मुखी तस्थौ ।

अथैकदा विजृम्भमाणसहकारकोरकनिकुरम्बनिपतितमधुकरमालामदकलहुंकारजनितपथिकजनसज्वरः, कोमलमलयमारुतोद्धूतचूतप्रसव-

---

संजातं लावण्यं कान्तिः यस्मिन् येन वा तत्, तत्रोक्ते। पक्षे, लवणस्य भावो लावण्यं क्षारत्वम् । 'मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वामिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते' इत्युज्ज्वलनीलमणिः। सदेति—सन् उत्तम आकल्पः वेषः येषान्ते सदाकल्पास्तादृशैः तरुणैः युवभिः अभिनन्दिते प्रशंसिते। पक्षे, सदा सर्वदा कल्पतरुणा कल्पवृक्षेण अभिनन्दिते स्वसन्निधानेन श्लाघिते। 'आकल्पवेशौ नेपथ्यम्' इत्यमरः। सुमन इति—सुमनोहरे अत्यन्तं रम्ये, यद्वा, सुमनसः धीरानपि हरति वशीकरोतीति सुमनोहरं तस्मिन्। यौवने हि धीरा देवा अपि वा विषयैराकृष्यन्ते। पक्षे, सुमनसः कुसुमानि हरतीति तस्मिन् तादृशे। 'सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्रियां, ना धीरदेवयोः'। परिणामम्—परिपाकं पूर्णतामित्यर्थः। परिणयेति—परिणये विवाहे पराङ्मुखी विमुखी निस्पृहा। 'परिणयोद्वाहोपयमाः पाणिपीडनम्' इत्यमरः। तस्थौ स्थितवती।

अथेति—अथ अनन्तरम् एकदा वसन्तकाल आजगामेति संबन्धः। वसन्तकालमेव वर्णयति विजृम्भमाणेत्यादिना। विजृम्भेति—विजृम्भमाणानां विकसतां सहकारकोरकाणाम् आमकलिकानां निकुरम्बेषु समूहेषु निपतितानामितस्ततः आगत्योपविष्टानां मधुकरमालानां मधुपश्रेणीनां मदकलः मदेन हर्षातिशयेनाव्यक्तमधुरः यः झङ्कारः 'झं' इत्याकारको ध्वनिः स एव हुंकारः तर्जनशब्दः तेन करणभूतेन जनितः उत्पादितः पथिकजनानां पन्थानां संज्वरः संतापो येन स तथोक्तः। यद्वा हुंकारेण (कर्तृभूतेन) जनितः संज्वरो यस्मिन् सः तादृशः। 'आम्रश्चूतो रसालोऽसो सहकारोऽतिसौरभः।' 'कलिका कोरकः पुमान्।' 'निकुरम्बं कदम्बकम्' 'संतापः संज्वरः समौ।' इत्यमरः। कोमलेति—कोमलेन सुधीरेण मलयमारुतेन दक्षिणपवनेन उद्धूतानां कम्पितानां चूतप्रसवानां सहकारपुष्पाणां रसस्य मकरन्दस्य आस्वादेन पानेन कषायः सुमधुरः कण्ठः

उल्लसित करती थी। मदन नामक वृक्षसे अलंकृत विन्ध्याचल पर्वतके समान कामदेव द्वारा संतप्त, क्षारत्व उत्पन्न हुए समुद्र के समान लावण्य उत्पन्न करनेवाला, सदा कल्पवृक्षसे अभिनन्दित नन्दनवनके समान सर्वदा उत्तम वेश प्रशंसित, आह्लादक पवनके समान धीर पुरुषके मनको हरनेवाला यद्यपि उसका यौवन दिनोंदिन बढ़ रहा था तोभी वह विवाह नहीं करना चाहती थी।

अनन्तर एक समय वसन्त समय उपस्थित हुआ। उस समय, आम की कलियाँ खिल रही थीं, उन पर भ्रमर-पंक्ति आ-आकर बैठती थीं। उनके मद-हर्षाधिक्य-से किये हुए झंकाररूपी हुंकारसे पथिकोंको अत्यन्त सन्ताप होता था, धीमी-धीमी दक्षिण-पवनसे

रसास्वादकषायकण्ठकलकण्ठकुहूरुतभरितसकलदिङ्मुखः, विकचकमलषण्डनिलीयमानमत्तकलहंसकुलकोलाहलमुखरितसकलसरोवरः, परभृतखरनखरत्रोटिकोटिपाटितपाटलीकुड्मलवृन्तविवरविनिर्गतमधुधारासारशीकरनिकरसमालब्धदक्षिणसमीरणमारवारणव्रणितपथिकवधूहृदयतटः,

---

कण्ठध्वनिर्येषां तेषां कलकण्ठानां कोकिलानां कुहूरुतेन कुहूध्वनिना भरितानि पूर्णानि सकलानां समस्तानां दिशामाशानां मुखानि येन यस्मिन् वा सः तथोक्तः। अत्र मारुतेनोद्धूततया कुसुमानां विकासिता, तया च पानसौकर्यं बोध्यम्। 'कोमलं मृदुले जले' इति मेदिनी। 'कषायो मधुरे स्निग्धे तिक्तेऽपि सुरभिण्यपि' इति वैजयन्ती। कण्ठो वाचकशब्दे स्यात्संनिधाने गले ध्वनौ।' 'कलकण्ठस्तु कोकिले। हंसे पारावते चापि त्रिषु त्वेष कलस्वरे।' 'कुहूः स्त्री कोकिलालापे विनष्टेन्दुतिथावपि।' इति नानार्थरत्नमाला। विकचेति—विकचानां प्रफुल्लानां कमलानां पद्मानां षण्डेषु वनेषु निलीयमानानामुपविष्टानां मत्तानां मदवतां हर्षातिशयमुक्तानामित्यर्थः' कलहंसानां कादम्बानां कुलस्य समूहस्य कोलाहलेन कलकलध्वनिना मुखरिताः वाचालिताः सशब्दाः सकलाः समस्ताः सरोवराः श्रेष्ठानि सरांसि यस्मिन् सः तथोक्तः। 'प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लव्याकोशविकचस्फुटाः। फुल्लश्चैते विकसिते।' 'अब्जादिकदम्बे षण्डमस्त्रियाम्।' इत्यमरः। 'कलहंसस्तु कादम्बे राजहंसे नृपोत्तमे।' इति मेदिनी। परभृतेति—परैः काकैः भ्रियन्ते पाल्यन्ते इति परभृताः, भृधातोः कर्मणि क्तः। तेषां परभृतानां पिकानां खराः तीक्ष्णाः ये नखराः नखाः त्रोटिः चञ्चुश्च तेषां कोट्या अग्रभागेण पाटितानां विदारितानां पाटलीकुड्मलानां रक्तलोध्रकलिकानां विवरात् छिद्रात् विनिर्गतैः निष्क्रान्तैः मधुराणां सुमिष्टानां मधुधारासाराणां मकरन्दप्रवाहाणां शीकरनिकरैः कणसमूहैः समालब्धः सम्यग्लिप्तः, संपृक्त इति यावत् यः दक्षिणसमीरणः मलयानिलः स एव मारवारणः मदनहस्ती तेन व्रणितं क्षतं शुण्डाग्रभागेन विशीर्णं पथिकवधूनां पान्थभार्याणां विरहिणीनामिति यावत्, हृदयं मानसमेव तटं तीरप्रदेशो यस्मिन् स तथोक्तः। दक्षिणसमीरणस्य स्वत एवोद्दीपकत्वेऽपि मकरन्दकणैः समालम्भनमत्यन्तोद्दीपकताद्योतनायेति बोध्यम्। लोके कुङ्कुमादिलेपः गजस्य मण्डनतया प्रसिद्ध एव। 'समीरणमारबाण' इति 'पथिकवधूहृदय' इति च दर्पणकारसम्मतः पाठः। मारबाणः कामबाणः। बाणाग्रभागे विषादिलेपनमपि प्रसिद्धमेव। विषादिलेपेन बाणानां भीषणत्वं जायते अयमेव पाठोऽस्मभ्यं

हिलती हुई आम-मञ्जरियोंका रस पान कर मधुर कण्ठ कोकिलाओंका शब्द चारों ओर गूँज रहा था। सरोवर, विकसित कमलवनोंमें छिपे हुए उन्मत्त राजहंसोंके शब्दसे परिपूर्ण हो रहे थे। कोकिलाओंके तीक्ष्ण नाखूनों एवं चोंचके अग्रभागसे विदीर्ण पाटली-कलियोंके छिद्र द्वारा निकले हुए मधुर पुष्प-रसके कणोंसे समन्वित दक्षिण-पवनरूपी काम-महा-

मधुमदमुदितकामिनीमुखकमलगण्डूषशीधुसेकपुलकितबकुलः, मदनरसपरवशविलासिनीतुलाकोटिविकटचटुलचरणारविन्दमन्दप्रहारहृष्टकङ्केलितरुशतः, प्रतिदिशमश्लीलप्रायवैहासिकगीयमानगीतश्रवणोत्सुकषिङ्ग-

रोचते, मलयपवनस्य शीकरनिकरेण समुत्तेजनस्योपयोगात्, मलयपवने हस्त्यारोपणे तु कुङ्कुमादिलेपस्य गजमण्डनत्वेऽपि तटविदारणे उपयोगाभावात्। परत्र विद्वांसो विवेचयन्तु। 'वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि। चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियौ।' 'समालम्भो विलेपनम्।' 'कूलं रोधश्च तीरं च प्रतीरं च तटं त्रिषु।' इत्यमरः। 'कोटिः स्त्री धनुषोऽग्रेऽश्रौ संख्याभेदप्रकर्षयोः' इति मेदिनी। 'आसारः स्यात्प्रसरणे वेगवृष्टौ सुहृद्बले।' इति विश्वः। मधुमदेति—मधुनः मद्यस्य मदेन हर्षेण तत्पानजनितानन्देनेत्यर्थः। मुदितानां प्रसन्नानां कामिनीनां तरुणीनां मुखकमलगण्डूषशीधूनां आननारविन्दपूर्तिपर्याप्तानामासवानां मद्यानां सेकेन सेचनेन पुलकिताः पुलकः रोमाञ्चः सञ्जातः एषां तादृशाः, कोरकिता इत्यर्थः। बकुलाः केसरवृक्षाः यस्मिन् स तथोक्तः। यद्यपि गण्डूषशब्दो मुखपूर्तिपरस्तथाप्यत्र करिकलभादाविव 'विशिष्टवाचकानाम्' इति न्यायेन केवलं पूर्तिपरत्वमेव। तथा च रघौ—'समारुतैः कीचकपूर्णरन्ध्रैः' इत्यत्र वेणुविशेषवाचकोऽपि कीचकशब्दः वेणुमात्रपरः। 'मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः' इति मेदिनी। 'गण्डूषो मुखपूर्त्तीभपुष्करप्रसृताञ्जलिः' इति रुद्रः। 'उन्नतनाभिस्तु गण्डूषा नापि मुखपूर्तिः।' इति बोपालितः। 'मैरेयमासवः शीधुः' इत्यमरः। 'विकसति बकुलो योषितामास्यमद्यैः' इति कविसमयः। मदनेति—मदनरसेन कामावेशेन परवशाः पराधीनाः कामोपभोगस्पृहया व्याकुलचेतस इत्यर्थः। तादृश्यः या विलासिन्यः युवतयः तासां यानि तुलाकोटिभिः नूपुरैः विकटानि मनोहराणि चटुलानि चञ्चलानि आघाताय प्रवृत्तानीत्यर्थः। चरणारविन्दानि पादपद्मानि, पद्मतुल्या चरणा इत्यर्थः। तेषां ये मन्दाः कोमलाः प्रहाराः ताडनानि तैः हृष्टानि प्रसन्नानि मुकुलितानीत्यर्थः। तादृशानि कङ्केलितरूणाम् अशोकवृक्षाणां शतानि यत्र स तथोक्तः। 'पादाघातादशोको विकसति बकुलो योषितामास्यमद्यैः' इति कविसमयः। अत्र दर्पणकारः 'विरहिणां विकटं भयङ्करम्' इत्याह। 'पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्।' इत्यमरः। 'विकटः सुन्दरे प्रोक्तो विशालविकरालयोः।' इति विश्वः। 'स्त्रीप्रियो वञ्जुलोऽशोकः कङ्केलिः कर्णपूरकः' इति बाणः। प्रतिदिशमिति—दिशि दिशि इति प्रतिदिशम्। वीप्सार्थेऽव्ययीभावः। दिक्छब्दस्य शरदादिपाठात् 'अव्ययीभावे

गजने पथिकजनोंकी युवतियोंके हृदयोंको क्षत-विक्षत कर दिया था। मद्यपानसे प्रसन्न कामिनियाँ अपने कमल तुल्य मुखसे केसर वृक्षों पर कुल्ले करती थीं। इस कारण उनमें कलियाँ खिल रही थीं। कामोपभोगकी इच्छासे विवश अङ्गनाओंके नूपुरोंसे सुन्दर एवं चञ्चल चरणकमलोंके मृदु आघातसे सैकड़ों अशोक वृक्ष मुकुलित हो रहे थे। सब तरफ,

जनसमारब्धचर्चरीतालाकर्णनमुह्यदनेकपथिकः, दुर्जन इव सतामरसः, दुष्कुल इव जातिहीनः, रावण इवापीतलोहितपलाशशतसेवितः, महा-

शरत्प्रभृतिभ्यः' इति समासान्तष्टच्। अश्लीलप्रायाणि ग्राम्योक्तिबहुलानि यानि वैहासिकैः विदूषकैः गीयमानानि गीतानि गानानि तेषां श्रवणे आकर्णने उत्सुका उत्कण्ठिताः ये षिङ्गजनाः विटाः तैः समारब्धस्य अनुष्ठीयमानस्य चर्चरीतालस्य चर्चर्याख्यतालविशेषस्य आकर्णनेन श्रवणेन मुह्यन्तः मूर्च्छन्तः अनेके बहवः पाथिकाः यस्मिन् स तथोक्तः। 'चर्चरीगीताकर्णनमाद्यदनेक' इति पाठान्तरम्। तत्र माद्यन्तः हृष्यन्त इत्यर्थः। 'अश्लीलः धूर्तः' इत्यपि केचित्। 'ग्राम्यमश्लीलम्' इत्यमरः। वैहासिको नर्मपरो लीलाजीवश्च गद्यते' इति वैजयन्ती। वैहासिक इत्यत्र 'विहासं करोतीत्यर्थे ठक्' इति शब्दकल्पद्रुमः। 'दूरारूढस्तिमिरजलधेर्वाडवश्चित्रभानुर्भानुस्ताम्यद्वनरुहवनीकेलिवैहासिकोऽयम्। (१९६४)' इति पद्यव्याख्यायां 'विहासे नियुक्तः, प्रयोजनम्, शिल्पं वाऽस्येति' तत्र नियुक्तः' इति, 'शिल्पम्' इति वा ठक्। 'प्रयोजनम्' इति वा ठञ्। इति नारायणः। षिङ्गः पल्लवको विटः' इत्यमरः। 'गतिकालक्रियामानम् तालः'। अयं स्वर इयत्कालं गेयः, इयत्कालं विलम्बितं इयत्कालं द्रुतमियत्कालं मध्यमिति बोधयितुमीदृशैर्हस्तैरङ्गुल्याकुञ्चनप्रसारणादिक्रियाभिर्नर्तितव्यं गातव्यञ्चेति कालक्रिययोः प्रमाणं तालः। 'चञ्चत्पुटश्चाचपुटः षट्पितापुत्रकस्तथा' इत्यादिपरिगणितेषु षष्टितालेषु पञ्चविंशस्तालश्चर्चरी'। 'अष्टकृत्वस्तु चर्चर्यां विरामान्ते द्रुतौ लघुः' इति लक्षणम्। चर्चरीति गीतभेदोऽपि। 'चर्चरी गीतभेदे च केशभित्करशब्दयोः।' इति रुद्रः। चर्चरी हर्षक्रीडावाक् तथा च रत्नावल्याम् 'अये मधुरमभिहन्यमानमृदुमृदङ्गानुगतसङ्गीतमधुरः। पुरः पौराणामुच्चरति चर्चरीध्वनिः।' इति। सतामिति—तामरसैः पद्मैः सह वर्तत इति सतामरसः कमलभूयिष्ठ इत्यर्थः। पक्षे, सतां सज्जनानामरसः अहृद्यः अप्रिय इति यावत्। 'तामरसं' पद्मे ताम्रकाञ्चनयोरपि।' इति हैमः। दुष्कुल इति, दुष्टं कुलं यस्य स दुष्कुलः। निकृष्टकुलोत्पन्न इत्यर्थः। जातीति—जातिभिः मालतीपुष्पैः हीनः शून्यः। 'न स्याजाती वसन्ते' इति कविसमयः। पक्षे, जात्या कुलेन जन्मना वा हीनः। 'जातिः स्त्री गोत्रजन्मनोः। अश्मन्तिकामलक्योश्च सामान्यच्छन्दसोरपि। जातीफले च मालत्याम्।' इति मेदिनी। जातिः 'चलेली' इति लोके ख्याता। आपीत इति—आपीतानाम् ईषद्गौरवर्णानां

विदूषकोंके अश्लील-प्रचुर गान हो रहे थे उनके सुननेमें उत्सुक विटोंने चर्चरी नामक ताल लगाना प्रारम्भ किया, उसे सुनकर अनेक पथिक मूर्च्छित हो रहे थे। वसन्त ऋतु, सज्जनोंको अप्रिय दुर्जनके समान, तामरस-कमलों-से सुशोभित था। जातिहीन दुष्कुलमें उत्पन्न मनुष्यके समान, मालती-पुष्पोंसे रहित था। रुधिरपान करनेवाले सैकड़ों राक्षसोंसे सेवित रावणके समान, वह (वसन्त) कुछ पीले तथा लाल पत्तोंसे परिपूर्ण था।

शृङ्गारीव सुगन्धवहः, सुराजेव समृद्धकुवलयः, वास्तुक इव विवर्धित-सुखाशः, सत्कविकाव्यबन्ध इव अनवबद्धतुहिनपातः, सत्पुरुष इव

पिङ्गलवर्णानां लोहितानां रक्तवर्णानां पलाशानां किंशुकतरूणां शतैः सेवितः युक्त इत्यर्थः। पक्षे, पलं मांसमश्नन्तीति पलाशाः राक्षसाः, पले मांसे आशा यस्य इति वा आपीतं सम्यक् पीतं लोहितं रुधिरं यैस्ते आपीतलोहिताः, तेषां पलाशानां राक्षसानां शतैः सेवितः सत्कृतः। 'पीतो गौरो हरिद्राभः।' इत्यमरः। 'लोहितं रक्तगोशीर्षे कुङ्कुमे रक्तचन्दने। पुमान्नदान्तरे भौमे वर्णे च त्रिषु तद्वति।' इति मेदिनी। 'पलाशः किंशुकः शटी। हरिद्वर्णो राक्षसश्च पलाशं छदने मतम्।' इति हैमः। सुगन्ध इति—शोभनं गन्धं नानापुष्पादिसौरभं चन्दनादिगन्धं वा वहति धत्ते इति सुगन्धवहः। पक्षद्वयेऽपि समानमेतत्। यद्वा, शोभनो गन्धवहो वायुः मलयपवनः यस्मिन्निति वा। 'गन्धवहगन्धवाहानिलाशुगाः' इत्यमरः। सुराजेति—शोभनः प्रशस्तः राजा सुराजा। 'न पूजनात्' इति निषेधात् समासान्तष्टज्न। समृद्धेति—समृद्धानि पूर्णतामाप्तानि प्रचुराणीति भावः। कुवलयानि कुमुदानि यत्र तथोक्तः। पक्षे, समृद्धं धनधान्यादि-पूर्णं कोः पृथिव्याः वलयं मण्डलं यस्य स तथोक्तः। 'स्यादुत्पलं कुवलयम्।' 'गोत्रा-कुः पृथिवी पृथ्वी।' इत्यमरः। 'वलयः कण्ठरोगे ना कङ्कणे पुन्नपुंसकम्।' इति मेदिनी। वास्तुकेति—वसन्ति प्राणिनोऽत्रेति वास्तु गृहं नगरं वा। 'वसेरगारे णिच्च' इति वसेः तुण्प्रत्ययः। तत्र भवः वास्तुकः 'अध्यात्मादित्वाट्ठञ्' 'इसुसुक्तान्तात्कः' इति तस्य कादेशः। 'वास्तविक' इति दर्पणकारधृतपाठः। तत्र वास्तविकः वस्तु निर्माणपरः। 'वस्तुज्ञः स्याद्वास्तविकः' इत्यजयः। वास्तविकस्तात्त्विकपदार्थ इवेति दर्पणकारः। वास्तविको वाटिकापाल इत्यपरे। विवर्धितेति—विवर्धिता वृद्धिं नीता सुखस्य शैत्यो-ष्मजनितक्लेशाभावस्य आशा येन सः तथोक्तः। वसन्ते हि नाधिकं शीतं नाप्यधिको घर्मस्तेन सुखं लभन्त एव मानवाः इति भावः। सुखयतीति सुखा तादृशी आशा येनेति वा। 'विवर्धिताः हिमावरणादिविनिर्गमेन प्रसृता इव लक्ष्यमाणाः शोभनं खमाकाशं आशा दिशो येन तथोक्तः' इति अभिनवबाणभट्टाः। पक्षे विवर्धिता सुखानां पुण्यात्मनामाशा येन, सुखाभिलाषो वा येनेति पक्षद्वयेऽपि समान एवार्थः। यद्वा, वास्तुकपक्षे सुखाशः सुखभोजनमिति वा। वसन्तकालपक्षे–'सुखाशो राजतिनिशः' इति दर्पणकारः। 'सुखाशो राजतिनिशेशोभनाशाप्रचेतसोः' इति विश्वः। सत्कवीति—सत्कवेः महाकवेः काव्यबन्धः काव्यसन्दर्भ इव। अनवबद्धेति—अनवबद्धः न प्रतिहतः

चन्दनादि गन्धयुक्त वस्तुओंको धारण करनेवाले शृङ्गारी (कामुक) पुरुषके समान, उसमें सुगन्धित मलय-पवन चल रहा था। पृथ्वीको अत्यन्त समृद्धिशालिनी बनानेवाले राजाके समान, उस समय उत्पल विकसित हो रहे थे। वह वसन्त ऋतु विदग्ध जनके समान सुखकी आशा बढ़ा रहा था। जिसप्रकार सत्कविकी काव्य-रचनामें निरर्थक—केवल

दोषानुबन्धरहितः, कैवर्त्त इव बद्धराजीवोत्पलसालः, समृद्धकासारशकु-

तुहिनस्य चन्द्रतेजसः चन्द्रिकाया इत्यर्थः। पातः पतनं प्रकाश इति भावः। येन यस्मिन् वेति तथोक्तः। ग्रीष्मे धूलिपटलेन प्रावृषि च मेघमण्डलेन चन्द्रिकावरणं क्रियते वसन्ते तु द्वयोरप्यभावात् कौमुदी सुविशदं प्रकाशते इति भावः। 'तुहिनं चन्द्रतेजः' इत्युणादिकोशः। पक्षे, अनवबद्धः न विहितः 'तु' 'हि' न इत्येषां पातः पतनः प्रयोग इति भावः। यत्र स तथोक्तः। अत्र तुहि इत्येतयोः पादपूरणार्थकत्वरूपेण नकारस्य च वेदमात्रप्रयुक्तोपमार्थकत्वरूपेण प्रयोगाभावो विवक्षितः।

अत्र अभिनवभट्टबाणाः 'तुहिनिपात' इति पाठं परिकल्प्य 'अनवबद्धः असंलग्नः अस्थित इत्यर्थः, तादृशः तुहिनी तुहिनवान् तुहिनसंबन्धीपातः पतनं, तुहिनिनः तुहिनवतः शिशिरस्य वायोः पातः प्रसरणं वा यस्मिन् स तथोक्तः। पक्षे, अनवबद्धौ अप्रयुक्तौ तु, हि, इत्याकारकौ पादपूरणार्थकौ निपातौ यस्मिन् स तथोक्तः, इति व्याचक्षते। अस्मत्संमतपाठे 'अत्र तुह्योः पादपूरणार्थकत्वस्याप्यभिधानात्तन्मात्रप्रयोजकतया तयोरन्येषां च तादृशानां निपातानां सत्कविकाव्येषु भूयसाऽप्रयोगो युक्त एव। निषेधार्थकस्य नञो नशब्दस्य वा पादपूरणार्थकत्वानभिधानात्तस्य तुहिसमानयोगक्षेमत्वं कथमिति चिन्त्यम्। इति चाहुः। परमस्मत्कृतव्याख्यानेन नञो नशब्दस्य वोपमार्थकत्वप्रतिपादनोपलम्भात् तत्प्रयोगस्य च वेदमात्रनियमितत्वात् महाकविप्रबन्धेषु तस्य तदर्थे भूयसाऽप्रयोगस्योचितत्वात्तुहिसमानयोगक्षेमत्वं निर्बाधमेवेति सुधियो विभावयन्तु। दोषेति—दोषाया रात्रेः अनुबन्धेन अनुसरणेन दैर्घ्येणेत्यर्थः। रहितः हीनः। वसन्ते दिवसानामधिकमानत्वात्। पक्षे, दोषाणामवगुणानामनुबन्धेन सम्बन्धेन हीनः। 'दोषा रात्रौ भुजेऽपि च' इति विश्वः। दोषाशब्दः टावन्तः, अव्ययमप्यस्ति। टाबन्ते भट्टिप्रयोगः 'ततः कथाभिः समतीत्य दोषामारुह्य सैन्यैः सह पुष्पकं ते। कैवर्तः धीवरः। 'कैवर्ते दासधीवरौ' इत्यमरः। बद्धेति—बद्धानि प्राप्तानि राजीवानि पद्मानि उत्पलानि कुवलयानि सालानि पुष्पाणि च येन स तथोक्तः। पक्षे, बद्धाः जालेन गृहीताः राजीवोत्पलसालाः एतदाख्यमीनविशेषा येन स तादृशः। 'अथ राजीवो मीनसारङ्गभेदयोः। 'राजीवमब्जे' इति हैमः। 'स्यादुत्पलं कुवलयम्' इत्यमरः। शालशब्दः तालव्यादिः दन्त्यादिश्च दृश्यते। 'रोहितो मद्गुर इत्यमरव्याख्यानावसरे

पादपूरणार्थक-'तु' 'हि' पदोंका प्रयोग नहीं किया जाता इसी तरह इस समय शीतल-हिमयुक्त-वायुका सञ्चार नहीं था। सत्पुरुषमें दोषोंके संबन्ध के समान, इस कालमें रात्रियोंकी दीर्घता नहीं थी—रात लम्बी न थीं क्योंकि वसन्तकालमें रात्रिकी अपेक्षा दिनमान अधिक होता है। राजीव, उत्पल और साल नामक मत्स्योंको जालमें बांधे हुए धीवरोंके समान, उस समय कमल तथा कुमुदोंके पुष्प विकसित हो रहे थे। जिस प्रकार जलपूर्ण सरोवरोंमें स्थित पक्षिवृन्द, मरुभूमिमें स्थित वकोंका उपहास किया करते हैं

निसार्थ इव निन्दितमरुबकः, शुक्र इवेन्द्राणीरुचिरः, महावीर इवाधरीकृतदमनकः षिङ्ग इवाम्लानसुभगो वसन्तकाल आजगाम ।

शालो झषे, धीवर एव दासः' इत्यूष्मभेदात्तालव्यादिः 'कैवर्त इव बद्धराजीवोत्पलसालो वसन्तकालः' इति वासवदत्ताश्लेषाद्दन्त्यादिश्च' कैवर्तपक्षे सालो मत्स्यभेदः, 'वसन्तपक्षे सालं पुष्पम्। सालं पुष्पे क्लीबं वृक्षे तु पुमान् ।' इति सुधाव्याख्या। 'पुंसि भूरुहमात्रेऽपि सालो वरणसर्जयोः।' इति रभसः। 'शालो हाले मत्स्यभेदे शालौकस्तत्प्रदेशयोः' इति हैमः। शाला वृक्षा। इति दर्पणकारः। 'जाल' इति पाठान्तरम्। तत्र वसन्तपक्षे, बद्धं राजीवोत्पलानां जालं समूहो येन स तादृशः। कैवर्तपक्षे, बद्धौ राजीवोत्पलौ मत्स्यविशेषौ यत्र, तादृशं जालमानायः यस्य स तथोक्तः। 'जालं वृन्दगवाक्षयोः। क्षारकानायदम्भेषु, नीपे ना, स्त्री तु घोषके' इति रभसः। समृद्धेति— समृद्धे जलसम्पूर्णे कासारे सरोवरे ये शकुनयः पक्षिणः तेषां सार्थः समूहः। निन्दितेति— निन्दितः तिरस्कृतः निरस्त इत्यर्थः। मरुबकः स्वल्पपत्रतुलसी सुगन्ध्योषधिविशेषो वा येन स तथोक्तः। मरुबकः शिशिरऋतावेव विकसीति वाग्भट्टः। पक्षे, निन्दिताः उपहसिताः मरौ निर्जलप्रदेशे वर्तमाना बकाः कह्वा येन स तथोक्तः। 'भवेन्मरुबकः पुष्पभिच्छल्यद्रुफणिज्जके' इति मेदिनी। समानौ मरुधन्वानौ। 'अथ वकः कह्वः' इत्यमरः। इन्द्राणीति— इन्द्राण्या निर्गुण्ड्या सिन्दुवारेण वा रुचिरः मनोहरः। पक्षे, इन्द्राणी इन्द्रपत्नी शची तस्या रुचिमभिलापं सति ददाति पूरयतीत्यर्थः। तादृशः। 'इन्द्राणी शच्यां निर्गुण्ड्यां स्त्रीकरणेऽपि।' 'इन्द्राणी करणे स्त्रीणां पौलोमीसिन्दुवारयोः' इति मेदिनी। अधरीकृतेति— अधरीकृतः तिरस्कृतः निराकृतः दमनकः कुन्दवृक्षो तत्पुष्पमित्यर्थः। येन स तथोक्तः। कुन्दस्य हि माघे विकासो न तु वसन्ते अतएव तस्य माध्यमिति नामान्तरं तथा च मेदिनी–'कुन्दो माघ्येऽस्त्री मुकुन्दभ्रमिनिध्यन्तरेषु ना' इति। दननकः कुन्दः इति राजनिघण्टुः। पक्षे अधरीकृताः तिरस्कृताः पराजिता इति भावः। दमनका वीरा येन तथोक्तः। 'न विद्यते धरा भूमिः येषां ते अधराः भूमेः परलोकं गता इत्यर्थः, तादृशाः कृता दमनाः शत्रवो येन स तथोक्तः इति अभिनवभट्टबाणाः। अत्रैव व्याख्याने अधरीकृताः राज्याद्भ्रंशिता इति वा व्याख्येयम्। षिङ्गः विटः। अम्लानेति—अम्लानैः महासहाभिः 'कटसरया' इति

इसी तरह वसन्तने मरुबक नामक ओषधिका तिरस्कार कर दिया था—(मरुबक शिशिर ऋतुमें होता है, वसन्तमें नहीं) इन्द्राणी-अपनी पत्नी-से मनोहर इन्द्रके समान, वह सिन्दुवारसे सुशोभित हो रहा था। प्रतिस्पर्धी वीरोंको तिरस्कृत करनेवाले (अथवा, शत्रुओंको परलोक पहुँचानेवाले) महावीरके समान, उसने 'दमन' नामक पुष्पोंका तिरस्कार कर दिया था। सदा प्रसन्न और मनोरम कामुक जनके समान, महासहा नामक लताओंसे सुशोभित हो रहा था।

अतिदूरप्रवृद्धेन मधुना जगति को वा न विक्रियते, यदतिमुक्तको मुनिरपि विचकास। कुसुमशरस्य नवचूतप्रसवशरमूले निलीयमाना

ख्यातैः सुभगः मनोहरः। पक्षे, अम्लानः नित्यप्रसन्नः सुभगः मनोरमश्च। यद्वा, अम्लानां नित्योज्ज्वलानां गणिकानां सुभगः। 'आम्लान' इति छेदं स्वीकृत्य आम्लानः किंचिदिव कृशोऽपि सुभगः सुन्दरः' इत्यभिनवभट्टबाणाः। एतादृशः वसन्तकालः आजगाम समुपस्थितः।

अतिदूरेति—अतिदूरम् अत्यन्तं प्रवृद्धेन वृद्धिं प्राप्तेन मधुना वसन्तेन मद्येन तत्पानेनेत्यर्थः। 'मधु क्षौद्रं जले क्षीरे मद्ये पुष्परसे मधुः। दैन्ये चैत्रे वसन्ते च जीवाशोके मधु द्रुमे।' इति विश्वः। विक्रियते—विकारं स्वरूपान्यथाभावं प्राप्नोति। 'अत्र शुद्धस्यान्तर्भावितण्यर्थकत्वमभ्युपगम्य विक्रियते इत्यत्र कर्मकर्तरि लकारः उपपादनीय इति 'यूयवयौ जसि' इति सूत्रस्थकौमुदीव्याख्यानावसरे कृष्णभट्टः। 'कर्मणि लट्' इति शिवरामस्तु चिन्त्यः। विकरोतेरकर्मकत्वात्। अत एव 'अकर्मकाच्च' इति सूत्रस्य 'छाया विकुर्वते' इत्युदाहरणं प्रदर्शितम्। व्याख्यातं च 'विकारं लभन्ते' इति कौमुद्यादिषु। ण्यर्थान्तर्भावे तु कर्मकर्तरि लकारः इत्येव स्वरसवाहि, इत्यभिनवभट्टबाणाः। परन्त्वत्रैतद्विचारणीयम्—'सौकर्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृव्यापारस्य विवक्षाभाव एव कर्मकर्तरि लकारा भवन्ति। तत्र च कर्तुरप्रयोग एव न्याय्यः, पच्यते ओदनः भिद्यते काष्ठमित्यादौ कर्मकर्तरि लकारे देवदत्तादिकर्तृपरं न प्रयुज्यत एव। अत्र मधुनेति तृतीयान्तकर्तृपदस्य विद्यमानत्वे कथं कर्मकर्तरि लकारो न्याय्यः, कथं वा तृतीयायाः सङ्गतिः' इति त एव विभावयन्तु। मधुना हेतुनेति हेतुतृतीयाकल्पना तु क्लिष्टैव। अतो वयं कर्मणि लकार इति दर्पणोक्तमेव साधु मन्यामहे। न च विकरोतेरकर्मकत्वात्कथं कर्मरि लकार इति वाच्यं तस्य प्रायिकत्वात्; नहि विपूर्वः करोतिरकर्मक एवेति नियमः। 'वेः शब्दकर्मणः' इति सूत्रे शब्दकर्मकत्वस्य, शब्दकर्मणः किं चित्तं विकरोति काम इति प्रत्युदाहरणे स्वरूपान्यथा भावेऽपि तस्य सकर्मकत्वस्य दृष्टत्वात्। यत्—यतः, अतिमुक्तः अत्यन्तं मुक्तः मुक्तिमापन्नः मुनिः यतिः, जीवन्मुक्तोऽपीत्यर्थः। विचकास विषयोपभोगोत्कण्ठारूपं मनोविकासमलभत। का कथाऽन्येषामिति अपिर्द्योतयति। वस्तुतस्तु—अतिमुक्तो वासन्ती लता, मुनिः अगस्त्यवृक्षः, अपिश्चार्थे, विचकास—विकसति स्मेत्यर्थः। 'अतिमुक्तस्तु वासन्त्यां निःसंगे तिनिशेऽपि च।' 'मुनिः पुंसि वसिष्ठादौ वंगसेनतरौ जिने।' इति मेदिनी। श्लेषसंकीर्णोऽर्थान्तरन्यासः। काव्यार्थापत्तिश्च। 'कैमुत्येनार्थसंपत्तिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते'। इति तल्लक्षणम्। इत्यभिनवभट्टबाणाः। नवेति—नवः नूतनः यः चूतप्रसवः

अत्यन्त चढ़े हुए नशेके समान चारों ओर फैले हुए वसन्तके द्वारा किसमें विकार उत्पन्न नहीं हो जाता? किन्तु सब ही वस्तुएँ विकृत हो जाती हैं। क्योंकि इस समय मोक्षार्थी जीवन्मुक्त मुनिका भी मन विषयोपभोगकी तरफ आकृष्ट हो गया तथा वासन्ती लता

मधुकरावलिर्नामाक्षरपंक्तिरिव रेजे। वृन्तविनिर्गतविकचविचिकिलकलिकाविवरे मञ्जु गुञ्जन्मधुकरो मकरकेतोस्त्रिभुवनविजयप्रयाणशंखध्वनिमिव चकार। नवयावकपङ्कपल्लवितसनूपुरतरुणीचरणप्रहारानुरागवशान्न-

आम्रपुष्पं स एव शरः बाणः कामस्येति भावे तस्य मूले मूलप्रदेशे निलीयमाना प्रविशन्ती तत्र संसक्तेत्यर्थः। मधुकराणां भ्रमराणामावलिः श्रेणिः कुसुमशरस्य कामस्य नामाक्षरपंक्तिः स्वस्वामिमदनाभिधेयप्रतिपादकवर्णानां श्रेणिरिव रेजे शुशुभे। शरेषु हि तत्तन्नामोल्लेखनं प्रसिद्धमेव। तथा च 'बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृतः शशंसुः।' इति षष्ठे रघुः। 'बाणाक्षरैः बाणेषु लिखिताक्षरैः' इति तत्र मल्लिनाथः। 'सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे। निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्नामाक्षराणीव मनोभवस्य' इति कुमारश्च, द्वयोरुत्प्रेक्षालंकारः। वृन्तात् प्रसवबन्धनात् विनिर्गताः बहिर्निष्क्रान्ताः विकचाः ईषद्विकसिताः या विचिकिलकलिकाः मल्लीविशेषकारिकाः तासां विवरे विकासस्थलच्छिद्रे मञ्जु अतिसुभगं यथा तथा गुञ्जन् शब्दायमानः मधुकरः भ्रमरो मद्यपायी च, मकरकेतोः कामस्य त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विजयाय पराभवाय यत् प्रयाणं यात्रा तस्य तत्सूचकः यः शंखध्वनिः कम्बूनादः तं चकारेव। अत्रोत्प्रेक्षालंकारः। 'वृन्तं प्रसवबन्धनम्।' इत्यमरः। 'स्मृतो विचिकिलो मल्लीप्रभेदे मदनेऽपि च' इति विश्वः। अत्राहुरभिनवभट्टबाणाः— 'विचकिलकलिका हि शंखसदृशी, शंखश्च मूलेन ध्मायते' इति प्रसिद्धम्। भृङ्गश्च कलिकोपरि भ्राम्यँस्तिष्ठन् गुञ्जतीति नेयमुत्प्रेक्षा समीचीनेत्येवमाक्षेपं निराकर्तुमेव प्रकृते भृङ्गादिपदं विहाय कविना मद्यपायीत्यर्थान्तरमवबोधयन्मधुकरपदं प्रयुक्तम्। नहि मत्तस्य स्थानास्थानविवेकः संभवतीति सेयमारूढा परां कोटिमुत्प्रेक्षेति। अत्रेदं विचारणीयम्—मास्तु मत्तस्य स्थानास्थानविवेकः ध्मायतु च स शंखमुपरिभागेनैव परमस्थानध्मातः शंखः कथं ध्वनितुं शक्नोतीति न विद्मः, तस्य हि मूलेनैवाध्मानमावश्यकं नहि केवलमस्थानेऽपि मुखसंयोगमात्रेणैव ध्वनिर्निःसर्तुं प्रभवति। अत्र 'वृन्तविनिर्गतविकचकलिकातले' इति दर्पणधृतपाठः। स च 'नातीव हृद्य' इत्यभिनवभट्टबाणाः। परमस्मिन्पाठे मधुकरस्य मधुपानमत्ततया उपरिभागे गुञ्जनं विहाय तलप्रदेशे गुञ्जनकल्पनया सर्वमनवद्यमिति युक्तं प्रतिभाति। नवयावकेति—अशोकः

और अगस्त्य वृक्ष खिल उठे। नवीन आम्रमञ्जरीके मूलभागमें बैठी हुई भ्रमर-पंक्ति इस तरह सुशोभित हो रही थी मानों कामदेवके बाणोंमें उसके नामकी वर्णमाला अङ्कित हो। वृन्तोंसे निकलकर ऊपर फैली हुई और विकसित 'विचकिल' नामक लताकी कलियोंके छिद्रोंमें मधुरतासे गूँजता हुआ भ्रमर ऐसा प्रतीत होता था मानों कामदेवकी विजय-यात्राके समय शङ्खध्वनि कर रहा हो। अशोकके नवीन लाल पत्ते ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों उनके द्वारा वह नवीन लाक्षारससे रंगे हुए तथा नूपुरयुक्त तरुणी अङ्गनाओंके चरण-

वकिसलयच्छलेन तमिव रागमुदवहदशोकः । मधुरमधुपरिपूरितकामिनीमुखकमलगण्डूषसेकादिव तद्रसगन्धमात्मकुसुमेषु बिभ्रद्बकुलतरू रराज । अन्तरान्तरा निपतितमधुकरनिकरकिर्मीरः कङ्केलिगुच्छोऽर्धनिर्वाणमनोभवचिताचक्रानुकारी पथिकजनहृदयदाहमुवाह । विकचविचिकिल-

बञ्जुलः । नवेन नूतनेन यावकपङ्केन लाक्षारसेन पल्लविताः रक्ताः पल्लवयुक्ताश्च, सनूपुराः समञ्जीराः ये तरुणीचरणाः कामिनीपादाः तेषां प्रहाराय पादाघाताय योऽनुरागः स्पृहा, चरणताडनसमये तत्संक्रान्तं लौहित्यं च तद्वशात् नवकिसलयच्छयेन नूतनपत्रव्याजेन तं रागं लौहित्यं स्नेहं च उदवहत् दधार । 'भवेत्पल्लवितं लाक्षारक्ते सप्रसवे तते' इति विश्वः । अत्र 'सापह्नवोत्प्रेक्षा । तरुणीचरणानां पल्लवितत्वविशेषणस्याशोके पल्लवोत्पादनयोग्यतातात्पर्यकत्वात्परिकरः । अत एव समालंकारस्तद्गुणालंकारश्च । सर्वत्रापि श्लेषो मूलम् । एतेषां च यथायथं संकरः । 'अलंकारः परिकरे साभिप्राये विशेषणे ।' 'सारूप्यमपि कार्यस्य कारणेन समं विदुः ।' (समम्) 'तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यदीयगुणग्रहः ।' इति तल्लक्षणानि । इत्यभिनवभट्टबाणाः । मधुरेति—बकुलतरुः केसरवृक्षः । मधुरेण सुस्वादुना मधुना मद्येन परिपूरितं भृतं यत् कामिनीनां प्रमादानां मुखकमलं तस्य गण्डूषः मुखपूरणं मुखपरिपूरितं मध्विति यावत् । तस्य सेकात् सेचनात्, तस्य मधुनः रसस्य गन्धं, रसश्च गन्धश्चेति रसगन्धं समाहारद्वन्द्वो वा रसगन्धौ । आत्मकुसुमेषु निजपुष्पेषु बिभ्रत् । धारयन् रराज शुशुभे । बिभ्रत् इति बिभर्तेः शतरि 'नाभ्यस्तात्' इति निषेधान्नुम्न । तरूः रराजेत्यत्र 'रोरि' इति रेफलोपे ढ्लोपे इति दीर्घः । अन्तरेति—अन्तरा अन्तरा मध्ये-मध्ये । निपतितेति—निपतितानामुपविष्टानां मधुकराणां भ्रमराणां निकरेण समूहेन किर्मीरः कर्बुरितः । 'चित्रकिर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे ।' इत्यमरः । कंकेलिगुच्छः-अशोकस्तबकः । 'पुष्पादिस्तबके गुच्छो मुक्ताहारकलापयोः' इति रन्तिदेवः । अर्धेति—अर्धनिर्वाणं सामिदग्धोपशान्तं यत् मनोभवस्य कामस्य चिताचक्रं वर्तुलाकृतिः चिता तत् अनुकर्तुं शीलं यस्य तादृशः । पथिकजनानां पान्थानां हृदयदाहं वियोगिनामिति भावः । हृदयस्य मनसः दाहं सन्तापम् उवाह चकार । निर्वाणेत्यत्र निःपूर्वकात् वातेः क्तप्रत्ययः । 'निर्वाणोऽवाते' इति निपातनात् निष्ठातकारस्य नत्वम् । 'निर्वाणमस्तंगमने निर्वृते गजमज्जने ।' इति मेदिनी । विकचेति—विकचानां विकसितानां

प्रहारसे संलग्न लालिमाको धारण किये हुए हो । मुखमें मधुर मद्य भरकर कामिनियोंके कुल्ले करनेसे बकुल वृक्ष फूला करता है, इस समय उसीके गन्धको अपने पुष्पोंमें धारण किये हुए मानों बकुलवृक्ष सुशोभित हो रहा था । बीचमें बीचमें—जगह जगह-बैठे हुए भ्रमरोंसे चित्रित अशोक-पुष्पोंका गुच्छा, आधी जलकर शान्त हुई कामदेवकी चिताके समान प्रतीत हो रहा था अतएव वह पथिकों—वियोगियों—के हृदयमें ज्वाला उत्पन्न कर रहा

राजिरलिकुलशबला कलितेन्द्रनीला मुक्तावलीव मधुश्रियो रुरुचे। विरहिणां हृदयमथनाय कुसुमशरस्य शरशाणचक्रमिव नागकेसरकुसुममशोभत। पथिकजनहृदयमत्स्यं ग्रहीतुं मकरकेतोः पलाव इव पाटलिपुष्पमदृश्यत।

कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पटलाटीललाटतटलुलितालकाधम्मिल्लभारबकुल-

विचिकिलानां मल्लीविशेषपुष्पाणां राजिः श्रेणिः। अलिकुलैः मधुकरनिकरैः शबला चित्रा तद्युक्तेत्यर्थः। मधुश्रियः वसन्तलक्ष्म्याः, कलिताः इन्द्रनीलाः इन्द्रनीलमणयो यस्यां तादृशी मुक्तावली मौक्तिकमालेव रुरुचे शुशुभे। यथा इन्द्रनीलमणिगुम्फितमुक्तामालया काचिन्नायिका शोभते तथैव मधुपसंगतमल्लीपुष्पैर्वसन्तः शोभत इति तात्पर्यम्। अत्र 'इन्द्रनीलमणिमयी मुक्तावली' इति दर्पणधृतपाठः। इन्द्रनीलप्रचुरा इन्द्रनीलमयी प्राचुर्थे मयट्। हृदयेति—हृदयस्य मनसः मथनाय विलोडनाय संतापायेत्यर्थः। कुसुमशरस्य शराणां बाणानां शाणचक्रं उत्तेजनाय घर्षप्रस्तरमण्डलम्, नागकेसरकुसुमं चाम्पेयपुष्पम् अशोभत रुरुचे। 'कुसुमशरस्य चक्रं' इति पाठे चक्रं चक्रायुधमिति व्याख्येयम्। पाटलिपुष्पं पथिकजनानां पान्थानां हृदयमेव मत्स्यो मीनस्तं ग्रहीतुं, मकरकेतोः कामस्य पलाव इव पलेन मांसेन अवति मत्स्यानां तृप्तिं जनयति तान् हन्ति वेति पलावो बडिशः स इव अदृश्यत। अवतिर्हिंसायामपि। 'अथ प्लवः पलावः पञ्जराखेटः' इति त्रिकाण्डशेषः। 'पालावलीव' इति पाठान्तरम्। पालावली तु बाडिशं ग्राहकं मत्स्यवेधनम्।' इति वैजयन्ती। बडिशपलावलीति पाठे बडिशस्य पलं मांसं तस्य आवलिः पंक्तिरिति व्याख्येयम्। बडिशमिवेत्यपि पाठान्तरम्।

कन्दर्पेत्यादि—एतादृशः मलयमारुतः दक्षिणानलः ववौ वाति स्म। कन्दर्पेत्यादीनि मलयमारुतविशेषणानि। तैश्च विशेषणैः दक्षिणानलस्य शृंगारनायकताप्रतीतिः। कन्दर्पस्य कामस्य केलिसम्पदि क्रीडाविलासे सुरते इत्यर्थः। लम्पटाः

था। कहीं, खिली हुई विचकिल-पुष्पोंकी पंक्ति पर भौंरे बैठे हुए थे वे उस समय इन्द्रनीलमणि जटित वसन्तलक्ष्मीकी मुक्तामालाके समान सुशोभित हो रहे थे। नागकेसर-पुष्प, वियोगिजनोंके हृदय विदीर्ण करने के लिये कामदेवके बाणोंके शाणचक्रके समान प्रतीत हो रहा था। पाटलिका पुष्प, विरहि-जनोंके हृदयरूपी मत्स्यको पकड़नेके लिये कामदेवकी बल्छी (मछली पकड़नेकी) के समान दिखाई पड़ रहा था।

उस समय दक्षिण पवन चल रहा था। जो, सुरतक्रीडामें आसक्त लाटदेशीय स्त्रियोंके मस्तक पर पड़े हुए केशों तथा उनके जूड़ेमें लगे हुए मौलसिरीके पुष्प-गन्धके संयोगसे

कुसुमपरिमलमेलनसमृद्धमधुरिमगुणः, कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाट-
सुन्दरीस्तनकलशघुसृणधूलिपटलपरिमलामोदवाही, रणरणकरसितापरान्त-
कान्तकुन्तलोल्लनसंक्रान्तपरिमलमिलितालिमालामधुरतरझङ्काररवमुख-

आसक्ताः याः लाट्यः लाटदेशाङ्गनाः तासां ललाटतटे भालप्रदेशे लुलिताः प्रसृताः लम्बमाना इत्यर्थः। ये अलकाः चूर्णकुन्तलाः तेषाम् , अस्य 'परिमलेन' सहान्वयः। धम्मिलभारे बद्धकेशसमूहे विद्यमानानि यानि बकुलकुसुमानि केसरपुष्पाणि तेषां च परिमलस्य गन्धस्य मेलनेन संयोगेन समृद्धः अभिवृद्धः मधुरिमगुणः प्रियत्व-गुणो यस्य स तथोक्तः। उत्तमस्त्रीणामलकधम्मिल्लयोः सुगन्धित्वं कविसमयप्रसिद्धम्। अनेन ललाटचुम्बनं, केशोपसंजीवनं च ध्वन्यते। 'कन्दर्पकेलिः सुरतम्।' प्रेङ्खोलितस्तरलितो लुलितान्दोलितावपि।' 'धम्मिलः संयताः कचाः' इत्यमरः। 'ललाटतटधमिल्लमलनमिलितपरिमलसमृद्धमधुरिमगुणः' इति पाठान्तरम्। ललाट-तटस्य धम्मिलस्य च मलनेन मिलितः समुत्पन्नः प्राप्त इति वा यः परिमलः तेन समृद्धो मधुरिमगुणो यस्येति तदर्थः। कामकलेति—कामकलाकलापे कामशास्त्रप्रति-पादितकलासमूहे कुशलाः प्रवीणाः चार्व्यः मनोहराः याः कर्णाटसुन्दर्यः कर्णाटदेशाङ्गनाः तासां स्तनकलशेषु कुचकुम्भेषु पीनस्तनेष्वित्यर्थः, यत् घुसृणस्य कुङ्कुमस्य धूलिपटलं चूर्णसमूहः तस्य परिमलेन विमर्दन संपर्केण लेपेनेति यावत् यः आमोदः अत्यन्त-मनोहरो गन्धः तं वोढुं शीलं यस्य तथोक्तः। अनेन स्तनस्पर्शो ध्वनितः। 'घुसृणं कुङ्कुमं समम्' इति वैजयन्ती। 'परिमलो विमर्दोत्थे हृद्यगन्धे विमर्दने।' इति हैमः। परितो मलनं धारणमिति परिमलः। मलधारणे ततो घञ्। संज्ञापूर्वकत्वान्न वृद्धिः। 'आमोदः सोऽतिनिर्हारी।' इत्यमरः। रणरणकेति—रणरणकेन औत्सुक्येन कामोपभोग इति भावः, रसिताः संजातरसाः उत्पन्नानुरागा इत्यर्थः। याः अपरान्त-कान्ताः पाश्चात्यदेशीयाङ्गनाः तासां कुन्तलानां केशानाम् उल्लनेन आन्दोलनेन संक्रान्तः स्वस्मिन्नागतः यः परिमलो गन्धः तेन मिलितायाः संसक्तायाः अलिमा-लाया भ्रमरपंक्तेः मधुरतरेण अतिमनोहरेण झङ्काररवेण झंइत्याकारकध्वनिना मुख-रितं वाचालितं शब्दायितमिति यावत्। नभस्थलमाकाशं येन यस्य वा तथोक्तः। अनेन कचग्रहणं मणितं च ध्वनितम्। 'औत्सुक्यं रणरणकोत्कण्ठे आयल्लकारती।

बड़ा मन भावना हो रहा था। कामशास्त्रमें प्रवीण मनोरम कर्णाटदेशीय प्रमदाओंके कलश तुल्य स्तनों पर लगे हुए कुङ्कुम-परागके संपर्कसे मनोहर गन्ध धारण किये हुए था। उत्कण्ठाके साथ उपयुक्त अपरान्तदेशीय (पश्चिमी घाट की) ललनाओंके केश हिलाकर उनके संसर्गसे लगे हुए गन्धके कारण इकट्ठी हुई भ्रमरपंक्तिके अतिमनोरम झंकारसे

रितनभःस्थलः, नवयौवनरागतरलकेरलीकपोलपालिपत्रावलीपरिचयचतुरः, चतुःषष्टिकलाकलापविदग्धमुग्धमालवनितम्बिनीनितम्बबिम्बसंवाहनकुशलः, सुरतश्रमपरवशान्ध्रपुरन्ध्रीनीरन्ध्रपीनपयोधरभारनिदाघजलकणनिकरशिशिरितो मलयमारुतो ववौ ।

हृल्लेखोत्कलिके ।' इत्यभिधानसंग्रहः । 'अपरान्तास्तु पाश्चात्याः ते च सुर्परिकादयः ।' इति यादवः । 'चिकुरः कुन्तलो वाल' इत्यमरः । रसितेत्यत्र 'तदस्य संजातमिति' इतच् । 'करणरसिककान्तकुन्तलीकुन्तलोल्लासने'ति पाठे करणेपु गीताङ्गहारसंवेशादिक्रियासु रसिकाः रसवत्योऽनुरागिण्यः याः कान्ताः मनोहराः कुन्तल्यः कुन्तलदेशस्त्रियः तासां कुन्तलानामुल्लासनेन आन्दोलनेनेति व्याख्येयम् । नवयौवेनेति—नवयौवनं प्रथमतारुण्यं तेन तस्मिन् वा रागतरलाः अनुरागचञ्चलाः याः केरल्यः केरलदेशस्त्रियः तासां कपोलपालौ गण्डप्रदेशे या पत्रावली पत्राङ्कुरः तस्याः परिचये संबन्धे निर्माणे च चतुरो विदग्धः । उपभोगक्षमश्च । अनेन पत्रावलीलेखनं ध्वन्यते । 'दरोद्भिन्नस्तनं किञ्चिच्चलाक्षं मेदुरस्मितम् । मनागभिस्फुरद्भावं नव्यं यौवनमुच्यते ।' इति भूपालः । 'पाणिः कर्णलतायां स्यात् प्रदेशे पंक्तिचिह्नयोः' इत्यजयः । चतुःषष्टीति—चतुःषष्टिकलानां गीत-वाद्य-नृत्यादिशैवतन्त्रोक्तानां, किञ्चिद्भेदेन कामशास्त्रप्रतिपादितानां वा कलापे समूहे विदग्धानां निपुणानां मुग्धानां सुन्दरीणां मालवनितम्बिनीनां मालवदेशाङ्गनानां नितम्बबिम्बस्य श्रोणिमण्डलस्य संवाहने मर्दने कुशलो निपुणः । अनेन उपचारचातुर्यं व्यज्यते । 'प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितम्बिनी ।' 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः' इत्यमरः । 'मुग्धः सुन्दरः' इति विश्वः । तथा च मेघदूते दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।' इति । 'स्यान्मर्दनं संवहनम् ।' इत्यमरः । अत्र 'संवहनम्' इत्यपपाठः' इति मुकुटपीयूषौ 'संभोगान्ते सममुपचितौ हस्तसंवाहनानाम् ।' इति मेघदूते । 'मुग्धाः प्रथमयौवनवत्यः ।' इति भट्टबाणः । 'प्रथमावतीर्णयौवनमदविकारा रतौ वामा । कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा ।' इति विश्वनाथः । सुरतेति—सुरतश्रमेण निधुवनखेदेन परवशाः पराधीनाः, खिन्ना इति यावत् या आन्ध्रपुरन्ध्र्यः त्रिलिङ्गदेशस्त्रियः तासां नीरन्ध्रयोः निविडयोः पीनयोः बृहतोः पयोधरयोः भारे गुरुत्वे,

---

आकाशको शब्दायमान कर रहा था। नवयौवनके कारण चञ्चल-हृदय केरलदेशीय युवतियोंके कपोलों पर पत्रावली बनानेमें निपुण था। चौसठ प्रकारकी कलाओंमें निपुण मालवदेशीय स्त्रियोंके नितम्ब मण्डलके धीरे धीरे दबानेमें कुशल था। सुरतक्रीडाके श्रमसे थकी हुई तैलङ्गदेशीय कामिनियोंके निबिड और विशाल स्तनों पर पसीनेकी बूँदोंके संपर्कसे शीतल हो रहा था।

अत्रान्तरे वासवदत्तासखीजनाद्विदितसुताभिप्रायः शृंगारशेखरः स्वसुतायाः स्वयंवरार्थमशेषधरणितलभाजां राजपुत्राणामेकत्र मेलनमकरोत्। ततो दग्धकृष्णागुरुपरिमलामोदमोहितमधुव्रतव्रातबहुलगुमगुमायितमुखरितम्। अतिरभसहासच्छटादीधितिधवलिमपरिमिलितम्, अनेक-

गुरुत्ववत्पयोधरयोरित्यर्थः। निदाघजलस्य घर्माम्बुनः कणनिकरेण बिन्दुसमूहेन शिशिरितः शीतलीकृतः। 'स्यात्तु कुटुम्बिनी पुरन्ध्री' इत्यमरः। 'घर्मो निदाघः स्वेदः स्यात्।' इत्यमरः। अत्र मलयानिले विशेषणबलेन शृङ्गारनायकव्यवहारप्रतीतेः समासोक्तिः। समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत्।' इति तल्लक्षणम्।

अत्रान्तरे—अस्मिन्नवसरे। अशेषेति—सकलभूमण्डलस्थितानाम्। मेलनम्—संगमम्। ततः—अनन्तरं वासवदत्ता मञ्चं पर्यङ्कं आरुरोह आरुढवतीति संबन्धः। दग्धेति—दग्धस्य धूपितस्य कृष्णागुरोः कालागुरोः 'काला अगर' इति लोकख्यातस्य परिमलामोदेन प्रचुरसुगन्धिना, परिमलस्य गन्धस्यानुभवेन आमोदेन समुत्पन्नहर्षेण वा मोहिताः परवशाः ये मधुव्रता भ्रमरास्तेषां व्रातस्य समूहस्य बहुलेन प्रचुरेण गुमगुमायितेन अव्यक्तशब्देन मुखरितं वाचालितं शब्दायितमित्यर्थः। गुमगुमेति भ्रमरशब्दानुकरणम्। 'आमोदो हर्षगन्धयोः' इति विश्वः। मधुव्रतो मधुकरो मधुलिण्मधुपालिनः' इत्यमरः।

अतिरभसेति—'चेटीनामित्यादिरस्य' इति दर्पणकारः। अतिरभसेन अतिवेगेन उच्चैरित्यर्थः। अतिहर्षेण वा यः हासः हास्यं तस्य दीधितिच्छटायाः किरणवृन्दस्य दीप्तिपुञ्जस्येति यावत्। धवलिम्ना शुभ्रत्वेन परिमिलितं युक्तम्, शुभ्रीकृतमिति यावत्। 'रसभो वेगहर्षयोः' इति विश्वः। अनेकेति—अनेकासां बहुविधानां परिहासकथानां विनोदाख्यानानाम् आलापे भाषणे विदग्धाः प्रवीणाः ये शृङ्गारमयाः शृङ्गारप्रचुराः रसिका जना इति यावत्। तेषां निचयेन समूहेन समाकुलं व्याप्तम्। 'व्यस्ते त्वप्रगुणाकुलौ' इत्यमरः। 'व्यस्तं तु व्याकुले व्याप्ते' इति विश्वः। दर्पणकारस्तु—'अनेकपरिहासकथाकलापविदग्धशृङ्गारिजनसमाकुलम्' इति पाठमाहत्य 'अनेकेषां भूपतीनां परिहासः कुलवयोरूपगुणहीनत्वेन परिहासः। कथाकलापः योग्यानां वंशादिवर्णनसमुदायः। तत्र विदग्धः चतुरः तज्ज्ञो यः शृङ्गारिजनो लोको नायिकानायकरसभावाभिज्ञः सखीरूपः तेन समाकुलं व्याप्तम्। 'जनो लोके महर्लोकात्परलोके च

इसी समय वासवदत्ताकी सखियों द्वारा अपनी पुत्रीकी इच्छा जानकर शृङ्गारशेखरने, कन्याके स्वयम्वरके लिये समस्त पृथ्वी-मण्डलके राजपुत्रोंको एकत्रित किया। अनन्तर परमसुन्दरी वासवदत्ता पालकीमें बैठी (मञ्च-यानविशेष)। जो (यान), जलते हुए अगरकी सुगन्धसे मुग्ध भ्रमरोंके गुमगुम शब्दसे मुखरित हो रहा था। (दासियों की)

परिहासकथाकलापविदग्धशृङ्गारमपजननिचयसमाकुलम्, दह्यमानमहिषाक्षादिसुगन्धिद्रव्यसौरभाकृष्टपुरोपवनषट्पदकुलसमाकुलम्, अर्जुनसमरमिव नन्दिघोषमुखरितदिगन्तरम्, नृपास्थानमिव सराजोपहारम्, तापसाश्रममिव वितानोद्भासितम्, त्रिविष्टपमिव सुमनोऽलङ्कृतं मञ्च-

---

पामरे ।' इति विश्वः । तथा च कालिदासः—ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशेति । यद्वा—अनेकपरिहासकथाकलापे द्वयोः परस्परानुरागानन्तरं अनेकपरिहासकथाकलापे विदग्धः । शेषं पूर्ववत् । तथा च कालिदासः—तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदावभाषे । इति व्याचष्टे । दह्यमानेति—दह्यमानानि धूपितानि यानि महिषाक्षादीनि गुग्गुलुप्रभृतीनि सुगन्धिद्रव्याणि तेषां सौरभेन सुगन्धिना आकृष्टाः आकृष्यानीताः ये पुरोपवनषट्पदाः नगरोद्यानभ्रमराः तेषां कुलेन वृन्देन व्याप्तम् । 'जटायुः कालनिर्यासः कौशिको गुग्गुलुः पुरः । देवधूपः सर्वसहो महीषाक्षः पलङ्कषा ।' इति वैद्यकरत्नमाला । नन्दिघोषेति—नन्दयतीति नन्दिः, आनन्दकरः नन्द्धातोः 'सर्वधातुभ्यः इन्' इत्यौणादिकः इन् । तेन आनन्दजनकेन घोषेण तूर्यादिशब्देन मुखरितं वाचालितं दिगन्तरं यस्य सः, तं तथोक्तम् 'नन्दिरानन्दने प्रोक्तः प्रतीहारे हरस्य च ।' इति विश्वः । यद्वा 'नन्दिर्जामातृसुहृज्जनः' तेषां घोषेणेति पूर्ववत् । 'नन्दिरानन्दजामातृमित्रयोरपि चेष्यते' इत्युत्तरतन्त्रम्, इति दर्पणकारः । 'नन्दिनां वन्दिनां घोषेणेति' अभिनवभट्टबाणाः । पक्षे—नन्दिघोष इति अर्जुनरथः तस्य घोषेणेति पूर्ववत् । 'गाण्डीवं धनुरेतस्य हनुमान् ध्वजभूषणम् । नन्दिघोषो रथश्चास्य गतिस्तस्य न भूतले' इति । 'नन्दिमागधवंशज्ञवन्दिमंगलपाठकाः' इति वैजयन्ती । नृपास्थानं-राजसभा । 'आस्थानी क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सदः' इत्यमरः । सराजेति—राज्ञामुपहारेण उपायनेन सहितमित्युभयत्रापि समानम् । यद्वा—मञ्चपक्षे रलयोरभेदात् लाजाविकिरणरूपाचारसहितम् । 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा ।' इत्यमरः । वितानेति—वितानेन उल्लोचेन 'चन्दोवा' इति लोकप्रसिद्धेन उद्भासितं शोभितम् । पक्षे—वितानैः यज्ञैः उद्भासितम् । 'वितानो यज्ञ उल्लोचे विस्तारे पुनपुंसकम् । क्लीबं वृत्तविशेषे स्यात् त्रिलिंगो मन्दतुच्छयोः' इति मेदिनी । त्रिविष्टप-

---

प्रसन्नतावश हंसोंकी चमकसे शुभ्र हो रहा था । जिसमें अनेक प्रकारके परिहास करनेमें निपुण बनी-ठनी सखियाँ बैठी हुई थीं । जिसपर, जलती हुई गूगल आदि सुगन्धित वस्तुओंके गन्धसे आकृष्ट नगर-उपवनोंके भ्रमर मंडरा रहे थे । जो, 'नन्दिघोष' नामक रथ-ध्वनिसे दिशाओंको परिपूरित करनेवाले अर्जुनके युद्धके समान चरणोंकी ध्वनिसे दिशाओंको प्रतिध्वनित कर रहा था (अथवा नन्दिघोष—आनन्दजन्य कलकल)। राजाओंके उपहार-भेंट-से समन्वित राजभवनके समान जिसपर लाजा—खीलोंकी बखेर की जारही थी । जो, यज्ञोंसे विभूषित तापसोंके आश्रमके समान, वितान-चंदोवोंसे विभूषित

मारुरोह वरारोहा वासवदत्ता ।

तत्र च केचित् कलाङ्कुरा इव विदितनगरमण्डनाः, अपरे पाण्डवा

मिति—तृतीयं विष्टपं त्रिविष्टवं स्वर्गः 'पूरणप्रत्ययस्तु वृत्तौ गतार्थत्वान्न प्रयुज्यते' इति सुधा । 'पिष्टपो पिष्टपोऽप्यस्त्री भुवनं च नपुंसकम् ।' इत्यमरमाला । सुमन इति । सुमनोभिः कुसुमैः अलंकृतम् । पक्षे, देवैः अलंकृतम् । 'सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्रियां ना धीरदेवयोः' इति मेदिनी । वरारोहा— वर उत्कृष्टः आरोहः नितम्बोऽस्याः सा वरारोहा उत्कृष्टा नारी ।

तत्रेति—तत्र स्वयंवरमण्डपे क्षणं राजपुत्राः स्थिता इत्यन्वयः। राजपुत्रानेव विशिनष्टि कलाङ्कुरा इत्यादिना । कलाङ्कुरा इति–कलाङ्कुरः स्तेयशास्त्रप्रवर्तकः कर्णीसुतो मूलदेवः। 'कर्णीसुतो मूलदेवो मूलभद्रः कलाङ्कुरः ।' इति हारावली । अत्रोपमेयानुरोधेन बहुवचनम् , अग्रेप्येवं क्वचित् । कलाङ्कुराः चोराः इति केचित् । विदितेति—विदितानि ज्ञातानि परिहितानीत्यर्थः । नगरमण्डनानि नागरिकभूषणानि यैस्ते तथोक्ताः । अग्राम्यालंङ्कारधारिण इत्यर्थः । पक्षे विदिता ज्ञाता नगरमण्डनाः वेश्या यैस्ते तथोक्ताः । धूर्तराजशिरोमणिः मूलदेवो वेश्याचरितं सम्यग्वेदेति कथासरित्सागरवर्णितेन तदीयचरितेन सुस्पष्टम् । 'रूपाजीवा तु गणिका वारस्त्री पुरमण्डना ।' इति भागुरिः । यद्वा विदितानि स्वचारैर्ज्ञातानि नगरस्य नगरे विद्यमानानीत्यर्थः । मण्डनानि भूषणानि यैस्ते तथोक्ताः । 'विजितनगरमण्डनाः' इति पाठमादृत्य विजिततदभिधानवेश्याः । कलाङ्कुरेण कामशास्त्रज्ञातृतया नगरमण्डना वेश्या जितेति वार्ता । पक्षे, विजितं नगरस्य मण्डनं भूषणं यैस्ते, सर्वोत्कृष्टभूषणधारणादिति भावः । पक्षे, विना जितं नगरं बाणासुरपुरं तस्य मण्डना बाणासुरतुल्या राक्षसा इवेत्युपहासोऽपि ।' इति दर्पणकारः । अत्राहुरभिनवभट्टबाणाः–'अत्रोपहासपरतया व्याख्यानं किमर्थमिति न ज्ञायते । उत्तरत्र 'विरक्तहृदया' इति विरागस्य वक्ष्यमाणत्वात्तदुत्पत्तये एवमुपहासपरतया व्याख्यानमिति तु न वक्तुं युक्तम् । न खलु 'विना गरुडेन जितम्……'इत्येवं क्लेशेन व्याख्यातुरुपहासपरतया व्याख्यानकौशलेन नायिकायाः पारमार्थिको विरागः सम्भवति। नहि ग्रन्थकर्तुर्वाक्ये एवं योजना साधीयसी फलवती वा। यदि च नायिकासख्या वचनमिदं स्यात् , यदि वा तत्तन्नृपतीनां चेष्टादिकं वर्ण्येत; तर्हि युज्येत काममेवं व्याख्या । यया नायिकाया विरागस्तन्मूलकस्तन्नृपतिपरित्यागश्च समर्थितो भविष्यति यथा बालरामायणरघुवंशादौ । प्रकृते तु न तथेति शिवरामेण

और देवताओंसे अलंकृत स्वर्गके समान, पुष्पोंसे सुशोभित हो रहा था ।

उस स्वयम्वर सभामें कोई राजपुत्र, नगरकी वेश्याओंको जानने वाले स्तेयशास्त्रप्रवर्तक मूलदेवके समान नागरिक-सभ्योचित-भूषणोंसे अलङ्कृत थे । कोई, धृतराष्ट्र (अथवा

इव दिव्यचक्षुःकृष्णागुरुपरिमलिताः, अन्ये शरद्दिवसा इव दूरप्रवृद्धाशाः,

(दर्पणकारेण) किमर्थं क्लेशोऽनुभूयत इति विचार्यं सुधीभिः ।' इति । इदन्त्वत्र विचारणीयम्–'एवं व्याख्यानाभावे 'विरक्तहृदया सती' इति वक्ष्यमाणस्य नायिका-विरागस्य कारणं न समर्थितं भवति । न च विरागहेतोरुपन्यासेन किं प्रयोजनमिति युक्तं वचः, हेतूपन्यासमन्तरेण केवलं विरागकथनमात्रेणैव विच्छित्यभावात् । न च ग्रन्थकर्तुर्वाक्ये एवं व्याख्यानेन नायिकायाः पारमार्थिको विरागः सम्भवतीति वचनमपि न मनोरमम् , नहि क्वापि कवेर्वचनेन नायिकाया विरागोत्पत्तिं पश्यामोऽपि तु तेषु तेषु स्वयंवरार्थिषु तत्तद्विरागहेतून् दृष्ट्वैव नायिकाविरागः उत्पद्यते कविस्त्वात्मदृष्टया तान् काव्ये निबध्नातीति वस्तुतत्वम् । ते च क्वापि तत्तच्चेष्टादिवर्णनमिषेण, क्वचिच्च विशेषणबलेन प्रदर्श्यन्त इति तत्प्रदर्शनप्रकारभेदे कीदृशो विवादः' इति । परतो विद्वांसो विवेचयन्तु । दिव्येति—दिव्यचक्षुः सुगन्धभेदः, कृष्णागुरुः अगुरुविशेषः । तयोर्धूपगन्धेन परिमिलिताः युताः तत्पङ्केन युता वा । यद्वा–दिव्ये सुन्दरे चक्षुषी येषान्ते दिव्यचक्षुषः सुलोचनाः । कृष्णागुरुपरिमिलिताश्चेति कर्मधारयः । पक्षे—दिव्यचक्षुः अन्धो धृतराष्ट्रः, यद्वा दिव्यमलौकिकं चक्षुर्यस्य स दिव्यचक्षुः ज्ञानचक्षुर्भगवान् कृष्णः, कृष्णा द्रौपदी, गुरुवः भीष्मादयो, गुरुः द्रोणाचार्यो वा, एतैः परिमलिताः युक्ताः। 'दिव्यचक्षुः सुगन्धस्य भेदे नान्धे सुलोचने ।' इति मेदिनी । 'सदिव्यचक्षुषः' इति क्वचित्पाठः । 'दिव्यचक्षुः अर्जुनः तेन सहिता । पक्षे दिव्यचक्षुरिति सुगन्धिद्रव्यविशेषः । यद्वा ज्यौतिषिकः ।' 'दिव्यचक्षुर्ज्यौतिषिके पार्थात्मज्ञानिनोरपि ।' इत्युत्पलः' इति केचित् । उपहासपक्षे—दिव्यचक्षुषोऽन्धाः, कृष्णाः श्यामवर्णाः, अगुरुपरिमिलिताः वृद्धरक्षणरहिताः । 'दिव्यचक्षुः सुनयने कृष्णेऽन्धे सिंहकेऽपि ।' इति धरणिः । 'विदुः परिमलं गन्धे रक्षणेऽपि च ।' इति विश्वः । दूरेति—दूरमत्यन्तं प्रवृद्धा वृद्धिङ्गता आशा दीर्घाकाङ्क्षा, वासवदत्ताप्राप्त्याभिलाषो येषान्ते तथोक्ताः । पक्षे, दूरं प्रवृद्धाः प्रसृताः मेघावरणाद्युपरोधनिरासेन सुदूरप्रसरणा इव लक्ष्यमाणा इत्यर्थः, तादृश्यः आशाः दिशो येषान्ते तथोक्ताः । 'सुदूरप्रवृद्धसुखाशाः' इति पाठमङ्गीकृत्य शरद्दिवसपक्षे 'सुदूरं प्रवृद्धाः सुखाशाः राजतिमिषा येभ्यस्ते । सुखाशानां वसन्ते वृद्धेरिति भावः । पक्षे सुदूरं प्रवृद्धा सुखस्य वासवदत्तारतिमहोत्सवस्य आशा येषान्ते । उपहासपक्षे—सुदूरं प्रवृद्धा सुष्ठु खमिवाकाशमिवाशा येषान्ते । ईप्सितालब्धेव्यर्थत्वादिति भावः । प्रकृतपाठेऽपि दूरं प्रवृद्धा

ज्ञानचक्षु भगवान् कृष्ण), द्रौपदी और गुरु द्रोणाचार्यसे सङ्गत पाण्डवोंके समान, सुन्दर नेत्रवाले तथा कृष्णागरका लेप किये हुए थे । जिस प्रकार शरत् ऋतुमें दिशाएँ दूरतक फैली हुई प्रतीत होती है, उसी प्रकार किन्हीं राजपुत्रोंकी, वासवदत्ताको पानेकी इच्छा बहुत बढ़ी

इतरे प्रहर्तुमुद्यता इव स्वबलार्थिनः, केचिद् व्याधा इव शकुनश्रावकाः, केचिदाखेटासक्ता इव रूपानुसारप्रवृत्ताः, केचिज्जैमिनिमतानुसारिण इव

व्यर्थैव आशा येषान्ते इति उपहासपरत्वेन योजयितुं शक्यते। स्वबलेति—शोभना अबला स्वबला वासवदत्ता तदर्थिनः तदभिलाषकाः। पक्षे स्वस्य बलं शक्तिः सैन्यं वा तदर्थिनः। 'स्वस्मै बलं पराक्रमर्थयन्ते वैद्यादिभ्यस्ते' इति उपहासोऽपि। व्याधाः—शकुनिजीवकाः। शकुनेति—शकुनमुत्सवादिषु मङ्गलार्थं गीयमानं गीतविशेषं शृण्वन्तीति तथोक्ताः। 'शकुनो गीतविशेषः' इत्यजयपालः। यद्वा, शकुनं गरुडध्वन्यादिरूपं निमित्तं शृण्वन्तीति तथोक्ताः। पक्षे—शकुनात् पक्षिणः तच्छब्दानिति यावत्। शृण्वन्ति तद्ग्रहणनिमित्तं तदावासपरिज्ञानाय सावधानमाकर्णयन्तीति तथा। 'पक्षिण आहूय हन्तुं स्वहस्तगतान्पक्षिणः शब्दायन्ते' इत्यर्थः, इति केचित्। 'शकुनस्तु पुमान्पक्षिमात्रपक्षिविशेषयोः। शुभशंसिनिमित्ते च शकुनं स्यान्नपुंसकम्।' इति मेदिनी। आखेटेति—आखेटे मृगयायाम् आसक्ताः संलग्नाः तत्परा इत्यर्थः। 'आच्छोदनं मृगव्यं स्यादाखेटो मृगया स्त्रियाम्' इत्यमरः। रूपेति—रूपस्य सौन्दर्यस्य अनुसारेण अनुरोधेन प्रवृत्ताः स्वयंवरार्थमागताः। वासवादत्तासौन्दर्यातिशयेन तत्पाणिग्रहणाय प्रवृत्ता इति भावः। यद्वा, प्रवृत्ताः मनःप्रवृत्तिमन्तः, रूपवद्वस्त्वपेक्षमाणा इत्यर्थः। रूपानुसारे सौन्दर्यादरे प्रवृत्ताः, रूपवद्वस्तु बहुमन्यमाना इत्यर्थः, इति वा। पक्षे, रूपानुसारे मृगानुधावने प्रवृत्ताः आसक्तः 'अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणादिना। येन भूषितवद्भान्ति तद्रूपमिति कथ्यते। इत्युज्वुलनीलमणिः। 'रूपं तु श्लोकशब्दयोः। पशावाकाशे सौन्दर्ये, नायके नाटकादिषु। ग्रन्थावृत्तौ स्वभावे च।' इति हैमः। जैमिनीति—जैमिनिः पूर्वमीमांसाशास्त्रप्रणेता तन्मतं सिद्धान्तमनुसरन्तीति तथोक्ताः। तथा तेन प्रकारेण स्ववेषादितुल्यं वेषादिकं परिगृह्येत्यर्थः, आगतान् स्वयंवरे समुपस्थितान् नृपतीन् ध्वंसयन्त्युपहसन्तीति तथागतध्वंसिनः। तथाभूतं गमनं तद्ध्वंसिनः। कार्यं न पश्यन्तीत्यर्थः।' इति केचित्। 'तथागतमतध्वंसिनः' इति पाठं स्वीकृत्य 'तथा गतानां यथा स्वगृहे स्थितास्तथैवागतानां न तु समयोचितवस्त्रभूषणधारिणां सौन्दर्याभिमानजुषां मतं 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' इत्येवंरूपं तद्ध्वंसिनः तन्निन्दकाः।' इति दर्पणकारः। पक्षे—तथा सत्यं गतं ज्ञानं यस्य स तथागतो बुद्धः तद्ध्वंसिनः तद्विनाशकाः। मीमां-

हुई थी। कोई, उत्तमाङ्गनाको चाहनेवाले सुरतार्थियोंके समान अपने बलका प्रदर्शन करना चाहते थे। कोई, पक्षियोंका शब्द सुननेवाले व्याधोंके समान गरुड-ध्वनि आदि शुभ शकुन सुन रहे थे। कोई, मृगोंके पीछे दौड़ते हुए शिकारीजनोंके समान सुन्दर वस्तुओंकी अभिलाषा कर रहे थे (सौन्दर्यकी उपासनामें प्रवृत्त थे)। कोई बौद्धमतका खण्डन करनेवाले जैमिनिमतावलम्बियोंके समान, अपने जैसे वेष आदि धारण करके आये हुए राजाओंका

तथागतमतध्वंसिनः, केचित्खञ्जना इव सांवत्सरफलदर्शिनः, केचित्सुमेरुपरिसरा इव कार्तस्वरमयाः, केचित्कुमुदाकरा इव भास्वद्दर्शननिमीलिताः,

सकैर्बुद्धानभिमतानां वेदप्रामाण्यादीनां सिद्धान्तितत्वात् तद्ध्वंस इति बोध्यम्। तथागतानां नास्तिकानां मतध्वंसिनः पक्षे—तथागतं कुलपरम्परोचितं मतं शैवादिमतं तद्ध्वंसिनो नाशकाः। आचारहीनताऽत्रोपहासबीजम्। तथाच श्रीहर्षः—'जनः किलाचारमुचं विगायति' इति।' इति दर्पणकारः। 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।' इत्यमरः। खञ्जनाः—खञ्जरीटपक्षिणः। सांवत्सरेति— संवत्सरं वेत्ति सांवत्सरः 'तदधीते तद्वेद' इत्यण्। 'सांवत्सरो ज्यौतिषिकः' इत्यमरः। तेषां कथ्यमानं तैः कथितं वा फलं पश्यन्ति आलोचयन्तीति तथोक्ताः। पक्षे संवत्सरे भवं सांवत्सरं यावत्संवत्सरभावीत्यर्थः, तादृशं फलं दर्शयन्ति सूचयन्तीति तादृशाः। 'संवत्सरात्फलपर्वणोः' इति वार्तिकेन संवत्सरशब्दादण्। खञ्जनदर्शनं तत्तत्कालभेदेन स्थलभेदेन च शुभाशुभसूचकं भवति। तथा च 'आवर्षात् प्रथमे दर्शने फलं प्रतिदिनं तु दिनशेषे।' इति। प्रथमे दर्शने यत्फलं भवति तदेव वर्षपर्यन्तं भवतीति भावः। दर्पणकारस्तु 'सांवत्सरो ज्यौतिषिकः। तद्वत् फलदर्शिनः, यथा ज्यौतिषिको निध्यादिप्रश्ने निधिरूपं फलं दर्शयति एवं खञ्जना अपि सुरतादिना निध्यादिफलं दर्शयन्तीत्यर्थः। तथा च—'तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति यस्मिन्, यस्मिंस्तु छर्दयति तत्र तलेऽस्ति काचः। अङ्गारमप्युपदिशन्ति पुरीषणेऽस्य, तत्कौतुकापनयनाय खनेद्धरित्रीम्।' इति। पक्षे-सांवत्सरफलं वर्षफलं दर्शयन्ति स्त्रीपुत्रादिलाभार्थं तादृशास्ते। 'द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्। आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखभूतः। इति निर्णयरहितत्वेनाधीरत्वं व्यङ्ग्यमुपहासबीजम्' इत्याचष्टे। सुमेरुरिति—सुमेरोः परिसराः प्रान्तभागा इव। कार्तेति—कार्तस्वरमयाः सुवर्णविकाराः सुवर्णप्रचुरा वा, सुवर्णमयालंकारधारिण इत्यर्थः। पक्षे सुवर्णमयाः, सुमेरोः स्वर्णमयत्वात्। 'रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियाम्।' इत्यमरः। राजपुत्रपक्षे—कार्तस्वरः कुत्सितः आर्तस्वरः पीडितस्वरः तन्मयाः तद्भाजः, इति केचित्। 'कः आत्मा। आत्मनि विषादात् आर्तस्वरमयाः' इत्यपरे। अत्र 'ईषदार्तस्वरमयाः रुग्णतोपहासबीजम्। भास्वदिति—भास्वतः दीप्तिमतः जनस्य वासवदत्तारूपस्य

उपहास कर रहे थे। कोई, सम्पूर्ण वर्षभरके शुभाशुभ फलको सूचित करनेवाले खञ्जरीट पक्षीके समान, ज्योतिषियोंसे सूचित फलकी आलोचना कर रहे थे। (खञ्जन पक्षीके प्रथम दर्शनके दिन जैसा फल होता है, समस्त वर्ष भर वही फल होता है। यह ज्योतिषियोंका सिद्धान्त है) कोई, सुवर्णमय सुमेरुपर्वतके प्रान्तप्रदेशोंके समान, अनेक सुवर्ण निर्मित अलङ्कार धारण किये हुए थे अतएव सुवर्णमय प्रतीत हो रहे थे। कोई, सूर्यके दर्शनसे संकुचित

केचिद्धार्तराष्ट्रा इव विश्वरूपावलोकनजनितेन्द्रजालाद्भुतप्रत्ययाः,

---

दर्शनेनावलोकनेन निमीलिताः दृष्टिप्रतिघातेन निमीलितनेत्राः । पक्षे भास्वतः सूर्यस्य दर्शनेन निमीलिताः सङ्कुचिताः । अत्रोभयत्रापि मञ्चाः क्रोशन्तीतिवत् निमीलनमौपचारिकं तदाश्रये बोध्यम् । 'वासवदत्तादर्शनादेव येषामयं प्रकारस्तेषामग्रे का गतिरिति स्पष्ट एवोपहासः । धार्तराष्ट्राः—धृतराष्ट्रपुत्राः दुर्योधनादयः । विश्वरूपेति—विश्वस्य जगतो रूपं सौन्दर्यं यस्यां सा, त्रैलोक्यसमवायिसौन्दर्यपरमाणुनिर्मिता वासवदत्ता तस्या दर्शनेन जनितः उत्पादितः इन्द्रजालस्य अद्भुतप्रत्ययो निश्चयो येषां ते, तादृशसौन्दर्यस्यान्यत्र कुत्राप्यदर्शनात् इन्द्रजालमिवाश्चर्यकरं वासवदत्तासौन्दर्यं येषामित्यर्थः । पक्षे–विश्वरूपस्य दूत्यकाले भगवन्तं बद्धुं समुद्युक्तेषु दुर्योधनादिषु भगवत्प्रदर्शितस्य विश्वरूपस्य दर्शनेन जनितः इन्द्रजालाद्भुतस्य 'अयं कृष्ण इन्द्रजालमाचरतीत्येवंरूपस्य प्रत्ययः निश्चयो येषान्ते तथोक्ताः । इदं वाक्यं बहुधा व्याख्यान्ति व्याख्याकाराः । तथाहि उपमेयपक्षे—(१) विश्वरूपावलोकनमखिलजगदाकारदर्शनं स्वयंवरागतसमस्तलोकस्थितजनसमुदायदर्शनमिति यावत्, तेन जनितः उत्पादितः इन्द्रजालाद्भुतप्रत्ययः न खल्वेवं प्रभूता जगति विद्यन्ते जनाः परन्तु केनाप्यैन्द्रजालिकेन स्वेन्द्रजालमहिम्ना निरवधिको जनसमवायः प्रदर्श्यत इत्येवमिन्द्रजालाश्चर्यविषयको 'विश्वासः येषान्ते तथोक्ताः । 'विश्वं कृत्स्ने च भुवने विश्वेदेवेषु नागरे । विश्वाऽप्यतिविषायां स्यात् ।' इति विश्वः । (२) विः पक्षी, श्वा सारमेयः, रूपं मृगः, एतेषां निमित्तविशेषाणामवलोकनेन जनितः इन्द्रजाला इन्द्रदाराः शचीत्यर्थः । उदीच्यानां दजयो रलयोश्चाभेदः । तस्याः अद्भुतप्रत्ययो निश्चयो येषान्ते तथा । स्वयंवरे कलहायमानात् शची नाशयतीति सम्प्रदायः । (३) इन्द्रजालाः इन्द्रदाराः इन्द्राणी तेषामद्भुतं इन्द्रदाराद्भुतमिति विवाह उच्यते । 'विवाहः स्यात्परिणयस्तथेन्द्राणीमहोत्सवः' इति निघण्टुः । उपमानपक्षे—विश्वरूपो विष्णुस्तदवलोकनेन जनितः इन्द्रजालं माया तस्याम् अद्भुतम् आश्चर्यमिति प्रत्ययो ज्ञानं येषां ते तथोक्ताः । 'अतत्त्वज्ञत्वमत्र व्यङ्ग्यमुपहासबीजम् ।' इति दर्पणकारः ।

कुमुदवनकी तरह, तेजस्वी पुरुषों के दर्शनसे आँखें बन्द किये हुए थे । जब दुर्योधनादिकौरवोंने, दूत बनकर आये हुए भगवान् कृष्णको बांधना चाहा उस समय उन्होंने अपना विश्वरूप प्रकट किया, उसे देखकर कौरवोंने निश्चयपूर्वक समझ लिया था कि कृष्ण इन्द्रजाल करते हैं इसी तरह कोई कोई राजपुत्र स्वयंवरमें उपस्थित अनेक मनुष्यों को देखकर सोच रहे थे कि 'संसारमें इतने मनुष्य तो हैं नहीं, अतः कोई ऐन्द्रजालिक इन्द्रजाल द्वारा इतने मनुष्य दिखा रहा है । कोई, अपनेको हाथी समझते हुए भी शक्तिसंपन्न अश्व थे (यह विरोध है, वस्तुतः) इस सन्देहसे कि हमें निषेध करने पर (हमें न वरने पर) युद्ध न करना पड़े अतः वे अपनी सेना साथ किये हुए थे तथा वे विशाल भुजशाली थे । कोई, शत्रुओं के हाथको

केचिदात्मनि वारणबुद्ध्या बलवन्तोऽपि सुवाहाः, केचित्पाणिग्रहणार्थि-

आत्मेति—स्वामिन् वारणबुद्ध्या गजधिया बलवन्तः शक्तिमन्तोऽपि, अभिमानवन्तोऽपि वा सुवाहाः सुखेन वाहो वहनं स्वानुकूलविधाने नयनं प्रतारणमिति यावत् येषान्ते। बलवन्तः प्रतारणयोग्याश्चेति विरोधः। यद्वा वाहः वहनमन्यत्र नयनं, येषान्ते तादृशाः। यो ह्यतिबलः पुमान् न स पुरुषान्तरेण सुखोद्वहनीयः' इति विरोधः। यद्वा सुवाहाः शोभनाः अश्वाः। अत्र गजानामश्वत्वमुक्तमिति विरोधः। परिहारपक्षे—'आत्मनिवारणबुद्ध्या' इत्येकं पदम्, आत्मनिवारणबुद्ध्या स्वप्रतिषेधशङ्कया, वासवदत्तालाभे वासवदत्तोपयन्तारं योत्स्यामहे इति बुद्ध्येत्यर्थः, इन्दुमतीस्वयंवरे अजेन सहान्यनृपतीनां युद्धमिवेति भावः। बलवन्तः सैन्यसहिताः। सुवाहाः शोभना अश्वा येषान्ते सुवाहाः। यद्वा शोभनाः वाहाः भुजाः येषान्ते तादृशाः। 'वाहो बाहुतुरङ्गयोः' इति शाश्वतः। परिहारपक्षे—'प्रियन्त इति पराः परवन्तः परैर्युक्ता इत्यर्थः। वपयो रलयोश्चाभेदाद्बलशब्दस्य परशब्दो द्रष्टव्यः। एवं सर्वत्रोन्नेयम्। इति कश्चित्। उपहासपक्षे 'पक्षे शोभनाश्वजातिपुरुषाः ते वृषजातिपुरुषा इव न यथाकथञ्चित् अपि जातित्रयनायिकोपयुक्ता इति दिक्। प्रपञ्चस्तु रतिरहस्यादौ द्रष्टव्यः। अत्रोपहासबीजं तत एवावधेयम्' इति दर्पणकारः। पाणीति—पणनं पाणिः बाहुलकाद्भावे औणादिकः इञ्, व्यवहारः आयसाध्यो भोजनोपभोगादिव्यापार इत्यर्थः तद्ग्रहणार्थिनः तत्कर्तुकामा अपि असुकरं, शोभनः करः राजग्राह्यो भागः सुकरः न सुकरः असुकरः तमसुकरं मन्यमानाः, राजग्राह्यभागदानमन्तरेणैव स्वव्यापारसाधनेप्सव इत्यर्थः। करग्रहणं विना राज्ञां कार्याणि न सिध्यन्तीति विरोधः। पक्षे पाणिग्रहणं वासवदत्ताया विवाहः तदर्थिनः तदभिलाषिणः। सुकरं सुखेन कर्तुं शक्यं सुकरं तद्भिन्नमसुकरं दुष्करं, तत्पाणिग्रहणं दुष्करं मन्यमानाः इत्यर्थः। स्वेच्छासत्वेऽपि स्वयंवराधीनत्वात्तस्येति भावः। अत्र—'पाणीनां शत्रुहस्तानां ग्रहणं छेदनेन स्वायत्तीकरणं तत् अर्थयन्ते कर्तुमभिलष्यन्तीति पाणिग्रहणार्थिनः, तादृशा अपि, असुकरं मन्यमानाः, असवः प्राणाः असुकरं प्राणप्रदं मन्यमानाः सुखाकरमित्यर्थः। तत्पाणिग्रहणं हस्तच्छेदनरूपं कर्म असुकरं सुखकरं मन्वाना इत्यर्थः। करच्छेदनस्य दुःखजनकत्वात्तस्य सुखप्रदत्वेनाभिमतिर्विरुद्धेति विरोधः।' इति केचित्। अपिकारमुत्तरत्र योजयित्वा असुकरं मन्यमाना अपि पाणिग्रहणार्थिनः इत्यन्वयः। वासवदत्तायाः करम् असुकरमशोभनं हस्तं मन्यमाना अपि पाणिग्रहणार्थिनः इति विरोधः। न खलु निन्दिते वस्तुनि प्रवृत्तिर्भवतीति भावः।' इति परे। 'अत्रापिकारस्य न विरोधद्योतकत्वम्, किन्तु यथाश्रुतार्थपरतायामेव पर्यवसानमित्यपरे। 'पाणिना ग्रहणं तत्प्रार्थयन्तः। असुकरं अशोभनहस्तमात्मानं मन्यमानाः। पाणि-

काटकर अपने अधीन करने की इच्छा रखते हुए भी (इस हस्तच्छेदनको) सुखदायी समझ

नोऽप्यसुकरं मन्यमानाः, केचिदधरीकृता अपि स्थिराः, केचित्पाण्डुपुत्रा इवाक्षहृदयाज्ञानहृतक्षमाः, केचिद् बृहत्कथानुबन्धिन इव गुणाढ्याः,

---

ग्रहणार्थिनः शोभनहस्तरहितत्वं विरुध्यते इति विरोधः' इत्यन्ये। अधरीकृता इति—धरा पृथ्वी, धरीकृताः पृथ्वीकृताः तद्भिन्ना अधरीकृताः, तादृशा अपि स्थिराः पृथिव्यः इति विरोधः। पक्षे अधरा निकृष्टाः, तादृशीकृताः अधरीकृताः हीनतामापादिता अपीति यावत्। स्थिराः निश्चलाः पाणिग्रहणाय कृतनिश्चया इत्यर्थः। इति परिहारः। 'रसा विश्वम्भरा स्थिरा। धरा धरित्री धरणी' इत्यमरः। 'अधरस्तु पुमानोष्ठे हीनेऽनूर्ध्वेऽपि वाच्यवत्' इति मेदिनी। 'अत्र निर्लज्जतारूपमुपहासबीजं स्फुटमेवेति' दर्पणकारः। अक्षेति—अक्षाणामिन्द्रियाणां वासवदत्तासंबन्धिनां हृदयस्य अभिप्रायस्य मनसो वा अज्ञानेन अनवबोधेन हृता नष्टा क्षमा शान्तिर्येषान्ते तथोक्ताः। इयमङ्गीकरिष्यति वा नवेति व्याकुलीभूता इत्यर्थः। 'तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत्।' इति रघुः। पक्षे—अक्षहृदयस्य पाशकतत्त्वस्य द्यूतशास्त्रस्य वा अज्ञानेन हृता शत्रुभिः स्वायत्तीकृता क्षमा भूमिः येषान्ते तादृशाः। अत्र राजपुत्रपक्षे अक्षहृदयस्य व्यवहारतत्त्वस्य अज्ञानेन हृतक्षमाः त्यक्तक्षान्तयः। कर्मानुगुणमेवेयमस्माभिरपि लप्स्यत इति विवेकाभावादभ्यसूयापरा इति यावत्। इति साम्प्रदायिकाः। 'तरलताऽत्र दोषः' इति दर्पणकारः। 'अक्षो रथस्यावयवे व्यवहारे बिभीतके। पाशके शकटे कर्णे ज्ञाने चात्मनि रावणौ। अक्षं सौवर्चले तुत्थे हृषीके स्यात्।' 'क्षमा क्षान्तौ क्षितौ' इति हैमः। बृहत्कथेति—बृहत्कथा नाम गुणाढ्यकविनिर्मिता पिशाचभाषामयी आख्यायिका तदनुबन्धिनः तदध्येतारः। गुणेति—गुणैः सन्ध्यादिभिः शौर्यौदार्यादिभिर्वा आढ्याः परिपूर्णाः। पक्षे, गुणैः दाक्षिण्यादिभिः आढ्याः, बृहत्कथापाठेनाध्येतृषु दाक्षिण्यादिगुणाविर्भावः सञ्जायते इति। यद्वाऽस्मिन्पक्षे बृहत्कथानुबन्धिनः बृहत्कथाख्यायिकाप्रणेतारः। गुणाढ्यास्तन्नामानः कवयः। बहुवचनं पूजार्थमुपमेयानुरोधाद्वा। दर्पणकारस्तु बृहत्कथानुबन्धिनो गुणाढ्याः' इति पाठं स्वीकृत्य, राजपुत्रपक्षेऽपि बृहत्कथानुबन्धिनः बहुकथानुबन्धिनः बहुकथाप्रवक्तारः इत्यर्थमाह। किंच, गुणैर्वागुरादिभि-

---

रहे थे (वस्तुतः) वासवदत्ताका पाणिग्रहण चाहते हुये भी आसान न समझते थे। कोई-पृथ्वी-शून्य किये हुए भी भूमि थे (वस्तुतः) अपमानित किये जाने पर भी अपने स्थान पर (अथवा अपने निश्चयमें) स्थिर थे। कोई, द्यूतशास्त्रकी अनभिज्ञताके कारण अपना राज्य नष्ट करनेवाले पाण्डवोंके समान, व्यवहार-कुशलताकी अज्ञानतासे अपनी शान्ति खो बैठे थे। कोई, बृहत्कथा-निर्माता गुणाढ्य कविके समान, शूरता आदि गुणोंसे संपन्न थे।

केचित्तिर्यग्गतय इव सुगन्धवाहाः, केचित्कौरवसैनिका इव द्रोणाशासूचकाः, केचित्कुमुदाकरा इवासोढशूरभासः, सा च तरोमैकैकशः समवलोक्य

राज्याः सर्वदा मृगयासक्ततया व्यसनिता च दोषः' इति स एव। तिर्यगिति—तिरश्चीगतिः येषान्ते तिर्यग्गतयः पवनाः। सुगन्धेति—शोभनं गन्धं गन्धद्रव्यं वहन्ति धारयन्तीति सुगन्धवाहाः। सुगन्धाः शोभनगन्धसहिताः वाहाः भुजा येषान्ते तथोक्ता इति वा। पक्षे, शोभनं गन्धं पुष्पादिसौरभं वहन्ति धारयन्ति इतस्ततो नयन्तीति सुगन्धवाहाः। अत्रापि 'तिर्यग्गतयः सुगन्धवाहाः।' इति दर्पणधृतपाठः। राजपुत्रपक्षे तिर्यग्गतयः कुटिलमार्गगामिनः। इति तदर्थश्च। सु शोभनमतिशयेनेति यावत् गन्धमपानवायुं वहन्ति कुर्वन्तीति सुगन्धवाहाः। उदरमालिन्यमत्र दोषः। द्रोणेति—द्रोणैः श्वेतपुष्पवृक्षैः हस्तस्थिततत्पुष्पैरित्यर्थः। आशां सुखप्राप्त्याशां सूचयन्तीति द्रोणाशासूचकाः। यथेमानि द्रोणपुष्पाणि हस्तैरेव ध्रियन्ते न तु कथञ्चिदप्यवहेल्यन्ते एवं त्वमपि हस्तैर्लालयिष्यसे इति वासवदत्तां प्रति सूचयन्तीति भावः। 'द्रोणः काकः, तस्मात् आशा वासवदत्ताप्राप्त्याशा तत्सूचकाः। उक्तं च स्थानस्थितप्रकरणे वसन्तराजे। 'इष्टार्थदोऽश्वादिकवाहनस्थश्छत्रादिसंस्थस्तदवाप्तिकारी। वध्वागमं जल्पति तोरणस्थो हृद्यार्थदो हृद्यतरुस्थितश्च। इत्यादि' इति दर्पणकारः। 'द्रोणशास्त्रसूचकाः' इत्यभिनवभट्टबाणानां पाठः। द्रोणः काकः तच्छास्त्रं तच्छकुनतावबोधकं निमित्तशास्त्रं तत्सूचकाः तदवेक्षकाः पक्षिशास्त्रालोचका इति यावत्। द्रोणशब्दः शकुनभूतपक्षिसामान्योपलक्षकः।' इत्यर्थश्च तेषाम्। पक्षे, द्रोणः द्रोणाचार्यः कौरवाणां गुरुः तस्मात् आशां जयाशां सूचयन्ति प्रकटयन्तीति द्रोणाशासूचकाः। पाठान्तरे, द्रोणाचार्यस्य शास्त्रं शासनं निदेशं सूचयन्ति पालयन्तीति द्रोणशास्त्रसूचकाः, द्रोणाचार्याज्ञावशंवद इत्यर्थः। यद्वा शस्त्राणां समूहः शास्त्रम्। द्रोणाचार्यस्य शस्त्रसमूहं सूचयन्ति 'पतिष्यति युष्मासु द्रोणाचार्यशस्त्रसमूह' इत्येवं शत्रून्बोधयन्तीति तादृशाः। 'शास्त्रं न द्वयोरभमाज्ञयोः' इति मेदिनी। द्रोणः पार्थगुरौ काके माने' इति हैमः। 'द्रोणः श्वेतकर्मक्षुद्रपुष्पवृक्षविशेषः।' इति शब्दकल्पद्रुमः। 'ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदा प्रियम्। तत्ते दुर्गे! प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि!' इति स्मार्तकृतदुर्गार्चाप्रयोगः। कुमुदेति—कुमुदानां कैरवाणामाकरा इव। असोढेति—असोढाः शूरैः वीरैरपि भासो दीप्तयो येषान्ते तादृशाः। अतितेजस्विन इत्यर्थः। 'असोढाः शूराणां भासो यैस्ते तादृशाः' इति विग्रहप्रदर्शनन्तु राजपुत्राणां हीनत्वप्रतीतेः नातीव मनोरमम्। पक्षे, असोढाः शूरस्य सूर्यस्य भासः किरणा यैस्ते तथोक्ताः। 'शूरश्चारुभटे सूर्ये' इति विश्वः। 'सुभटे शूरः सूर्ये च

कोई, इधर उधर सुगन्ध फैलानेवाले पवन के समान सुगन्धित पदार्थोंको धारण किये हुए थे। कोई, द्रोणाचार्यसे जयकी आशा रखने वाले कौरवसैनिकों की तरह, कृष्णकाक द्वारा वासवदत्ता-प्राप्तिकी आशा कर रहे थे। कोई, सूर्यकी दीप्तिको न सहन करनेवाले कुमुदवनके समान, शूर पुरुषोंका तेज सहन नहीं कर सकते थे। इस प्रकार वे राजपुत्र क्षणभर

विरक्तहृदया सती तस्मात्कर्णीरथादवततार।

अथ तस्यामेव रात्रौ सा स्वप्ने, वालिनमिवाङ्गदोपशोभितम्, कुहुमु-

दुन्त्योऽपि' इत्यूष्मविवेकः। 'भा भुव्यलङ्कृतौ दीप्तौ स्त्रियां भाः किरणे द्युतौ।' इति नानार्थरत्नमाला। सहतेः क्तप्रत्यये सोढेति रूपम्। 'तीषसह' इत्यादिना पाक्षिकः इडभावः। सा वासवदत्ता। एकैकशः प्रत्येकम्। अत्र 'एकैकश इति प्रयोगो न साधुः। अपवादेन शसा द्विर्वचनस्य बाधितत्वात्।' इति मनोरमाकाराः। 'एकां कपिलामेकैकशः सहस्रकृत्वो दत्त्वा-' इति भाष्यप्रयोगेण स्वार्थेऽपि शसिति विज्ञायते इति एकैकश इत्यत्र वीप्सायां द्विर्वचने ततः स्वार्थे शस् इति' ज्ञानेन्द्रसरस्वती। उद्द्योतकारास्तु-'एकैकश' इत्यत्र उभयोरपि द्योतकत्वेन द्योतकसमुच्चयस्य च बहुशो दृष्टत्वात् द्विर्वचनशसोर्यौगपद्यम्। यथा-यथाजातीयको गार्ग्यायणीत्यादौ। तत्र च यथा ष्फसरवे समुच्चित्य द्योतकता, तदभावे गार्गीति ङीपैव। तथा प्रकृतेऽपि शसो वैकल्पिकत्वात्पक्षे एकैकमित्यपि। द्व्यादिशब्दविषये तु न समुच्चित्य द्योतकता अनभिधानात्। एकशब्दे तु समुच्चित्य प्रत्येकञ्च द्योतकता, अभिधानस्वभावात्। यत्र तद्धितेनानुक्ता वीप्सा तत्र द्विर्वचनं भवत्येव यथैकैकशो देहीति। भाष्यस्याप्ययमाशयः—यत्र तद्धितमात्रेण लोके वीप्सानभिधानं तत्र द्विर्वचनमपि यत्र माषश इत्यादौ तावतैव वीप्साभिधानं तत्र न कदापि तयोः समुच्चयः' इति। नव्यास्तु—नेदं भाष्यवचनम्, परन्तु भाष्यकृता समुद्धृतं श्रौतं स्मार्तं वा वचनमेव। अतो नेदं ज्ञापकम्। अत्र हि छान्दसत्वात् शस्। अतएव हरदत्तेन 'एकैकशः पितृसंयुक्तान्' इत्यत्र छन्दोवद्दषयः कुर्वन्तीति' समाहितम्। किंच, 'एकां कपिलाम्' इति वाक्ये एकेति प्रधानार्थकं संबुद्ध्यन्तमिति न दोषः। एकैकशः इत्यस्योपपत्तिस्त्वेवं करणीया। 'संख्यैकवचनाच्च' इति सूत्रे चकारो वीप्सायामित्यनन्तरं द्रष्टव्यः। 'संख्यैकवचनात् वीप्सायां च शस्। चात्स्वार्थेऽपि स चाभिधानस्वाभाव्यादेकशब्दादेव। तेन एकशब्दाद्वीप्साशसभावे द्विर्वचने ततोऽत्यन्तस्वार्थिके शसि एकैकशः इत्येतत्सिद्धिः। न चैवमेकशः इत्युक्ते संदेहः स्यात्। शास्त्रे व्याख्यानतो लोके प्रकरणादितो निर्णयादिति' वदन्ति। विरक्तेति—विरक्तं तत्तद्राजपुत्रग्रहणपराङ्मुखं हृदयं मनो यस्याः तादृशी सती। 'वर्णितदोषदर्शनादिति' दर्पणकारः। कर्णीरथात् मञ्चात्। 'कर्णीरथः प्रवहणे मञ्चे राज्ञां स्वयंवरे' इत्यजयः। अभिनवभट्टबाणास्तु—कर्णीरथात् प्रवहणात् 'कर्णीरथः प्रवहणं डयनं च समं त्रयम्। इति अमरविवरणे सुधा। एतदनुरोधेनैव पूर्वं मञ्चपदं यानपरतया व्याख्यातम्' इत्याहुः।

अथेति—स्वयंवरे राजपुत्रान् परित्यज्य स्वगृहमागमानन्तरम्। तस्यामेव स्वयं-

बैठे रहे। और वह वासवदत्ता, क्षणभरमें, इनको एक एक करके देखती हुई विरक्त हो उसी कर्णीरथ-यान से उतर गई।

अनन्तर वासवदत्ताने उसी रातमें एक युवक देखा। जो, अपने पुत्र अङ्गद द्वारा सुशो-

खमिव हारिकण्ठम्, कनकमृगमिव रामाकर्षणनिपुणम्, जयन्तमिव वचनामृतानन्दितवृद्धश्रवसम्, कृष्णमिव कं सहर्षं न कुर्वन्तम्, महामेघमिव विलसत्करकम्, समुद्रमिव महासत्त्वम्, मालिन्या कवरिकया, तुङ्ग-

---

वरदिनसम्बन्धिन्यामेव रजन्याम्। युवानं तरुणं ददर्शेति संबन्धः। युवानं विशिनष्टि वालिनमिवेत्यादिना—बाली सुग्रीवाग्रजो वानरराजः, तमिव। अङ्गदेति—अङ्गदेन केयूरकेण भुजभूषणविशेषेण उपशोभितम्। पक्षे अङ्गदेन एतदाख्येन स्वसूनुनोपशोभितम्। 'अङ्गदः कपिभेदे ना केयूरेति नपुंसकम्।' इति मेदिनी। कुहूमुखम्—कोकिलमिव। 'कुहूकण्ठमिव' इति पाठान्तरम्। 'ध्वाङ्क्षपुष्टः कलकण्ठो मधुकण्ठः कुहूमुखः' इति हारावली। हारीति—हारः मुक्तामाला विद्यतेऽस्येति हारी हारवान् कण्ठो यस्य स, तादृशम्। पक्षे, हारी मनोहारी कण्ठः कण्ठध्वनिर्यस्य स, तथोक्तम्। कनकमृगेति कनकमृगरूपधारी मारीचस्तमिव। रामेति—रामाणां सुन्दरीणामाकर्षणे बिलोभने निपुणं समर्थम्। पक्षे, रामस्य दाशरथेः आकर्षणे स्वानुधावने निपुणं चतुरम्। 'सुन्दरी रमणी रामा' इत्यमरः। जयन्तमिव—एतदाख्यमिन्द्रपुत्रमिव। 'जयन्तः पाकशासनिः' इत्यमरः। वचनेति—वचनमेवामृतं, वचनामृतम्, अमृतमिवानन्दजनकत्वात् तेन सुधयेवाह्लादकैर्वचोभिः आनन्दितानि प्रसादितानि वृद्धानां पण्डितानां श्रवांसि श्रवणानि येन स तम्। पक्षे, वचनामृतैः आनन्दितः प्रीणितः वृद्धश्रवाः स्वजनक इन्द्रो येन स तम्। 'वृद्धः प्राज्ञे स्थविरे च' इति हैमः। 'श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः' इत्यमरः। 'वृद्धश्रवाः शुनासीरः पुरुहूतः पुरन्दरः।' इत्यमरः। कंसेति—कं जनं सहर्षं सानन्दं न कुर्वन्तम्, सर्वानपि लोकान् हर्षयुक्तान्कुर्वाणमित्यर्थः। पक्षे, कंसहर्षमित्येकं पदम्। कंसस्य मथुराधिपतेः स्वमातुलस्य हर्षं सन्तोषं न कुर्वन्तम्। विलसदिति—विशेषेण लसन्तौ शोभमानौ करौ हस्तौ यस्य स तम्। समासान्तः कब्वा। पक्षे, बिलसन्त्यः करकाः वर्षोपलाः यस्य यस्मिन् वा स तथोक्तः। 'वर्षोपलस्तु करके' त्यमरः। महासत्त्वमिति—महत् सत्त्वं बलं चित्तं स्वभावो वा यस्य स तम्। बलवन्तं महोदारं वा। पक्षे महान्ति बृहन्ति सत्त्वानि जन्तवो

भित वालोके समान, अङ्गद-केयूरनामक (बाजूबन्द) भूषणसे अलङ्कृत था। सुरीली आवाजवाली कोयलके समान गलेमें घर धारण किये हुए था। भगवान् रामको आकृष्ट करनेमें निपुण स्वर्णमयमृगमारीच की तरह (अपने सौन्दर्यादिसे) स्त्रियोंके आकर्षणमें प्रवीण था। अमृत तुल्य बचनोंसे इन्द्रको सन्तुष्ट करनेवाले जयन्तके समान अपने सुधा-सदृश भाषणोंसे पण्डितोंको आनन्दित करता था। भगवान् कृष्णको देखकर कंसको हर्ष न होता था परन्तु इस युवकके दर्शनसे सभी आनन्दित होते थे। ओलोंसे सुशोभित महामेघके समान जिसके दोनों हाथ सुशोभित थे। जो महासत्त्व-उदारस्वभाव होनेसे समुद्रके समान

भद्रया नासिकया, शोणेनाधरेण, नर्मदया वाचा, गोदया भुजया स्ववर्वाहिन्या कीर्त्या च पुण्यसरिन्मयमिव, आदिकन्दं शृङ्गारपादपस्य, रोहण-

यस्मिन् तं तादृशम्। 'सत्त्वं गुणे पिशाचादौ बले द्रव्यस्वभावयोः।' इति मेदिनी। वक्ष्यमाणं पुण्यसरिन्मयत्वं श्लेषेण समर्थयते—मालिन्येत्यादिना—मालिन्या मालिनीनामिकया कयाचन नद्या। या शाकुन्तलादिषु वर्ण्यते। इयं नदी उत्तरप्रदेशान्तर्गतविजनौरप्रान्ते 'नजीबाबाद' नगरोपान्ते प्रवहति। कण्वाश्रमोऽपि विजनौरनगरोपान्त एवासीत्, क्षुद्राऽपीयं नदी कण्वाश्रममाहात्म्यात्प्रसिद्धिङ्गता। पक्षे, मालायुक्तया। कवरिकया केशविन्यासेन। 'मालिनी मातृव वृत्तभिदोर्मालिकयोषिति। गौरीचम्पानगर्योश्च मन्दाकिन्यां नदीभिदि।' इति मेदिनी। 'कबरी केशविन्यासशाकयोः' इति हैमः। तुङ्गेति—तुङ्गभद्रा दाक्षिणात्येषु प्रसिद्धा नदी। पक्षे, तुङ्गा उन्नता भद्रा मनोहरा प्रशस्ता च। शोणेति—शोणाख्यनदेन। अयं नदः विन्ध्याचलगिरेराविर्भूय पूर्वोत्तरां दिशं प्रवहन् कुसुमपुर(पटना)समीपं भागीरथ्या संगच्छते। पक्षे, रक्तेन, अधरेण अधरोष्ठेन। 'शोणो नदे रक्तवर्णे श्योनाकेऽग्नौ हयान्तरे।' इति हैमः। नर्मेति—नर्मदा एतन्नाम्ना प्रसिद्धा पश्चिमवाहिनी पश्चिमसागरपातिनी नदी। पक्षे, नर्मक्रीडां लीलासंलापं ददातीति नर्मदा, विलाससंलापनिपुणेत्यर्थः। 'लीला क्रीडा च नर्म च' इत्यमरः। गोदयेति—गोदा गोदावरीतिनाम्ना प्रसिद्धा नदी तया। सत्यभामा भामेतिवत् श्लेषवशात् नाम्नो ग्रहणे नामैकदेशग्रहणम्। यद्वा, 'गोदा गोदावरी' इति जलकाये हेमचन्द्रवचनात् गोदेति गोदावर्या नामान्तरम्। पक्षे, गां भूमिं शत्रूणामिति भावः। द्यति खण्डयति विजयेनात्मसात्कृत्य तेभ्यः आच्छिनत्तीति गोदा तया तथोक्तया भुजया बाहुना। गां भूमिं ददातीति गोदा भूदानदक्षेत्यर्थः इति वा। स्ववर्वाहिन्येति—स्ववर्वाहिन्या सुरलोकनद्या गङ्गयेत्यर्थः। पक्षे, स्वः स्वर्गं वोढुं गन्तुं शीलं यस्याः सा तादृशी, स्वर्गपर्यन्तगामिनीत्यर्थः; तया। कीर्त्या यशसा। पुण्यसरिन्मयमिव—पुण्यनदीरूपमिव स्थितम्। विकारे स्वार्थे वा मयट्। अत्र 'कवरिकया' इत्यादीनि विशेष्यपदानि मालिन्यादीनां विशेषणतयाऽप्युपयोक्तुं शक्यन्ते तथा च—कबवरिकया कवरीवत् कुटिलगामिन्येत्यर्थः। नासिकया—नासिके भवा नासिका तथा नासिकप्रदेशवाहिन्येत्यर्थः। तुङ्गभद्रा हि नासिकप्रदेशोपान्ते दाक्षिणात्येषु प्रवहति।

था जिसमें कि अनेक जीवजन्तु विद्यमान हैं। वह युवक मानों मालिनी, तुङ्गभद्रा, शोण (सोन), नर्मदा, गोदावरी और गङ्गाके एकत्रित होनेसे पवित्र नदियों द्वारा निर्मित था; क्योंकि उसके केशोंमें पुष्पमालाएँ गुथीं हुई थीं, उसकी नासिका ऊँची और मङ्गलप्रद थी, अधरोष्ठ रक्तवर्ण था, वाणी अनेक प्रकारके परिहासोंमें निपुण थी, भुजाएँ भूदान करनेमें दक्ष थीं और कीर्ति स्वर्गमें विचरती थी। (श्लेष द्वारा मालिनी आदि नदियों का सङ्गम दिखाया

गिरिं सकलगुणरत्नसमूहस्य, प्रभवशैलं सुन्दरकन्दर्पकथानदीनाम्, सुरभिमासं वैदग्ध्यसहकारस्य, आदर्शतलं सौजन्यमुखस्य, आदिबीजं विद्यालतानां, कोशगृहं महासौन्दर्यधनस्य, मूलगृहं शीलसम्पदः, स्वयंवृतपतिं

अधरेण—न विद्यते धरा भूमिः यस्य सोऽधरः तेन। अतलस्पर्शेन अतिगम्भीरेणेत्यर्थः। वक्ति शब्दं करोति इति वाक् तया वाचा, प्रस्तरेषु पतनात् कलकलनादिन्येत्यर्थः। पापिनां पापानि कृन्तति छिनत्तीति कीर्तिः तया, अघहन्त्र्येत्यर्थः। 'कृती' छेदने इत्यस्मात् बाहुलकात् कर्तरि क्तिन्। श्लेषरूपकोत्प्रेक्षाणां संकरः। आदीति—शृङ्गारः शृङ्गाररसः एव पादपो वृक्षः तस्य आदिकन्दं मूलाधारम्। एनमाश्रित्यैव शृङ्गाररसस्योत्पत्तिरित्यर्थः। अत्र कन्दर्पकेतौ आदिकन्दत्वरूपणस्य शृङ्गारे पादपत्वरूपणं निमित्तमिति परम्परितरूपकम्। एवमग्रेऽपि। रोहणेति—सकलाः समस्ताः गुणाः शौर्यादय एव रत्नानि तेषां समूहस्य रोहणगिरिं प्रादुर्भावाद्रिम्। 'रोहणो रत्नपर्वतः' इति वैजयन्ती। प्रभवेति—प्रभवशैलम् उत्पत्तिगिरिम्। सुन्दर्यः मनोहराः याः कन्दर्पकथाः मन्मथसंलापास्ता एव नद्यः, अविरतप्रवृत्तत्वरूपप्रवहणसाम्यात्, तासाम् उत्पत्तिपर्वतम्। सुरभीति—वैदग्ध्यं चातुर्यमेव सहकारः रसालः सुगन्धवदन्यजनसन्तर्पणात् तस्य सुरभिमासं वसन्तसमयम्। यथा रसालो वसन्ते समुल्लसति तथैव वैदग्ध्यमस्मिन् समुल्लसतीत्यर्थः। परमविदग्धमिति भावः। 'सुरभिः शल्लकीमातृभित्सुरगोषु योषिति। चम्पके च वसन्ते च तथा जातीफले पुमान्। स्वर्णे गन्धोत्पले क्लीवं सुगन्धिकान्तयोस्त्रिषु। विख्याते सचिवे धीरे चैत्रेऽपि च पुमानयम्'। इति मेदिनी। आदर्शेति—सौजन्यं सच्छीलत्वमेव मुखं वदनं तस्य, आदर्शतलं दर्पणतलम्। सौजन्यमत्र स्फुटं प्रतिभासते इति भावः। प्रथमेति—विद्याः चतुर्दश अष्टादश वा, ता एव लताः व्रतत्यः प्रसरणसाधर्म्यात् तासां प्रथमबीजमादिकारणम्। सर्वा विद्या इत एव समुत्पन्ना इत्यर्थः। परमविद्वांसमिति भावः। 'अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः। अर्थशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश। आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थं च विद्या ह्यष्टादशैव ताः'। कोशेति—महत् विपुलमुत्कृष्टं वा यत् सौन्दर्यं रामणीयकं तदेव धनं तस्य कोशगृहं भाण्डागारम्। निखिलमपि

गया है)। वह युवक, शृङ्गाररूपी वृक्षका आदिमूल था—उसी के आश्रयसे शृंगाररसकी उत्पत्ति हुई है। जिस प्रकार समस्त रत्नरोहण नामक पर्वतसे उत्पन्न होते हैं उसी तरह सम्पूर्ण गुण उसीसे उत्पन्न हुए हैं। समस्त नदियाँ जिस तरह पर्वतोंसे निकलती हैं, कामदेव संबन्धी सुन्दर कथाएँ भी, उसी तरह उससे उत्पन्न हुई हैं। जो चतुरतारूपी सहकारके लिये वसन्त था, दर्पणमें मुखके समान सज्जनता उसीमें प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ती थी। वह विद्यारूपी लताओंका आदि बीज था (समस्त विद्याएँ उसीसे उत्पन्न हुई थीं।) मनोहारि सुन्दरतारूपी धनका कोशागार और सत्स्वभावरूपी ऐश्वर्यका प्रधान गृह था। कीर्तिने

कीर्तेः, स्पर्धागृहं लक्ष्मीसरस्वत्योः, त्रिभुवनविलोभनीयाकृतिं, कञ्चिद्युवानं ददर्श।

स चिन्तामणिनाम्नो राज्ञस्तनयः कन्दर्पकेतुरिति स्वप्न एव तन्नामादिकमशृणोत्। अनन्तरम् 'अहो प्रजापते रूपनिर्माणकौशलम्। मन्ये, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनोत्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणूनादाय विरचितोऽयमिति; अन्यथा कथमिवास्य कान्तिविशेष

सौन्दर्यमत्र ब्रह्मणा सन्निधापितमित्यर्थः। अत्यन्तसुन्दरमिति भावः। मूलमिति—शीलं सत्स्वभाव एव संपत् ऐश्वर्यं तस्याः, मूलगृहम् आदिगृहम्। स्वयंवृतेति—कीर्तेः यशसः, स्वयमात्मना वृतः स्वीकृतः पतिः नायकः तम्। अत्र कीर्तौ स्त्रीलिङ्गात् नायिकात्वप्रतीतिः। कीर्तिमन्तमिति भावः। स्वयंवरपतिमिति पाठान्तरे स्वयंवरे वृतं पतिमित्यर्थः। स्पर्धेति—लक्ष्मीसरस्वत्योः श्रीवाण्योः स्पर्धागृहम्, इदं ममैवावासस्थानम्, अत्राहमेव वसेयमिति एवंरूपेण संघर्षविषयीभूतं गृहम्। उभयोरप्यावासस्थानमिति भावः। लक्ष्मीसरस्वत्यौ नैकत्र तिष्ठतः, दुर्लभस्तयोः सहवास इत्यभिप्रायेण स्पर्धोक्तिः। तथा च कालिदासः—'परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्। संगतं श्रीसरस्वत्योः सतामस्तु विभूतये' इति। त्रिभुवनेति—त्रिभुवने त्रिभुवनस्य वा विलोभनीया स्पृहणीया आकृतिः आकारः रूपं यस्य स तथोक्तः। विलोभनकर्त्री आकृतिर्यस्य सः, कर्तर्यनीयर् इति दर्पणकारः। त्रिभुवनरमणीयाकृतिमिति पाठे त्रिभुवने रमणीया मनोरमा आकृतिर्यस्य स इत्यर्थः।

स इति। स्पष्टम्। रूपेति—रूपस्य सौन्दर्यस्य, धर्मधर्मिणोरभेदात् रूपवद्वस्तुनो वा निर्माणकौशलं रचनानैपुण्यम्। अहो आश्चर्यकरम्। मन्ये—उत्प्रेक्षे। 'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः। उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽपि तादृशः।' इति दण्डी। इति दर्पणकारः सम्भावनामात्रपरमत्र इति तत्त्वम्। दृश्यते च शाकुन्तलादौ सम्भावनायामपि स्वस्यैव स्वकीयस्यैव नैपुण्यस्य प्रजानिर्माणकौशल्यस्य एकत्र एकस्मिन्नेवाधिकरणे, दर्शने उत्सुकं उत्कण्ठितं मनो यस्य तादृशेन वेधसा ब्रह्मणा। जगत्त्रये लोकत्रये समवायिनः संगताः विद्यमाना रूपपरमाणवः सौन्दर्यप्रकृतिभूताः परमाणवः तान् आदाय गृहीत्वा अयं कन्दर्पकेतुः विरचितः।

उसे स्वयं वरकर अपना पति बनाया था। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही परस्पर स्पर्धाके साथ उसमें वास करती थीं। तीनों लोकोंमें उसीका एकमात्र सौन्दर्य अद्वितीय था।

'वह राजा चिन्तामणिका पुत्र और उसका नाम 'कन्दर्पकेतु' है' इत्यादि उसने उसके नाम आदि स्वप्नमें ही सुन लिये थे। अनन्तर वह सोचने लगी—मैं समझती हूँ, अपने हस्तकौशलको एक ही जगह देखनेकी इच्छासे प्रेरित हो ब्रह्माने, समस्त संसारके सौन्दर्य—परमाणुओंको

ईदृशो भवति । वृथैव दमयन्ती नलस्य कृते वनवासवैशसमवाप । मुधैवेन्दुमती महिष्यप्यजानुरागिणी बभूव । विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वाससः शापमनुबभूव शकुन्तला । निरर्थकमेव मदनमञ्जरी नरवाहनदत्तं

ईदृशः-एवंविधः कान्तिविशेषः सौन्दर्यातिशयः भवति । अयमिव पश्यति ज्ञानविषयो भवतीति विग्रहः । अयमिव दृश्यते इति केचित् । वृथैवेति—दमयन्ती कुण्डिनाधिपतेः भीमस्य नन्दिनी नलस्य नैषधाधिपतेः कृते निमित्तं, तादर्थ्येऽव्ययमेतत् । 'नलोकाव्यय—' इति निषेधस्य कारकषष्ठीविषयत्वादत्र शेषषष्ठ्यां न काप्यनुपपत्तिः । 'अर्थे कृतेऽव्ययं तावत्तादर्थ्ये वर्तते द्वयम् ।' इति कोशसारः । वनवासस्य वनवासेन जातं वनवासरूपं वा वैशसं महाकष्टमवाप प्राप्तवती । 'वैशसं स्यान्महदुःखम्' इति वैजयन्ती । कन्दर्पकेत्वपेक्षया नलस्य हीनरूपत्वात् तदर्थं दमयन्त्याः क्लेशानुभावो निरर्थकः इति भावः । नलः तृणविशेषः । तदर्थं क्लेशसहनमिति महदिदं परिहासस्थानमित्यपि प्रतीयते' इति केचित् । महिषीति—महिषी कृताभिषेका राज्ञी सैरिभस्त्री च । इन्दुमती भोजराजतनया । अजो रघुपुत्रः दशरथपिता छागश्च तदनुरागिणी तदासक्तचित्ता मुधा व्यर्थमेव बभूव । सैरिभ्याः छागानुरागो विरुद्ध इति विरोधं द्योतयत्यपिशब्दः । 'अजश्छागे हरे विष्णौ रघुजे वेधसि स्मरे ।' 'महिषी नृपयोपिति । सैरिभ्यामौषधीभेदे' इति हैमः । 'अजस्येन्दुमत्यपेक्षया हीनरूपत्वादिति भावः । तथा च कालिदासः—कुलेन कान्त्या वयसा गुणेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः । त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ।' इत्यत्रात्मनस्तुल्यमित्यनेनोपमानकल्पनेनास्या अधिकगुणत्वप्रतिपादनात् । अतएव रत्नं काञ्चनेन समागच्छतु इति संगच्छते । कन्दर्पकेत्वपेक्षयाऽजादीनां कुरूपत्वमिति तासां तेष्वनुरागो वृथैवेति तु स्पष्टमेव । महिष्याः सैरिभ्याः अजे छागेऽनुरागो विरोधाभासः । एतन्मूलकोऽपि परिहासः । यद्यप्यजवरणसमये इन्दुमत्या न महिषीत्वं तथापि वासवदत्तापरिहासदशायां तत्सत्त्वेन न काप्यनुपपत्तिः' इति दर्पणकारः । विफलेति—दुर्वाससः शापं यस्मिन्नासक्तहृदया स जनस्त्वां न स्मरिष्यतीत्येवंरूपम् । तथा च शाकुन्तले—'विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् । स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव' इति । दुट् अङ्गविकृतिर्विद्यते यस्य स दुष्यन्तः इति व्युत्पत्याऽङ्गविकृतिमति अनुराग इत्युपहासोऽपि ज्ञेयः । दुष्यन्त इति निपातनात् पृषोदरादित्वाद्वा साधुः । मदनमञ्जरी—

एकत्रितकर इस युवकका निर्माण किया है अन्यथा इसकी ऐसी कान्ति कैसे होती । दमयन्ती ने व्यर्थ ही नलके लिये वनवासका कष्ट उठाया । व्यर्थ ही रानी इन्दुमती अजमें अनुरक्त हुई (भैंस होकर भी बकरेके प्रति अनुराग किया, श्लेष द्वारा यह विरोधाभास भी प्रतीत होता है) । निष्फल ही शकुन्तलाने दुष्यन्तके लिये दुर्वासा ऋषिका शाप भोगा । व्यर्थ ही

चकमे । निष्कारणमेव ऊरुगरिमनिर्जितरम्भा रम्भा नलकूबरमचीकमत । व्यर्थमेव धूमोर्णा स्वयं स्वयंवरार्थमागतेषु देवगणेषु धर्मराजमाचकाङ्क्ष । निष्प्रयोजनमेव ऋद्धिर्गन्धर्वपक्षेषु कुबेरमाससाद । अहेतुकमेव पुलोमतनया देवेन्द्रासक्तचित्ता बभूव ।' इति बहुविधं चिन्तयन्ती; विरहमुर्मुरमध्यमधिरूढेव, मदनदावाग्निशिखाकवलितेव, वसन्तकालाग्निगृहीतेव,

कलिङ्गसेनायाः पुत्री मदनमञ्जुकापरनामधेयाङ्गना । नरवाहनदत्त उदयनपुत्रं विद्याधरचक्रवर्तिनम् । चकमे इति कामयते 'आयादय आर्धधातुके वा' इति णिङः पाक्षिकत्वात्तदभावे रूपम् । नरवाहन इत्यत्र क्षुभ्नादित्वाण्णत्वाभावः । ऊर्विति—ऊर्वोः सक्थ्नोः गरिम्णा गौरवेण निर्जिता तिरस्कृता रम्भा कदली यया सा तादृशी रम्भा अप्सरोविशेषः । नलकूबरम् एतन्नामानं कुबेरपुत्रं निष्कारणमहेतुकमेव अचीकमत कामयते स्म । अत्र नल इव कूबरः कुब्जकः इत्यर्थेन परिहासोऽपि गम्यते कामयतेर्लुङि णिङ्पक्षे 'णिश्रीति—चङि, णेरनिटीति णिलोपे, णौ चङ्युपधाह्रस्वत्वे, चङीति द्वित्वे 'सन्वल्लघुनि—' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इत्यभ्यासस्येकारे 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घे च रूपमिदम् । धूमोर्णेति—धूमोर्णा यमपत्नी । तथा च महाभारते—शक्रः शचीपतिर्देवो यमो धूमोर्णया सह । वरुणः सह गौर्या च सहर्ध्या च धनेश्वरः ।' इति । देवगणेषु—देवगणाननादृत्य । 'षष्ठी चानादरे' इति चकारादनादरे सप्तमी । धर्मराजं यमं व्यर्थं निष्फलमेव आचकाङ्क्ष चकमे । अत्र धर्मेण धर्मानुष्ठानेनैव न तु प्रमदाजनाभिलषितकलाकलापनैपुण्येन राजते इति धर्मराजः इति परिहासोऽपि गम्यते । ऋद्धिः—कुबेरपत्नी । कुबेरं यक्षराजं धनदम् । कुत्सितं वेरं शरीरं यस्येति विग्रहेण परिहासोऽपि गम्यते । पुलोमतनया—शची । देवेन्द्रे शक्र आसक्तं चित्तं यस्याः तादृशी बभूव ।

विरहेति—विरहो वियोगः कन्दर्पकेतोरिति भावः । स एव मुर्मुरस्तुषानलः तस्य मध्यमन्तःप्रदेशमधिरूढा प्रविष्टेव । 'मुर्मुरस्तु तुषानलः' इति वैजयन्ती । तुषानलः शनैः शनैर्दहति तेन च महद्दुःखमनुभूयतेऽतो विरहे तुषानलत्वारोपः । मदनेति—मदनः काम एव दावाग्निर्वनवह्निः तस्य शिखाभिः ज्वालाभिः कवलिता ग्रस्तेव । वसन्तेति—वसन्तः मधुरेव कालाग्निः प्रलयानलः तेन गृहीतेव । वसन्तस्य कामो-

मदनमञ्जरीने नरवाहनदत्तकी कामना की । अकारण ही, अपनी जंघाओंकी गरिमा—सौन्दर्यसे कदलीको तिरस्कृत करनेवाली रम्भाने नलकूबरको चाहा । व्यर्थ ही धूमोर्णाने, स्वयं स्वयंवरके लिये आये हुए देवताओंकी उपेक्षा करके धर्मराज-यम-को वरण किया । अकारण ही ऋद्धिने गन्धर्व और यक्षोंकी परवा न कर कुबेरको प्राप्त किया। निष्प्रयोजन ही पुलोमपुत्री इन्द्राणीने देवेन्द्रमें आसक्त हुई, इस तरह अनेक प्रकारसे सोचती हुई, वियोगरूपी तुषानलमें प्रविष्ट हुई-सी, कामरूपी दावानलकी ज्वालाओंसे ग्रस्त-सी, वसन्तरूपी

दक्षिणमारुतरुद्रपावकग्रस्तेव, उन्मादपातालगृहं प्रविष्टेव, शून्यकरणग्रामेव वर्तमाना; हृदये विलिखितमिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलितमिव, वज्रलेपघटितमिव, अस्थिपञ्जरप्रविष्टमिव, मर्मान्तरस्थितमिव, मज्जारसशबलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमधिष्ठितमिव,

---

दीपकतया विरहिणां पीडकत्वेन तस्मिन् कालाग्निसमारोपः। दक्षिणेति—दक्षिणमारुतः मलयानिल एव रुद्रपावकः महादेवतृतीयनेत्रवह्निः तेन ग्रस्तेव कवलितेव। उन्मादेति—उन्मादः चित्तविभ्रम एव पातालगृहं तत् प्रविष्टेव। तमोभूयस्त्वात्पातालगृहे आन्ध्यमिवोन्मादेऽपि चेतसोऽस्थिरत्वादन्धत्वेन उन्मादे पातालगृहत्वारोपणम्। मनोऽनधिष्ठितं किमपीन्द्रियं विषयं न गृह्णातीति सिद्धान्तः। शून्येति—शून्यः स्वस्वविषयग्रहणासमर्थः करणानामिन्द्रियाणां ग्रामः समूहो यस्याः सा तादृशी इव। 'करणं हेतुकर्मणोः। वालवाद्यौ हसे लेपे नृत्यगीतप्रभेदयोः। क्रियाभेदेन्द्रियक्षेत्रकायसंवेशनेषु च। कायस्थे साधने क्लीबं पुंसि शूद्राविशोः सुते।' इति विश्वः। 'ग्रामः स्वरे संवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वकः' इति विश्वः। हृदये—मनसि विलिखितं—चित्रितं रेखारूपेण कृतावयवसंस्थानम्। उत्कीर्णम्—टङ्केन परितश्छिद्य शालभञ्जिकादिवदाकारमापादितम्। प्रत्युप्तं—खचितम्। अङ्गुरीयकादौ मण्यादिवदर्धघटितम्। कीलितं—कीलेन दारुद्वयमिव उभयतः प्रोतम्। निगलितं—शृङ्खलया बद्धम्। वज्रेति—वज्रलेपो नाम गुडमाषरसादिद्रव्यनिर्मितो लेपविशेषः। लोके 'सीमेण्ट' इति नाम्ना प्रसिद्धः। तेन घटितं संयोजितम्। वज्रलेपेन घटितं वस्तु न शीघ्रं विश्लिष्यते। उच्यते च—'वज्रलेपस्य मूर्खस्य नारीणां कर्कटस्य च। एको ग्रहस्तु मीनानां······' इति पञ्चतन्त्रे। एष च त्रिविधः। तन्निर्माणादिरीतिः बृहत्संहितायामभिहिता। अस्थीति—अस्थ्नां पञ्जरं कङ्कालः पञ्जराकारं कङ्कालसंनिवेशः प्रविष्टमिव। अस्थ्नामप्यन्तर्गतम्। मर्मेति—मर्मणां जीवस्थानानां हृदयादीनाम् अन्तरं मध्यं स्थितमिव। 'जीवस्थानं भवेन्मर्म' इति वैजयन्ती। यत्राभिघातेन सद्यः प्राणैर्वियुज्यते जन्तुस्तन्मर्म। मज्जेति—'अस्थिमध्यस्थस्नेहविशेषो मज्जा। 'अस्थि यत्स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो द्रवो घनः। यः स्वेदवत्पृथग्भूतः स मज्जेत्यभिधीयते। स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तरे स्थितः।' इति भावप्रकाशः। मज्जाशब्दो नकारान्तः आका-

---

प्रलयाग्निसे ग्रहणकी हुई-सी, दक्षिणानिलरूपी रुद्र भगवान्के तृतीय नेत्रसंबन्धी अग्निसे गृहीत-सी, उन्मादरूपी पातालगृहमें प्रविष्ट हुई-सी, वासवदत्ताकी सब इन्द्रियाँ सूनी-सूनी हो रही थीं। वह, उस समय कंदर्पकेतुको अपने हृदयमें चित्रित-सा, खुदा हुआ, जड़ा हुआ, बिंधा हुआ, बंधा हुआ, सीमण्टसे चिपका हुआ, अस्थिपञ्जरमें प्रविष्ट हुआ, कोमल अंगोंमें बैठा हुआ, मज्जाके रसमें मिला हुआ, (अपने) प्राणोंसे घिरा हुआ, मनमें स्थित और

रुधिराशये द्रवीभूतमिव, पललसंविभक्तमिव, कन्दर्पकेतुं मन्यमाना; उन्मत्तेव, अन्धेव, बधिरेव, मूकेव, शून्येव, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्च्छागृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव, यौवनसागरतरलतरङ्गपरम्परापरिगतेव, रागरज्जुभिः परिवारितेव, कन्दर्पकुसुमबाणैः कीलितेव, शृङ्गारभावनाविषरसघूर्णितेव,

---

रान्तश्च। 'श्वन्नुक्षन्—' इत्यादिना निपातितः कनिन्प्रत्ययान्तो नकारान्तः। अच्प्रत्ययान्तश्चाकारान्तः। 'लज्जावद्राजवन्मज्जा मांससारास्थिसारयोः,। इत्यमरटीकायां भरतः। तद्रसेन शबलितः मिश्रितस्तमिव। प्राणेति—प्राणेन प्राणवायुना, प्राणैः परीतं व्याप्तम्। अन्तरेति—अन्तरात्मानं जीवात्मानं मनो वा अधिष्ठित-। अन्तरात्मनि स्थितम्। 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इत्याधारस्य कर्मत्वम्। रुधिरेति—रुधिराशयः रक्ताधारभूतः कोशः तत्र द्रवीभूतं द्रवरूपमापन्नम्। तेन स ऐक्यमापन्नमिति भावः। पललेति—पललेन मांसेन सह संविभक्तं प्राप्तसंविभागम्। सर्वात्मना कन्दर्पकेतुमयी भवन्तीति तात्पर्यम्। एतदनुरूपं पद्यं मालतीमाधवे दृश्यते। 'लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च, प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघटितेवान्तर्निखातेव च। सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभिश्चिन्तासन्ततितन्तुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया।' इति। उन्मत्ता—वायुजनितचित्तविभ्रमविशिष्टा। अन्धा—नेत्रहीना। बधिरा—श्रवणेन्द्रियविकला। मूका—वागिन्द्रियशून्या। शून्या—सर्वसंज्ञाविहीना, केवलं शरीरधारणवती। निरस्तेति—निरस्तः दूरीकृतः सर्वथाऽभावमनुप्राप्तः इन्द्रियग्राम इन्द्रियसमूहो यस्याः सा तथोक्ता। 'शून्यकरणग्रामेवेति पूर्वोक्ते तत्तदिन्द्रियाणां ग्रहणासामर्थ्यं विवक्षितम्, प्रकृते तु सर्वात्मना तेषामभाव इति न पौनरुक्त्यम्' इति केचित्। 'ईदृशे निरर्गलनिर्गलति शब्दप्रवाहे पुनरुक्त्यादिचिन्ता न रसिककृत्यम्' इति परे। मूर्च्छेति—मूर्च्छा संमोहः। 'संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः। तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत्। सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत्। मोहो मूर्च्छेति तां प्राहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता' इति। ग्रहेति—ग्रहैः भूतादिभिः ग्रस्ता आविष्टा। यौवनेति—यौवनं तारुण्यमेव सागरः समुद्रः तस्य तरलानां चञ्चलानां तरङ्गाणां लहरीणां परम्पराभिः श्रेणिभिः परिगता वेष्टिता। रागेति—रागः स्नेह एव रज्जवः पाशाः ताभिः परिवारिता बद्धा। रागाः मनोरथा एव रज्जवः इति वा। कन्दर्पेति—कन्दर्पस्य मन्मथस्य कुसुमबाणैः पुष्पात्मकशरैः कीलिता निखातेव। शृङ्गारेति—शृङ्गारभावना शृङ्गाररसानुध्यानं सैव

रुधिराशयमें रुधिरसे मिला हुआ-सा समझ रही थी। वह, उन्मत्त, अन्धी, बहरी, गूँगी, बेहोश, सब इन्द्रियोंसे रहित, (अनिष्ट) ग्रहोंसे आविष्ट, यौवनरूपी सागरकी लहरोंसे, प्रेमरूपी रज्जुओंसे बंधी हुई, कामके बाणोंसे बिद्ध, शृंगाररसके निरन्तर ध्यानरूपी

रूपपरिभावना शल्यकीलितेव, मलयानिलापहृतजीवितेव भवन्ती; 'हा प्रिये सख्यनङ्गलेखे ! वितर हृदये मे पाणिपद्मम्, दुःसहो विरहसन्तापः। मुग्धे मदनमञ्जरि ! सिञ्चाङ्गानि चन्दनवारिणा। सरले वसन्तसेने ! संवृणु केशपाशम्। तरले तरङ्गवति ! विकिराङ्गेषु कैतकधूलिम्। वामे मदनमालिनि ! कलय वलयं शैवालकलापेन। चपले चित्रलेखे ! चित्रपटे विलिख चित्तचोरं जनम्। भामिनि विलासवति ! विक्षिपावयवेषु मुक्ताचूर्णनिकरम्। रागिणि रागलेखे ! स्थगय नलिनीदलनिचयेन

विषरसः गरलं, तन्मयत्वापादनरूपसंमोहकत्वसाधर्म्यात्, तेन घूर्णिता भ्रान्तचित्ता। रूपेति—रूपस्य कन्दर्पकेतोः सौन्दर्यस्य या परिभावना चिन्तनं सैव शल्यं बाणाग्रभागः तेन कीलिता दृढं बद्धा। मलयेति—मलयानिलेन दक्षिणमारुतेन अपहृतमादत्तं विनाशितमिति यावत् जीवितं जीवनं यस्याः सा तथोक्ता। हेति—इतः प्रभृति वासवदत्तावाक्यानि। अनङ्गलेखे इत्यादीनि तत्तत्सखीनां नामानि। हा इति विषादे। 'हा विषादे च शोके च कुत्सादुःखार्थयोरपि।' इति मेदिनी। अनङ्गेति-अनङ्गस्य कामस्य लेखा रेखा यस्यां सा ईषदुद्भूतमन्मथे मे हृदये पाणिपद्मं हस्तकमलं वितर देहि स्थापयेत्यर्थः। विरहसन्तापः वियोगदाहः दुःसहोऽसह्यः। मुग्धे—सुन्दरि यौवनमध्यस्थे वा। 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इति रभसः। 'मुग्धा यौवनमध्यस्था।' मुग्धे अनभिज्ञे' इति दर्पणकारः। चन्दनवारिणा मलयजरसेन अङ्गानि सिञ्च। अङ्गेषु चन्दनोदकेन सेकं कुर्वित्यर्थः। सरले—सुशीले वसन्तसेने ! केशपाशं कचसमूहं संवृणु वधान। 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे।' तरले चञ्चलचित्ते कैतकधूलिं केतक्या इदं कैतकं 'तस्येदम्' इत्यण्, कैतकस्य केतकीपुष्पस्य धूलिः परागस्तम्। विकिर विक्षिप। वामे—सुन्दरि विपरीतक्रियाकारिणि वा शैवालकलापेन जलनीलिकासमूहेन वलयं कङ्कणं कलय विरचय। चपलेति—चञ्चलस्वभावे। चित्रलेखे चित्रपटे चित्रलेखनोचिते पटे चित्तचोरं हृदयहारिणं जनं लिख चित्रय। भाविनीति—भाविनि भावाभिज्ञे विलासवति ! मुक्ताचूर्णस्य मौक्तिकक्षोदस्य निकरं समूहम् अङ्गेषु विक्षिप पातय, विकिर। रागिणीति रागवति रागलेखे ! नलिनीदलनिचयेन नलिनीपत्र-

---

विषसे विह्वल, (कन्दर्पकेतुके) सौन्दर्य-स्मरणरूपी कीलसे विंधी हुई और मलयानिलसे मृतप्राय-सी होती हुई तथा—हा प्यारी सखि अनङ्गलेखा! मेरे हृदयपर अपना हस्त-कमल रक्खो, यह विरहसन्ताप सहा नहीं जाता। सुन्दरि मदनमञ्जरी ! अङ्गोंपर चन्दन-जल छिड़को। भोली वसन्तसेना ! बाल बांध दो। हे चञ्चल तरङ्गवति ! अङ्गोंपर-केतकी-पुष्प-पराग लगा दो। सुन्दरी मदनमालिनी ! शैवालका कङ्कण पहना दो। हे चञ्चल चित्रलेखे ! चित्र-पटपर हृदय-चोरका चित्र खींचो। क्रुद्धे विलासवती ! शरीरपर मोतियोंका चूरा

पयोधरभारम् । सुकान्ते कान्तिमति ! मन्दं मन्दमपनय बाष्पविन्दून् । यूथिकालङ्कृते यूथिके ! संचारय नलिनीदलतालवृन्तेनार्द्रवातान् । एहि भगवति निद्रे ! अनुगृहाण माम् , धिक् , इन्द्रियैरपरैः, किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यङ्गानि विधिना । भगवन् कुसुमायुध तवायमञ्जलिः, अनुवशो भव भाववति मादृशे जने । मलयानिल सुरतमहोत्सवदीक्षागुरो

समूहेन पयोधरभारं स्थगय आच्छादय । सुकान्तेति-मनोहरे कान्तिमति ! मन्दं मन्दं शनैः शनैः बाष्पविन्दून् अश्रुकणान् अपनय प्रोञ्छ । विन्दूनिति बहुवचनेन तेषामविच्छिन्नधारत्वमनवरतप्रसृतत्वं च द्योत्यते । तथा च भरतः—'बाष्पो नामाश्रुणः पूर्वमसौ संजायते त्रिधा । निमित्तत्रयसंबन्धादानन्देर्ष्यार्तिसम्भवः । आनन्दे विलुठन् भवतीर्ष्यायां सतरङ्गितायासः । आर्तावजस्राविकलबद्धवहुलविन्दुसन्दर्भः ।' इति दर्पणकारः । यूथिकेति—यूथिकालङ्कृते मागधीकुसुमभूषिते । 'अथ मागधी गणिका यूथिकाऽम्बष्ठा' इत्यमरः । नलिनीदलमेव तालवृन्तं व्यजनं तेन आर्द्रवातान् सुशीतलपवनान् संचारय समुत्पादय । तेन वीजयेत्यर्थः । एहीति—भगवति निद्रे एहि आगच्छ मामनुगृहाण मयि कृपां कुर्वित्यर्थः । पूर्वं निद्रासंबन्धादेव कन्दर्पकेतुदर्शनमभूदतः पुनरपि तद्दर्शनायानुग्रहप्रार्थनमिति बोध्यम् । धिगिति—अस्याध्याहृते 'तम्' इत्यत्रान्वयः । येन विधिना सर्वाण्यङ्गानि लोचनमयानि न कृतानि तं विधिं धिगित्यर्थः । अपरैः अन्यैः इन्द्रियैः अलम् किमपि साध्यं नास्तीत्यर्थः । निरर्थकानि तानीति भावः । अत्र 'साधनक्रियापेक्षं करणत्वमादाय तृतीया । 'गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका ।' इति । तथा च रघुः 'अलं महीपाल तव श्रमेण ।' इति । केचित् 'धिक्शब्दस्य इन्द्रियैरपरैरित्यत्रान्वयं स्वीकृत्य लोचनव्यतिरिक्तानामिन्द्रियाणां निष्फलत्वात्तेषां निन्द्यतेत्यर्थ' इत्याहुः । तत्र धिक्शब्दयोगे द्वितीयाभावः तृतीयोपपत्तिश्च दुरुपपादा । किमिति—केन हेतुना, विधिना—अनेन विधिशब्देन तस्य तथा कर्तुं शक्तिरस्तीति सूच्यते । भगवन्निति—भगवन् षाड्गुण्यपरिपूर्ण ! ऐश्वर्यशालिन् ! 'भगं श्रीयोनिवीर्येच्छाज्ञानवैराग्यकीर्तिषु । माहात्म्यैश्वर्ययत्नेषु धर्मे मोक्षे च ना रवौ । इति विश्वमेदिन्यौ । 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।' तव त्वत्कृते अयमञ्जलिः क्रियते इति शेषः । त्वां प्रणमामीति भावः । 'तौ युतावञ्जलिः पुमान्, इत्यमरः । अनुवश इति भाववति अभिप्रायवति

डालो । हे प्रिय रागलेखा ! कमल-पत्तोंसे पयोधर ढक दो । सुन्दरी कान्तिमती ! धीरे धीरे आँसू पोंछ दो । जुही के पुष्पोंसे अलंकृत यूथिके ! कमल-पत्रके पंखेसे शीतल हवा करो । भगवति निद्रे ! आओ, मुझपर कृपा करो । अन्य (नेत्रातिरिक्त) इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं है, ब्रह्माने सब इन्द्रियाँ नेत्रस्वरूप क्यों नहीं बनाईं । (अतः) उसे धिक्कार है । भगवन् कुसुमायुध ! यह हाथ जोड़ती हूँ, इस अनुरक्त जनपर कृपा करो । सुरतरूपी महोत्सवके

वह यथेष्टम्, अपगता मम प्राणाः, इति बहुविधं भाषमाणा वासवदत्ता सखीजनेन समं संमुमूर्च्छ।

अनन्तरं परिजनप्रयत्नोच्छ्वसितजीविता सती, क्षणमतिशिशिरघनसारसाकुलनिम्नगाकूलपुलिने, क्षणमतितुहिनमलयजरससारसरित्परिसरे,

---

रागाविष्टे मादृशे मद्विधे जने अनुवशः अनुकूलो भव। मां माधिकं कदर्थयेत्यर्थः। 'अनुकूलस्त्वनुवशो विधेयोऽनुगुणोऽपि च।' इति वैजयन्ती। 'अनुचरो भव भाववति तादृशे जने' इति पाठं स्वीकृत्य' भाववति अभिप्रायाभिज्ञे तादृशे जने अनुचरो भव तस्य सेवको भवेत्यर्थः। यथा मां पीडयसि तथा तमपि पीडयेति त्वतिवात्सल्यादयोग्यत्वाच्च नाभ्यधायि। संबन्धं विना गुणाविष्काराभावेन अल्परूपत्वेन हीनत्वादनुचरत्वोक्तिः' इति दर्पणकारः। मलयेति—सुरतं निधुवनमेव महोत्सवः हर्षजनकत्वात् महामहः तस्य दीक्षायां व्रतग्रहणे नियमेनानुष्ठाने गुरो दीक्षाप्रद, तत्प्रवर्तकेत्यर्थः। मलयानिल दक्षिणपवन! यथेष्टं स्वेच्छं वह प्रचल। मत्प्राणापहाररूपमनोरथस्य सिद्धत्वात्त्वद्वहनं सफलमेवेति कृतकृत्य इदानीं यथेच्छं प्रसरेति भावः। अत्र 'सुरतसमुत्कण्ठादीक्षागुरो' इति दर्पणधृतपाठः। यथेच्छं वह। यथेष्टवहनात्सोऽप्युत्कण्ठितोभविष्यतीत्यभिप्रायात् प्रार्थना। प्रार्थनायां लोट्। इति दर्पणकृद्व्याख्यानम्। 'अपगता मम प्राणा' इत्युत्तरवाननुगुणमिदं व्याख्यानमिति अभिनवभट्टबाणाः। अपगता इव मे प्राणाः इति यथेष्टवहनात् तमपि जनं सोत्सुकं विधायात्र समागन्तुं प्रेरयेत्यर्थ इति कथञ्चिद्योजनीयं वा। 'अतएव अपगता इत्यत्र वर्तमाने क्तः इति तदुक्तिः सफला। संमुमूर्च्छ मूर्च्छितवती।

अनन्तर मूर्च्छानन्तरं परिजनप्रयत्नेन परिचारिकोद्योगेन उच्छ्वसितं पुनः प्रत्यागतं जीवितं जीवनं चैतन्यं यस्याः सा तादृशी सती, प्रत्यापन्नचैतन्येति भावः। क्षणमिति—क्षणमतिशिशिर''पुलिनेषु इत्येवं सखीजनेन नीयमानेति संबन्धः। अत्र पूर्वपूर्वेषु संतापानिवृत्तेरुत्तरोत्तरस्वीकरणम्। सर्वत्रापि सन्तापानिवृत्तेः संतापातिशयस्य परा काष्ठा प्रतिपाद्यते। क्षणमित्यत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इत्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया। अतिशिशिरेति—अतिशिशिरेण अत्यन्तशीतलेन घनसाररसेन कर्पूररसेन आकुलायाः व्याप्तायाः निम्नगायाः नद्याः कूलपुलिने तटस्थितसैकतप्रदेशे। अतितुहिनेति—अतितुहिनः अतिशीतलः यः मलयजरसः चन्दनद्रवः तेन सारायाः

प्रवर्तक! मलयानिल! अब तुम इच्छानुकूल चलो, मेरे प्राण तो निकल ही गये, इस तरह अनेक प्रकारसे कहती हुई सखियोंके साथ मूर्च्छित हो गई।

अनन्तर सखियाँ बड़े यत्नसे उसे होश में लाकर, क्षणभर अत्यन्त शीतल कर्पूररससे भरी हुई नदीके तटपर, क्षणभर अतिशीतल चन्दनरस-परिपूर्ण नदीके समीप, क्षणभर

क्षणमरविन्दकाननपरिवारितसरस्तटविटपिच्छायासु, क्षणमनिलोल्लासितदलेषु कदलीकाननेषु, क्षणं कुसुमप्रवालशय्यासु, क्षणं नलिनीदलसंस्तरेषु, क्षणं तुषारसंघातशिशिरितशिलातलेषु परिजनेन नीयमाना प्रलयकालोदितद्वादशरविकिरणकलापतीव्रविरहानलदह्यमानामतिकृशां विप्राणामिव तनुं बिभ्रती सा, प्रचलदमन्दमन्दरान्दोलितदुग्धसिन्धुतरलतरङ्गच्छटाधवलहासच्छुरिताधरपल्लवं तन्मुखारविन्दं द्विजकुलमिव श्रुतिप्रणयि

श्रेष्ठायाः सरितः नद्याः परिसरे समीपे। अरविन्देति—अरविन्दकाननेन कमलवनेन परिवारितं वेष्टितं व्याप्तं यत्सरस्तटं सरोवरतीरं तत्र स्थितानां विटपिनां वृक्षाणां छायासु अनातपेषु। 'आलोहितकनकारविन्दकदम्ब'—इति पाठान्तरम्। तत्र आलोहितानामारक्तानां कनकारविन्दानां कदम्बेन समूहेनेत्यर्थः। अनिलेति—अनिलेन वायुना उल्लासितानि आन्दोलितानि दलानि पत्राणि येषां तेषु तथोक्तेषु। कदलीकाननेषु रम्भानिचयेषु। कुसुमेति—कुसुमानां प्रवालानां नवकिसलयानां शय्यासु। नलिनीति-नलिनीदलानां कमलिनीपत्राणां संस्तरेषु आस्तरणेषु। तुषारेति-तुषारसंघातेन हिमसमूहेन शिशिरितानि शीतलीकृतानि यानि शिलातलानि तेषु परिजनेन सेवकवर्गेण नीयमाना। प्रलयेति—प्रलयकाले कल्पान्ते उदिताः प्रादुर्भूता ये द्वादश रवयः भानवः तेषां किरणकलापवत् मरीचिसमूह इव तीव्रः प्रचण्डः यो विरहानलः विरहाग्निः तेन दह्यमानां अत्यन्तं पीड्यमानाम्। द्वौ च दश चेति, द्व्यधिका दशेति वा विग्रहे 'द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः' इत्यात्वम्। विप्राणामिति— विगताः निर्गताः प्राणा यस्याः तादृशीमिव तनु शरीरम्। अत्र 'तपःकृशानां ब्राह्मणानां तनुमिव तनुं बिभ्रतीत्यपि गम्यते। प्रचलदिति—प्रचलन् परिभ्रमन् अमन्दो विशालः मन्दरः मन्दराचलः तेन आन्दोलितस्य मथितस्य दुग्धसिन्धोः क्षीरसागरस्य तरलाः चञ्चलाः ये तरङ्गाः वीचयस्तेषां छटावत् समूह इव धवलेन शुभ्रेण हासेन स्मितेन छुरितं व्याप्तं अधरपल्लवं किसलयाकारः अधरः यस्य यस्मिन् वा तत् तस्य कन्दर्पकेतोः मुखारविन्दं मुखकमलम्। 'हासस्याधरच्छुरणमात्रोक्ते-

गुलाबी स्वर्णमय कमलोंसे व्याप्त सरोवर तटपर स्थित चन्दनवृक्षोंकी छायामें, क्षणभर वायुसे हिलते हुए पत्तोंवाले कदली-वनोंमें, क्षणभर पुष्प तथा नवपल्लवोंकी शय्याओंपर, क्षणभर कमल-दलोंके बिछौनोंपर, क्षणभर बर्फ पड़नेके कारण शीतल शिलातलोंपर ले गईं। उस समय उसका शरीर, प्रलयकालमें उदित बारह सूर्योंकी किरणोंके समान दुःसह वियोगाग्निसे अत्यन्त कृश हो रहा था मानों उसमेंसे प्राण निकल-से गये थे। 'उस कन्दर्पकेतुके कमल-सुन्दर मुखमें, घूमते हुए विशाल मन्दर-पर्वतसे मथित क्षीरसमुद्रकी लहरोंके समान शुभ्र हासकी कान्तिसे (उसका) किसलय सदृश अधरोष्ठ व्याप्त हो रहा है,

तदीक्षणयुगलम्, सहजसुरभिमुखपरिमलमाघ्रातुकामेव दूरविनिर्गता तन्नासावंशलक्ष्मीः, कलङ्कमुक्तेन्दुकलाकलापकोमला, पीयूषफेनपटलपाण्डुरा तद्द्विजपङ्क्तिः, अदृष्टचरमनङ्गातिशायि तद्रूपम्, धन्यानि तानि स्थानानि, ते जनपदाः पुण्याः, तानि नामाक्षराणि सुकृतभाञ्जि, यान्यमुना परिष्कृतानि, इति मुहुर्मुहुः परिभावयन्ती; दिक्षु विलिखितमिव, नभस्यु-

रस्योत्तमत्वं व्यज्यते। तथा च भरतः—'ईषद्विहसितैर्गण्डैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितैः। अलक्षितद्विजं धीरमुत्तमानां स्मितं भवेत्। इति, इत्यभिनवभट्टबाणाः। द्विजकुलं—ब्राह्मणवंशः तत्समूहो वा। श्रुतीति—श्रुत्योः कर्णयोः प्रणयि परिचितं सप्रश्रयं वा कर्णान्तविश्रान्तं विशालमित्यर्थः। पक्षे श्रुतौ वेदे प्रणयि आसक्तम्। 'श्रुतिः श्रोत्रे च तत्कर्मण्याम्नायवार्तयोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी। सहजेति—सहजसुरभि स्वाभाविकसुगन्धि यत् मुखमाननं तस्य परिमलं गन्धम्। आघ्रातुकामा—आघ्रातु काम इच्छा यस्याः सा तथोक्ता। 'तुं काममनसोरपि' इति तुमो मकारस्य लोपः। दूरेति—दूरं विनिर्गता निष्क्रान्ता, प्रलम्बेत्यर्थः। तन्नासेति—तस्य कन्दर्पकेतोः नासावंशस्य नासादण्डस्य लक्ष्मीः शोभा। कलङ्केति—कलङ्केन लाञ्छनेन युक्ता या इन्दुकला चन्द्रकला तस्याः कलापवत् पंक्तिवत् कोमला मृदुः मनोहरा वा। पीयूषेति—पीयूषस्य सुधायाः फेनपटलवत् डिण्डीरसमूहवत् पाण्डुरा शुभ्रा। द्विजपंक्तिः—दन्तश्रेणिः। 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यमरः। अदृष्टचरम्—पूर्वं दृष्टं दृष्टचरं, न दृष्टचरमदृष्टचरम्। पूर्वानवलोकितमसाधारणमित्यर्थः। 'भूतपूर्वे चरट्' इति चरट्। अनङ्गेति—अनङ्गं कामं तद्रूपमित्यर्थः, अतिशेते अतिक्रामतीति तादृशम्। कामादप्यतिसुन्दरमिति भावः। धन्यानि भाग्यवन्ति। जनपदाः—जनानां पदानि निवासस्थानानि देशाः। नामाक्षराणि—नाम्नः अक्षराणि नामधेयघटका वर्णा इत्यर्थः। सुकृतेति—सुकृतं पुण्यं भजन्तीति सुकृतभाञ्जि, पुण्यशालिनीत्यर्थः। 'भजो ण्विः' इति ण्विः। अमुना कन्दर्पकेतुना परिष्कृतानि अलङ्कृतानि। 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' इति सुट् 'परिनिविभ्यः—' इति षत्वम्। इति मुहुः मुहुः पुनः पुनः। परिभावयन्ती चिन्तयन्ती। यद्यपि 'परौ भुवोऽवज्ञाने' इति निर्देशात् परिपूर्वस्य भवतेः। तिरस्का-

उसके नेत्र, वेदानुरक्त ब्राह्मणकुलके समान कर्ण-पर्यन्त फैले हुए-विशाल-हैं। उसकी नासिका, स्वभावसे ही सुगन्धित मुखका गन्ध सूँघनेके लिये ही मानों आगे गई हुई है—लम्बी है। उसकी दन्तपङ्क्ति, निष्कलङ्क चन्द्रमाकी कला-समूहके समान मनोहर और अमृतफेनकी तरह शुभ्रवर्ण है। उसका सौन्दर्य, कामदेवके भी रूपको तिरस्कृत करनेवाला है और न उस जैसा सौन्दर्य अभीतक कहीं देखा गया है। वे स्थान भाग्यशाली हैं, वे देश पुण्यशील हैं, वे नामके अक्षर बड़े पुण्यशाली हैं जिनको इसने विभूषित किया है।'

त्कीर्णमिव, लोचने प्रतिबिम्बितमिव, चित्रपटे पुरो दर्शितमिव, तमितस्ततो विलोकयन्ती व्यतिष्ठत ।

अथ तस्यास्तमालिका नाम शारिका तत्प्रियसखीभिः समं समालोच्य कन्दर्पकेतोर्भावमाकलयितुं प्रेषिता। सापि मया सार्धं प्रस्थिता गता चात्रैव तरोरधस्तात्तिष्ठति ।' इत्युक्त्वा विरराम ।

रार्थत्वं तथापि धातूनामनेकार्थत्वादत्र चिन्तनार्थकत्वम् । तथाच–'मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्तीः परिभाव्य च ।' इति कौमुदीकारः । विलिखितं चित्रितम् । नभसि आकाशे । उत्कीर्णम्—प्रतिमारूपेण टंकितम् । प्रतिबिम्बितम्–प्रतिफलितम् । चित्रेति–चित्रपटे चित्रफलके विलिख्य पुरः सम्मुखे दर्शितमिव तं—कन्दर्पकेतुम् । इतस्ततः—सम्मुखे पश्चात् पार्श्वयोरन्तर्बहिश्चेत्यर्थः । चिन्त्यमानं वस्तु साक्षादेव भावयितुः सम्मुखमुपतिष्ठते तदेतद् ध्यानमाहात्म्यम् । अन्यैरपि कविभिरेवं वर्ण्यते । 'अननुभूतमपि संकल्पेनावलोक्यते । तदुक्तम्—कामक्रोधभयोन्मादाच्चौरसर्पाद्युपद्रवात् । असत्यानपि पुरतोऽवस्थितानिव ।' इति दर्पणकारः । व्यतिष्ठत—स्थितवती । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् ।

तस्याः—वासवदत्तायाः । सारिका—शुकी । 'मैना' इति लोके प्रसिद्धा वा । नामेति प्रसिद्धौ । तत्प्रियेति–तस्याः वासवदत्तायाः प्रियसखीभिः स्निग्धसहचरीभिः । हितकृत्त्वप्रदर्शनाय प्रियत्वोपादानम् । समं—सह । 'सत्रा साकं समं सह' इत्यमरः । समालोच्य—सम्यग्विचार्य । भावं—अभिप्रायम् , कन्दर्पकेतोः वासदत्तानुरागम् । अकालयितुं—विज्ञातुम् । अधस्तात्—अधःप्रदेशे । 'दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः—' इत्यनेन सप्तम्यन्तादधरशब्दादस्तातिप्रत्यये 'अस्ताति च' इत्यनेन अधरशब्दस्य 'अध्' आदेशः । तरोरित्यत्र च 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' इति षष्ठी । विरराम—तूष्णीमभूत् । 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम् । 'अस्ति मन्दर' इत्यारभ्य तिष्ठति' इत्यन्तं शुकस्य वचनम् ।

इस प्रकार बारंबार सोचती हुई, दिशाओंमें चित्रित, आकाशमें खुदे हुए, नेत्रोंमें प्रतिबिम्बित और सामने चित्रपटमें प्रदर्शितसे उस कन्दर्पकेतुको इधर उधर देखती हुई बैठी रही ।

अनन्तर उसकी प्यारी सखियोंने आपसमें विचार करके कन्दर्पकेतुका भाव जाननेके लिये तमालिका नामक शारिका भेजी। वह भी, मेरे ही साथ चली थी और इसी पेड़के नीचे बैठी है, यह कहकर चुप हो गया ।

अथ तच्छ्रुत्वा सहर्षं समुत्थाय मकरन्दस्तां तमालिकामाहूय विदितवृत्तान्तामकरोत् । सा तु तस्मै कृतप्रणामा तां पत्त्रिकामुपानयत् । अथ मकरन्दस्तामादाय पत्त्रिकां विस्रस्य स्वयमेवावाचयत् ।

प्रत्यक्षदृष्टभावाप्यस्थिरहृदया हि कामिनी भवति ।
स्वप्नानुभूतभावा द्रढयति न प्रत्ययं युवतिः ॥

अथ शुकवाक्यश्रवणोत्तरम् । आहूय—आकार्य । विदितवृत्तान्ताम्—विदितः ज्ञातः वृत्तान्तः कन्दर्पकेतोर्वासवदत्तानुरागरूपः तस्यात्रागमनरूपश्च यस्याः तादृशीम् । सा—तमालिका च । तस्मै—मकरन्दाय । कृतप्रणामा—कृतः प्रणामो यया सा तादृशी सती । प्रणम्येत्यर्थः । पत्त्रिकां—वासवदत्तायाः सन्देशपत्त्रम् । निसृष्टार्थादिषु अष्टविधदूतीषु इयं दूतिका पत्त्रहारी । तदुक्तम्—'कामिन्याः कामिनश्चापि सन्देशार्थां तु पत्त्रिकाम् । प्रापयत्यचिरेणैतामाहुः पत्त्रस्य हारिकाम्' इति । विस्रस्य—उन्मुच्य । अवाचयत्—पठितवान् । चौरादिको वाचयतिः । 'मयि सति एतावन्मात्रमपि प्रयासोऽस्य माभूदित्यभिप्रायात् स्वयमेव अवाचयत्' इति दर्पणकारः ।

प्रत्यक्षेति—कामिनी कामयमाना तरुणी सानुरागेति भावः । प्रत्यक्षं साक्षात् यथा तथा दृष्टः विज्ञातः भावः स्वाभिलाषात्मकपुरुषाभिप्रायो यया सा तादृशी सती अपि । अस्थिरं चञ्चलं हृदयं मनो यस्याः सा तादृशी भवति । मयि प्रदर्शितोऽयमस्यानुरागो वास्तविकः कृत्रिम एव वेत्यनिश्चयात्संशयाकुलचित्तेत्यर्थः । 'कामी स्वतां पश्यति' इति न्यायेन अन्यविषयाणामपि चेष्टानां स्वसम्बन्धित्वकल्पना भवत्येव स्वार्थिनमिति विमर्शकाले संशयकुलत्वं युक्तमेव । स्वप्ने अनुभूतः दृष्टः, तत्तरुणप्रदर्शितत्वेन विज्ञातः भावो यया सा तादृशी युवतिः तरुणी प्रत्ययं विश्वासं न द्रढयति दृढीकरोति । प्रत्यक्षदृष्टे यत्रानिश्चयः परोक्षे तत्र का कथेति भावः । प्रत्ययः शपथे रन्ध्रे विश्वासा चारहेतुषु । प्रथितत्वे च सम्राादावधीनज्ञानयोरपि ।' इति विश्वः । दृढं करोतीति विग्रहे दृढशब्दात् 'तत्करोति—' इति वार्तिकेन णिचि 'प्रातिपदिकात्—' इति इष्ठवद्भावातिदेशेन 'र ऋतोः हलादेर्लघोः' इति ऋकारस्य रेफादेशः । अत्र पूर्वोक्तरीत्या कामिनीपदस्य साभिप्रायत्वात्परिकराङ्कुरः । 'साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत्परिकराङ्कुरः ।' इति तल्लक्षणम् । काव्यार्थापत्तिश्च । 'कैमुत्येनार्थसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते ।' इति लक्षणात् । 'अत्र बहवो भावाः प्रतीयन्ते । तथाहि—(१) स्वप्नानुभूतभावेति । स्मरण—व्यज्यते । (२) स्वप्नानुभूतभावा

तब, मकरन्दने आनन्दपूर्वक उठकर तमालिकाको बुलाकर उसे सब बात बतादी। उसने उसे प्रणामकर वह पत्रिका दी। मकरन्दने उसे लेकर खोला और स्वयं ही पढ़ा—

कामिनीका हृदय अपने प्रेमीके (अनुरागव्यञ्जक) भावोंको प्रत्यक्ष देखकर भी स्थिर

तच्छ्रुत्वा कन्दर्पकेतुरमृतार्णवनिमग्नमिव, सर्वानन्दानामुपरिवर्तमानमिवात्मानं मन्यमानो मन्दं मन्दमुत्थाय प्रसारितबाहुयुगलस्तमालिकामालिलिङ्ग। अथ तयैव सार्धं समासीनः, किं करोति, किं वदति, कथमास्ते इत्यादि सकलं वासवदत्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तं च दिवसं तत्रैवातिवाह्य तस्मात्प्रदेशात्तया सहोच्चचाल ससुहृत्कन्दर्पकेतुः। अत्रान्तरे भगवानपि

युवतिरहं प्रत्ययं न द्रढयामि, परन्तु विद्यत एव मम प्रत्ययः, स च त्वया दृढीकार्यः इति प्रार्थना गम्यत इति चपलता। (३) कुतस्त्वया न दृढीक्रियते इति विषादः। (४) प्रत्ययदृढीकरणहेतुपरिज्ञानाभावाद्भयम्। (५) एवं सत्यपि लेखः कथं प्रेष्यते इति शंका। (६) कन्दर्पकेतुवासवदत्तादिपदप्रयोगाभावेन युष्मदस्मच्छब्दानुपादानेन चावहित्थम्। (७) न प्रत्ययं द्रढयतीति तद्दाढर्यकरणोपयोगितया न किमपि तेन कृतम्, अतश्च तच्चित्तपरिज्ञानाभावात्कथं वा तत्प्राप्तिर्भविष्यति इति चिन्ता। (८) द्रढयति न प्रत्ययं युवतिरित्यनेन त्वया यद्यपि न प्रत्ययदाढर्यं कृतम्, अतस्तव हृदयं न ज्ञायते, मम तु हृदयं त्वयि साभिलाषमिति प्रतीत्या तस्यार्थस्य साक्षादनुपादानेन व्रीडा। (९) युवतिपदेन सर्वस्यानर्थस्य मूलमिदं यौवनमेवेति तदलाभदशायां यौवनं प्रत्यसूया। (१०) द्रढयति न प्रत्ययं युवतिरित्यनेन मम हृदयं साभिलाषं तव हृदयं कथमिति जिज्ञासाया औत्सुक्यम्। (११-१२) पुरुषहृदयपरिज्ञानाभावेऽपि युवतिः प्रत्ययं न द्रढयति इत्येव न तु शिथिलयतीति विस्मयो हासश्च एवमन्येऽपि भावाः सुधीभिरुन्नेयाः।' इत्यभिनवभट्टबाणाः।

तदिति—तत् वासवदत्तासन्देशपत्रिकार्थम्। अमृतार्णवः सुधासागरः तस्मिन् निमग्नं ब्रुडितमिव सर्वतोभावेनामृतभग्नमिवेत्यर्थः। अर्णांसि जलानि विद्यन्तेऽस्मिन्निति अर्णवः। 'अर्णसो लोपश्च' इति मत्वर्थीयो वः, सकारलोपश्च। सर्वेति—सर्वेषां सर्वविधानामानन्दानां सुखानामुपरि ऊर्ध्वभागे वर्तमानं स्थितमिव। सर्वविधानन्दमनुभवन्तमिवेत्यर्थः। 'मग्न इव सर्वानन्दानामुपरिवर्तमानः' इति दर्पणधृतपाठः। मन्दं—शनैः। प्रसारितेति—प्रसारितं विस्तारितं बाहुयुगलं भुजयुग्मं येन तथोक्तः। समासीनः—उपविष्टः। अतिवाह्य—व्यत्याप्य। उच्चचाल—प्रतस्थे। भगवान्—उत्पत्ति

नहीं होता—उसमें सन्देह बना ही रहता है; फिर जिसने स्वप्नमें ही उस भावका अनुभव किया है वह युवति उसपर कैसे विश्वासकर सकती है।

यह सुनकर, कन्दर्पकेतुने अपनेको अमृत-समुद्रमें डूबा हुआ-सा तथा सब प्रकारके आनन्दोंको अनुभव करता हुआ-सा समझा तथा उसने धीरे धीरे उठकर दोनों भुजाएँ फैलाकर तमालिकाका आलिङ्गन किया। और उसीके साथ बैठकर 'वह क्या करती है, क्या कहती है, कैसे बैठती है' इत्यादि वासवदत्ता संबन्धी बातें पूछता रहा। वह दिन वहीं बिताकर तमालिका तथा मित्रके साथ कन्दर्पकेतु उस स्थानसे चल दिया। इसी अवसर

मरीचिमाली वृत्तान्तममुं कथयितुमिव मध्यमं लोकमवततार।

अथ वासरताम्रचूडचूडाचक्राकारः चक्रवाकहृदयसंक्रामितसन्तापतयेव मन्दिमानमुद्वहन्, अस्तगिरिमन्दारस्तबकसुन्दरः, सिन्दूरराजिरञ्जित-

---

च विपत्तिं च भूतानामागतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।

मरीचिमाली—भास्करः। इमं—वृत्तान्तं—वासवदत्तावृत्तान्तम्। कथयितुमिव तल्लोकवासिभ्य इति शेषः। मध्यमं लोकं—भूलोकम्। अवततार—अवतीर्णः भूलोकस्य स्वर्गपातालमध्यवर्तित्वान्मध्यमत्वम्। अत्र सूर्यास्तमये समये पातालमवतीर्णे भगवति भास्करे मध्यमं लोकमित्युक्तिर्न समीचीना। अस्तमयसमये सूर्यस्याकाशाधोभागावलम्बनं मध्यमलोकावतरणत्वेन संभाव्यते, इति कथञ्चिद्योजनमपि न मनोरमम्, कन्दर्पकेतुवासवदत्तावृत्तान्तस्य मध्यलोक एव सञ्जातत्वात्पुनः तान्कथयितुमिवेत्युत्प्रेक्षायाः असाङ्गत्यापत्तेः। मध्यमलोकाद्‌वततारेति पाठः साधीयान् भवेत्।

अथेति—एतादृशः दिनमणिः चरमार्णवपयसि ममज्जेति सम्बन्धः। 'वासरताम्र—' इत्यादिभिर्दिनमणिं विशेषयति। वासरेति—वासरः दिवस एव ताम्रचूडः कुक्कुटः तस्य यत् चूडाचक्रं शिखावृन्दं चक्राकारा शिखा वा, तस्य आकार इवाकारो यस्य सः। अत्र वासरो दिवसत्वेन रूप्यते, सायङ्कालिको रक्तवर्णभास्करश्च तच्चूडात्वेनोत्प्रेक्ष्येत। सायङ्कालस्य दिवसशिखात्वेन चोत्प्रेक्षणम्। एवञ्चात्र रूपकसङ्कीर्णोत्प्रेक्षालङ्कारः। 'कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्च रणायुधः।' इत्यमरः। 'चूडाकार' इति, 'चूडाकारचक्रः' इति च पाठान्तरम्। चक्रेति—चक्रवाकानां कोकपक्षिणां हृदये चित्ते संक्रामितः प्रत्यर्पितः सन्तापः स्वतेजोरूपः खेदो येन स तथोक्तः तस्य भावेनेव। मन्दिमानम—अल्पतेजस्त्वम् उद्वहन् धारयन्। तीव्रस्यापि वस्तुनः बहुत्र विभागेन तीव्रता मन्दत्वमापद्यत एवेति लोकप्रसिद्धमेव। संक्रामयतीत्यत्र 'वा चित्त—' इत्यतो वेत्यनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् मितां ह्रस्वो नेति वृत्तिकारः। मन्दिमानमित्यत्र मन्दशब्दात् 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इति भावार्थे इमनिच्। चक्रवाकमिथुनं सायं विश्लिष्य समस्तां निशां विरहदुःखमनुभवन् क्रन्दतीति कविसमयः। अस्तेति—अस्तगिरिः अस्ताचलः, एव मन्दारः तदाख्यो देवतरुः तस्य स्तबकवत् गुच्छ इव सुन्दरः मनोहरः। 'पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। सन्तानः कल्पवृक्षश्च

पर भगवान् सूर्य भी मानो यह वृत्तान्त कहनेके लिये ही मध्यमलोक-भूलोक-से उतर गये-अस्त हो गये।

इसके बाद सूर्य पश्चिम समुद्रमें डूब गया। उस समय, उसकी आकृति दिनरूपी ताम्रचूडकी शिखामण्डलके सामन हो रही थी। चक्रवाक पक्षियोंके हृदयमें सन्ताप-कष्ट (अपना तेज)-स्थापित कर देनेके कारण मानो वह तेजोहीन हो रहा था। वह अस्ताचल-रूपी मन्दार वृक्षके पुष्प-गुच्छके समान सुन्दर प्रतीत हो रहा था और सिंदूरसे सुशोभित

सुरराजकुम्भिकुम्भविभ्रमं बिभ्राणः, ताण्डवचण्डवेगोच्चलितधूर्जटिजटा-जूटमुकुटबद्धबन्धुरविकटवासुकिभोगमणिताटङ्कसनाभिमण्डलः, सन्ध्या-सन्धिनीसरसयावकपत्रचारुः, वारुणीवारविलासिन्यरुणमणिकुण्डल-

पुंसि वा हरिचन्दनम् ।' इत्यमरः । सिन्दूरेति—सिन्दूरराजिभिः नागसम्भवरेखाभिः रञ्जितः रक्तीकृतः यः सुरराजस्य देवेन्द्रस्य कुम्भिनः गजस्य ऐरावतस्य कुम्भो गण्डस्थलं तस्य विभ्रमं विलासम्, विशिष्टभ्रमं वा बिभ्राणः धारयन्, जनयन् वा। द्वितीयार्थेऽन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भृञ्। वासरस्य शुभ्रत्वात् ऐरावतोपादानम् । 'द्विपायिशूर्पश्रुतिसोमजाः' इति हारावली । 'कुम्भौ तु पिण्डौ शिरसः' इत्यमरः । ताण्डवेति—ताण्डवे नृत्ये यः चण्डवेगः महाजवः तेन उच्चलितः मण्डलाकारेण परिभ्रमन् विश्लिथीभूतो वा यः धूर्जटेः महादेवस्य जटाजूटः जटाबन्धः एव मुकुटः किरीटं तस्मिन् बद्धः संस्थापितः बन्धुरः मनोहरः विकटो विशालः यः वासुकिः शेषाहिः तस्य भोगमणिः फणारत्नं एव ताटङ्कं स्त्रीणां कर्णभूषणम्, स ताटङ्कमिव इति वा तस्य सनाभितुल्यं मण्डलं बिम्बं यस्य सः, तथोक्तः । केचित् तु तादृशभोगमणेस्ताटङ्कः परिणाहः। 'ताटङ्कोऽस्त्री परिणाहे विटङ्के कर्णवेष्टने' इत्यजयः, इत्याहुः । दर्पणकारस्तु 'ताण्डवचण्डवेगोच्छ्लितधूर्जटिजटाजूटकूटबन्धवन्धुर······' इति पाठं धृत्वा 'ताण्डवचण्डवेगोच्छ्लितेन जटाजूटकूटबन्धेन बन्धुरः उन्नतानतः अतएव विषमविन्यासो यो वासुकिस्तस्य भोगमणिः फणामणिः स एव ताटङ्कः स्त्रीणां कर्णवेष्टनं तत्सनाभिः तत्तुल्यरूपो मण्डलो यस्य स इत्यर्थः ।' वर्तुलत्वार्थं ताटङ्करूपकम् । 'बन्धुरं तून्नताननतम् ।' इत्यमरः । इति व्याख्यातवान् । 'ताण्डवं नटनं नृत्यम्' 'धूर्जटिर्नीललोहितः' 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः । 'बन्धूरबन्धुरौ रम्ये नम्रे हंसेति बन्धुरः ।' इति विश्वः । 'अथ मुकुटं किरीटं पुंनपुंसकम् ।' इत्यमरः । अयं शब्दः 'मुकुट' इत्येकोकारवानपि । 'तालपत्रं तु कुण्डलम्' इत्यमरव्याख्याने 'ताटङ्कमप्यत्र' इति सुधा । समानः नाभिः मूलपुरुषो यस्येति विग्रहे 'ज्योतिर्जनपद–' इति समानशब्दस्य सभावे सनाभिशब्दो निष्पद्यते । सन्ध्येति—सन्ध्यैव सन्धिनी वेश्या तस्याः सरसं मनोहरं यत् यावकपत्रं लाक्षाकृतं तिलकं तद्वत् चारुः रमणीयः । 'संधिनी गलदार्तवा वेश्या नगरमण्डना ।' इति वैजयन्ती । 'तमालपत्रतिलकचित्रकाणि विशेषकम् ।' इत्यमरः। सन्ध्यैव सन्धिनी सन्धानकुशला दूती तस्याःसरसं आर्द्रं यत् यावकपत्रं लाक्षाकृता पत्रलेखा तद्वत् चारुः। यद्वा—सन्ध्यैव सन्धिनी गौः, तस्याः यत् सर-

ऐरावतके गण्डस्थलकी शोभा धारण किये हुए थे। उसका मण्डल, ताण्डव-नृत्यके समय अत्यन्त वेगके कारण ढीले पड़े हुए महादेवके जटाजूटरूपी मुकुटमें लगी हुई तथा मनोहर एवं विशाल वासुकीकी मणिरूपी ताटङ्क—कर्णभूषण-के सदृश प्रतीत हो रहा था। संध्यारूपी वेश्याके मनोहर लाक्षा-निर्मित तिलके समान मनोहर था। उसकी शोभा वरुणदेवकी

कान्तिः, कालकरवालकृत्तवासरमहिषस्कन्धचक्राकारः, मधुरमधुपूर्णकपाल इव गगनकपालिनः, अम्लानकुसुमस्तबक इव नभःश्रियः, पुष्पगुच्छ इव गगनाशोकतरोः, कनकदर्पण इव प्रतीचीविलासिन्याः, बलभद्र इव वारुणी-

सयावकपत्रं मङ्गलार्थतया ललाटतटे क्रियमाणं लाक्षालेपनं तद्वत् चारुः। सन्धिनीपदस्य गोविशेषपरत्वेऽपि विशेषस्यानुपयोगात् प्रकृते सामान्यपरत्वम्। दक्षिणापथे हरिद्रालेपवत् यावकपत्ररचना देशविशेषाचारः। इत्यभिनवभट्टबाणाः। दर्पणकारस्तु 'सन्ध्यैव सन्धिनी अकालदुग्धा वृषाक्रान्ता वा गौः तस्याः सरसयावकपटवच्चारुः। पीनायाश्चातिदुग्धायाः गोः शृंगाराय मानवाः। रञ्जयन्ति शिरोदेशमन्यच्च बहुधा किल। क्वचित् यावकपलेति पाठः। अस्मिन् पाठे यावकपटलशब्देन यावकपटलमिव यावकपटलं लोकप्रसिद्धमेहदीति पत्रविशेषं रञ्जनतिलकं विवक्षितम्। 'सन्धिनी तु वृषाक्रान्ता कालदुग्धा गवोः स्मृता।' इति विश्वः। सन्ध्यापुरन्ध्रीति पाठः सुगमः। इत्याह। वारुणीति—वारुणी पश्चिमा दिगेव वारविलासिनी वेश्या तस्याः अरुणमणिकुण्डलस्य पद्मरागमणिनिर्मितकर्णवेष्टनस्य कान्तिरिव कान्तिर्यस्य स तथोक्तः। 'वरुणवारविलासिनीति' पाठे वरुणस्य या वारविलासिनी तस्याः' इत्यर्थः। कालेति—काल एव करवालः खड्गः कालस्य वा करवालः तेन कृत्तं छिन्नं यत् वासरः दिनमेव महिषः सैरिभः तस्य स्कन्धचक्रं चक्राकारः स्कन्धप्रदेशः तस्याकार इवाकारो यस्य स तथोक्तः। मधुरेति—गगनमाकाशमेव कपाली कापालिकः तस्य, मधुरेण सुस्वादुना मधुना मद्येन पूर्णः कपालः भिक्षार्थमुपयुज्यमानं नरशिरोऽस्थि स इव। अम्लानेति—नभः श्रियः आकाशलक्ष्म्याः। अम्लानः अग्लानः सरस इत्यर्थः। कुसुमस्तबकः पुष्पगुच्छ इव। नभः श्रीशब्देन काचिन्नायिका प्रतीयते। कुसुमस्तबकश्च तत्क्रीडनार्थमिति बोध्यम्। 'अम्लानकुसुमस्तबकः महासहापुष्पमञ्जरी तद्रचितः तद्रूपो वा अवतंसः शिरोभूषणं स इव' इति अभिनवभट्टबाणाः। अनेन व्याख्यानेन 'अम्लानस्तवकावतंस इवे'ति पाठः प्रतीयते। पुष्पेति—गगनमाकाशमेव अशोकतरुः वञ्जुल वृक्षः तस्य पुष्पगुच्छः कुसुमस्तबक इव। कनकेति—प्रतीची पश्चिमा दिगेव विलासिनी रमणी तस्याः, कनकदर्पणः स्वर्णमयमुकुर इव। अत्र सर्वत्र प्रायेण रूपक-

वारविलासिनीके रक्तवर्ण कुण्डलके समान थी। उसकी आकृति, कालरूपी तरवालद्वारा कटे हुए दिनरूपी महिष-भैंसा-के चक्राकार कन्धेके समान थी। उस समय वह आकाशरूपी कापालिकके, मधुर मद्यसे पूर्ण कपाल-खोपड़ीका पात्र-के समान प्रतीत हो रहा था। आकाश-लक्ष्मीके सरस (बिना मुरझाया हुआ) पुष्पगुच्छके समान, आकाशरूपी अशोक वृक्षके गुलदस्तेके समान और पश्चिम दिशारूपी अङ्गनाके स्वर्णनिर्मित दर्पणके समान प्रतीत हो रहा था। मद्यपानमें प्रवृत्त अतएव रक्तवर्ण बलभद्रकी तरह वह भी वारुणी-पश्चिम

सङ्गतः सरागश्च, दुर्विध इव परित्यक्तवसुः सविषादश्च, शाक्यवंश इव रक्तांशुकधरः, सूरिरिव संज्ञोपेतः, भगवान् दिनमणिरपराकूपारपयसि तरलतरङ्गवेगोच्चलितविद्रुमविटपाकृतिर्ममज्ज । ततः क्रमेण च रजोविलुठितोत्थितकुलायार्थिपरस्परकलहविकलकलविङ्ककुलकलकलवाचालशिख-

संकीर्णोत्प्रेक्षा । बलभद्रः—बलरामः । वारुणीति—वारुण्या पश्चिमया दिशा सङ्गतः, रागेण रक्तिम्ना सहितश्च । पक्षे—वारुण्या मदिरया सङ्गतः, रागेण मद्यपानजनितारुण्येन, मधुपानप्रीत्या वा सहितः । दुर्विध इति । दुर्विधो दरिद्रः । 'निःस्वस्तु दुर्विधो दीनः' इत्यमरः । दुर्विधो मूर्खो वा 'दुर्विदग्ध' इति पाठान्तरे मिथ्यारसिकः असमर्थो-वेत्यर्थः । परीति—परित्यक्ताः मुक्ताः वसवः किरणा येन स तथोक्तः । विषं जलम् आ समन्तात् ददतीति विषादा मेघाः तैः सहितः । पक्षे—परित्यक्तं वसु धनं येन स तथोक्तः । विषादेन धनाभावजन्यक्लेशेन सहितश्च । शाक्यः—बौद्धः । रक्तेति—रक्ताः लोहितवर्णाः अंशव एव अंशुकाः, तेषां धरः धारयिता । पक्षे रक्ताम्बरधारी । 'किरणोस्रमयूखांशु' 'चेलं वसनमंशुकम्' इत्यमरः । सूरिः—विचक्षणः । संज्ञेति—संज्ञा विश्वकर्मतनया सूर्यपत्नी तयोपेतः युक्तः । पक्षे संज्ञया ज्ञानेन बुद्ध्या वा समुपेतः । 'संज्ञा नामनि गायत्र्यां चेतनारवियोपितोः' इति मेदिनी । दिनमणिः—सूर्यः । अपरेति—अपरः पश्चिमः यः अकूपारः सागरः तस्य पयसि जले । 'समुद्रोऽब्धिरकूपारः' इत्यमरः । कुं पृथ्वीं पिपर्ति इति कूपारः । 'पॄ' पालनपूरणयोः' इति कर्मण्यण् । अन्येषामपीति दीर्घः । ततो नञ्समासः । तरलेति—तरलानां चञ्चलानां तरङ्गाणां लहरीणां वेगेन हृच्चलितस्य हृच्छलितस्य ऊर्ध्वमायातस्य विद्रुमविटपस्य प्रवालस्तबकस्य आकृतिरिवाकृतिर्यस्य सः तथोक्तः । 'विटपः पल्लेव षिड्गे विस्तारे स्तम्बशाखयोः' इति विश्वः । ममज्ज—ब्रडितः अन्तर्हितः ।

तत इति । ततः अनन्तरम्, क्रमेण भगवती सन्ध्या समदृश्यत इत्यन्वयः । सन्ध्यामेव वर्णयति-रजोलुठितेत्यादिना । रज इति—शिखरिषु वृक्षेषु । रजसि धूलौ पूर्वं विलुठिताः परिवर्तितशरीराः पश्चात् उत्थिताः । 'पूर्वकालैक' इत्यादिना कर्मधारयः । तादृशा ये कुलायं नीडं अर्थयन्ते आकाङ्क्षन्तीति कुलायार्थिनः नीडाकाङ्क्षिणः

दिशासे संयुक्त अतएव रक्तवर्ण हो रहा था । धनशून्य अतएव दुखी दरिद्रके समान वह किरणशून्य एवं मेघोंसे घिरा हुआ था । लाल वस्त्र धारण करनेवाले बौद्धकी तरह उसकी किरणें रक्तवर्ण हो रही थीं । बुद्धिमान् विद्वान्के समान वह अपनी पत्नी 'संज्ञा'से संयुक्त था और उस समय उसकी आकृति, चञ्चल तरङ्गोंके वेगसे उलटी हुई विद्रुम-शाखाके समान हो रही थी ।

अनन्तर क्रमशः सायंकाल उपस्थित हुआ । उस समय, वृक्षोंके शिखर, धूलमें लोटकर उठी हुई एवं घोंसलोंमें प्रथम घुसनेकी इच्छासे आपसमें लड़ती हुई चिड़ियाओंके चहचहा-

रेषु शिखरिषु, वसतिसाकाङ्क्षेषु ध्वाङ्क्षेषु, अनवरतदह्यमानकालागुरुधूपपरिमलोद्गारेषु वासागारेषु, दूर्वाञ्चिततटिनीतटनिविष्टविदग्धजनप्रस्तूयमानकथाश्रवणोत्सुकशिशुजनकलकलरवनिवारणक्रुद्धेषु वृद्धेषु, आलोलिकातरलरसनाभिः कथितबहुकथाभिर्जरतीभिरतिलघुकरताडनजनितसुखे ताभि-

परस्परकलहेन स्वावासवृक्षप्रथमप्रवेशाय अहमहमिकया मिथःकलहेन विकला विह्वला कलविङ्काः चाटकैराः तेषां कुलस्य समूहस्य कलकलेन कोलाहलेन वाचालनि मुखराणि सशब्दानीति यावत् येषां ते तादृशाः तेषु सत्सु । 'शिखरी स्यादपामार्गे शैलपादपयोः पुमान् ।' इति विश्वः । 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः । वसतीति—ध्वाङ्क्षेषु काकेषु । वसतौ स्वावासस्थानविषये साकाङ्क्षेषु उत्सुकेषु सत्सु । 'ध्वाङ्क्षात्मघोषपरभृद्बलिभुग्वायसा अपि' इत्यमरः । अनवरतेति—वासागारेषु निवासगृहेषु भोगगृहेषु वा । अनवरतं निरन्तरं दह्यमानानां प्रज्वलतां कालागुरूणां कृष्णागुरूणां धूपस्य तदुत्थधूमस्य परिमलस्य गन्धस्य उद्गारः वमनं निस्सरणं येषु ते तथोक्तेषु सत्सु । 'दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतरस्य वा । परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्य जायते । स धूप इति विज्ञेयो देवानां तुष्टिदायकः ।' इति कालिकापुराणम् । दूर्वेति—वृद्धेषु जरत्सु । दूर्वाभिः एतन्नाम्ना प्रसिद्धैस्तृणविशेषैः अञ्चिते महिते रमणीये इत्यर्थः । तटिनीतटे नदीतीरे निविष्टा उपविष्टा ये विदग्धजनाः पण्डितजनाः कथाप्रवीणा इति भावः । तैः प्रस्तूयमानानां कथ्यमानानां कथानां श्रवणे आकर्णने उत्सुकानाम् उत्कण्ठितानां शिशुजनानां बालकानां कलकलरवस्य कोलाहलध्वनेः निवारणाय शमनाय क्रुद्धाः क्रोधवन्तः, सक्रोधं कोलाहलं निवारयन्त इत्यर्थः । 'निवारणश्रद्धेषु' इति पाठे निवारणे श्रद्धा येषां तथोक्तेषु सत्सु इत्यर्थः । आलोलिकेति—आलोलिकया 'लोरी'ति लोकप्रसिद्धया बालस्वापनोचितगीतिकया तरला चञ्चला तद्गानरता इति भावः, रसना जिह्वा यासां ताभिस्तथोक्ताभिः । 'आलोलिकायां बालानां निद्रार्थं क्रियमाणे 'हूरलोल' इति प्रसिद्धे मुखध्वनिविशेषे तरला रसना जिह्वा यासां ताभिः । तदुक्तम्—'आलोलिका मुकुलिला उल्लुलुर्मुखघण्टिका' इति । इति दर्पणकारः । 'आलोलिका तालुरवः शिशुरोदनशान्तिकृत् ।' इति वैजयन्ती । कथितेति—कथिताः उक्ताः बह्व्यः प्रभूताः कथाः याभिस्ताः तथोक्ताभिः । जरतीभिः—वृद्धाभिः । अतीति—अतिलघु अत्यन्तं मृदु अतिशनैरित्यर्थः, यत् करताडनं हस्तेन आस्फालनं 'थपथपाना' इति

नेसे शब्दयुक्त हो रहे थे । कौवे अपने अपने घोंसलोंकी ओर जारहे थे । वासागारों—भोजगृहों—में निरन्तर जलती हुई धूपबत्तियोंका सुगन्ध फैल रहा था । दूबसे रमणीय नदी-तट पर बैठी हुई पण्डितमण्डली कथा कह रही थी, वृद्ध लोग उसको सुननेके लिये उत्सुक बच्चोंका शोर रोकनेमें व्यस्त हो रहे थे । लोरियाँ गातीं तथा अनेक कथाएँ कहती हुई

भिरनुगते शिशयिषमाणे शिशुजने, विरचितकन्दर्पमुद्रासु क्षुद्रासु, कामुकजनानुबध्यमानदासीजनविविधाश्लीलवचनशतविरसीकृतश्रुतिषु, सन्ध्यावन्दनोपविष्टेषु शिष्टेषु, रोमन्थमन्थरकुरङ्गकुटुम्बकाध्यास्यमानम्रदिष्ठगौष्ठीनपृष्ठासु अरण्यस्थलीषु, निद्राविद्राणकाककुलकलितकुलायेषु,

---

लोकप्रसिद्धम्, तेन जनितः उत्पादितः सुखं यस्य तादृशे। शिशयिषमाणे शयितुमिच्छौ सति। शीङः सन्नन्तात्कर्तरि शानच्। विरचितेति—क्षुद्रासु वेश्यासु। 'क्षुद्रा वेश्यानटीकण्टकारिकासरघासु च' इति विश्वः। विरचिता कृता कन्दर्पमुद्रा प्रसाधनं स्मरचिह्नं मन्मथचेष्टेत्यर्थः इति वा, याभिस्तासु तथोक्तासु सतीषु। कामुकेति—सन्ध्यायाः सायंसन्ध्यायाः वन्दनाय अनुष्ठानाय उपविष्टेषु स्थितेषु शिष्टेषु वैदिककर्मानुष्ठानतत्परेषु। 'धर्मो नाभिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः। ते शिष्टाः ब्राह्मणाः प्रोक्ताः नित्यमात्मगुणान्विताः। इति कौर्मः। कामुकजनैः विटपुरुषैः अनुबध्यमानानां अनुस्रियमाणानां दासीजनानां विविधानामनेकानामश्लीलानां ग्राम्याणां वचनानां शतैः विरसीकृते क्षोभिते श्रुती कर्णौ येषां तेषु तथोक्तेषु सत्सु। 'अश्लीलवचःश्रुतिविरसीकृतासु कामिनीषु' इति पाठान्तरम्। अश्लीलवचसां श्रुत्या आकर्णनेन विरसीकृतासु कदर्थितासु सङ्कोचमापन्नासु, इत्यर्थः। इत्यभिनवभट्टबाणाः। रोमन्थेति—अरण्यस्थलीषु अरण्यानां वनानां स्थलीषु अकृत्रिमभूमिषु। रोमन्थेन चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणेन मन्थराः शिथिलिताङ्गा अलसाः, रोमन्थे मन्थरा वा, ये कुरङ्गाः हरिणाः तेषां कुटुम्बकेन कुलेन समूहेन अध्यास्यमानं अधिष्ठीयमानं म्रदिष्टं मृदुतममतिस्निग्धमित्यर्थः। गौष्ठीनानां भूतपूर्वगोस्थानानां पृष्ठं पृष्ठवत् पृष्ठं उपरिभागः तलमिति यावत्। यासु तादृशीसु सतीषु। 'गोष्ठं गोस्थानकं तत्तु गौष्ठीनं भूतपूर्वकम्।' इत्यमरः। मृदुशब्दादिष्ठनि 'र ऋतः' इति रादेशः। गावः तिष्ठन्ति यत्र तत् गोष्ठम्। घञर्थे कः। भूतपूर्वं गोष्ठं गौष्ठीनं 'गोष्ठात्खञ् भूतपूर्वे' इति खञ्। स्थलशब्दात् अकृत्रिमार्थे 'जानपद' इत्यादिना ङीष्, महदरण्यमित्यर्थे अरण्यशब्दात् 'हिमारण्ययोर्महत्त्वे' इति ङीष्, आनुक् च। निद्रेति—ग्रामे ये तरवः वृक्षाः तेषां निचयेषु समूहेषु। 'ग्रामे वीथ्यां विद्यमानानां वृक्षाणां समूहेषु' नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः' इति मेघसन्देशः। चैत्यानि रथ्यावृक्षाः' इति तत्र मल्लिनाथः। इत्यभिनवभट्टबाणाः। 'काननिकायेषु' इति पाठान्तरम्। काननसमूहेषु इति तदर्थः 'निकायस्तु पुमान् लक्ष्ये सधर्मिप्राणिसंहतौ' इति विश्वः। निद्राविद्राणं निद्राधीनं यत् द्रोणकाकानां

वृद्धस्त्रियाँ, धीरे धीरे थपथपाकर बच्चोंको सुला रही थीं। वेश्यायें अपने कटाक्षोंसे (युवकोंको) बुला रही थीं। कामीजनोंसे घिरी हुई दासियाँ अनेक प्रकारके अश्लील बातें कह रही थीं; जिनके सुननेसे सन्ध्यावन्दनके लिये बैठे हुए कर्मकाण्डीजनोंके कान क्लेश पा रहे थे। कहीं वनोंमें गौवोंके बैठनेके पुराने स्थानोंपर जुगाली करते हुए मृगवृन्द बैठे हुए थे।

ग्रामतरुनिचयेषु, कापेयविकलकपिकुलकलिलेष्वारामतरुषु, निर्जिगमिषति जरत्तरुकोटरकुटीरकुटुम्बिनि कौशिककुले, तिमिरतर्जननिर्गतासु दहनप्रविष्टदिनकरकरशाखास्विव प्रस्फुरन्तीषु दीपलेखासु, मुखरितधनुषि वर्षति शरनिकरमशेषसांसारिकशेमुषीमुषि मकरध्वजे, सुरतारम्भाकल्पशोभिनि

कृष्णवायसानां कुलं वृन्दं तेन कलिता व्याप्ताः कुलायाः नीडानि येषु तेषु तादृशेषु सत्सु । 'निद्रार्थं विद्राणाः पलायमाना ये द्रोणकाकाः तेषां कुलेन कलिता विरचिताः कुलायाः येषु ते, तादृशेषु इति केचित् । कापेयेति—कापेयेन कपिकर्मणा मर्कटचेष्टया दिवसं यावत् सलीलमितस्ततः चङ्क्रमणेनेत्यर्थः, विकलं परिश्रान्तं यत् कपिकुलं वानरवृन्दं तेन कलिलेषु व्याप्तेषु, आरामतरुषु उद्यानवृक्षेषु । कपेः कर्म भावो वा कापेयम् । 'कपिज्ञात्योर्ढक्' इति ढक् । 'आश्रमतरुषु' इति पाठान्तरम् । निर्जिगमिषतीति—जरत्तरूणां चिरन्तनवृक्षाणां कोटरमेव रन्ध्रमेव कुटीरः अल्पा कुटी तस्मिन् कुटुम्बिनि वास्तव्ये कौशिककुले उलूकसमूहे । निर्जिगमिषति निर्गन्तुमिच्छति सति । उलूकानां रात्रिसञ्चारशीलत्वात् । 'निष्कुहः कोटरं वा ने'त्यमरः । कुटीशब्दात् अल्पार्थे 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' इति रप्रत्ययः । कुटीरः क्षुद्रवेश्मनि' इत्यमरः । 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः । तिमिरेति—दहनम् अग्निं प्रविष्टः यो दिनकरः सूर्यस्तस्य करशाखासु अङ्गुलीस्विव स्थितासु, प्रस्फुरन्तीषु दीप्यमानासु दीपलेखासु दीपपङ्क्तिषु । तिमिरस्य अन्धकारस्य तर्जनाय धर्षणाय निर्गतासु निष्क्रान्तासु सतीषु । 'सौरं तेजः सायमग्निं सङ्क्रमते' 'अग्निं वा आदित्यः सायं प्रविशति' इत्यादिश्रुतयोऽत्रानुसन्धेयाः । 'दिनकरकरशिखासु' इति पाठान्तरम् । 'दिनकरकराणां किरणानां शिखासु' इत्यर्थः । मुखरितेति—अशेषाणां समस्तानां सांसारिकाणां सांसारिकजनानां शेमुषीं बुद्धिं विवेकमिति यावत् मुष्णाति चोरयति अपहरतीति तथोक्ते । मुखरितं सशब्दं प्रत्यञ्चाघोषवत्कृतं धनुः चापं येन, प्रत्यञ्चाघोषवत् धनुः चापं यस्येति वा । समासान्तविधेरनित्यत्वात् 'धनुषश्च' इति अनङ्भावः । मकरध्वजे मदने शरनिकरं बाणसमूहं वर्षति मुञ्चति सति । सुरतेति—सुरतारम्भस्य निधुवनक्रीडाया उचितः

कहीं ग्रामीण वृक्षोंपर, सोनेके लिये भागकर आये हुए द्रोण काक अपना घोंसला बना रहे थे । कहीं उद्यानवृक्ष, क्रीडामें मस्त बन्दरोंसे भरे हुए थे । पुराने वृक्षोंके कोटररूपी कुटीरमें रहनेवाले उल्लू (घूमनेके लिये) बाहर जानेकी तयारी कर रहे थे । कहीं २ दीपशिखाएँ इस प्रकार शोभित हो रही थीं मानों अन्धकारका विनाश करनेके लिये अग्निमें प्रविष्ट सूर्यकी किरणें चमक रही हों । कहीं, समस्त सांसारिकजनोंकी बुद्धि-विवेक-का अपहरण करनेवाला कामदेव अपने धनुषकी टंकारके साथ बाणोंकी वर्षा कर रहा था । कहीं स्वतन्त्र

शम्भलीभाषितभाजि भजति भूषां भुजिष्याजने, सैरन्ध्रीबध्यमानरसनाकलापजल्पाकजघनस्थलासु जनीषु, विश्रान्तकथानुबन्धतया प्रवर्तमानानेकजनगृहगमनत्वरेषु चत्वरेषु, समासादितकुक्कुटेषु किरातगृहनिष्कुटेषु, कृतयष्टिसमारोहणेषु बर्हिणेषु, विहितसन्ध्यासमयव्यवस्थेषु गृहस्थेषु, सपदि संकोचोदञ्चदवाञ्चदुच्चके सरकोटिसंकटकुशेशयोदरकोटरकुटीरकुटिल-

---

यः आकल्पः वेषः तेन शोभते इति तस्मिन् सुरतारम्भाकल्पशोभिनि। शम्भलीनां भाषितं वचनं भजति अनुसरति इति तादृशे भुजिष्याजने प्रेष्याजने भूषाम् आभरणं भजति धारयति सति। 'आकल्पवेशौ नेपथ्यम्' 'कुट्टनी शम्भली समे' 'नियोज्यकिंकरप्रैष्यभुजिष्यापरिचारकाः' इत्यमरः। सैरन्ध्रीति—जनीषु वधूषु। सैरन्ध्रीभिः महल्लिकाभिः प्रसाधिकाभिः वध्यमानेन योज्यमानेन रशनाकलापेन काञ्चीगुणेन जल्पाकं सशब्दं जघनस्थलं कटिपुरोभागो यासां तादृशीषु सतीषु। 'समाः स्नुषाजनीवध्वः' 'सैरन्ध्री परवेश्मस्था स्ववशा शिल्पकारिका।' 'स्याजल्पाकस्तु वाचालः' इत्यमरः। 'चतुःषष्टि कलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी। प्रसाधनोपचारज्ञा सैरन्ध्री परिकीर्तिता।' इति कात्यः। जल्पाकेत्यत्र 'जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवङः पाकन्' इति पाकन्प्रत्ययः। विश्रान्तेति—विश्रान्तः समाप्तिङ्गतः यः कथानामनुबन्धः अविच्छेदवृत्तिः तस्य भावस्तेन। प्रवर्तमाना जायमाना अनेकजनेषु श्रोतृवर्गेषु गृहगमनत्वरा स्वावासम्प्रति प्रस्थानसम्भ्रमः येषु तेषु तथोक्तेषु सत्सु। चत्वरेषु चतुष्पथेषु गृहाङ्गणेषु वा। 'चत्वरं तु चतुष्पथे' इति हलायुधः। 'अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः। 'अनेककथकजन' इति पाठान्तरम्। समासादितेति—किरातानां भिल्लानां गृहस्थनिष्कुटेषु गृहारामेषु गृहसमीपस्थकेदारेषु गृहाणां सदनानां निष्कुटेषु कवाटेषु वा। 'निष्कुटस्तु गृहोद्याने स्यात्केदारकवाटयोः।' इति मेदिनी। समासादिताः प्राप्ता कुक्कुटाः ताम्रचूडा यैस्ते तथोक्तेषु सत्सु। 'समावासितकुक्कुटेषु निष्कुटेषु' इति दर्पणधृतपाठः। कृतेति-बर्हिणेषु मयूरेषु। कृतं विहितं यष्टिषु स्वावासदण्डेषु समारोहणं आरोहो यैः तेषु तथोक्तेषु सत्सु। 'मयूरो बर्हिणो बर्ही' इत्यमरः। विहितेति—गृहस्थेषु गृहमेधिषु। विहिता सम्पादिता सन्ध्यासमयस्य सायङ्कालिकस्य व्यवस्था कृत्यनिर्णयो यैस्तेषु तथोक्तेषु सत्सु। सपदीति-षट्चरणानां भ्रमराणां चक्रे वृन्दे।

स्त्रियाँ कुटनियोंकी बात मानकर सुरतोचित वेषसे सुशोभित हो भूषण धारणकर रही थीं। कहीं, सैरन्ध्री—द्वारा बांधे जाती हुई काञ्ची बहुओंके जघन स्थलपर शब्द कर रही थीं। कहीं चौराहों (अथवा) आंगनोंमें, कथा समाप्त होजानेके कारण अनेक कथावाचक घर जानेके लिये शीघ्रता कर रहे थे। कहीं भीलोंके गृह-समीपस्थ वनोंमें कुक्कुट एकत्रित हो रहे थे। मोर अपने निवास-यष्टियोंपर बैठ रहे थे और गृहस्थलोग सायंकालीन कार्योंका निर्णयकर रहे थे। भ्रमरसमूह, उसी समय संकुचित होनेके कारण नीचे झुके हुए उन्नत

शायिनि षट्चरणचक्रे, अनेनैव पथा भगवता भानुमता गन्तव्यमिति सर्वतः पट्टमयैर्वसनैः परिवृता मणिकुट्टिमालिरिव विरचिता वरुणेन रवेः, कालकरवालकृत्तस्य दिवसमहिषस्य रुधिरधारेव, विद्रुमलतेव चरमार्णवस्य, रक्तकमलिनीव गगनतटाकस्य, काञ्चनकेतुरिव कन्दर्परथस्य, मञ्जिष्ठा-

---

सपदि तत्क्षणे सन्ध्याप्रारम्भ एवेत्यर्थः। सङ्कोचाय निमीलनाय उदञ्चन्तः प्रवर्तमानाः अतएव अवाञ्चन्तः अधोमुखीभवन्तः ये उच्चाः उन्नताः केसराः किञ्जल्काः तेषां कोटिभिरग्रभागैः सङ्कटा व्याप्ता ये कुशेशयानां कमलकुसुमानां उदरकोटराः मध्यभागास्त एव कुटीरा अल्पगृहाणि तेषु कुटिलं क्लिष्टं यथा तथा शेते तस्मिन्। स्थानाभावात्क्लेशेन स्वाप इति बोध्यम्। 'किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्।' 'सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्।' 'आविद्धं कुटिलं भुग्नम्' इत्यमरः। अनेनैवेति—भगवता भानुमता सूर्येण। 'भास्वता' इति पाठान्तरम्। पथा मार्गेण। गन्तव्यम् इति इत्युद्दिश्य विज्ञाय वा। रवेः सूर्यस्य, तदर्थमित्यर्थः। वरुणेन पश्चिमदिक्पतिना। विरचिता निर्मिता। सर्वतः सर्वास्वपि दिक्षु। पट्टमयैः पट्टतन्तुविकारैः तन्निर्मितैरित्यर्थः। वसनैः वस्त्रैः। रक्तवर्णैरिति भावः। परिवृता आच्छादिता। मणिकुट्टिमालिः रत्नखचितनिबद्धभूपङ्क्तिरिव स्थिता। अद्यत्वेऽपि महाजनानां सत्काराय भूमौ रक्तवस्त्रमास्तीर्यते एव। अतिलौहित्यादिना एवमुत्प्रेक्षणम्। दर्पणे 'परिवृता' इति पाठो न दृश्यते। तदा मणिकुट्टिमालिः वसनैर्निर्मितेवेति व्याख्येयम्। 'कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः' इत्यमरः। केचित्तु 'कुट्टिमालिः निबद्धभूमिः। कुट्टिमशब्दः करिकलभन्यायेन निबद्धमात्रपरः आलिशब्दश्च भूवाचकः। तथा च वैजयन्ती-आलिः सख्यां भूमिपङ्क्त्योरिति' इति व्याचक्षते। कालेति—कालस्य मृत्योः करवालेन असिना, कृत्तस्य छिन्नस्य। दिवसः दिनमेव महिषः रक्ताक्षः तस्य रुधिरधारा रक्तपङ्क्तिरिव। विद्रुमेति—चरमार्णवस्य पश्चिमसागरस्य विद्रुमलता प्रवालवल्लिरिव स्थिता। रक्तेति—गगनमाकाशमेव तटाकः सरोवरः तस्य। रक्तकमलिनीव तामरस इव। काञ्चनेति—कन्दर्परथस्य कामस्यन्दनस्य। काञ्चनकेतुरिव सुवर्णमयध्वज इव। 'केतुर्ना रूपताकारिग्रहोत्पातेषु लक्ष्मणि' इति मेदिनी। काञ्चनसेतुरिव कन्दर्पगमनस्येति पाठा-

---

केसरोंके अग्रभागसे परिपूर्ण कमलोंमें बड़े कष्टसे लेटे हुए थे। उस समय संध्या ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों वरुणने, यह समझकर कि 'भगवान् सूर्य इसी मार्गसे जायंगे' उसके लिये रत्न-जटित फर्शके समान उसे पट्टमय वस्त्रोंसे बनाया हो। वह उस समय, कालरूपी तलवारसे कटे हुए दिवसरूपी भैंसेकी रुधिरकी धारके समान, पश्चिम-समुद्रकी प्रवालरूपी लताके समान, आकाशरूपी तालाबके रक्तकमलके समान, कामदेवके रथकी

रागारुणपताकेव गगनहर्म्यतलस्य, लक्ष्मीरिव स्वयंवरगृहीतपीताम्बरा, भिक्षुकीव तारानुरक्ता, रक्ताम्बरधारिणी, वारमुख्येव पल्लवानुरक्ता, कामिनीव कालेयाताम्रपयोधरा बभ्रुरिव कपिलतारका भगवती सन्ध्या समदृश्यत ।

न्तरम् । मञ्जिष्ठेति—गगनमाकाशमेव हर्म्यतलं सौधोपरिप्रदेशः तस्य, मञ्जिष्ठा मंजीठेति लोकप्रसिद्धं रञ्जनद्रव्यम्, तस्या रागेण अरुणा रक्ता पताका वैजयन्तीव । 'हर्म्यादि धनिनां वासः' इत्यमरः । स्वयमिति—स्वयं आत्मना वरं सम्यक् यथा तथा गृहीतं स्वीकृतं पीतं पीतवर्णं अम्बरमाकाशं यया सा तथोक्ता । पक्षे—स्वयंवरेण स्वयंवरे वा परिगृहीतः पतित्वेन स्वीकृतः पीताम्बरो विष्णुर्यया सा तादृशी । 'पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी' इत्यमरः । सन्ध्यापक्षे-रलयोर्बवयोश्चाभेदात् वरशब्दः बलपरः । स्वयं बलगृहीतपीताम्बरेति केचिद्व्याचक्षते । भिक्षुकी बौद्धसंन्यासिनी । तारेति—ताराणि नक्षत्राणि रक्तानि रक्तवर्णानि यया सा तादृशी । रक्तमम्बरमाकाशं धारयतीति तादृशी । पक्षे—तारा नाम काचिद् बुद्धदेवता, तस्यां रक्ता प्रीतिमती । रक्ताम्बरं काषायवसनं च धारयतीति तथोक्ता । 'तारो वानरभिन्मुक्ता विशुद्धयोः शुद्धमौक्तिके ना नक्षत्रेऽक्षिमध्ये च न ना रूप्ये नपुंसकम् । स्त्री बुद्धदेवताभेदे वालिगीष्पतिभार्ययोः ।' इति मेदिनी । 'तारानुरागरक्ताम्बरधारिणी' इति पाठान्तरम् । ताराणां नक्षत्राणां अनुरागं रक्तिमानम्, रक्ताम्बरञ्च धारयतीति तथोक्ता । वारमुख्या-गणिकोत्तमा । पल्लवेति—पल्लववत् नवकिसलयवत् अनुरक्ता लोहितवर्णा । पक्षे—पल्लवेषु विटेषु अनुरक्ता प्रीतिमती । 'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' 'षिङ्गः पल्लवको विटः' इत्यमरः । कालेयेति—कालेयवत् कुङ्कुमवत् आताम्रा रक्तवर्णा पयोधरा मेघा यस्यां सा तादृशी । पक्षे कालेयेन आताम्रौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः सा तादृशी । 'कालेयकं कुङ्कुमं स्यात्काश्मीरं घुसृणं समे ।' इत्यजयः । 'कालेयकं रक्तचन्दनम्' इति केचित् । सन्ध्यापक्षे—कालेया वर्तमानाः पयोधरा मेघा यस्याः सा तादृशी इत्यपरे । बभ्रुः नकुली । 'बभ्रुर्ना नकुले विष्णौ विपुले पिङ्गले त्रिषु' । कपिलेति—कपिलाः पीतवर्णाः तारका नक्षत्राणि यस्यां सा तथोक्ता । पक्षे—तारका कनीनिका यस्याः सा तादृशी । अत्र केचित्—'बभ्रुः विष्णुः स इव उपमानपक्षे कपिलतारक इति लिङ्गविपरिणामेऽन्वेतव्यम् । कपिलतां कपिलमहर्षिरूपताम् अरति गच्छतीति तथोक्तः ।

स्वर्णमय पताकाके समान और आकाशरूपी महलकी मंजीठके रंगसे रंगी हुई पताकाके समान सुशोभित हो रही थी । स्वयंवरमें भगवान् विष्णुको वरण करनेवाली लक्ष्मीके समान उसने आकाश पीतवर्ण बना दिया था । तारा नामक बुद्धदेवतामें भक्ति तथा काषाय वस्त्रधारी भिक्षुकी के समान वह भी उस समय ताराओं तथा आकाश को रक्तवर्ण बना रही थी । विटोंमें अनुरक्त वेश्याकी तरह वह नये पत्तोंके समान लाल रंगकी हो रही थी ।

ततः क्षणेन क्षणदानुरागचतुरासु सन्ध्यास्विव वेश्यासु, तुलाधार-शून्यायां पण्यवीथिकायामिव दिवि, घनघटमानदलपुटासु पुटकिनीषु,

कपिलमहर्षिरूपेणावतीर्ण इति भावः। लिङ्गभेदस्तु सहृदयानुद्वेजकत्वान्न दोषाय। तथाच काव्यदर्शे—'न लिङ्गवचने भिन्ने न न्यूनाधिकते अपि। उपमादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम्।' इति व्याचक्षते।

तत इति—ततः अनन्तरम्। क्षणेन झटित्येव। वक्ष्यमाणप्रकारं तिमिर-मन्धकारः उदजृम्भत अवर्धतेत्यन्वयः। तदेव वर्णयति क्षणदेत्यादिना। क्षण-देति—वेश्यासु गणिकासु सन्ध्यास्विव, क्षणदानुरागरचनाचतुरासु क्षणं हर्षं ददातीति क्षणदः कामिनां हर्षजनक इत्यर्थः। एतादृशो योऽनुरागः प्रेमा तस्य रचनायां विधाने चतुरासु निपुणासु। कामिजनमनोमोहकानुरागप्रदर्श-नपटीयसीषु इत्यर्थः। 'क्षणदः क्षणमात्रकर्तव्यः न तु स्थिर इत्यर्थः' इति परे। 'क्षणदे जले या अनुरागरचना अनुरागप्रदर्शकवर्णविन्यासः तत्र चतुरासु। यथा जले वर्णप्रथनमतात्विकं वस्तुतस्तल्लेखासम्भवात् एवमात्मनि अविद्यमानमप्य-नुरागं बहिः प्रदर्शयन्तीष्विति भावः।' इत्यपरे। 'क्षणदो गणके रात्रौ क्षणदा क्षणदं जले।' इति मेदिनी। पक्षे—क्षणदाया रात्रेः योऽनुरागोऽनुरञ्जनं लौहित्यापादनं तस्य रचनाया। सम्पादने चतुरासु। 'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः' इत्यमरः। 'क्षणदारागरचनाचतुरासु सन्ध्याशिष्यास्विव वेश्यासु' इति दर्पणधृत-पाठः। क्षणदा रात्रिस्तस्या रागरचना तत्र चतुरासु सन्ध्याशिष्यास्विव वेश्यासु, पक्षे क्षणदाः आ साकल्पेन राग भैरवादयः तेषां रचना यथायथं स्वरग्राममूर्च्छना सहितं गानं तत्र चतुरासु।' यद्वा क्षणदानां स्वसुखप्रदानां आ साकल्येन रागरचना प्रीतिरचना तत्र चतुरासु इति तद्व्याख्यानं च। तुलेति—दिवि आकाशे पण्यवी-थिकायाम् आपणे इव। तुला राशिभेदः आधारो यस्य स तुलाधारः सूर्यः तेन शून्यायां रहितायां सत्याम्। यद्वा—तुलाराशिराधारो येषान्ते तुलाधाराः चन्द्रादयः तैः शून्यायाम्। पक्षे—तुलां धटं धारयन्तीति तुलाधाराः वणिजः तैः शून्यायाम्। 'तुलाधारस्तु वणिजि सहस्रांशौ च तद्गणि' इत्यजयः। 'विपणिः पण्यवीथिका' इत्यमरः। घनेति—पुटकिनीषु पद्मिनीषु। घनं निबिडं दृढं वा यथा तथा घटमानानि मिथः संश्लिष्यन्ति दलपुटानि पुटाकारीणि पत्राणि यासां तादृशीषु सतीषु। 'नाली-

कुङ्कुम–लेपके कारण रक्त–स्तनवाली कामिनीके समान उस समयके सरकी तरह मेघ लाल लाल हो रहे थे। पीली पुतलीवाली नकुलीकी तरह उस समय तारे पीतवर्णहो रहे थे।

क्षणभर बादही अन्धकार चारों ओर फैल गया। उस समय, रात्रिको रञ्जित करनेमें निपुण संध्याके समान क्षणिक अनुराग प्रदर्शित करनेमें चतुर वेश्यायें उपस्थित थीं बाजार, तौलने का व्यवहार करनेवाले वैश्यों तथा आकाश सूर्यसे खाली हो गया था। कमलिनियोंके

तिमिरप्रतिहतेष्विव तत इतः परिभ्रमत्सु कमलसरसि मधुकरनिकरेषु, विकलकुररीकूजितच्छलेन रविविरहविधुरासु विलपन्तीष्विव सरोजिनीषु, प्रतिफलितसन्ध्यारागरज्यमानसलिलस्थितासु पतिविनाशहृत्पीडया दहनप्रविष्टास्विव कमलिनीषु, गणक इव नक्षत्रसूचके प्रदोषे, हरकण्ठकालिम-

किनी पुटकिनी बिसनालिश्च पद्मिनी।' इत्युत्पलिनी।' 'राजादेर्योग्यस्यापदि विपणिनो विपणमपसारयन्ति सश्रीकाश्च स्वद्वारपिधानमाश्रयन्ति' इति लोकव्यवहारो ध्वनितः' इति दर्पणकारः। तिमिरेति—मधुकरनिकरेषु भ्रमरवृन्देषु। तिमिरेण अन्धकारेण तद्रूपेण नेत्ररोगेण प्रतिहतेषु बाधितेष्विवेत्यर्थः। कमलसरसि पद्मसरोवरे। तत इतः इतस्ततः परिभ्रमत्सु स्खलद्गतिकतया सञ्चरत्सु सत्सु। तिमिराख्यनेत्ररोगपीडिताः मार्गापरिज्ञानात् इतस्ततः स्खलन्तो भ्रमन्तीति तथोत्प्रेक्ष्यते। 'तिमिरं तु दृष्टिरोगान्धकारयोः।' इति हैमः। तिमिरप्रतिहस्तकेषु' इति पाठमभ्युपगम्य प्रतिहस्तकोऽपरहस्तकः। संज्ञायां कन्। 'गुमास्ता' इति भाषायाम्। मालिन्येन साम्यात्प्रतिहस्तोत्प्रेक्षणम्। प्रभौ पराभूते क्षुद्रः परदारादीन् समया स्वभृत्यान् लक्ष्मी जिघृक्षया प्रेषयत्येवेति लोकप्रसिद्धिर्ध्वनितेति' दर्पणकारः। विकलेति—रविविरहेण सूर्यवियोगेन विधुरासु दुःखितासु सरोजिनीषु पद्मिनीषु। विकला विह्वला या कुररी उत्क्रोशपक्षिणी तस्याः कूजितच्छलेन रुतव्याजेन विलपन्तीषु भर्तुर्विरहदुःखेन विलापं कुर्वतीष्विव सतीषु। प्रतिफलितेति—प्रतिफलितेन प्रतिबिम्बितेन संक्रान्तेनेत्यर्थः। सन्ध्यारागेण सन्ध्यारक्तिम्ना रज्यमानं लोहितीभवत् यत् सलिलं जलं तत्र स्थितासु। कमलिनीषु पद्मिनीषु। पत्युः भर्तुः सूर्यस्य विनाशेन अस्तभावेन या हृत्पीडा मनोव्यथा शोकावेगः तया। दहनप्रविष्टासु अग्निमास्थितासु, जीवितनैरपेक्ष्येण अग्निप्रवेशं कृतवतीष्विव स्थितासु। इदं दर्पणपुस्तके नास्ति। गणकेति—प्रदोषे रजनीमुखे। गणके ज्योतिर्विदि। नक्षत्राणि तारकाः सूचयति द्योतयतीति तस्मिन् तथोक्ते। पक्षे—प्रष्टॄणां जनानां शुभाशुभकार्योपयोग्यश्विन्यादिनक्षत्रोच्चारके इत्यर्थः। 'प्रदोषो रजनीमुखम्'। 'दैवज्ञगणकावपि' इत्यमरः। इतः तिमिरं विशिनष्टि। हरेति—हरस्य महादेवस्य यः कण्ठकालिमा गलकाष्र्ण्यं तस्य सनाभि सगोत्रं समरूप-

पत्ते दृढतासे बन्द हो रहे थे। अन्धकारसे मारे हुए भ्रमर, तिमिर-रोगी (रतौंधीवाले, जिसे रातमें नहीं दीखता) के समान, कमल बनमें इधर-उधर घूम रहे थे। कमलिनियाँ, विह्वल कुररीके शब्द-मिससे सूर्य-वियोगके कारण खिन्न हो विलाप सा कर रही थीं। उस समय संध्याकालीन लालिमा जलमें प्रतिबिम्बित हो रही थी, उसमें स्थित कमलिनियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो, वे पति (सूर्य) वियोगके कारण हृदयव्यथासे सन्तप्त हो अग्निमें प्रविष्ट हो रही हों। सायङ्काल, ज्योतिषीके समान नक्षत्रोंको प्रकाशित कर रहा था।

सनाभि, दैत्यबलमिव प्रकटतारकम्, भारतसमरमिव वर्धमानोलूकशकुनिकलकलम्, धृष्टद्युम्नवीर्यमिव कुण्ठितद्रोणप्रभावम्, नन्दनवनमिव सञ्चरत्कौशिकम्, कृष्णवर्त्मज्वलनमिव निखिलकाष्ठापहारकम्, सगर्भ-

मित्यर्थः। दैत्यबलम्—असुरसैन्यम्। प्रकटेति—प्रकटाः आविर्भूताः द्योतमाना इत्यर्थः, तारका नक्षत्राणि यस्मिंस्तत्। पक्षे—प्रकटः प्रसिद्धः तारकः तारकासुरः यस्मिंस्तत् तथोक्तम् 'तमः पक्षे-प्रकृष्टा तारका भौमादिनक्षत्राणि यत्र तत्' इति दर्पणकारः। भारतेति—भरताः भरतकुलजाः युधिष्ठिरदुर्योधनप्रभृतयो योद्धारोऽत्रेति भारतम्। 'संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्य' इत्यण्। भारतं च तत्समरं भारतसमरं भारतयुद्धं तदिव। वर्धमानः वृद्धिं गच्छन् उलूकशकुनीनां घूकपक्षिणां कलकलः कोलाहलो यत्र तथोक्तम्। पक्षे—उलूकः शकुनिपुत्रः, शकुनिः दुर्योधनस्य मातुलः। तयोः वर्धमानः कलकलो यत्र तथोक्तम्। 'उलूकः पुंसि काकाराविन्द्रे भारतयोधिनि।' 'शकुनिः पुंसि विहगे सौबले करणान्तरे।' इति। मेदिनी। धृष्टद्युम्नेति—धृष्टद्युम्नस्य द्रुपदपुत्रस्य वीर्यं पराक्रम इव। कुण्ठितेति—कुण्ठितः व्याहतः द्रोणानां काकविशेषाणां प्रभावः सामर्थ्यं येन, यत्र वा तत्। निशि काकानां सञ्चाराभावात्। 'प्रभावः तेजः, वर्णः इति यावत्। 'प्रभावस्तेजसि शक्तौ' इति हैमः। स कुण्ठितो येन, काकतोऽपि नीलवर्णमित्यर्थः। इति केचित्। 'कुण्ठित-द्रोणप्रभावन्नन्दनवनमिव' इत्यत्र तिमिरपक्षे कुण्ठितद्रोणप्रभावत्' इति पदच्छेदं विधाय, कुण्ठितः द्रोणः काकः यया तादृशी प्रभा कान्तिः अस्यास्तीति कुण्ठितद्रोण-प्रभावत्' इति साम्प्रदायिकाः। पक्षे कुण्ठितः उपहतः द्रोणस्य अश्वत्थामजनकस्य प्रभावः तेजो येन तत्। 'द्रोणः पार्थगुरौ काके माने' इति हैमः। संचरदिति-सञ्चरन्तः भ्रमन्तः कौशिका उलूका यत्र तत् तथोक्तम्। पक्षे सञ्चरन् भ्रमन् कौशिकः इन्द्रो यत्र तत् तथोक्तम्। कृष्णवर्त्मेति—कृष्णवर्त्मनः अग्नेः ज्वलनमिव प्रदीपनमिव। निखिलाः समस्ताः काष्ठा दिशः अपहरतीति तथोक्तम्। सर्वदिगावरकमित्यर्थः। पक्षे-निखिलानि काष्ठानि इन्धनानि अपहरति भस्मसात्कृत्वा विनाशयति तथोक्तम्। 'काष्ठं दारुणि काष्ठा तु प्रकर्ष स्थानमात्रके। दिशि दारुहरिद्रायां कालमानप्रभिद्यपि।' इति हैमः। यद्वा—कृष्णवर्त्मा दुराचारः इव अखिलकाष्ठानामखिलोत्कर्षाणामप-हारकं नाशकम्। 'कृष्णवर्त्मा हुताशे स्याद् दुराचारे विधुन्तुदे।' इति विश्वप्रकाशः।

वह (अन्धकार) महादेवके गलेकी नीलिमाके समान था। विख्यात तारकासुरसे संयुक्त दैत्यसेनाके समान, (आकाशमें) तारे चमक रहे थे। शकुनि (तथा उसके पुत्र) उलूकके कोलाहल-पूर्ण महाभारत युद्धके समान उस समय चारों ओर पक्षी तथा उल्लुओं का शब्द हो रहा था। द्रोणाचार्यकी शक्तिका नाश करनेवाले धृष्टद्युम्नके पराक्रमके समान, द्रोण-काकोंकी शक्ति नष्ट हो रही थी (अथवा, वह अन्धकार द्रोणकाकके रंगको भी तिरस्कृत कर रहा था—उससे भी बढ़कर था) जिस प्रकार नन्दन वनमें इन्द्र विचरते हैं,

मिव घनतरपाषाणकर्कशासु गिरितटीषु, सचक्षुरिव सुप्तप्रबुद्धसिंहनयनच्छ-विच्छटाकपिलेषु सानुषु, सजीवमिव तमोमणिभिः, संवर्धितमिवाग्निहोत्र-धूमलेखाभिः, मांसलितमिव कामिनीकेशपाशसंस्कारागुरुधूमपटलैः, उद्दीपितमिव घनतरनिलीनमधुकरपटलमेचकितपेचकिकपोलतलगलित-दानधाराशीकरैः, पुञ्जीकृतमिव विततमालकाननच्छटाच्छायासु, लीय-

---

इति दर्पणकृद्व्याख्यानम्। 'कृष्णवर्त्मेवाखिल' इति तत्संमतः पाठः। सगर्भमिवेति—घनतरैः बृहद्भिः दृढैः निबिडैर्वा पाषाणैः प्रस्तरैः कर्कशासु कठिनासु, गिरितटीषु पर्वतनितम्बेषु। सगर्भम् गर्भसहितम् अधिकमिति यावत्। 'पाषाणकर्करासु' 'सगर्वमिवे'ति पाठान्तरे। पाषाणाः कर्कराश्च 'कांकर' इति लोके ख्याताश्च यत्र तासु। सुप्तेति—सुप्तप्रबुद्धाः पूर्वं सुप्ताः पश्चात्प्रबुद्धाः ये सिंहाः केसरिणः तेषां नयनच्छवीनां नेत्रकान्तीनां छटाभिः समूहैः कपिलेषु पीतवर्णेषु सानुषु प्रस्थेषु। सचक्षुः स-नेत्रमिव। सजीवेति—तमोमणिभिः ज्योतिरिङ्गणैः। सजीवं सचेतनमिव। तेषामित-स्ततः सञ्चारात्सचेतनत्वमुत्प्रेक्ष्यते। 'ध्वान्तोन्मेषखद्योततमोमणिज्योतिरिङ्गणाः' इति व्याडिः। तमोमणिभिर्नीलमणिभिः' इति केचित्। अत्र सजीवमिति उत्प्रेक्षा न स्वार-सिकीति बोध्यम्। अग्निहोत्रेति—अग्निहोत्रस्य धूमलेखाभिः धूमपङ्क्तिभिः, संवर्धितं वृद्धिं नीतमिव। कामिनीनां प्रमदानां केशपाशसंस्काराय प्रशस्तकेशसंस्कारार्थं योऽगुरुधूमः सुगन्धिद्रव्यविशेषसमुत्थितो धूमः तस्य पटलैः समूहैः मांसलितम् सुपुष्टमिव। घनतरेति—घनतरम् अतिनिबिडं सम्यगित्यर्थः। निलीनानि उपविष्टानि यानि मधुकरपटलानि भ्रमरसमूहाः तैः मेचकितेभ्यः श्यामवदाचरितेभ्यः कृष्णवर्णेभ्य इत्यर्थः, पेचकिनां गजानां कपोलतलेभ्यो गण्डस्थलेभ्यः गलन्तीनां क्षरन्तीनां दान-धाराणां मदप्रवाहाणां शीकरैः अम्बुकणैः उद्दीपितं वर्धितमित्यर्थः। 'उलूके करिणः पुच्छमूलोपान्ते च पेचकः' 'कालश्यामलमेचकाः' इति चामरः। 'धारोत्कर्षे खड्गा-द्यग्रे सैन्याग्रे वाजिनां गतौ। जलादिपाते सन्तत्याम्।' इति हैमः। पुञ्जीकृतमिति—

उसी तरह इस समय उलूक इधर-उधर घूम रहे थे। सब काष्ठों—ईन्धनों-को भस्म करने वाली जलती हुई अग्निके समान, अन्धकारने सब दिशाओंको आच्छादित कर लिया था। बड़े-बड़े पाषाणोंसे कठिन पर्वत कन्दराओंमें वह परिपुष्ट हो रहा था—खूब बढ़ रहा था। वह सोकर उठे हुए सिंहोंकी नेत्र-कान्ति द्वारा पीतवर्ण प्रस्थों-पर्वत-शिखरों-पर नेत्रवान् सा, पटवीजनों द्वारा प्राणवान्सा, अग्निहोत्र-धूमकी पङ्क्तियोंसे बढ़ा हुआसा, स्त्रियोंके केश-पाशको सुवासित करनेके लिये सुगन्धित धूमराशिसे परिपुष्टसा, अत्यन्त पास-पास बैठे हुए भ्रमरवृन्दके कारण कृष्णवर्ण हाथियोंके गण्डस्थलसे बहती हुई मदधाराके बिन्दुओं द्वारा परिवर्धित सा, दूर तक फैले हुए तमाल-वनकी सायाओंमें एकत्रित किया हुआ सा

मानमिव कज्जलरसश्यामभोगिभोगेषु, प्रावरणमिव रजनीपांसुलायाः, पलितौषधमिव वृद्धवारविलासिन्याः, अपत्यमिव रजन्याः, सुहृदिव कलिकालस्य, मित्रमिव दुर्जनहृदयस्य, बौद्धदर्शनमिव प्रत्यक्षद्रव्यमपह्नुवानं तिमिरमुदजृम्भत ।

विततं विस्तीर्णं यत् तमालकाननं तापिच्छवनं तस्य छटायाः पङ्क्तेः छायासु आतपाभावेषु, पुञ्जीकृतं राशीकृतमिव । लीयमानमिति—कज्जलरसवत् मषीजलवत् श्यामाः नीलवर्णाः ये भोगिनः सर्पाः तेषां भोगेषु शरीरेषु लीयमानम् ऐक्यमापन्नमिव। क्वचित् 'निलीयमानमि'ति पाठः, तत्र निलीयमानमात्मानं गोपयन्तमित्यर्थः। प्रावरणमिति—रजनी रात्रिरेव पांसुला बन्धकी कृष्णाभिसारिका तस्याः, प्रावरणम् शरीराच्छादकं नीलवसनं तदिव । 'स्वैरिणी पांसुला च स्यात् ।' इत्यमरः । पलितेति—वृद्धाया जरत्याः वारविलासिन्याः गणिकायाः पलितस्य जराकृतशौक्ल्यस्य जराशुक्लस्य केशस्य वा औषधं शौक्ल्यनिवारकं भेषजमिव । अन्धतमसे शुक्लकेशानामपि कृष्णतयैव प्रतिभासात् इति भावः । अत्र पलितस्य सर्वसामान्यसत्त्वेऽपि वेश्यानां जीविकाभङ्गहेतुत्वात् ता एव वर्णिता इति बोध्यम् । 'पलितं पक्कतापयोः । पक्ककेशे केशपाके' इति हैमः । कलीति—कलिकालस्य कलियुगस्य सुहृत् मित्रमिव । 'सदाचारनाशकत्वान्मालिन्याच्च साम्यात्सुहृत्त्वम् ।' इति दर्पणकारः । बौद्धेति—बौद्धदर्शनं बुद्धानुगतानां शास्त्रं तदिव । प्रत्यक्षेति—प्रत्यक्षं चक्षुषः पुरस्तात्स्थितं द्रव्यं पदार्थम् । अपह्नुवानम् विलोपयत् । सम्मुखस्थितमपि वस्तु तमसि न दृश्यत इति भावः । पक्षे-प्रत्यक्षं चक्षुरिन्द्रियगोचरमपि वस्तु पर्वतादिपदार्थजातम् । अपह्नुवानम् अपलपत् । शून्यमेव तत्त्वमिति तेषां चरमसिद्धान्तत्वात् । अत्रेदमवधेयम्—'बौद्धानां चत्वारः प्रभेदाः वैभाषिक-सौत्रान्तिक-योगाचार-माध्यमिकाः । तेषु वैभाषिकसौत्रान्तिकौ बाह्यार्थास्तित्ववादिनौ । योगाचारः विज्ञानमात्रास्तित्ववादी, विज्ञानमेव तत्त्वम् बाह्यार्थः पर्वतादिः नास्ति इति तत्सिद्धान्तः । माध्यमिकस्तु सर्वशून्यवादी । तन्मते विज्ञानं बाह्यार्थाश्च किञ्चिदपि नास्ति । 'सर्वं ज्ञानमयं जगदि'ति मन्यमानास्ते-'सूर्याचन्द्रमसौ व्योम ताराचक्रं वसुन्धरा । सरितः सागराः शैलाः चित्तस्यैव विभूतयः ।' इति प्रत्यक्षपरिकल्पितमप्यर्थमन्यथयन्ति ।' इति दर्पणकारः ।

और काजलके समान श्यामवर्ण सर्पोंके शरीरोंमें मिला हुआ सा, प्रतीत हो रहा था । वह उस समय, रात्रिरूपी अभिसारिकाके दुपट्टेके समान, वृद्धवेश्याओंके बुढ़ापेसे श्वेतकेशोंके लिये खिजाबके समान, रात्रिके पुत्र-समान, कलियुगके मित्र-समान, दुर्जन-हृदयोंके सहचर-तुल्य सुशोभित हो रहा था । वह पर्वत-वृक्ष आदि प्रत्यक्ष वस्तुओंका अस्तित्व न माननेवाले बौद्धदर्शनकी तरह सामने विद्यमान वस्तुओंको भी ढके हुए था ।

मुदितमिव मत्तमातङ्गमनोहरगण्डमण्डले, फलितमिवातिसान्द्रबहलच्छदतमालकानने, परिस्फुरितमिवातिकान्तकान्ताजनघनतरकेशपाशसंहतौ, उन्मीलितमिवेन्द्रनीलरश्मिषु, अतिशयमांसलितमिवावटतटेषु, साटोपमिव स्फुटपाटवोत्कटविशङ्कटानेकविटपिविटपोत्कटस्फुटकुसुमपुटपिहितपदषट्पदावलिषु, घनतरघोरदन्तिघस्मरविषधरभोगभासुरम्, मद-

मुदितेति—तिमिरमेतादृशमजायतेति संबन्धः मत्तानां मदस्राविणां मातङ्गानां गजानां मनोहरं मदशोभितं यत् गण्डमण्डलं कपोलवृन्दं तस्मिन् मुदितं हृष्टमिव। फलितेति—अतिसान्द्रम् अतिघनं बहलच्छदं प्रचुरपर्णं यत् तमालकाननं तमालवनं तस्मिन्, फलितं सञ्जातफलमिव। परीति—अतिक्रान्ता अतिशयरमणीया कान्ताजनस्य प्रमदाजनस्य घनतरा अतिनिबिडा केशसंहतिः कचकलापः तस्याम्। परिस्फुरितं दीप्यमानमिव। उन्मीलितमिवेति—इन्द्रनीलानाम् इन्द्रनीलमणीनां रश्मिषु किरणेषु, उन्मूलितमुद्दीपितमिव संवर्धितमिवेति यावत्। 'मिलितमिवेन्द्रनीलरश्मिभिः' इति दर्पणधृतपाठः। अतिशयेति—अवटतटेषु गर्तप्रदेशेषु, अतिशयेन अत्यन्तं मांसलितं मांसलं पुष्टमिव। 'गर्तावटौ भुवि श्वभ्रे' इत्यमरः। 'अवटतटाटवीषु' इति दर्पणधृतपाठः। 'अवटाः गर्ताः तटा अटव्यश्च तासु, निम्नोन्नतेषु काननेषु' इति वा। साटोपेति—स्फुटं व्यक्तं यत् पाटवं बलं तेन उत्कटा दृढाः, विशङ्कटा विशालाश्च ये विटपिनः तरवः तेषां विटपेषु शाखासु विद्यमानैः उत्कटैः प्रभूतैः स्फुटैः विकसितैः कुसुमपुटैः पुटसदृशैः पुष्पैः पिहितानि आच्छादितानि रुद्धानीत्यर्थः, पदानि चरणाः येषां तादृशानां षट्पदानां भ्रमराणाम् आवलिषु पङ्क्तिषु, आटोपेन आडम्बरेण सहितं साटोपं सगर्वमिवेति यावत्। विटपेषु शाखासु उत्कटा मत्ता ये·····षट्पदाः इति वा। 'कुटजविटपिविटपोत्कटविनटितषट्पदालिषु' इति दर्पणधृतपाठः। 'विशङ्कटं पृथु बृहत् विशालं पृथुलं महत्' इत्यमरः। 'उत्कटस्तीव्रमत्तयोः' इति मेदिनी। घनतरेति—घनतरा महाबलाः घोरा भयङ्कराः ये दन्तिघस्मराः गजभक्षका विषधरा महासर्पाः तेषां भोगवत् कायवत् भासुरमुज्ज्वलम्। 'घोरघस्मर' इति पाठान्तरम्। घनतरम् अतिनिबिडं घोरं भीषणं घस्मरो भक्षको

अनन्तर, वह अन्धकार, मदमत्त हाथियोंके मनोरम गण्डस्थलपर प्रसन्न सा, अत्यन्त घने, अनेक शाखा-पत्रोंसे परिपूर्ण और दूर तक फैले हुए तमाल-वनमें फलयुक्त सा, रमणियोंके परमसुन्दर, घने बालोंमें चमकता हुआ सा, इन्द्रनील मणियोंकी प्रभामें परिवर्धित सा, गर्त्तप्रदेशों-गड्ढोंमें परिपुष्ट सा हो रहा था और कहीं अत्यन्त दृढ़ताके साथ खड़े हुए विशाल वृक्षोंकी शाखाओंमें लगे हुए विकसित पुष्पोंमें जिनके पैर दबे हुए हैं; उन भ्रमरोंमें गर्व के साथ उपस्थित था। कहीं वह, बली, भयानक और गज-भक्षक सर्पोंके शरीरके

भरमत्तदन्तिदन्तद्युतितर्जनजर्जरितम्, दिवाकरोदयारम्भणमिव संकुचत्कुवलयम्, असतां महत्त्वमिव तिरस्कृतसकलान्तरम्, निमीलन्नीलोत्पलव्याजरचिताञ्जलिपुटेन नमदिवागतं निशापतिं तिमिरमजायत।

यो विषधरस्तद्भोगवत् भासुरम्' इति तद्व्याख्यानम्। अस्मिन् व्याख्याने 'घनतरघोरे'ति विशेषणद्वयं तमसो विशेषणम्। 'भक्षको घस्मरोऽद्मरः' इत्यमरः। 'सृघस्यदः क्मरच्' इति घस्धातोः क्मरच्। 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः। मदभरेति—मदभरेण मदातिशयेन मत्ता ये दन्तिनः गजाः तेषां दन्तानां द्युत्या कान्त्या तर्जनेन वित्रासनेन जर्जरितं शिथिलितं शिथिलावयवम्। 'मदभरमत्तविशेषणं गजानां तारुण्यद्योतनाय तच्च दन्तयोः श्वैत्याय' इतिद् र्पणकारः। दिवाकरेति—दिवाकरस्य सूर्यस्य उदयारम्भणमुदयारम्भः। संकुचदिति - संकुचत् अल्पीभवत् तमसाच्छन्नतया स्वल्पमिव लक्ष्यमाणं कुवलयं भूमण्डलं यस्मिंस्तत् तथोक्तम्। पक्षे—संकुचन्ति निमीलन्ति कुवलयानि उत्पलानि यस्मिंस्तत्। 'स्यादुत्पलं कुवलयम्', 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी' इत्यमरः। 'मण्डलं वलयं समम्' इति हरिः। असतां—दुर्जनानाम्। महत्त्वम् उन्नतपदप्राप्तिः। तिरस्कृतेति - तिरस्कृतमपनीतं सकलानां समस्तानामपि वस्तूनाम् अन्तरं विशेषो भेदः येन तत् तथोक्तम्। तमसि वस्तूनां स्वरूपाज्ञानात् समानरूपेण किञ्चिदस्तीति प्रतिभासादिति भावः। विशेषः नीचोच्चभावः स्थूलाल्पभावः संस्थानभेदो वा। तमसि स्पर्शेन पदार्थमात्रमवगम्यते नत्विदन्तयेति भावः' इत्यपरे। पक्षे तिरस्कृतमवधीरितं सकलानां कलाभिः सहितानां विदुषाम् अन्तरं भेदः येन तत् तथोक्तम्। उच्चपदं प्राप्ता दुर्जनाः पण्डितैः सहापि प्राकृतजनवद् व्यवहरन्तीति भावः। यद्वा—तिरस्कृतं सकलानां पण्डितानां सर्वेषां वा आन्तरं मनोऽभिप्रायो येन तत् तथोक्तम्। कस्याप्यभिप्रायं न गणयन्ति हि दुर्जनाः। निमीलदिति—निमीलन्ति सङ्कुचन्ति यानि नीलोत्पलानि इन्दीवराणि तेषां व्याजेन मिषेण रचितं विहितं यत् अञ्जलिपुटं हस्तद्वयसंयोगः तेन। आगतं शीघ्रमेवोदीयमानम्। आदिकर्मणि क्तः कर्तरि। निशापतिं चन्द्रम्। नमत् नमस्कुर्वदिव। 'आगतां तमीम्' इति पाठे समुपस्थितां रात्रिमित्यर्थः। अत्राहुरभिनव-

---

समान उज्ज्वल और कहीं मद-मत्त हाथियोंके दांतसे (उनकी चमकसे) द्युति-हीन (फीका) हो रहा था। जिस तरह सूर्योदयके प्रारम्भ समय उत्पल सङ्कुचित होने लगते हैं उसी तरह इस अन्धकारमें डूब जानेके कारण पृथ्वी-मण्डल छोटासा प्रतीत हो रहा था। उस समय वह, विद्वानोंके विचारोंका अपमान करनेवाले दुर्जनोंके महत्त्वके समान, समस्त वस्तुओंके (ऊँचे-नीचे, अधिक-न्यून आदि) भेदको मिटा रहा था और सङ्कुचित होते हुए नीलोत्पल मिससे हाथ जोड़कर उदायमान चन्द्रमा को नमस्कार कर रहा था। अनन्तर क्षणभरमें

अथ क्षणेनैव सन्ध्याताण्डवाडम्बरोच्चलितमहानटजटाजूटकूटकुटिलस्खलनविवर्तितजह्नुकन्यावारिधाराबिन्दव इव विकीर्णाः, दुर्भरधरणिभार-

---

भट्टबाणाः—'अत्रेदं बोध्यम्। रात्रौ हि नीलोत्पलानां विकास एव कविसमयसिद्धः, तथा च कविसमयनिरूपणावसरे 'रात्रावेव नीलोत्पलविकासः। दिवैव कमलविकासः। इति साहित्यचिन्तामणिः। तत्कथमत्र नीलोत्पलानां निमीलनमुच्यत इति चेदत्र वदामः। कविसमयश्चात्रान्यथापि दृश्यते। यथा, दिवापि उत्पलविकासः। रात्रावपि तन्निमीलनमिति। तथा च श्रीमति रामायणे दिवा गङ्गावर्णनावसरे 'क्वचित्फुल्लोत्पलच्छन्नां क्वचित्पद्मवनाश्रिताम्' इति दिवापि तेषां विकासो वर्णितः। तथा दण्डिनापि अयुक्तरूपकनिरूपणावसरे 'इदमार्द्रस्मितज्योत्स्नं स्निग्धनेत्रोत्पलं मुखम्।' इति ज्योत्स्नोत्पलायोगादयुक्तं नाम रूपकम्।' इति वदता रात्रौ नीलोत्पलानां निमीलनमङ्गीकृतम्। व्याख्यातञ्चेदम्—'यदा ज्योत्स्ना चन्द्रिका, तदा उत्पलं न विकसतीति ज्योत्स्नोत्पलयोगोऽसङ्गत इति।' तस्मादुभयथापि कविसमयप्रसिद्धेर्नेदमनुपपन्नम्। अतएव सन्ध्यावर्णनावसरे 'निमीलितानां कमलोत्पलानाम्।' इति कवितार्किकसिंहः। सर्वमिदं तत्रैव व्याख्याने निरूपितम्।' इति। एतादृशं तिमिरमजायत। अत्र दर्पणकारसम्मतपाठस्तु—'मदभरमत्तदन्तिदन्तद्युतितर्जनजर्जरं तमः। निशाकरारम्भसमय इव सङ्कुचत्कुवलयव्याजेन विरचिताञ्जलिपुटे नतिमति तमीतिमिरे।' इति अयञ्च नातीव सङ्गतो मनोरमश्च।

अथेति—अथ अनन्तरम्। क्षणेनैव अल्पकालेनैव। तारा नक्षत्राणि व्यराजन्त अशोभन्त इति सम्बन्धः। तारा एव वर्णयति सन्ध्याताण्डवेत्यादिना–विकीर्णाः प्रसृताः, सन्ध्यासु सन्ध्याकाले यत् ताण्डवं नृत्यं तस्य आडम्बरेण समारम्भेण उच्चलिते कम्पिते महानटस्य शिवस्य जटाजूटकूटे कपर्दकोटौ कुटिलं वक्रं यत् स्खलनम् आघातः तेन विवर्तिता विपर्यस्ता सम्भ्रान्तेत्यर्थः, या जह्नुकन्या गङ्गा तस्या वारिधाराबिन्दवः जलासारविप्रुषः इव। 'कूटकुटिलविवरविवर्तित' इति दर्पणधृतपाठः। 'ताण्डवं नटनं नाट्यम्', 'महाकालो महानटः', 'कपर्दोऽस्य जटाजूटः' इत्यमरः। 'आडम्बरः समारम्भे गजगर्जिततूर्ययोः' इति विश्वः। 'मायानिश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु। अयोघने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियाम्।' इति विश्वः। दुर्भरेति—तता व्याप्ताः। दुर्भ-

ही तारे चमकने लगे। वे उस समय ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो, सायङ्कालके समय ताण्डवनृत्यमें हिलते हुए महादेवके जटाजूटके अग्रभागमें तिरछे गिरनेसे सम्भ्रान्त गंगाकी जलबिन्दुएँ इधर-उधर

भुग्नभीमदिङ्मत्तमातङ्गमण्डलकरविमुक्तशीकरच्छटा इव तताः, अतिदवीयोनभस्तलभ्रमणखिन्नदिनकरतुरङ्गमास्यविवरवान्तफेनस्तबका इव विस्तीर्णाः, गगनमहासरःकुमुदसंदोहसन्देहदायिनः, विश्वं गणयतो विधातुः शशिकठिनीखण्डेन तमोमषीश्यामेऽजिन इव वियति संसारस्यातिशून्यत्वात् शून्यविन्दव इव विलिखिताः, जगत्त्रयविजिगीषाविनि-

---

रेण भर्तुमशक्येन दुःसहेनेत्यर्थः। धरणिभारेण पृथ्वीभरेण भुग्नाः अवनतदेहा भीमा भीषणाश्च ये दिशां मत्तमातङ्गाः मत्तदन्तिनः तेषां मण्डलस्य समूहस्य करैः शुण्डाभिः विमुक्ताः ऊर्ध्वं विक्षिप्ताः शीकरच्छटा अम्बुकणसमूहा इव। 'करो वर्षोपले पाणौ शुण्डाप्रत्ययरश्मिषु।' इति विश्वः। अतीति—अतिदवीयसि अतिदूरतरे अतिदीर्घे इत्यर्थः, नभःस्तले आकाशे भ्रमणेन संचारेण खिन्नाः क्लान्ताः ये दिनकरतुरङ्गमाः सूर्याश्वाः तेषाम् आस्यविवरेभ्यः मुखच्छिद्रेभ्यः वान्ताः विनिर्गताः फेनस्तबकाः डिण्डीरखण्डा इव। अतिशयेन दूरमिति अतिदवीयः। दूरशब्दादीयसुनि 'स्थूलदूर' इत्यादिना यणादिपरलोपः पूर्वस्य गुणश्च। 'दवीयश्च दविष्ठञ्च सुदूर' इत्यमरः। विशीर्णाः—सर्वतः प्रसृताः। गगनेति—गगनमाकाशमेव महासरः बृहत्सरोवरः तस्य तस्मिन् वा कुमुदसन्दोहस्य इन्दीवरसमूहस्य सन्देहं संशयं दातुं शीलं यासां तथोक्ताः। 'सन्दोहविसरव्रजाः' इत्यमरः। विश्वमिति—विश्वं संसारं सर्वं वा। गणयतः संख्यानं कुर्वाणस्य, विधातुः ब्रह्मणः, अस्य विलिखिता इत्यनेनान्वयः। सम्बन्धसामान्ये षष्ठी। 'नलोका–' इति निषेधस्तु कारकषष्ठ्या एव। शून्यबिन्दव इत्यनेन वा सम्बन्धः। शशी चन्द्र एव कठिनी खटिका 'खडिया' इति लोके प्रसिद्धं वस्तु, तस्याः खण्डेन शकलेन। 'कठिनी खटिकायां तु' इति विश्वः। तम एव मषी कज्जलं तया श्यामे, तमः मषीव तद्वच्छ्यामे वा वियति आकाशे, पक्षे (अजिनपक्षे) तम इव मषी तया श्यामे नीलवर्णे। अजिने चर्मणीव अतिशून्यत्वात् अत्यन्तनिस्सारत्वात् सर्वथा विनाशित्वादिति भावः, शून्यविन्दवः शून्यताबोधका बिन्दव इव। सर्वासु लिपिषु यथा तत्तत्संख्या बोधनायाङ्का निवेश्यन्त एवं शून्यत्वबोधनाय बिन्दुर्निवेश्यत इति सम्प्रदायादेवमुत्प्रेक्ष्यते। जगदिति—जगत्त्रयस्य लोकत्रयस्य विजिगीषया विजेतु-

---

बिखरी हुई हों। अथवा, पृथ्वीका असह्य बोझ धारण करनेसे झुके हुए एवं भीषण दिग्गजोंकी सूँड़ों द्वारा ऊपर फेंके हुए जलकण इधर–उधर व्याप्त हो रहे हों। अथवा, आकाशमें दूर तक चलनेके कारण थके हुए भगवान् सूर्यके अश्व–मुखसे निकलते हुए आग फेंके हुए हों। वे, आकाशरूपी सरोवरमें कुमुद–वृन्दका सन्देह उत्पन्न कर रहे थे। किंवा, संसारकी गणना–प्रसङ्गमें भगवान् ब्रह्माने, कज्जलतुल्य अन्धकारसे श्यामवर्ण, चर्मसदृश आकाशमें संसारके अत्यन्त निःसार–सर्वथा विनाशी–होनेके कारण शून्यता–सूचक बिन्दु लगा दिये हैं।

र्गतस्य मकरकेतो रतिकरविकीर्णा इव लाजाञ्जलयः, गुलिकास्त्रगुलिका इव विक्षिप्ताः पुष्पधनुषः, वियदम्बुराशिफेनस्तबका इव वितताः, रतिविरचिता गगनाङ्गणे आतर्पणपञ्चाङ्गुलय इव, व्योमतललक्ष्मीहारमुक्तानिकरा इव विशीर्णाः, हरकोपानलदग्धकामचिताचक्रादिन्दोर्वात्यावेशविप्रकीर्णाः कामकीकसखण्डा इव, तिमिरोद्गमधूमधूमलसन्ध्यानलपरितप्तगगनकटाहभृज्ज्य-

---

मिच्छया विनिर्गतस्य गृहान्निःसृतस्य, मकरकेतोः कामस्य, रतिकरेण कामभार्याहस्तेन विकीर्णाः विक्षिप्ताः। लाजाञ्जलयः अञ्जलिपरिमिता भृष्टव्रीहय इव। विजयाय प्रतिष्ठमाने राज्ञि लाजाः विकीर्यन्त इत्याचारः। गुलिकेति—विक्षिप्ताः मुक्ताः। पुष्पधनुषः कामस्य। गुलिकास्त्रस्य गुलिकाक्षेपकस्यायुधभेदस्य 'गुलेल' लोकप्रसिद्धस्य गुलिका गोलिका इव। वियदिति—वितताः विस्तृताः वियत् आकाशमेव अम्बुराशिः समुद्रः तस्य फेनस्तबका डिण्डीरखण्डा इव। रतीति—गगनमेव अङ्गणं प्रदेशः चत्वरं वा तस्मिन्। रतिविरचिताः मदनभार्यया विहिताः। आतर्पणस्य मङ्गलालेपनस्य पञ्चाङ्गुलयः तत्र क्रियमाणाः अङ्गुलिपञ्चकसन्निवेशा इव। 'आतर्पणं प्रीणने स्यान्मङ्गलालेपनेऽपि च।' इति मेदिनी। 'आतर्पणमालेपनम्' इति भाषायाम्। तस्य पञ्चाङ्गुलयः 'चुटुकी' इति भाषायाम्। उत्सवादावातर्पणेनाङ्गुली रञ्जयित्वा कुड्यादि रञ्जयन्तीति सम्प्रदायः' इति दर्पणकारः। व्योमेति—विशीर्णाः सूत्रच्छेदादितस्ततः पतिताः, व्योमतललक्ष्म्या आकाशश्रियः हारस्य मौक्तिकदाम्नः मुक्तानिकरा मौक्तिकसमूहा इव। हरेति—हरस्य शिवस्य कोपानलेन क्रोधाग्निना दग्धस्य भस्मीभूतस्य कामस्य चिताचक्रं चक्राकारा चिता तस्मात् तद्रूपात्, इन्दोः चन्द्रात्। अत्र चन्द्रे चिताचक्रत्वमारोप्यते। वात्याया वातसमूहस्य मण्डलाकृतिवायोः आवेशेन सवेगं प्रसरणेन विप्रकीर्णा इतस्ततो विक्षिप्ताः कामस्य मन्मथस्य कीकसखण्डा अस्थिशकला इव। वातशब्दात् समूहार्थे 'पाशादिभ्यो यः' इति यप्रत्ययः। 'कीकसं कुल्यमस्थि च' इत्यमरः। 'चन्द्रचिताचक्रात्' इति दर्पणधृतपाठः।' चन्द्र इव चिताचक्रम्' इति तद्व्याख्यानम्। तिमिरेति—तिमिरोद्गमः अन्धकारप्रादुर्भाव एव धूमः तेन धूमलः कृष्णलोहितः यः सन्ध्यैव अनलो वह्निः तेन परितप्तः अत्यन्तमुष्णीकृतः

अथवा, तीनों लोकोंकी विजय-यात्राके लिये प्रस्थित कामदेवके ऊपर रतिने खीलें बखेरी हों। अथवा, कामदेवकी गुलेलसे फेंकी हुई गोलियाँ हों। अथवा, आकाशरूपी समुद्रके फेन-समूह इधर-उधर फैले हुए हों। अथवा, आकाशरूपी चौराहे पर रति-विरचित आतर्पण-मङ्गलजनक आलेपन—की पांच अङ्गुलियोंके निशान हों। अथवा, महादेवकी कोपाग्निसे भस्मीभूत कामदेवकी चक्राकार चितारूपी चन्द्रमासे, वायुके बवूले द्वारा बिखरी हुई कामदेवकी अस्थियाँ हों, वे ताराएँ फैले हुए अन्धकाररूपी धूमसे कृष्ण एवं रक्तवर्ण

मानस्फुटितलाजानुकारिण्यस्तारा व्यराजन्त। एताभिः श्वित्रीव वियदशोभत।

ततो दीर्घोच्छ्वासरचनाकुलं सुश्लेषवक्त्रघटनापटु सत्कविवचनमिव चक्रवाकमिथुनमतीवाखिद्यत। कमलिनीसंचरणलग्नमकरन्दबिन्दुसंदोह-

---

गगनमेव कटाहः महत् लोहपात्रं तस्मिन् भृज्ज्यमानाः पच्यमानाः स्फुटिताः विशीर्णाश्च ये लाजा भृष्टधान्यानि तदनुकारिण्यः तत्सदृशाः। 'धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते।' इत्यमरः। 'कटाहो घृततैलादिपाकपात्रेऽपि कर्परे।' इति विश्वः। 'दिनसन्ध्यावरवध्वोर्वहति विवाहाग्निविभ्रमं भानुः। लाजायते च साक्षादुत्तरलस्तारकानिकरः।' इति बालरामायणम्। एतादृश्यः तारा व्यराजन्त। 'गगनमहास्थलीकटाह' इति दर्पणसम्मतपाठः। एताभिः तारकाभिः। श्वित्रि धवलकुष्ठरोगवत्। 'कुष्ठश्वित्रे' इत्यमरः। 'चित्रितमि'ति पाठे सञ्जातचित्रम्। वियत् आकाशमशोभत।

तत इति—अनन्तरं सत्काव्यस्य समीचीनप्रबन्धस्य विरचनं निर्माणमिव चक्रवाकमिथुनम् अतीव अत्यन्तम् अखिद्यत दुःखितमभूत्। कीदृशं तत्? तदेवाह, दीर्घः प्रलम्बः विरहतापेन दूरं प्रसृत इत्यर्थः, यः उच्छ्वासः श्वासः तस्य रचनया विधानेन आकुलं व्याकुलम्। विरहातपेन दीर्घं निश्वसदित्यर्थः। पक्षे—दीर्घाः प्रलम्बाः ये उच्छ्वासाः सर्गाङ्कादिवत्काव्यस्यावान्तरभेदाः तद्रचनया आकुलं व्याप्तम्, तद्रचनानां कुलं गृहं वा। तत्सहितमित्यर्थः। 'उच्छ्वासः प्राणने श्वासे गद्यपद्यान्तरेऽपि च।' 'कुलं कुल्ये गणे गेहे देहे जनपदेऽन्वये।' इति हैमः। सुश्लेषेति—शोभनः श्लेषः आलिङ्गनं, वक्त्रघटना मिथो मुखयोजनं चुम्बनमिति यावत् तत्र पटु दक्षम्। सुश्लेषः यत्र तादृशी या वक्त्रघटना तत्र इति वा पक्षे, शोभनः सहृदयानां मनोरञ्जकः श्लेषः तन्नामा अलंकारः गुणो वा, वक्त्रं नाम छन्दोभेदस्तद्घटनायां घटनया पटु समर्थम्। 'वक्त्रं मुखे वृत्तभेदे' इति मेदिनी। 'एकरूपेण वाक्येन द्वयोर्वर्णनमर्थयोः। तन्त्रेण यत्स शब्दज्ञैः श्लेष इत्यभिशब्दितः।' इति श्लेषालंकारलक्षणमाह भोजराजः। 'यत्रैकपदवद्भावः पदानां भूयसामपि। अनालक्षितसन्धीनां स श्लेषः परमो गुणः।' इति श्लेषाख्यगुणस्य लक्षणम्। 'वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टभि ख्यातम्।' इति वृत्तरत्नाकरः। 'पटुस्तीक्ष्णेऽस्फुटे दक्षे निष्ठुरे निर्दयेऽपि च॥' इति रुद्रः। कमलिनीति—कमलिनीवने नलिनीषण्डे सञ्चरणेन भ्रमणेन लग्नः संसक्तः यः

सन्ध्यारूपी अग्नि द्वारा तपे हुए आकाशरूपी कड़ाहमें भूँजी जाती हुई अतएव इधर-उधर गिरती हुई खीलोंका अनुकरण कर रही थीं उस समय, इन ताराओं द्वारा आकाश श्वेत कुष्ठ रोगीके समान प्रतीत हो रहा था।

उस समय, विरह-सन्तापसे लम्बी-लम्बी सांस लेता हुआ तथा आलिङ्गन एवं चुम्बनमें निपुण चक्रवाक-पक्षियोंका जोड़ा इसी प्रकार खिन्न हो रहा था जिस प्रकार लम्बे-लम्बे

लुब्धमुग्धमुखरमधुकरमालाशबलगात्रम्, कालपाशेनेव मूर्तिमद्रामशापेनेवाकृष्यमाणं चक्रवाकमिथुनं विजघटे। रविविरहविधुरायाः कमलिन्या हृदयमिव द्विधा पपाट चक्रवाकमिथुनम्। आगमिष्यतो हिमकरदयितस्य पार्श्वे संचरन्ती कुमुदिन्या भ्रमरमाला दूतीवालक्ष्यत। तारकानयनजलबिन्दुभिरस्तंगतस्य दिवाकरदयितस्य शोकादिव ककुभो व्यरुदन्। भास्वतो निजदयितस्य विरहादभिनवकिञ्जल्कराजिव्याजेन शोका-

---

मकरन्दबिन्दूनां पुष्परसविप्रुषां सन्दोहः समूहः तस्मिन् लुब्धा सतृष्णा मुग्धा मनोहरा मत्ता वा मुखरा शब्दायमाना या मधुकरमाला भ्रमरपङ्क्तिः तया शबलं चित्रं गात्रं शरीरं यस्य तत्। कालपाशेन समयरूपिणो यमस्य पाशेन। मूर्तेति—मूर्तिमान् सदेहः यः रामशापः तेन आकृष्यमाणं बलान्नीयमानमिव चक्रवाकमिथुनम् विजघटे विघटितं विश्लिष्टमभूत्। विरहातुरो हि विलपन् रामचन्द्रः परिहसचक्रवाकमिथुनमाप्रभातमनुभव वियोगमिति शशाप। रवीति—रविविरहेण सूर्यवियोगेन विधुरायाः खिन्नायाः कमलिन्या हृदयमिव चक्रवाकमिथुनं द्विधा पपाट द्विधागतम्, विश्लिष्टञ्चाभूत्। अट पट गतौ। आगमिष्यत इति—कुमुदिन्याः कैरविण्याः पार्श्वे समीपे। सञ्चरन्ती भ्रमन्ती, भ्रमरमाला मधुकरपङ्क्तिः। आगमिष्यतः एष्यतः उदीयमानस्येत्यर्थः। हिमकरः चन्द्रः एव दयितः पतिः तस्य दूतीव अलक्ष्यत दृष्टाऽभूत्। सञ्चरन्तीत्यत्र तृतीयान्तेन योगाभावात् 'समस्तृतीयायुक्तात्' इति नात्मनेपदम्। तारकेति—ककुभो दिशः। अस्तङ्गतस्य अस्तमापन्नस्य मृतस्येति ध्वनिः। दिवाकरः भानुरेव दयितः प्रियः तस्य शोकात् दुःखात्। तारका नक्षत्राण्येव नयनजलबिन्दवः नेत्राम्बुविप्रुषः तैः, तैरुपलक्षिता इत्यर्थः। तारकाव्याजात्''स्थूलाश्रुबिन्दुभिः इति दर्पणधृतपाठः। 'तारकानयनजलबिन्दुव्याजात्' इति पाठस्तु रूपकोपरि व्याजपदोपयोगाभावात्प्रत्युतवैपरीत्याच्च न शुद्धः।' इत्यभिनवभट्टबाणाः। भास्वत इति—निजदयितस्य स्वप्रियस्य भास्वतः सूर्यस्य विरहात्

उच्छ्वासों—अवान्तर विभागोंकी रचना संयुक्त तथा सुन्दर श्लेष एवं वक्त्र नामक वृत्त विशेषकी रचनामें समर्थ उत्तम काव्यकी रचना खिन्न होती है—इस प्रकार की रचना करनेवाला सत्कवि क्लेश पाता है। कमलिनी-वनमें घूमनेके कारण (शरीरमें) लगे हुए पुष्प-रसके इच्छुक, रमणीय और गूँजते हुए भ्रमरोंसे जिनका शरीर व्याप्त हो रहा था, ऐसे चक्रवाक-मिथुन, मूर्तिमान राम-शापके तुल्य समयरूपी यम-पाशसे आकृष्ट हो परस्पर वियुक्त हो रहे थे। सूर्यके-वियोगसे विह्वल कमलिनीका दो टुकड़े हुये हृदय के समान चक्रवाक-मिथुन दो ओर पृथक्-पृथक् चला गया। उस समय, कुमुदिनीके आस-पास घूमती हुई भ्रमरश्रेणी, आनेवाले चन्द्रमारूपी प्रिय-जनकी दूतीसी प्रतीत हो रही थी।

नलमुर्मुरो नलिनीकोशहृदये जज्वाल। ततो रविरश्मिदावाग्निभस्मीकृतनभोवनमषीराशिरिव, श्रुतिवचनमिव क्षपितदिगम्बरदर्शनम्, कृष्णरूपमपि तिरस्कृतविश्वरूपभावविशेषम्, सद्योद्रावितराजतपटद्रवप्रवाह इव शार्वरमन्धतमसमजृम्भत।

वियोगात्। अभिनवा प्रत्यग्रा या किंजल्कराजिः केसरपङ्क्तिः तद्व्याजेन तन्मिषेण। शोकानलः शोकाग्निरेव मुर्मुरः तुषानलः। नलिन्याः कोशः मुकुल एव हृदयं तस्मिन् जज्वाल दिदीपे। 'मुर्मुरस्तु तुषानलः' इत्यमरः। तत इति—एतादृशम् अन्धतमसम् अजृम्भतेति संबन्धः। रवीति— रवेः सूर्यस्य रश्मयः किरणा एव दवाग्निः वनवह्निः। तेन भस्मीकृतं दग्धं नभोवनम् आकाशमेव अरण्यं तस्य मषीराशिः अङ्गारसमूह इव। श्रुतीति—श्रुतिवचनं वेदवाक्यम्। क्षपितं नाशितं तिरोहितं दिशाम् आशानाम् अम्बरस्य आकाशस्य च दर्शनमालोकनं येन तत् तथोक्तम्। पक्षे—क्षपितं खण्डितं दिगम्बरदर्शनं जैनदर्शनशास्त्रम् येन तत्। कृष्णेति—कृष्णो वासुदेवः तस्य रूपं स्वभावः कृष्णत्वमिति यावत् तादृशमपि तिरस्कृतः धिक्कृतः विश्वरूपभावः विश्वात्मकतैव विशेषः उत्कर्षः येन तत् तथोक्तम्। कृष्णस्वभावस्य तिरस्कृतविश्वरूपभावविशेषत्वं विरुद्धम्। पक्षे—कृष्णं नीलं रूपं यस्य तत् तथोक्तम्। तिरस्कृतः निराकृतः विश्वरूपाणां सर्वस्वभावानां नानाविधानामित्यर्थः, भावानां पदार्थानां विशेषः परस्परभेदो येन तत् तादृशमिति परिहारः। विरोधाभासोऽलङ्कारः। 'रूपं स्वभावे शुक्लादौ सौन्दर्ये नाटकेऽपि च।' इति नानार्थरत्नमाला। 'भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु। क्रियालीलापदार्थेषु विभूतिबन्धुजन्तुषु।' इति मेदिनी। 'विशेषः प्रकारभेदयोः' इति जटाधरः। सद्यः इति—सद्यः तत्क्षणं, द्रावितः अग्निना संताप्य स्रावितः राजतपटः रविपटः कृष्णाभ्रकमिति वा। तस्य द्रवप्रवाह इव। शार्वरम्—शर्वर्यां रात्रौ भवं शार्वरं नैशिकमित्यर्थः। शर्वरीशब्दात् 'कालाट्ठञ्' इति ठञि प्राप्ते 'क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिविशते' इति वचनात्

दिशाएँ, अस्त हुए सूर्यरूपी प्यारेके शोकमें नक्षत्ररूपी आंसू बहाती हुई रो रही थीं। कमलिनीके कोशरूपी हृदयमें, नवीन केसरके मिस, अपने प्रिय भगवान् सूर्यके विरहसे शोकरूपी तुषानल जल रहा था। अनन्तर, चारोंओर रात्रिका अन्धकार फैल गया। वह उस समय, सूर्यकी किरणरूपी दावानलसे भस्मीभूत आकाशरूपी वनकी राखके समान प्रतीत हो रहा था। उसने, जैन-दर्शनका खण्डन करनेवाले वेद-वाक्योंके समान आकाश तथा दिशाओंका दर्शन लुप्त कर दिया था—समस्त दिशाओं एवं आकाशमें फैला हुआ था। वह कृष्णरूप होते हुए भी भगवान्‌की विश्वात्मकताका सर्वथा तिरस्कार कर रहा था (वस्तुतः) कालारूप रखते हुए भी भिन्न-भिन्न आकारवाले अनेक पदार्थोंका पारस्परिक

अथ क्षणेन क्षणदाराजकन्याकन्दुक इव, कन्दर्पकनकदर्पण इव, उदयगिरिबालमन्दारपुष्पस्तबक इव, प्राचीललनाललामललाटतटघटितबन्धूककुसुमतिलकचक्राकारः, कनककुण्डलमिव नभश्रियः, दिग्वधूप्रसाधिकाहस्तस्रस्तालक्तकपिण्ड इव । शातकुम्भकुम्भ इव गगनसौधतलस्य,

---

औत्सर्गिकोऽणेवेति प्राञ्चः । अत्र भट्टोजिदीक्षितास्त्वेवमाहुः—कथं तर्हि, 'शार्वरस्य तमसो निषिद्धये' इति कालिदासः । 'अनुदितौषसरागे'ति भारविः ।' समानकालीनं प्राक्कालीनमित्यादि च । अपभ्रंशा एवैते इति प्रामाणिकाः ।' इति । 'शार्वरं शर्वरीसंबन्धि, शेषत्वेन विवक्षायामण् । भावार्थे तु ठञ् स्यात् ।' इति दर्पणकारः । अन्धतमसं गाढान्धकारः । 'ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसम् ।' इत्यमरः ।

अथेति—**अथ क्षणेन । रजनीपतिः चन्द्रः । उदयम् आविर्भावम् आससाद प्राप्तवान् ।** इति अन्वयः । क्षणदेति—**क्षणदा रात्रिरेव राजकन्या तस्याः कन्दुकः गेन्दुक इव ।** 'गेन्दुकः कन्दुकः' इत्यमरः । कन्दर्पेति—**कन्दर्पस्य मन्मथस्य कनकदर्पणः स्वर्णमुकुर इव । अत्र चन्द्र एव कन्दुकत्वेन दर्पणत्वेन चोत्प्रेक्ष्यते । एवमग्रेऽपि चन्द्रस्यैवोत्प्रेक्षणम् ।** उदयगिरीति—**उदयगिरिः उदयाचल एव बालमन्दारः अचिरोत्पन्नमन्दारवृक्षः तस्य पुष्पस्तबक इव पुष्पगुच्छ इव । बालत्वं स्तबके आरुण्यातिशयद्योतनायेति बोध्यम् ।** प्राचीति—**प्राची पूर्वदिगेव ललनाललामं स्त्रीषु भूषणरूपा प्रधानभूता श्रेष्ठा वा युवतिः तस्याः ललाटतटे भालप्रदेशे घटितं निर्मितं यत् बन्धूककुसुमस्य बन्धुजीवपुष्पस्य तिलकचक्रं चक्राकारं विशेषकं तस्याकार इवाकारो यस्य स तथोक्तः । 'ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु' इत्यमरः । 'प्राचीललाटतटकुङ्कुमबिन्दुचक्राकारः ।' इति दर्पणधृतपाठः ।** कनकेति—**नभःश्रियः आकाशलक्ष्म्याः कनककुण्डलम् स्वर्णमयकुण्डलमिव ।** दिगिति—**दिश एव वध्वः स्त्रियः तासां प्रसाधिका केशादिसंस्कारकर्त्री सैरन्ध्री तस्याः हस्तात् स्रस्तः अधःपतितः अलक्तकपिण्ड इव लाक्षापङ्क इव । 'दिव्यवधू' इति पाठान्तरम् ।** शातकुम्भेति—**गगनमाकाशमेव सौधतलं प्रासादोपरिभागः तस्य, शातकुम्भकुम्भः भूषणत्वेन तत्र स्थाप्यमानः स्वर्ण-**

भेद मिटा रहा था—उस अन्धकारमें वस्तुओंके भिन्न-भिन्न आकार प्रतीत न होते थे । वह उस समय, तत्क्षण पिघले हुए काले अभ्रकके प्रवाहके समान सब जगह फैला हुआ था ।

क्षणभर बाद, रात्रिरूपी राजकन्याकी गेंद, कामदेवके स्वर्णमय दर्पण और उदयाचलरूपी मन्दारवृक्षके नवीन पुष्पगुच्छा सा, युवतियोंमें श्रेष्ठ प्राची दिशारूपी अङ्गनाके मस्तकपर बने हुए बन्धुजीव नामक पुष्पके तिलकका आकार धारण किये हुए, आकाशलक्ष्मीका स्वर्णमयकुण्डल तथा दिग्वधुओंकी प्रसाधिका-दासी-के हाथसे गिरे हुए लाक्षापिण्डकके

प्रस्थानमङ्गलकलश इव त्रिभुवनविजयविनिर्गतस्य मकरकेतोः, कन्दर्पकार्तस्वरतूणमुखकान्तितस्करः, प्राच्यशैलशिखराग्रप्ररूढजपाकुसुमच्छविः, स्वच्छकुङ्कुमपिण्डपूर्णपात्रमिव निशाविलासिन्याः कुङ्कुमारुणैकस्तनकलश इव आखण्डलाशाङ्गनायाः, गगनगामिविद्याधरीकरतलावस्थितलीलाशुकपञ्जर इव, पूर्वाचलशिखरविश्रान्तकिन्नरमिथुनरक्तवस्त्रकञ्चुकितवीणालाबुरिव, गरुड इव हरिणाधिष्ठितः, राम इव लक्ष्मणान्वितः, वानरेन्द्र-

---

कलश इव । 'तपनीयं शातकुम्भं गाङ्गेयं भर्म कर्बुरम्' इत्यमरः । प्रस्थानेति—त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विजयाय विनिर्गतस्य प्रस्थितस्य मकरकेतोः कामस्य प्रस्थानमङ्गलकलश इव प्रस्थानसमये शुभनिमित्ततया ब्राह्मणैरानीयमानः मङ्गलप्रदः कुम्भ इव । प्रस्थानसमये जलपूर्णकुम्भदर्शनं शुभं भवतीति लोकविश्वासः । कन्दर्पेति—कन्दर्पस्य मन्मथस्य कार्तस्वरतूणमुखस्य स्वर्णमयनिषङ्गमुखस्य या कान्तिः शोभा तस्याः तस्करोऽपहारकः । तच्छ्रेष्ठत्वादिति भावः । 'तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा' इत्यमरः । वर्तुलत्वादिसिद्धये मुखपदम् । प्राच्येति—प्राच्यः प्राचीदिग्भवः यः शैलः पर्वतः तस्य शिखराग्रे शृङ्गप्रदेशे प्ररूढं समुद्भूतं यत् जपाकुसुमं जपापुष्पं तस्य छविः कान्तिरिव कान्तिः यस्य स तादृशः । स्वच्छेति—निशा रात्रिरेव विलासिनी प्रमदा तस्याः, स्वच्छकुङ्कुमेन निर्मलकुङ्कुमेन पिण्डं सान्द्रं पूर्णपात्रमिव वास्तुपूर्णपात्रमिव । 'पिण्डं सान्द्रे बले काये तूलेऽपि परिकीर्तितम् । पूर्णपात्रं वस्तुपूर्णपात्रे वर्धापकेऽपि च ।' इति विश्वः । कुङ्कुमेति—आखण्डलाशा इन्द्रदिक्, प्राचीदिगिति भावः । सैव अङ्गना स्त्री तस्याः, कुङ्कुमेन अरुणः रक्तः एकः स्तनकलशः कुचकुम्भ इव । 'आखण्डलः सहस्राक्षः' इत्यमरः । गगनेति—गगनगामिन्या आकाशसंचारिण्याः विद्याधर्याः करतले हस्ते अवस्थितो विद्यमानः यः लीलाशुकस्य क्रीडाशुकस्य पञ्जरः स इव । पूर्वेति—पूर्वाचलस्य उदयगिरेः शिखरे शृङ्गप्रदेशे विश्रान्तं श्रमापनोदनाय स्थितं यत् किन्नरमिथुनं किन्नरयुग्मं तस्य रक्तवस्त्रकञ्चुकिता रक्तवसनाच्छादिता या वीणालाबुः वीणामूलस्थिततुम्बीफलं सेव । 'अलाबुस्तु तुम्बकः प्रोक्तः' इति चन्द्रः । गरुडेति—हरिणेन मृगेण अधिष्ठितः आक्रान्तः । पक्षे—हरिणा विष्णुना अधिष्ठितः आरूढः । 'क्षीरसिन्धुरिव' इति पाठान्तरम् । लक्ष्मणेति—लक्ष्मणा चिह्नेन कलङ्केने-

---

समान, आकाशरूपी प्रासादके स्वर्णमय कलश और तीनों लोकोंकी विजययात्रार्थ प्रस्थित कामदेवके प्रस्थानकालीन मङ्गलकलशके समान, कामदेवके स्वर्णनिर्मित तूणीरके अग्रभाग तुल्य, पूर्वदिशारूपी ललनाके कुङ्कुमरञ्जित एक स्तन, गगनविहारिणी-विद्याधरीके हाथमें विद्यमान लीलाशुकके पञ्जर और उदयाचलके शिखरपर आराम करते हुए किन्नर-मिथुनके लालवस्त्रसे ढकी हुई तुम्बीके समान, भगवान् विष्णुसे अधिष्ठित गरुडके समान मृग-

इव अनुरक्ततारः, वृषभ इव रोहिणीप्रियः, सुराजेव रक्तमण्डलः, जाम्बवानिव ऋक्षपरिवृतो रजनीपतिरुदयमाससाद।

ततः कामिनीहृदयसङ्क्रामित इव, चक्राङ्गनानयनयुगलपीत इव

स्यर्थः, अन्वितः युक्तः 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः। पक्षे—लक्ष्मणेन सुमित्रापुत्रेण अन्वितः वानरेन्द्रः—वाली सुग्रीवो वा। अनुरक्तेति—अनुरक्ता प्रीतिमती तारा बृहस्पतिपत्नी यस्मिन् स तादृशः। अनुरक्ता लोहितवर्णाः प्रिया वा ताराः नक्षत्राणि यस्य स तथोक्त इति वा। पक्षे—तारा नाम बालिपत्नी अङ्गदजननी सैव बालिमरणानन्तरं सुग्रीवभार्या बभूव। एतत्कथा रामायणे विस्तरेण द्रष्टव्या। रोहिणीति—रोहिणी चन्द्रस्य भार्या सा प्रिया यस्य तथोक्तः। पक्षे रोहिणी गौः। 'रोहिणी सोमवल्के भे कण्ठरोगोमयोर्गवि।' इति हैमः। सुराजा—शोभनो राजा सुराजा। 'न पूजनात्' इति समासान्तप्रतिषेधः। रक्तेति—रक्तं लोहितवर्णं मण्डलं बिम्बं यस्य स तादृशः। पक्षे—रक्तमनुरक्तं मण्डलं राष्ट्रममात्यादिसमूहो यस्मिन् स तादृशः। जाम्बवान्—ऋक्षाधिपतिः। ऋक्षेति—ऋक्षैः नक्षत्रैः परिवृतः। पक्षे—ऋक्षा भल्लूकाः 'नक्षत्रमृक्षं भं तारा' 'ऋक्षाच्छभल्लभल्लूकाः' इत्यमरः। एवंविधः रजनीपतिश्चन्द्रः उदयमाससाद।

कामिनीति—कामिनीनां तरुणीनां हृदये संक्रामितः संलग्नः इव। अनुरागो रक्तवर्ण इति कविप्रसिद्धिः। अत्र च कामिनीहृदये वर्तमानस्यानुरागरूपस्य चन्द्रगतस्य लौहित्यरूपस्य च रागस्याभेदाध्यवसायादियमुत्प्रेक्षेति बोध्यम्। चक्रेति—चक्राङ्गनानां चक्रस्त्रीणां नयनयुगलेन नेत्रद्वयेन पीत इव सादरं दृष्ट इव। सम्यक् दर्शनं हि महाकविभिः प्रायेण नयनपानत्वेनैव वर्ण्यते। यथा—'पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः' इत्यादि रघुवंशादिमहाकाव्येषु। अत्र 'चक्रवाकीनां विरहभयेन संध्यारागदर्शनं नयनयुगलपीतत्वेन संभाव्यते।' इत्यभिनवभट्टबाणाः। 'रोदनकृतं चक्रवाकीनयनलौहित्यमेवं संभाव्यते' इत्यपरे 'चक्रः कोके पुमान् क्लीबं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः'

लाञ्छित, सुमित्रापुत्र लक्ष्मणसे अनुगत राम के समान कलङ्क-चिह्नित, ताराप्रिय बालीके समान वृहस्पति पत्नी ताराका परमप्रिय, गौको प्रेम करनेवाले वृषभके समान रोहिणी-अपनी पत्नीका प्रिय चन्द्रमा उदित हुआ। उस समय उसका मण्डल इसी प्रकार रक्त-लाल-हो रहा था जिस प्रकार न्याय-प्रिय राजामें उसका मण्डल-प्रजावर्ग रक्त-अनुरक्त होता है। वह उस समय ऋक्षों-नक्षत्रोंसे इसीप्रकार घिरा हुआ था जिस प्रकार जाम्बवान्-ऋक्षों-भालुओं-से घिरा रहता था।

उस समय, चन्द्रकिरणोंकी लालिमा अत्यन्त क्षीण हो गई थी, मानों वह कामिनियोंके

रक्तकुमुदकोशालीढ इव क्षीणतां जगाम क्षणदाकरगतो रागः।

अनन्तरं शर्वरीव्रजाङ्गनाविष्कृतनूतननवनीतस्वस्तिक इव, कुसुमकेतोर्मुखच्छायामुद्रित इव मुकुरः, श्वेतातपत्रमिव मकरकेतोः, दन्तपालिचक्रमिव वियन्महाखड्गस्य, श्वेतचामरमिव मदनमहाराजस्य, बालपुलिनमिव निशायमुनायाः, स्फाटिकलिङ्गमिव गगनमहातापसस्य, अण्डमिव

इति मेदिनी। 'चकोराङ्गना' इति दर्पणधृतपाठः। रक्तेति—रक्तकुमुदकोशैः रक्तोत्पलकलिकाभिः आलीढ आस्वादितः गृहीत इव। 'कोशोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके।' इति मेदिनी। क्षणदेति—क्षणदाकरश्चन्द्रः तद्गतः तत्र स्थितः। रागः

अनन्तरमिति—अनन्तरम् एतादृशः उडुपतिः चन्द्रः उज्जगाम—आविर्बभूव। शर्वरीति—शर्वरी रात्रिरेव व्रजाङ्गना गोपी तया आविष्कृतः उद्धृतः नूतनः प्रत्यग्रः नवनीतस्वस्तिकः नवनीतपिण्ड इव। 'घृतमाज्यं हविः सर्पिर्नवनीतं नवोद्धृतम्' इत्यमरः। 'स्वस्तिकः पिण्डविन्यासौ' इति वैजयन्ती। कुसुमेति—कुसुमकेतोः कामस्य मुखच्छायया वदनप्रतिबिम्बेन मुद्रितः चिह्नितः तत्सहित इत्यर्थः। मुकुरः दर्पण इव। मुखच्छाया कलङ्कस्थानीयेति बोध्यम्। मकरकेतोः कामस्य श्वेतातपत्रं श्वेतच्छत्रमिव। दन्तेति—वियत् आकाशमेव महासिः महाखड्गः तस्य, पालयतीति पालिः। ण्यन्तः, 'अच इः' इत्यौणादिकः इप्रत्ययः। दन्तस्य गजदन्तस्य पालिः त्सरुः, गजदन्तनिर्मितः खड्गमुष्टिरित्यर्थः। चक्राकारं दन्तमयं मुष्टेरधःफलकमिव। 'पालिः कर्णताग्रेऽश्रौ पङ्क्तावङ्कप्रभेदयोः' इति मेदिनी। इत्यपरे। बालेति—निशा रात्रिरेव यमुना, नीलत्वसाम्यात्। तस्याः बालपुलिनम् अल्पसैकतमिव। 'तोयोत्थितं तु तत्पुलिनम्' इत्यमरः। 'बालुकापुलिनम्' इति पाठान्तरम्। स्फाटिकेति—गगनमेव महातापसः तपस्वी तस्य पूजार्थं स्फटिकमणिनिर्मितं शिवलिङ्गमिव। श्वेतत्ववर्तुलत्वसाम्यादेवमुत्प्रेक्ष्यते। अण्डमिति—काल एव उरगः सर्पः तस्य अण्डं पेशी इव। 'पेशी कोशो

हृदयमें लग गई थी, अथवा चकोराङ्गनाओंने उसे नेत्रोंसे पी लिया था, अथवा रक्तकमलकी कलियोंने उसे ले लिया था।

अनन्तर भगवान् चन्द्रमा उदित हुए। जो उस समय, रात्रिरूपी व्रजवाला द्वारा निकाले हुए ताजे मक्खनका पिण्ड, कामदेवकी मुख-च्छायासे संयुक्त दर्पण और कामदेवके श्वेतच्छत्र सा प्रतीत हो रहा था और जो आकाशरूपी तलवारकी चक्राकार हाथी दांतकी मूँठके समान, कामरूपी सम्राट्के श्वेत चामरके तुल्य, रात्रिरूपी यमुनाके स्वल्प पुलिनके अनुरूप, आकाशरूपी महातपस्वीके स्फटिक निर्मित शिवलिङ्ग जैसा सुशोभित हो रहा था।

कालोरगस्य कम्बुरिव नभोमहार्णवस्य, स्फाटिककमण्डलुरिव नभोव्रतिनः, चैत्यमिव मदनारिदग्धस्य मकरकेतोः, चिताचक्रमिव कलङ्ककालाङ्गार-शबलं सङ्कल्पजन्मनः, पुण्डरीकमिव गगनगामिगङ्गायाः, फेनपुञ्ज इव गगनमहार्णवस्य, पारदपिण्ड इव कालधातुवादिनः, राजतकलश इव दूर्वाप्रवालशबलो मनोभवाभिषेकस्य, श्वेतचक्रमिव कन्दर्परथस्य, चूडा-

---

द्विहीनेऽण्डम्' इत्यमरः। कम्बुः शङ्खः। स्फाटिकेति—नभः आकाशमेव व्रती नियमवान् संन्यासीत्यर्थः। तस्य स्फाटिकः स्फटिकनिर्मितः कमण्डलुः जलपात्रविशेषः, स इव। 'अस्त्री कमण्डलुः कुण्डी' इत्यमरः। चैत्यमिवेति—मदनारिणा महादेवेन दग्धस्य भस्मीकृतस्य। मकरकेतोः कामस्य चैत्यम् आयतनमिव। मरणानन्तरं मृतस्य स्मरणार्थं ह्यायतनं निर्मीयते। 'चैत्यमायतने बुद्धगृहे चोद्देश्यपादपे' इति विश्वः। चितेति—कलङ्कः लक्ष्म एव कालाङ्गारः कृष्णवर्णं शान्ताग्निकाष्ठं 'कोयला' इति लोके प्रसिद्धं तेन शबलं व्याप्तम्। सङ्कल्पजन्मनः कामस्य। चिताचक्रं चितिमण्डलमिव। 'अथ न स्त्री स्यादङ्गारोऽलातमुल्मुकम्।' इत्यमरः। 'अङ्गारः साग्निर्निरग्निश्च। तत्र साग्नौ यथा—अङ्गारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते। इति भवभूतिः, निरग्नौ यथा—चिताचक्रं चन्द्रः कुसुमधनुषो दग्धवपुषः कलङ्कस्तत्रत्यो व्रजति मलिनाङ्गारकलनाम्। इति। इत्यमरव्याख्याने मुकुटः। पुण्डरीकं—श्वेतकमलम्। 'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्' इत्यमरः। गगनेति—गगनगामिनी आकाशे प्रवहन्ती या गङ्गा मन्दाकिनी तस्याः। फेनेति—गगनमेव महार्णवः महासमुद्रः तस्य, फेनसञ्चयः डिण्डीरसमूहः। 'डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इत्यमरः। पारदेति—कालः समय एव धातुवादी धातुं वदति उपायान्तरेण कर्तुं कथयतीति धातुवादी रसवादीत्युच्यमानः तस्य, पारदपिण्डः पिण्डीभूतो रस इव। राजतेति—मनोभवस्य कामस्य यः अभिषेकः राज्याभिषेकः तस्य, तदर्थं विन्यस्त इत्यर्थः। दूर्वायाः 'दूब' इति लोके ख्यातस्य तृणविशेषस्य प्रवालेन पल्लवेन शबलः कर्बुरः संयुक्त इत्यर्थः। राजतकलशः रजतमयकुम्भ इव। अत्र दूर्वाप्रवालेति कलङ्कसाम्यायोक्तम्। श्वेतेति—कन्दर्पस्य मन्मथस्य रथस्य स्यन्दनस्य श्वेतचक्रं स्फटिकमणिनिर्मितं रथाङ्गम्। चूडेति—उदयगिरिः उदयाचल एव

वह, कालरूपी सर्पके अण्डे, आकाशरूपी समुद्रके शङ्ख, आकाशरूपी सन्यासीके स्फटिक मणिनिर्मित कमण्डलु महादेव द्वारा भस्म किये हुए कामदेवके चैत्य-स्मारक, कलङ्करूपी कोयलेसे परिपूर्ण कामदेवकी चिता, आकाशमें बहनेवाली गङ्गाका श्वेतकमल, आकाशरूपी समुद्रका फेनसमूह, कालरूपी धातुवादी-रसायनी कीमियागरके पारदपिण्ड, मन्मथके अभिषेकके लिये स्थापित, दूबके पत्तियोंसे परिपूर्ण रजटघट, कन्दर्प-स्यन्दनके श्वेतमणि

मणिरिव उदयगिरिनागराजस्य, श्वेतपारावत इव अम्बरमहाप्रासादस्य, गगनसरिद्धौतसिन्दूरं कुम्भस्थलमिवैरावतस्य, भुग्नशृङ्गपुराणगोमुण्डखण्ड इव ताराश्वेतगोधूमशालिनो नभःक्षेत्रस्य, मलयजपिण्डपाण्डुरराजततालवृन्तमिव सिद्धाङ्गनाहस्तविस्रस्तम्, क्षीणरागो भगवानुडुपतिरुज्जगाम।

नागराजः सर्पराट् तस्य, चूडामणिः शिरःस्थितरत्नमिव। श्वेतेति—अम्बरम् आकाशमेव महाप्रासादः महासौधः तस्य, तत्र स्थित इत्यर्थः। श्वेतपारावतः शुभ्रवर्णकपोत इव। 'प्रासादो देवभूभुजाम्।' 'पारावतः कपोतः कलरवः।' इत्यमरः। गगनेति—ऐरावतस्य सुरेन्द्रकरिणः, गगनसरिता गङ्गया धौतं प्रक्षालितं दूरीकृतं सिन्दूरं यस्य तत् तथोक्तम्। कुम्भस्थलं गण्डपिण्ड इव। 'कुम्भौ तु पिण्डौ शिरसः।' इत्यमरः। भुग्नेति—तारा नक्षत्राण्येव श्वेतगोधूमाः शुभ्रा गोधूमाः 'गेहूँ' इति लोके प्रसिद्धाः तैः शालते शोभत इति तारागोधूमशाली तस्य तादृशस्य। नभः आकाशमेव केदारः क्षेत्रं तस्य। भुग्नं वक्रं विषाणं शृङ्गं यस्य सः, तादृशः पुराणः जीर्णः गोमुण्डखण्डः गोशीर्षखण्ड इव। कलङ्कानुरोधेन भुग्नविषाणत्वोक्तिः पक्ष्यादिवित्रासनार्थं, यष्टौ गोमुण्डप्रतिकृतिर्निक्षिप्यत इत्याचारः। इत्यभिनवभट्टबाणाः। दर्पणकारस्तु—'भग्नशृङ्गपुराण' इति पाठमभ्युपैति। भग्नशृङ्गः, भग्नविषाणत्वं वर्तुलत्वार्थम्। पुराणः चर्मरहितः गोमुण्डखण्ड इव। सीमानिर्माणार्थं रक्षार्थं वा क्षेत्रे गोमुण्डः समारोप्यते। इति च तद्व्याख्यानम्। मलयजेति—सिद्धाङ्गनायाः देवयोनिविशेषकामिन्याः हस्तात् विस्रस्तं प्रभ्रष्टं, मलयजपिण्डेन चन्दनपङ्केन पाण्डुरं शुभ्रं राजततालवृन्तम् रजतमयबालव्यजनम्। श्वैत्यातिशयद्योतनायेदं विशेषणम्। 'व्यजनं तालवृन्तकम्' इत्यमरः। 'मलयजपिण्डपाण्डुरराजपात्रमिव' इति दर्पणधृतपाठः। मलयजेन घृष्टचन्दनेन पिण्डं चूर्णमतएवातिपाण्डुरं राजतपात्रं रौप्यपात्रमिव, यद्वा मलयजपिण्डैः घृष्टचन्दनगुटिकाभिः पाण्डुरमित्यादि। उभयत्र अंशवर्णनं चन्दनभूयोऽपि विशिनष्टि शशलाञ्छनं यश्चेत्यादिना।

निर्मित चक्र, उदयाचलरूपी नागराजकी चूड़ामणि और आकाशरूपी सौधमें स्थित श्वेतकबूतर सा अलङ्कृत हो रहा था। वह उस समय ऐरावतके गण्डस्थलके समान प्रतीत हो रहा था जिसका सिन्दूर आकाशगंगा द्वारा धुल चुका था। तथा नक्षत्ररूपी श्वेत गोधूम-गेहूं-से सुशोभित आकाशरूपी खेतमें स्थित टूटे हुए सींगवाले पुराने गोशीर्ष-खण्डके समान दिखाई पड़ रहा था और वह सिद्धाङ्गनाके हाथसे गिरा हुआ चन्दन-पङ्कसे श्वेतवर्ण रजतनिर्मित बालव्यजन सा प्रतीत हो रहा था।

यश्च पुण्डरीकं लोकलोचनमधुकराणाम्, शयनीयसैकतं चित्तराजहंसानाम्, स्फाटिकव्यजनं विरहवह्नीनाम्, श्वेतशाणचक्रं मन्मथसायकानाम्। अत्रान्तरे अभिसारिकासार्थप्रेषितानां प्रियतमान् प्रतिदूतीनां द्व्यर्थाः सप्रपञ्चाः विकारसंवादा बभूवुः। अवस्त्रीकृतमात्मानं नाकलयसि तत्त्वतः कान्त ! प्रस्तर इव क्रूरोऽसि, न चाकर्षकचुम्बकद्रावकेष्वेकोऽसि, भ्रामकोऽसि परं कितव।

यश्च लोकानां लोचनमधुकराणां पुण्डरीकमिव। चित्राण्येव राजहंसास्तेषां शयनीयसैकतमिव, विरहरूपाग्नीनां समिन्धने स्फाटिकं स्फटिकनिर्मितं व्यजनमिव। मन्मथसायकानां मदननाराचानां श्वेतं शाणचक्रमिवोत्तेजनफलकमिवातर्क्यत। तैस्तैरित्यर्थः। अत्रान्तरे अभिसारिकासार्थेन नायिकाविशेषनिकुरम्बेण प्रहितानां प्रेषितानां दूतीनां द्व्यर्थाः सेर्ष्याः सप्रपञ्चाः सविस्तारा विकारभङ्गुरा अभिमतविषयालापदुःखकथनेन प्रियतमानां हृदयार्तिकारिणः, 'भङ्गुरो हृदयार्तिकृत्' इति भागुरिः। सम्वादा बभूवुः प्रससुः। हे कान्त ! त्वं तत्त्वतोऽवस्त्रीकृतमात्मानं नाकलयसि। केलिषु वस्त्राकर्षणेन वस्त्रविरहितमात्मानं तत्त्वतो नावगच्छसीति निन्दा। स्त्रीकृतं—आत्मानं अवरक्ष। स्त्रीवेषान्तरितोऽहमेवेयमिति मत्वा मामपि पालयेति प्रशंसा। हे कितव ! धूर्त ! प्रस्तर इव पाषाण इव क्रूर, कठिनो विगतदय इत्यर्थः, असि। न तव चेतसि दयालवोऽपि पदमादधाति' इति भावः। प्रशंसावादे तु—परवाक्यगतस्य नञः पूर्ववाक्येऽन्वयः। प्रस्तर इव न क्रूरोऽसि। अथवा यथा पाठे काकुः। प्रस्तर इव क्रूरोऽसीति न, नैवेत्यर्थः। आकर्षकचुम्बकद्रावकेषु—पाषाणभेदेषु, नायकभेदेषु च, एकः अद्वितीयः, नासि। परं किन्तु भ्रामकः एतन्नामकः शिलाविशेषः, नायकविशेषश्च, असि। 'आकर्षकस्त्वयस्कान्तो विशेषाश्चुम्बकादयः' इति केशः। 'दूरादाकर्षणे शक्तो यः स आकर्षकः स्मृतः।' द्रावको ग्रावभेदे स्याद्विदग्धे मोषकेऽपि चेति मेदिनी।' 'सर्वेषां स्पर्शलोलत्वं कुरुते यः स चुम्बकः'। 'भ्रामको मधुराभासः संस्तवद्वेषभाजनम्' इति भोजः। भ्रामको जम्बुके धूर्ते सूर्यावर्ताश्मभेदयोः' इति

जो, मनुष्योंके नेत्ररूपी मधुकरोंका कमल, चित्तरूपी राजहंसोंका शय्यातुल्य पुलिन, वियोगानलका स्फटिकमणिनिर्मित पङ्खा और कामदेवके बाणोंका सान—तेज करनेका पत्थर था। इसी अवसरपर प्रियतमोंके पास अभिसारिकाओंसे भेजी हुई दूतियोंके द्व्यर्थक, सविस्तर और कामाभिलाष प्रकाशित करनेसे मनोरम सम्वाद—वार्तालाप—प्रारम्भ हुए। जैसे—(१) हे कान्त—सुन्दर ! तुम उसे (नायिकाको) स्त्रीरूपमें परिवर्तित अपने आपको ही समझो, वास्तवमें 'स्त्रीवेशमें मैं ही हूँ' यह बात क्या तुम नहीं जानते ? 'उसका जीवन तुम्हारे ही अधीन है और वह तुम्हारे अत्यन्त अनुकूल' है यह समझकर तुम उसकी रक्षा

धर्मार्थान्यप्रयुक्तः क्षेपणिक इव मुधावाहिततरवारिस्त्वमसि।

मेदिनी। अतो निन्दापक्षेऽयमाशयः—त्वं पाषाणवत् केवलं क्रूरोऽसि, न तु तदवान्तरभेदवत् आकर्षकश्चुम्बको द्रावको वासि। न प्रस्तर इव किञ्चिद् वैशिष्ट्यमपि त्वय्यस्ति। सर्वथा हीनतरः पाषाणादपि। परं भ्रामकपाषाण इव भ्रामकः प्रतारणपटुः सुतरामसि। प्रशंसावादे तु—नञः पूर्ववाक्ये सम्बन्धः। तेनाकर्षकचुम्बकद्रावकेषु नायकभेदेषु उपलभेदेषु च, एकः मुख्यः, असि। यथापाठे काकुः, न वासीति न, अस्येवेत्यर्थः। परमत्यन्तम्। भ्रामकः मनोहरः, शिलाविशेषश्च, असि। आकर्षकादिवन्न त्वयि काठिन्यमिति भावः। त्वं कोमलहृदयः, आकर्षकः, द्रावकः, भ्रामकश्चासीति तत्त्वम्।

त्वम्, क्षेपणिकः नाविक इव। धर्मार्थे धर्माभिलाषया, अन्यस्मिन् अन्यदीयकार्यविषये, प्रयुक्तः प्रकर्षेण संलग्नः, मुधा व्यर्थमेव, वाहितः घृतः, तरवारिः खड्गः येन सः तथाविधः, असि। वाहितेत्यत्र स्वार्थे णिच्। अथवा, मुधा वा मुधैवेत्यर्थः। आहितः धृतः तरवारिः येन तादृशः। त्वं धर्मार्थं परोपकारपरो महाशूरोऽपि दयालुतया न खड्गं चालयसीति भावः। परमेवं दयालोस्तवैतन्न युक्तं यत् त्वदेकजीवितायां तस्यां करवालवारं निक्षिपसीति दूत्याकूतम्। अथवा प्रशंसावादे—अर्थः निवृत्तिः। अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु' इत्यमरः। तस्मादन्यत्प्रवृत्तिः, धर्मे धर्मकृत्ये अर्थान्येन प्रवृत्त्या प्रयुक्तः प्रेरितः, धर्मात्मेत्यर्थः। मुधावाहिनः रणात्तिरस्कृततया प्रतिनिवृत्ताः, ततरवाः प्रसृताक्रन्दध्वनयः शत्रवः यस्य तादृशः। धर्मपरायणस्याशरणागतवैरिवृन्दनिवारणवारणस्य तव त्वदाश्रितायां तस्यां प्रहरणं न युक्तमिति भावः। क्षेपणिकपक्षे धर्मार्थम्, अन्येन नृपादिना प्रयुक्तः विना वेतनं जनास्तार-

---

करो, यह न जान [illegible] ही तुम उसकी उपेक्षा करते हो (अथवा) तुम अपने आपको स्त्रीहिंसक ही [illegible], तुम उसके स्वभावको ठीक-ठीक नहीं समझते। वह एकमात्र तुमपर अवलम्बित है; तुम्हारी उपेक्षासे निश्चय ही प्राण दे देगी तब स्त्री-हत्याकृत पाप ही तुम्हारे हिस्सेमें [illegible]॥ ([illegible]पक्षे) अरे सुखका नाशकरनेवाले! तुम अपनेको स्त्री ही समझो—तुममें [illegible] भी पुरुषार्थ नहीं है और तुम अपनी वास्तविक दशासे भी अनभिज्ञ हो। (अथवा) [illegible]को (अन्य कुलटाओंने) वस्त्र-शून्य बना दिया है—तुम्हारा सर्वस्व छीनकर नङ्गा [illegible] दिया है परन्तु तुम अपनी दशा नहीं समझते। (२) हे कितव! तुम पत्थरके समान [illegible] नहीं हो किन्तु तुम्हारा हृदय सरल है, तुम आकर्षक-मनोमोहक, चुम्बनके लि[illegible]क, दृष्टिमात्रसे कृतार्थ करनेवाले और भ्रामक-मनोरम हो (निन्दापक्षे) अरे धूर्त! त[illegible] पत्थरके समान क्रूर हो, (पूर्वोक्त) आकर्षक, चुम्बक और द्रावक (नायकोंमेंसे [illegible] भी) नहीं हो केवल भ्रामक-प्रतारक हो। (३) जिस प्रकार नाविक 'बिना किराया लिये ही सबको पार उतार दो' प्रभुकी यह आज्ञा पाकर बिना किराया लिये

सखेदमिव तां मनसा चिन्तयसि दुर्लभाम् ।
सत्त्रसारचित्रो यो रिपुमण्डलाग्रतो निर्वृतिमुपेत्य तिष्ठति ।

णीया इति नियोजितः : अतो मुधा व्यर्थम् , शुल्कं विनेत्यर्थः । वाहिततरं सम्यगुत्तारिततरं वारि सलिलं येन तादृशः । उत्तीर्णमनुष्यधर्मस्य वाहितत्वस्य जले उपचारात्प्रयोगः । निन्दापक्षे—धर्मार्थात् धर्मप्रयोजनात् अन्यः अधर्मः तेन प्रयुक्तः पापपरवश इत्यर्थः । अथवा धर्मश्च अर्थश्च ताभ्यामन्यः त्रिवर्गे सामीप्यात्कामः तेन प्रयुक्तः काममोहित इत्यर्थः । त्वम् । वाहिततरा व्यर्थं प्रापिता, वारि अनुरागसमये समुदीरिता प्रणयवाक् येन तादृशः । त्वं काममोहितः सर्वमपि प्रणयप्रवादं विस्मृतवानसीति भावः । 'नाविकः स्यात्क्षेपणिकः' इति वैजयन्ती । 'वारिर्वाग्गजबन्धयोः स्त्री क्लीबेऽम्बुनि बालुके' इति मेदिनी । 'तरवारिर्मतः खड्गः' इति धरणिः ।

दुर्लभां गुणविभवैर्निःसमत्वात् लब्धुमशक्याम् , ताम् अनुभूतपूर्वाम् , सखेदमिव सविषादमिव, मनसा हृदयेन, चिन्तयसि स्मरसि । अन्यासक्तोऽपि मया प्रतिबोधितो नितरां दुःखमनुभवसीति ते तस्यां प्रणय इति प्रशंसावादः । निन्दापक्षे तु—हे सखे ! मित्र ! । इयं परिहासोक्तिः । दुर्लभां तां परकलत्रम् , दमिव निजगृहिणीमिव, मनसा चिन्तयसि सुलभेति विचार्य सततं स्मरसि । दुर्लभामपि परकान्तां स्वकलत्रमिव सुलभामवगच्छसीति ते नितरां व्यामोह-इति भावः । तां नायिकां दुर्लभां नावगच्छ, सा सुलभैव अहं तुभ्यं दापयामीति दूत्याकूतम् । 'दं कलत्रे समाख्यातं दो दानच्छेददातृषु' इत्येकाक्षरकोषः ।

निन्दापक्षे—यः पुरुषः, रिपुमण्डलाग्रतो वैरिवृन्दस्य पुरस्तात् , अरिष्ववलोकयत्स्वित्यर्थः । अनिर्वृतिम् अन्यासक्त्येतस्ततो भ्रमणेन विषादम् , उपेत्य आसाद्य,

ही मनुष्योंको पार उतार देता है उसी प्रकार तुम भी सदा दूसरोंके कार्यमें लगे रहते हो—सदा परोपकारमें रत रहते हो तथा तलवार व्यर्थ ही धारण करते हो क्योंकि तुम दयावश किसीपर प्रहार करते नहीं । इतने दयालु होते हुए भी तुम किस प्रकार उसकी (नायिका) उपेक्षा करते हो, यह समझमें नहीं आता । (निन्दापक्षे) हे धर्मात्मन् (विपरीतलक्षणया) हे पापात्मन् ! तुम अन्यस्त्रीमें आसक्त हो और (नायिकासे) प्रणयदशामें कहे हुए तुम्हारे समस्त प्रणय-वचन निरर्थक ही रहे—तुमने सब प्रणयवाक्य भुला दिये । (४) तुम्हारी पत्नी रूप-शील आदिमें असाधारण होनेके कारण अत्यन्त दुर्लभ है, तुम उससे परिचित हो, यह प्रसन्नताकी बात है कि तुम इस समय मुझसे स्मरण करानेपर उसे खेदपूर्वक याद कर रहे हो अब तुम उसका कभी परित्याग न करना (निन्दापक्षे) हे मित्र ! (परिहासोक्ति) तुम उस पर-स्त्रीको अपनी पत्नीके समान आसान समझ रहे हो, यह तुम्हारी कैसी नादानी है; उसका मिलना अत्यन्त कठिन है । (५) जो पुरुष शत्रुकी तलवारके सामने भी सन्तोष प्राप्त करके स्थित रहता है—धीरताका परित्याग

स खलु वीरः प्रतिपक्षस्य यः संप्रहारतः कुञ्जरान्नयति।

धृतोरुकरवालसञ्चयोऽपि परमकाण्ड एव संपतन्महापदं विग्रहेण लभते॥

तिष्ठति। स तु स खलु, असारं बलविहीनं चलमित्यर्थः, तथाविधं चित्रं यस्य तादृशः। एवं करणेन वैरिवृन्देषु सततं परिहासमासादयति। प्रशंसावादे,यः, रिपोः शत्रोः, मण्डलाग्रतः खड्गात्, निर्वृतिं तुष्टिम्, उपेत्य, तिष्ठति। शत्रुसमूहस्य खड्गेषु पतत्स्वपि न भीतिमादधाति किन्तु तुष्टमना भवतीत्यर्थः। सः। सत्त्वेन अवष्टम्भेन सत्त्वगुणेन वा सारं श्रेष्ठं धैर्ययुक्तमित्यर्थः। तादृशं चित्रं यस्य स तथोक्तः। अतिधीरमना इत्यर्थः। एवं विधस्य शूरस्य मत्सख्यभिगमने प्रतिपक्षाद्भयमिति न युक्तमिति भावः।

निन्दापक्षे—यः पुरुषः, प्रतिपक्षस्य शत्रोः, कुं कलत्रम्, सम्प्रहारतः—सुरताभिघातात्, जरां वार्द्धक्यं दौर्बल्यमित्यर्थः। नयति प्रापयति, सः, वीरः विशेषेण इरा मद्यं यस्य तादृशः मद्यप इत्यर्थः। परदाराभिसरणं मद्यपानवत्प्रत्यवायकरमतः कोऽन्यो मद्यपात् परदारानभिसरिष्यतीति भावः। स्तुतिपक्षे—यः, सम्प्रहारतः समरे। सार्वविभक्तिकस्तसिः। प्रतिपक्षस्य वैरिणः, कुञ्जरान् द्विरदान्, नयति स्वायत्तीकरोति। स खलु वीरः। 'संप्रहारो रते युद्धे,' 'पापकुत्सेषदर्थेषु कुमव्ययं स्त्रीधरास्त्रियोः।' इति वैजयन्ती। अतस्त्वं सुरतकुशलस्तामभिसारयसि तदा सा त्वदायत्ता भविष्यतीति भावः।

निन्दापक्षे—धृतः उरूणां महतां करवालानाम् असीनाम्, सञ्चयः समूहो येन तादृशोऽपि। अकाण्डे असमये युद्धोपकरणसञ्चयात्पूर्वमेव। परं शत्रुम् सम्पतन् अभि-

---

नहीं करता; वही महामना पुरुष है। तुम अत्यन्त धैर्यवान् हो तुम्हारे लिये यह उचित ही है कि जो तुम मेरी सखीके अभिसरणमें भयभीत नहीं होते। (निन्दापक्षे) जो शत्रुके सामने-शत्रुओंके देखते-देखते, अन्य-स्त्रीमें आसक्त हो, इधर-उधर घूमा करता है वह चञ्चल हृदय उपहासास्पद होता है, तुम भी इसी प्रकार चञ्चल-हृदय होनेसे उपहासास्पद बन रहे हो। (६) वह पुरुष महावीर होता है जो युद्धमें शत्रुके हाथियोंको जीतकर अपने अधीन कर लेता है (अथवा) जो पुरुष अन्य की स्त्रीको रतिकुशलतासे अपने वशमें कर लेता है वही रतिपण्डित माना जाता है। उसकी कामना (सुरताभिलाष) बड़ी प्रबल है यदि तुम प्रचण्ड सुरतसे उसे सन्तुष्ट कर सको तो वह तुम्हारे अधीन हो जायगी। (निन्दापक्षे) जो शत्रु-पराई स्त्रीको सुरत द्वारा दुर्बल करता है वह मद्यपायी ही हो सकता है। (७) बड़ी-बड़ी तलवारें पास रक्खे हुए भी, युद्धकी तैयारीसे पूर्व ही शत्रुके सामने जानेवाला पुरुष युद्धमें विपत्ति ही पाता है अर्थात् साधन होनेपर भी समयकी प्रतीक्षा

राजसेन राजसे नरहितो रहितो ध्रुवम् ।
विशारदा शारदाभुविशदा विशदात्मनांनमहिमानमहिमानरत्नणत्तमा

गच्छन्, विग्रहेण—युद्धेन, महापदं महतीमापदं दुःखम्, लभते प्राप्नोति । असिभ्रमणेन बाणपातस्य वारयितुमशक्यत्वाद्विपदेव लभ्यते । अथवा—धृताः ऊरू जानुनी, करौ हस्तौ, बालसञ्चयः केशकलापो येन तादृशोऽपि । अकाण्डे असमये भर्तृगेहे सतीत्यर्थः। सम्पतन् अभिसरन् कामुकः । विग्रहेण—तद्भर्त्रा विवादेन महापदं महतीं विपदम् । परम् अत्यर्थम् । लभते । साम्प्रतं भर्तुः सन्निधावपि कथमागतः, अहो नितरां कामोन्माद इति निन्दागर्भं वाक्यम् । प्रशंसापक्षे—धृताः ऊरू, करौ, बालसञ्चयाश्च नायिकाया येन तादृशः । बाह्योपचारदक्षोपीत्यर्थः । परमकाले उत्कृष्टे युक्ते समये, विग्रहेण—शरीरेण सम्पतन् नायिकामभिगच्छन्, महापदं महत्स्थानं महाभाग्यपदमिति यावत् । लभते । त्वं सर्वथा कालज्ञोऽसीति त्वामेव साऽनुरज्यतीति भावः । 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवाजिषु' इत्यमरः । 'विग्रहः समरे काये' इत्यमरः ॥

स्तुतिपक्षे— राजसेन—रजोगुणेन । स्वार्थेऽण्प्रत्ययः । रहितः शून्यः, शुद्धसत्त्वगुणयुक्त इत्यर्थः । अतएव नरहितो मनुष्याणामनुकूलः, निखिलजनोपकारीत्यर्थः । त्वम्, राजसे—शोभसे, ध्रुवम्—निश्चितमिति । त्वं सर्वजनानां हितकरोऽतो मत्सखीमपि क्रोधं विहाय भजस्वेति भावः । निन्दापक्षे—त्वम् राजसेन—रजोगुणेन, अरहितः युक्तः । अतः, रहितः त्यक्तः, सर्वैरिति । न राजसे न शोभसे । त्वं रजोगुणवृद्ध्या सर्वैर्जनैस्तिरस्कृत एतस्मादेव तामुपेक्षस इति भावः ।

प्रशंसावादे—हे क्षमातिलक ! अवन्यवतंस ! विशारदा—प्रगल्भा, शारदाभुविशदा

करना आवश्यक है (अथवा) प्रशस्त जघा, हाथ एवं सुन्दर केशपाश रखते हुए भी, अनवसरपर—घरमें पतिकी मौजूदगीमें—(नायिकाके घर) जानेवाला पुरुष (पतिके साथ) युद्ध कर बड़ी विपत्तिमें पड़ जाता है—तुम बड़े ही कामी प्रतीत होते हो जो पतिकी उपस्थिति कालमें ही यहां चले आये हो । (प्रशंसापक्षे) (नसिकाके) जंघा, हाथ और केश स्पर्श करनेवाला—बाह्य उपचारमें प्रवीण—पुरुष, उचित समयपर—बाह्य उपचारसे नायिकाके द्रवित होनेके समय—शरीर द्वारा नायिकासे संयुक्त हो, महाभाग्यशाली होता है—तुम ऐसे सुरतमें अतिप्रवीण हो अतः वह नायिका तुममें अत्यन्त अनुरक्त है । (८) प्यारे तुम रजोगुणसे उत्पन्न क्रोधसे सर्वथा शून्य हो, सब ही मनुष्य तुम्हारे अनुकूल हैं अतएव तुम सब जगह शोभा पाते हो—इसलिये क्रोध छोड़कर पहिलेकी तरह ही मेरी सखीको आनन्दित करो । (निन्दापक्षे) अरे धूर्त ! तुम सदा क्रोधमें भरे रहते हो इसीलिये तुम्हें सबने छोड़ रक्खा है, यदि तुम मेरी सखी का अनादर करो तो इसमें क्या आश्चर्य है; राजसप्रकृति—पुरुषोंका यह स्वभाव ही होता है । (९) हे भूमिभूषण ! प्रगल्भ, शरत्का-

क्षमातिलक धीरता धीरता मनसि भूतला भूतता च वचसि ॥
साहसेन सा हसेन कमला कमलालया यया जिता, सा त्वदर्पणा

शरत्कालिकं मेघो व्योम वा तद्वत् श्वेतवर्णा, विशदः स्पष्टो निर्मलो वा, आत्मनीनः स्वार्थं हितकरः, मह्याः पृथिव्याः, मानमिव मानं प्रमाणं यस्य स अत्यधिक इत्यर्थः। तादृशो यो महिमा गौरवम् तस्य अनरक्षणम्–अवश्यपालनम्, तत्र क्षमा–समर्था। तादृश गौरवरक्षणपरेत्यर्थः। धीरता प्रज्ञासम्पादनासक्ता, बुद्धिमतीत्यर्थ। मनसि—चेतसि, धरिता–धैर्यम्। वचसि—वाचि भूतता–सत्यता च, भूतता–भुवि पृथिव्यां तता–प्रसृता, प्रख्यातेत्यर्थः। हे सर्वशक्तिधर! त्वमतुलवीर्यं दधानोऽपि तस्यामुपेक्षस इति न युज्यते इति भावः। निन्दापक्षे–हे विशारद! विज्ञ! इति परिहासोक्तिः। अथवा विरुद्धा शारदा वाक्यस्य वचनानभिज्ञेत्यर्थः। अशारदाभुविशद कपटयुत! अविशद! अनिर्मल! कलुषितेत्यर्थः। आत्मनीन! स्वार्थैकपर! महिमान! महः उत्सवोऽस्यास्तीति मही, महीति अभिमानयुक्त! महिमानरक्षण! पृथिव्याः, मा सम्पत्, तस्यानरक्षण–विनाशक! नञर्थेन न शब्देन समासः। क्षमातिलकधीरत! क्षमायां भूमौ, तिलकः–अवतंसभूत इति बुद्धौ आसक्त! भूमिभूषण इति दुर्दर्पेण चेतसि चिन्तयानेत्यर्थः। एतादृशस्य (तव) मनसि हृदये, अधीरता–धीरता पाण्डित्यं तदभावो मूर्खता, क्षमा–युक्ता। त्वं हि एतादृशैर्दुर्गुणगणैर्युक्तो नितरां मूर्खोऽसीति भावः। वचसि–वाचि, अभूततामिथ्याभाषणम्, भूतता–भूमौ विख्याता। सदा वितथवचो वदसीति सर्वे जना जानन्तीति भावः। 'अभ्रं मेघे च गगने' 'विशदः पाण्डरे व्यक्ते' 'क्षमा भूमौ तितिक्षायां स्त्रियां युक्ते नपुंसकम्। वाच्यवत् शक्तहितयोः।' 'धीरो धैर्यान्विते स्वैरे बुधे' 'शारदा स्यात्सरस्वती' इति कल्पद्रुमः।

प्रशंसावादे—यया सा–लोकविश्रुता कमलालया–पद्मनिकेतना, कमला–श्रीः, साहसेन–आहसः क्रीडा तया सह तेन, सश्रृङ्गारेणेत्यर्थः। हसेन–हास्येन, जिता–

लीन मेघके समान निर्मल एवं विशद, अपने लिये हितकारी और पृथ्वीके समान विशाल गौरवकी रक्षा करनेमें समर्थ तथा बुद्धिसंगत धैर्य (तुम्हारे) मनमें विद्यमान है और तुम्हारी सत्यवादिता पृथ्वीपर प्रसिद्ध है; फिर क्यों तुम उस (हमारी सखीकी) उपेक्षा करते हो (निन्दापक्षे) अरे मूर्ख, कपटी, स्वार्थी, अपनेको सर्वदा आनन्दित समझनेवाले, पृथ्वीकी सम्पत्तिके विनाशक और अपनेको ही भूमिभूषण समझनेवाले दुर्बुद्धे! तुम्हारे मनमें मूर्खताका ही वास हो सकता है और तेरी असत्यवादिता भी संसारमें प्रसिद्ध है; फिर यदि तुम मेरी सखीके साथ अनुचित वर्ताव करते हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? (१०) अयि कान्त! जिस मेरी सखीने, संसार प्रसिद्ध, पद्मनिवासिनी भगवती लक्ष्मीदेवीको अपनी

दर्पणाकारविमलाशया शयाब्जनिर्जितकिसलया सलयाङ्गुलिरिव विभ्रमेण विभ्रमेण गवाक्षशलाकाविवरं लोकयन्ती लोकयन्त्रित विनाशा विना शापमनुभवति दुःखानि।

जीवनायक जीवनाय कमिव नाश्रयति सुभगम्।

विजयं लम्भिता। सा, त्वदर्पणा–त्वत्प्रेमपरवशा, दर्पणाकारः मुकुरसदृशः, विमलः निर्मलः, आशयः चेतो यस्याः सा, शयाब्जेन पाणिपद्मेन, निर्जितकिसलयाः–विजितपल्लवा यया सा, विभ्रमेण–क्रीडाविलासेन, सलयाङ्गुलिरिव–साभिनयाङ्गुलिवत्, विभ्रमेण–विशिष्टभ्रान्त्या, गवाक्षस्य–वातायनस्य, शलाकाविवरम्–सूक्ष्मकाष्ठदण्डछिद्रम्! लोकयन्ती–निरीक्षयन्ती, लोकयन्त्रितविनाशा–सखीजननिरुद्धप्राणत्यागचेष्टा, शापं विना शापमन्तरेणैव, दुःखानि–विपदः, अनुभवति। त्वदुपेक्षामात्रेण सा प्राणधारणाक्षमा दुःखराशिमासादति, अत एतदुपेक्षणं त्वयि न युक्तमिति भावः। निन्दापक्षे–हे साहसेन! साहसानाम्–अयुक्तविधिविधायकानाम् इन–स्वामिन्। सततमनुचिताचरणप्रवृत्तेत्यर्थः। यया–मम सख्या कमलालया जिता सा, साहसेन साहसकारिणी नेत्यर्थः। त्वं परदुःखानभिज्ञः कुतस्ते परपीडायामनुकम्पाबुद्धिरिति भावः।

प्रशंसापक्षे—हे जीवनायक! मत्प्रियाप्राणपते! जीवनाय प्राणरक्षायै, सुभगं परमैश्वर्यवन्तम्, कमिव–कमपि पुरुषं वा, नाश्रयति। सा त्वामेव पतिं मन्यमाना प्राणान्धारयतीति भावः। निन्दापक्षे–जीवनायक! जीवं प्राणं नयति अपहरतीति

मधुर मुस्कानसे जीत लिया है, जिसका हृदय दर्पणके समान स्वच्छ है, अपने कमलतुल्य हाथके द्वारा जिसने नवकिसलयको नीचा दिखा दिया है, जिसकी अंगुलियां विलासपूर्वक नाचती सी हैं, उसने तुम्हें अपना सर्वस्व सौंप दिया है। वह, तिनकेके हिलनेपर भी तुम्हें ही आया हुआ समझकर वातायनमें बैठी हुई देखती रहती है। उसकी सखियां आशा दिलाकर उसको बचाये हुए हैं अन्यथा न मालूम वह कबको अपने प्राण दे चुकी होती। इस प्रकार वह शाप बिना ही दुःख भोग रही है। यह तुम्हारा परम सौभाग्य है जो वह तुम्हारे लिये मर रही है (निन्दापक्षे)······ऐसी परम सुन्दरी मेरी सखी वियोगानलमें भस्म हो रही है और तुम अपरिचितकी भांति उसकी उपेक्षा कर रहे हो, तुम्हारा चित्त बड़ा ही कठोर है। (११) हे (मेरी सखीके) प्राणधारक! वह (मेरी सखी) अपने जीवनके लिये किसी न किसी पुरुषका आश्रय करेगी, तुम अत्यन्त सुभग हो अतः तुमही उसके जीवनदान करनेवाले बनो (निन्दापक्षे) अरे! (मेरी सखीके) प्राण लेनेवाले! वह किसी पुरुषका अवश्य ही आश्रय लेगी। तुम ही केवल सुभग नहीं हो, तुमसे भी अधिक अन्य सुन्दर पुरुष हैं। अन्य स्त्रियोंकी बात जाने दो, सबसे पहले मैं ही

अन्यास्तावदासतामहमेव दासतां पुरतो भजामि, मैत्र्यतो मैत्र्यतोऽस्तु।

अञ्जसारतः सारतः किमपि कन्दर्पकं दर्पकं न चेत्तनोषि, विशेषतोऽविशेषतः स्थिरमेव मरणम् ।

शठधियां शोधन यशोधन प्रेमहार्यामहार्या समासोत्कटाक्षैः कटाक्षैराविर्भूतदास्यास्तदास्याः पारेजनाः ।

प्राणनाशक ! त्वाम्, जीवनाय—जलाहरणार्थम्, सुभगं शोभनपशुम्, कमिव नाश्रयति । अपि तु आश्रयत्येवेति भावः । त्वं नितरां भावानभिज्ञः पशुरिव प्राणनाशकोऽसीति भावः ।

स्तुतिवादे—अन्याः अपरायुवतयस्तावत्, आसताम्—तिष्ठन्तु, मैत्र्यतः सौहार्देन, अहमेव (तव) दासतां किंकरत्वम्, पुरतः—प्रथमतः, भजामि—समाश्रयामि । अहं तव दासीभूय सर्वं कार्यं साधयिष्यामीति भावः । निन्दापक्षे—अन्यास्त ! अन्यस्त्रीजनतिरस्कृत ! अत एव अवद ! वक्तुमशक्त ! पुरतः—पूर्वमेव, असताम्—दुर्जनानाम्, दास ! तां तादृशगुणसमन्विताम्, अहमेव भजामि । त्वं दुर्जनसहवासात् कलुषितोऽयोग्यश्चासीति भावः ।

प्रशंसापक्षे—रतः प्रणयवान्, सारतः बलात्, कन्दर्पकं कामम्, अञ्जसा त्वरितम्, दर्पकं अभिमानवन्तम्, न तनोषि चेत् नाविर्भावयसि चेत्, विशेषतो विशिष्य, अविशेषतः द्वयोरेव, मरणं मृत्युः, स्थिरमेव निश्चितमेवेत्यर्थः, तव प्रेम्णा सा प्राणान् धारयति यदि त्वं त्वरितमेव नाभिसरसि तर्हि तस्याः मृत्युर्निश्चित एवेत्यर्थः ।

निन्दापक्षे—अञ्जसा शीघ्रमेव, अरतः नानुरक्तः; शेषं पूर्ववत्, त्वं तस्यामननुरक्त इति सदैवोपेक्ष्यस इति भावः । 'द्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय' 'सारो बलेस्थिरांशे च' कन्दर्पोदर्पकोऽनङ्गः' इत्यमरः ।

प्रशंसापक्षे—शठधियां दुर्जनानाम्, शोधन ! मौढ्यविनाशक ! यशोधन ।

मित्रभावसे तुम्हारी दासी बनती हूं, मुझसे तुम मित्रता कर लो—मैं तुम्हारे सब कार्य ठीक करादूंगी (निन्दापक्षे) अरे दुष्ट ! तुम्हें तो अन्य सब ही स्त्रियोंने छोड़ दिया है, तुम कहही क्या सकते हो । अरे दुर्जनोंके दास ! उस अपनी सखी की मैं ही सेवा करूँगी, तुम आओ या मत आओ । तुम्हारे आने या न आनेसे कुछ बनता या बिगड़ता नहीं है । तुम्हारे स्नेहकी अपेक्षा तुम्हारी शत्रुता ही अच्छी है । (१२) तुम उस (नायिकामें) अनुरक्त हो, फिर भी यदि तुम शीघ्र ही उसके साथ मन्मथ विलास न करोगे तो निःसंशय तुम दोनोंका ही मरण निश्चित है । तुम दोनों परस्पर अनुरक्त हो, तदि तुम वहां आकर उसके साथ रमण न करोगे तो वह निश्चय ही तुम्हारे वियोगमें प्राण दे देगी और उसके अभावमें तुम भी मर जाओगे । (निन्दापक्षे) तुम्हें केवल स्त्रीहत्याका ही पाप न लगेगा अपितु आत्म—हत्याका भी पाप होगा । (१३) मूर्खोंकी मूर्खता दूर करनेवाले और यशोधन

कमलाकृतिनारीणां कमलाकृति नारीणां भवतां मुखं च मलिनितम्।

कीर्तिधन। समा लक्ष्मीसहिता, महार्या अतिनिपुणा, सा नायिका, उत्कटाक्षैः स्वाभिप्रायव्यञ्जकशृंगारदृष्टियुतैः, कटाक्षैः अपाङ्गप्रेक्षणैः, प्रेमहार्या स्नेहवशीकार्या विद्यते, सा तव प्रेम्णा नूनंवशमागमिष्यति इति भावः। तदा युवयोः समागमकाले आविर्भूतदास्याः प्रकटीकृतदासभावाः, अस्याः परिजनाः कुटुम्बिनो भविष्यन्ति। न ते कुतोऽपि शङ्का भविष्यतीति भावः। निन्दा पक्षे—हे शठ! निलीयाप्रियं कुर्वाण। धियां शोधन! बुद्धिमार्जक!, बुद्धिशून्येत्यर्थः। यशोधनेति हास्यगर्भवाक्यम्, अम! लक्ष्मीहीन! असमा अद्वितीया सा प्रेमहार्या सा प्रेम्णैव स्वायत्तीकरणीया, न तु धनवशीकार्येत्यर्थः। तथा च त्वं धनेनैव वशीकर्तुकामोऽसीति निन्दा।

कमलस्य सरोजस्य इवाकृतिर्यस्य तेन कमलाकृतिना भवता, अरीणां शत्रूणां, नारीणां स्त्रीणां च कमलाकृति कमलतुल्यं, मुखं वदनं च मलिनितं मलिनीकृतम्, युद्धे त्वत्तोधाविताशत्रवस्त्वद्युवतिजनालाभेन दुःखान्यनुभवन्ति, रोदनेन च मुखं कलुषयन्तीति प्रशंसा, नार्यश्च त्वन्मुखश्रीपराजिता इति भावः। निन्दापक्षे—भवता,

हे प्रिय! वह नायिका श्रीमती तथा अत्यन्तयोग्य है; उसे अपना अभिप्राय प्रकाशित करनेवाली चितवनोंसे प्रेम द्वारा ही वशमें कर सकते हो। उसके पास जानेमें तुम्हें किसी प्रकारका भय न करना चाहिए क्योंकि जब तुम वहां जाओगे तब तुम दोनोंका प्रेम देखकर उसके परिजन तुम्हारी दासभावसे सेवा करेंगे। (निन्दापक्षे) अरे धूर्त, मूर्ख कलङ्की और भाग्यहीन! वह नायिका अपनी समता नहीं रखती, वह प्रेमसे ही वशमें की जा सकती है। खेदकी बात है कि तुम उसे धनादिसे वशमें करना चाहते हो। तुम यह भी न समझना कि इसका कोई सहायक नहीं है अतः मैं बलात्कारसे वशमें कर लूँगा क्योंकि उसके परिजन इशारे मात्रसे दासके समान काम करते हैं। (१४) तुम्हारा शरीर कोमलता आदिमें कमल तुल्य है। तुमने उससे शत्रुओंके श्रीसम्पन्न तथा अङ्गनाओंके पद्म समान मुखको मलिन कर दिया है। तुमने युद्ध में शत्रुओंको जीत लिया है इससे उनका मुख श्रीहीन हो गया है तथा तुममें अनुरक्त प्रमदाओंके मुख, तुम्हारे वियोगके कारण, मलिन हो गये हैं। (निन्दापक्षे) तुम धन्य हो कि तुमने शत्रुकी लक्ष्मीको मलिन कर दिया है और अङ्गनाओंके भी पद्म समान मुख मलिन कर दिये हैं। तुम सदा ही युद्धमें रत रहते हो अतः स्त्रियाँ तुमसे सन्तुष्ट नहीं रहतीं, तुम बड़े ही दुर्भागी हो इसलिये तुम्हारे विकृत मुखको देखकर युवतियोंके मुख संकुचित हो जाते हैं, (१५) 'परस्पर अनुराग पूर्वक दाम्पत्य स्वीकार करना चाहिए' इस लौकिक रीतिका अनुसरण कर पूर्ण विश्वासके साथ चिरकाल तक उस नायिकाको तुमने अपने साथ रक्खा। अब वही काम-पीडासे व्यथित हो किसी भी वस्तुमें प्रीति नहीं रखती, उसकी लज्जा भी जाती रही है और फूलों पर लेटती हुई भी मूर्च्छित हो जाती है। हे सुन्दर! तुम अपने शरीर-

विश्वस्य विश्वस्य व्यवस्थां समासाद्य समासाद्यानेककालं संगीतसङ्गी तनुषे तनुषे कमनङ्गखपुष्पेषु पुष्पेषु रुजा तरसा जातरसा मन्दासमन्दा क्षणं भ्रमन्ती मुह्यति ।

अरीणां रिपूणाम्, कमला लक्ष्मी, न मलिनिता, न स्वायत्ती कृता, तथा नारीणां स्त्रीणां कमलाकृतिमुखं न मलिनीकृतम्, न विषादयुक्तं कृतम् इति भावः।

प्रशंसापक्षे—विश्वस्य जगतः, व्यवस्थां दाम्पत्यपद्धतिम् अनेककालं बहुसमयम्, असमासात् पूर्णतया, विश्वस्य श्रद्धाय, समासादि प्राप्ता। (सा) पुष्पेषु रुजा कामपीडया, मन्दाऽऽत्रमन्दा लज्जाविहीना, पुष्पेषु शरीरपरिचर्यार्थानीतकुसुमेषु क्षणं किञ्चित्कालं भ्रमन्ती विचरन्ती मुह्यति मूर्च्छति, हे अनङ्ग ! हे मदनसदृश ! (त्वं) सङ्गीतसङ्गी सङ्गीतपरः, तनुषे स्वशरीराय, शरीरधारणायेत्यर्थः। कं सुखं तनुषे विस्तारयसि। स्य नाशय, तस्या दुःखं नाशयेत्यर्थः। 'षोऽन्तकर्मणीत्यस्य लोटि सिपि रूपम्', हे सततसुखानुभवकारिन् स्वप्रणयपरायास्तस्या दुःखं विनाशयेति भावः। निन्दापक्षे—व्यवस्थां न मोक्ष्यामीति कृतप्रतिज्ञाम्, विश्वस्य विश्वस्य श्रद्धाय, श्रद्धाय असमासाद्या लब्धुमशक्या (सा) समासादि प्राप्ता (सा) सम्प्रति अस्मिन् काले, पुष्पेषु पुष्पेषु शयनार्थसंपादितसकलविधेष्वपि कुसुमेषु रुजा पीडया, तरसा वेगेन, जातरसा शयनस्थानभूतभूमिः, सरससरोजसुखमजानन्ती बालेव रराज इत्यर्थः। मन्दा ज्ञानविहीना, अत्तेषु लौकिककृत्येषु, मन्दा मूढा, भ्रमन्ती सर्वकृत्येषु भ्रान्तिं दधाना, मुह्यति कृत्याकृत्यज्ञानशून्या भवति। अनेककालं बहुकालं, सङ्गीतसङ्गी रसिकः (त्वं) तनुषे स्ववपुषे तं विनाशयितुमित्यर्थः। अनङ्गस्य कामस्य,

---

धारणके लिये—मन बहलावके लिये—सङ्गीतमें लगे रहते हो परन्तु तुम्हें इससे क्या सुख मिलता है ? तुम उसका दुख दूर करो यही तुम्हारा कर्तव्य है। (निन्दापक्षे) वह नायिका साधारणतया प्राप्त नहीं की जा सकती परन्तु तुमने 'मैं कभी तुम्हारा परित्याग न करूँगा' इसप्रकार विश्वास दिलाकर उसे प्राप्त कर लिया था। वह इस समय, काम-व्यथासे विह्वल हो सर्वप्रकारके फूलोंकी सेजपर भी सुख न पाकर भूमि पर ही लेटी रहती है (मैं समझती हूं) वह बड़ी ही मूर्ख है, व्यवहारकुशल भी नहीं है अतएव हर एक बातको उलटा ही समझकर बड़े ही असन्तोषके साथ किं कर्तव्य-विमूढ़ हो जाती है। तुम, हर समय संगीतमें ही लगे रहते हो परन्तु (तुम उसे स्वीकार न कर) अपने ही शरीरके नाशके लिये अनङ्गपीडा उत्पन्न करते हो, यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। (१६) हे प्रिय ! मदनोद्दीपक, मनोहर अधर, काम-प्रवर्धक तथा तिलक भूषित मुखचन्द्र, कोमलताकी खान हाथ और सात्विकभावसे उत्पन्न जलविन्दुओंसे सुशोभित, विशाल वक्षःस्थलमें व्याप्त—पीन-तथा निर्मल स्वर्ण-समान कान्तिवाले स्तनोंसे अलङ्कृत

कामधुराधरेण का मधुराधरेण युक्ता रजोराजविशेषकेण विशेषकेण मुखेन्दुना तव हृदि लग्ना मृदिमाकरेण करेण स्वेदविन्दुपयोधरेण पयोधरेण वक्षःफलकाञ्चनेन जितानाविलकाञ्चनेन।

कामदारुणमदारुणनेत्रा स्मरमयं रमयन्तं भवन्तमदयं मदयन्ती परमकमितारं परमकमितारं वाञ्छति हारिणा हारिणा स्तनकुम्भेन हारिणाक्षिरुचिहारिणा चक्षुषा च।

अकं दुःखम्, तनुषे प्रसारयसि। सन्तापसन्तप्तायां तस्यां तदुपेक्षणजातविपद्वारिधौ नैवं त्वयि युज्यते, तद्विरहाच्च तवापि शरीरनाशो भविष्यतीति भावः।

प्रशंसावादे—कामधुराधरेण कामस्य धूस्तस्याधरेण धारकेण, मधुराधरेण मनोज्ञोष्ठबिम्बेन, रजोराजविशेषकेण रजोराजस्य कामस्य 'काम एष क्रोध एव रजोगुणसमुद्भवः' इति गीतायाम्। विशेषकेण उद्दीपकेन, विशेषकेण तिलकेन (युक्तेन) मुखेन्दुना आननविधुना, मृदिमाकरेण कोमलतानिधिना, करेण—हस्तेन, स्वेदविन्दुपयोधरेण सात्त्विकस्वेदविन्दुधारकेण, वक्षःफलकाञ्चनेन उरः पटलविस्तृतेन, जितम्, अनाविलं निर्मलम्, काञ्चनं सुवर्णम् येन तादृशेन पयोधरेण स्तनेन, युक्ता सहिता, कातव हृदि हृदये लग्ना निविष्टा, यां सततं धारयसि, त्वं हि सर्वदा सर्वगुणयुक्तां तां सर्वदा ध्यायसि इति भावः। निन्दापक्षे—कामधुरा मदनभारधारिणी, सर्वदा कामपरवशेत्यर्थः, अधरेण निकृष्टेन, अधरेण ओष्ठेन, मुखेन्दुनेति परिहासोक्तिः। विशेषकेण विलक्षणेन, सर्वजनैर्विपरीतेनेत्यर्थः। अत एव, अरजोराजविशेषकेण अतिभ्रष्टत्वात् मदनानुत्पादकेन, अमृदिमाकरेण काठिन्य समूहेन, स्वेदविन्दुपयोधरेण रोगादिजन्यस्वेदविन्दुधारिणा, पयोधरेण मेघेन, सततं सलिलस्राविणा इत्यर्थः वक्षः फलकाञ्चनेन उरस्थले अञ्चनं गमनागमनं येन तादृशेन, अनाविलकाञ्चनेन स्वच्छसुवर्णेन, जिता तिरस्कृता, श्यामवर्णेत्यर्थः। अमधुरा अमनोज्ञा का, तव, हृदि, लग्ना। एतादृशीमसुन्दरीमगुणां त्वं सदा चेतसि चिन्तयसीति भावः।

प्रशंसापक्षे—हारिणा हारवता, हारिणा मनोज्ञेन, स्तनकुम्भेन उरोजकलशेन,

---

कौन नायिका तुम्हारे हृदय में बसी हुई है। जिसने परमरसिक तुमको भी इस प्रकार अपनेमें आसक्त कर लिया है वह निश्चय ही परमभाग्यशाली है। (निन्दापक्षे) ऐसी कौन सुन्दरी तुम्हारे हृदयमें आकर लगेगी? तुम ऐसे दुर्भागी हो कोई भी सुन्दरी तुम्हें न चाहेगी। केवल मेरी सखी, तुम्हारे किन्हीं पुण्योंके कारण तुम्हें चाहने लगी है फिर भी तुम उसकी उपेक्षा करते हो।

(१७) हारालंकृत, सुन्दर कलशतुल्य स्तनों तथा मृग-नेत्रोंकी शोभा धारण करनेवाले नेत्रोंसे सुशोभित एवं सरसनयना कौन नायिका, जिसके नेत्र कभी भी मद्यादिसे लाल नहीं होते, जिसकी आकृति कामके समान सुन्दर है, जो रति द्वारा सर्वदा प्रसन्न

अनन्तरं दुग्धार्णवनिमग्नमिव, स्फाटिकगृहप्रविष्टमिव, श्वेतद्वीपनिविष्टमिव जगदामुमुदे।

हारिणं हरिणस्य मृगस्य इदं मृगसम्बन्धिनमित्यर्थः, तस्य अक्ष्णः लोचनस्य, या रुचिः कान्तिः, तां हरति जयतीति तेन हारिणाक्षिरुचिहारिणा, चक्षुषा नयनेन, अदारुणनेत्रा सरसविलासे लोचनं बिभ्रती, का अमदारुणं मद्यजनितारुणलोचनविरहितम्, स्मरमयं मदनस्वरूपम्, रमयन्तं रत्या क्रीडयन्तम्, परमकमितारं अतीवकामुकम्, भवन्तं त्वाम्, मदयन्ती हर्षयन्ती (त्वां विहाय) परम्-अन्यम्, अकमितारं अकामुकम्, अदयं निर्दयम्, यथा स्यात्तथा, वाञ्छति कामयते। त्वामनुरक्ता काचिदपि नान्यं मनुजं कामयते। अतस्त्वं साम्प्रतं तस्या रक्तोऽसीति सत्वरमभिसरेति भावः। निन्दापक्षे तु—हे मदारुण धनादिसञ्जातदर्पेण अरुणसूर्य इव तापकरेत्यर्थः। मदारुणनेत्र! मद्यपानादिसञ्जातलोहितलोचन। सर्वदा मद्यप इत्यर्थः। स्तनकुम्भेन कुचकलशेन, चक्षुषा लोचनेन च युक्ता, का नायिका, अस्मरमयं कामविकारहीनम्, रम् अग्निं, अयन्तं आसादयन्तम् स्वक्रौर्येण वह्निं विकरन्तं स्थितमित्यर्थः। अदयं दयाशून्यम्, परं वैरिणम्, उपद्रवकरमित्यर्थः। अकमितारं अरसिकम्, भवन्तं त्वां परं अधिकम्, अकं दुःखम्, इता गता सती, मदयन्ती हर्षयन्ती हर्षयितुमित्यर्थः। अरं शीघ्रम्, वाञ्छति अभिलषति। हेति दुःखे, अहारिणा असुन्दरेण, अत एव अरिणा शत्रुवत्प्रेक्षकाणां निन्दाकरणेन इत्यर्थः। हारिणा हं कोपं ऋच्छति प्राप्नोतीति, हारिक्रूरं तेन अक्षिरुचिहारिणा दर्शकाणां लोचनानन्दहारिणा। तिमिरादिदोषदुष्टेन, चक्षुषा लोचनेन चोपलक्षिता, केति पूर्वं सम्बन्धः। 'रश्च कामेऽनिले वह्नौ भूमावपिधनेऽपि च' ह कोपे धारणेऽपि स्यात्' इत्येकाक्षरकोशः। न कापि तादृशी त्वामिहशमभिलष्येच्चापि मदयेदिति भावः।

अनन्तरमिति—अनन्तरं चन्द्रिकोदयोत्तरं एतादृशमिव सत् जगत् आमुमुदे

करता और जो परमकामुक है ऐसे आपको प्रसन्न करती हुई (तुम्हें छोड़) अकामुक किसी दूसरेको चाहती है? जो एकबार तुमपर अनुरक्त होगई वह तुम्हारी सरसता आदिसे वशीभूत हो, कभी भी तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी पर आसक्त नहीं हो सकती। (निन्दापक्षे) अरे धनादिमदगर्वित अतएव सूर्यके समान ताप देनेवाले, तुम्हारी आँखें सदा मद्यपानसे रक्त रहती हैं, तुम मन्मथ-विकारसे सर्वथा अनभिज्ञ हो, तुम्हारी क्रूरता अग्नि सी बखेरती है (अथवा) तुम सदा अपने धनमें मत्त रहते हो, तुममें लेशमात्र भी दया नहीं है, शत्रुके समान उपद्रव करते हो, तुम्हारे अन्दर जराभी रसिकता नहीं है (फिर तुम्ही बताओ) हारा···कौन नायिका, क्लेश उठाकर तुम्हें आनन्दित करना चाहेगी? ऐसे महापुरुषको कोई भी प्रसन्द न करेगी।

अनन्तर, यह जगत् क्षीरोदधिमें निमग्न, स्फटिकशिलानिर्मित गृहमें प्रविष्ट और श्वेत-

ततः क्रमेण च विघटमानदलपुटकुमुदकाननकोशमकरन्दविन्दुसन्दोहसान्द्रनिष्यन्दास्वादमुदितमधुकरकुलकलरुतमुखरितदिगन्ते चन्द्रिकापानभरालसचकोरकामिनीभिरभिनन्दितागमने सुरतभरपरिश्रमखिन्नपुलिन्दराजसुन्दरीस्वेदजलकणिकापहारिणि प्रवाति सायन्तने तनीयसि

आसाकल्पेन हृष्यतिस्मेति सम्बन्धः। दुग्धार्णवे क्षीरसागरे निमग्नं ब्रुडितं, प्रविष्टमिव। स्फाटिकेति—स्फाटिकं स्फटिकमणिनिर्मितं यद् गृहं तस्मिन् प्रविष्टम् अन्तःस्थितमिव। श्वेतेति—श्वेतद्वीपे तन्नाम्नि द्वीपविशेषे निविष्टं प्रविष्टमिव। श्वेतद्वीपः अष्टादशद्वीपेष्वन्यतमः। श्वेतद्वीपः चन्द्रद्वीपः। स च वैकुण्ठाख्यविष्णुधाम। यथा—श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम्। तत्रहायमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि, इति श्रीभागवते, इति श्रीकल्पद्रुमः। श्वेताः द्वीपाः येन स श्वेतद्वीपः चन्द्रः इति परे। अत्रैवमुत्प्रेक्षणे चन्द्रिकाव्याप्त्या धवलत्वं बीजम्।

तत इति। ततः क्रमेण कन्दर्पकेतुः वासवदत्तानगरमयासीदित्यन्वयः। विघटमानेति—विघटमानानि विकसन्ति दलपुटानि पत्रपुटानि पुटतुल्यानि पर्णानि येषान्ते, तादृशाः ये कुमुदकाननां कैरववनानां कोशाः कलिकाः तेषां मकरन्दविन्दुसन्दोहस्य पुष्परसविप्रुषसमूहस्य सान्द्राः घना अविच्छिन्ना इत्यर्थः ये निष्यन्दा वृष्टयः तेषाम् आस्वादेन पानेन मुदितस्य हृष्टस्य मधुकरकुलस्य भ्रमरवृन्दस्य कलरुतेन मधुराव्यक्तगुञ्जनेन मुखरितं वाचालितं शब्दयुक्तं कृतं दिगन्तरं दिशामवकाशो यस्मिन् तस्मिन् तथोक्ते। चन्द्रिकेति—चन्द्रिका ज्योत्स्ना तस्याः पानभरेण पानातिशयेन अलसाः मन्दगमनाः याश्चकोरकामिन्यः चकोराङ्गनास्ताभिः अभिनन्दितं प्रशंसितम् आगमनं यस्य तादृशे। 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्नेत्यमरः। चकोरपक्षिणः चन्द्रिकां पिबन्तीति प्रसिद्धिः। सुरतभरेति—सुरतभरेण निधुवनातिशयेन यः परिश्रमः तेन खिन्नानां श्रान्तानां पुलिन्दराजस्य किराताधिपस्य सुन्दरीणां स्वेदजलकणिकाः घर्माम्बुविन्दून् अपहर्तुं शीलं यस्य तादृशे। 'भरोऽतिशयभारयोः' इति विश्वः। पुलिन्दः कथ्यते म्लेच्छे पुलिन्द्रेऽपि निगद्यते। इति तारपालः। सायन्तने—सन्ध्याकालिको

द्वीपमें स्थित हुआसा आनन्दित होने लगा।

तब क्रमशः, जब मन्द मन्द सायङ्कालीन वायु, कुमुद-वनकी खिली हुई कलिकाओंके प्रचुर पुष्परसका पानकर प्रसन्नचित्त भ्रमर-गण अपनी ध्वनिसे दिशाओंको मुखरित कर रहा था, चन्द्रिका पानसे (अधिक पेट भर जानेके कारण) अलसाई हुई चकोराङ्गनाएं जिस (वायु) का स्वागत कर रही थीं, रतिक्रीडामें अधिक परिश्रमके कारण थकी हुई किराताधिपकी सुन्दरियोंके जलबिन्दुओंको जो सुखा रहा था ऐसे सन्तापहारक रात्रिरूपी

निशानिश्वासनिभे नभस्वति कन्दर्पकेतुस्तमालिकामकरन्दसहायो वासवदत्तानगरमयासीत्।

अथ स प्रविश्य कटकैकदेशे विनिर्मितम्, अभ्रंलिहशिखरेण, सुधाधवलेन, एकान्तरनिविष्टकनकमुक्तामरकतपद्मरागच्छलेन, वासवदत्तादर्शनार्थमवस्थितदेवतागणेनेव, सालवलयेन परिगतम्, अनिलोल्लासिताभिर्नभस्तरुकुसुममञ्जरीभिरिव तर्जयन्तीभिरिव गगनपुरश्रियं पताकाभिरु-

---

'सायंचिरम्–' इत्यादिना ट्युः तुट् च। तनीयसि—स्वल्पेऽम एव निशायाः निश्वासे न श्वासमारुतेन तुल्ये। 'निभसंकाशादिपदघटितसमासेषु तुल्यादिपदैरस्वपदविग्रह इति साम्प्रदायिकाः। नभस्वति—वायौ। प्रवाति प्रवहतिसति। तमालिकामकरन्दसहायः तमालिकामकरन्दौ सहायौ यस्य सः तादृशः कन्दर्पकेतुः वासवदत्तानगरम् अयासीत् गतः। या प्रापणे अस्मात् लुङि 'यमरम–' इति सगिटौ।

अथेति—अथ वासवदत्तानगरगमनानन्तरम् वासवदत्ताभवनं ददर्शेत्यन्वयः। कटकेति—कटकं राजधानी तस्य एकदेशे एकभागे। विनिर्नितं रचितम्। 'कटकं वलये सानौ राजधानीनितम्बयोः' इति विश्वः। अभ्रंलिहेति—अभ्रं लेढीति अभ्रंलिहं गगनस्पर्शि शिखरं यस्य तथोक्तेन। 'वहाभ्रे लिहः' इति खच्, 'अरुर्द्विषत्–' इति मुमागमः। 'अभ्रंकष–' इति पाठान्तरे तु 'सर्वकूलाभ्रकष–' इति खच्। सुधा—लेपद्रव्यविशेषः 'कलई' इति लोके प्रसिद्धः। तेन तद्लेपेन धवलः शुभ्रः तेन। 'सुधा स्नुह्यां लेपभेदे' इति हरिः। एकान्तरेति—एकम् अन्तरं व्यवधानं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा भवति तथा निविष्टाः प्रत्युप्ता इति एकान्तरनिविष्टाः; मध्ये मध्ये विजातीयं विनिवेश्य खचिता इत्यर्थः। तादृशानां कनकानां सुवर्णानां मुक्तानां मौक्तिकानां, मरकतानां नीलरत्नानां, पद्मरागाणां अरुणरत्नानां च छलेन व्याजेन। अवस्थितेति—अवस्थितः सन्निहितः देवतागणः यस्मिन् तेन तथोक्तेनेवस्थितेन। सालवलयेन—प्राकारमण्डलेन। 'प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः। परिगतं—वेष्टितम्। अनिलेति—अनिलेन वायुना उल्लसिताः चञ्चलीकृताः कम्पिता इति यावत्, ताभिः। नभ इति—नभः आकाशमेव तरुः वृक्षः तस्य कुसुममञ्जरीभिः पुष्पस्तवकैरिव स्थिताभिः। गग-

युवतीके विश्वास सदृश वायुके चलनेपर कन्दर्पकेतु, तमालिका तथा मकरन्दके साथ वासवदत्ताके नगरको प्रस्थित हुआ।

अनन्तर, कार्तिकेयके समान प्रभावशाली कन्दर्पकेतुने उस नगरमें प्रविष्ट हो वासवदत्ता-भवन देखा। जो, राजधानीके एकभागमें बना हुआ था। जिसके शिखर आकाशसे बातें करते थे, जो सुधा-कलई-से श्वेत हो रहा था। जिसके चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ था, उसमें (परकोटेमें) सुवर्ण, मोती, नीलमणि और पद्मरागमणियाँ जड़ी हुई थीं

पशोभमानम्, कनकशिलापट्टाङ्गणप्रसृताभिः कर्पूरकुङ्कुमचन्दनैलालवङ्ग-परिमलवाहिनीभिः तटनिकटस्फाटिकशिलापट्टसुखनिषण्णनिद्रायमाणाज्ञानश्वेतपारावताभिः, प्रभ्रश्यत्तटविटपिकुसुमस्तबकितसलिलाभिः, अनवरतमज्जदुन्मज्जद्युवतिजनघनजघनास्फालनोच्छ्लसितशीकरनिकरस्नपित-

---

नपुरम्—अमरावती। 'गगनपुरश्रियमपहसन्तीभिः' इति पाठान्तरम्। पताकाभिः—वैजयन्तीभिः। 'पताका वैजयन्ती स्यादि'त्यमरः। कनकेति—कनकशिलापट्टं सुवर्णमयशिलाफलकसहितं यत् अङ्गणं चत्वरं तत्र प्रसृताभिः प्रवहन्तीभिः। 'कनकशिलापट्टाङ्गणेषु प्रसृताभिर्जलयन्त्रविशेषैरिति भावः।' इति दर्पणकारः। कर्पूरेति—कर्पूरः घनसारः, कुङ्कुमं काश्मीरं, चन्दनं पाटीरः, एला, लवङ्गश्च तेषां चूर्णीकृत्य सम्मिश्रितानां परिमलं गन्धं वहन्तीति ताभिः तथोक्ताभिः। 'लवङ्गगन्धोदकपरिमल' इति दर्पणधृतपाठः। तटेति—तटनिकटे तीरसमीपे विद्यमानेषु स्फाटिकशिलापट्टेषु स्फटिकमणिनिर्मितशिलापट्टेषु सुखेन निषण्णाः उपविष्टाः सन्तः निद्रायमाणाः स्वापमनुभवन्तः अज्ञाताः वर्णसाम्यात्पृथक्त्वेनाविदिताः श्वेतपारावताः शुभ्रकपोताः यासां ताभिः तथोक्ताभिः। निद्राशब्दो वृत्तिविषये तद्वति। तस्य लोहितादिपाठात् 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इति क्यषि 'वाक्यषः' वैकल्पिकमात्मनेपदमिति निद्रायमाणेति रूपमिति केचित्। वस्तुतस्तु भृशादित्वात् क्यङिति व्याख्येयमिति अभिनवभट्टबाणाः। 'अज्ञाततटस्फाटिक' 'प्रासादपारावताभिः' इति दर्पणधृतपाठः। निश्चलत्वमज्ञाने निश्चलत्वे च निद्रा तस्यां सुखोपवेशनं हेतुरिति कारणमालालङ्कारः। इति च तद्व्याख्याने। प्रभ्रश्यदिति—प्रभ्रश्यद्भिः अधःपतितैः तटविटपिकुसुमैः तीरस्थितवृक्षपुष्पैः स्तबकितं स्तबकयुक्तं सलिलं जलं यासां ताभिः तथोक्ताभिः। स्तबकं सञ्जातमस्येति स्तबकितं तारकादित्वादितच्। अनवरतेति—अनवरतं निरन्तरं मज्जन् अवगाढः उन्मज्जन् बहिर्निर्गच्छन् यः युवतिजनः तरुणिजनः तस्य घनं निबिडं जघनं

तथा जिनके बीचमें एक एकके अन्तरसे भिन्न प्रकारकी मणियाँ जड़ी हुई थीं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों वासवदत्ताके दर्शनके लिये देवतागण स्थित हैं। जो, वायुसे हिलती हुई, आकाशरूपी वृक्षकी पुष्प-मञ्जरीके समान स्थित पताकाओंसे सुशोभित हो रहा था, वे (पताकाएँ) अमरावतीकी शोभाको अनादार—सा कर रही थीं। उसका पार्श्ववर्ती भाग स्वर्णमय शिलाओंसे युक्त आंगनमें बहती हुई नहरों से सुशोभित था। उन नहरोंमें कपूर, केसर, चन्दन, इलायची और लौंगकी गन्ध आरही थी। तीर पर रक्खी हुई स्फटिक शिलाओं पर सुखसे बैठकर सोते हुए सफेद कबूतर (समान वर्ण होनेके कारण) प्रतीत नहीं होते थे। उनका जल, तटस्थित वृक्षोंसे गिरे हुए पुष्पों द्वारा स्तबकित—गुच्छेदार हो रहा था। उनके तट पर बनी हुई वेदियाँ, निरन्तर प्रविष्ट होतीं (अथवा डुबकी लगाती

तीरवेदिकाभिः, कर्पूरपूरविरचितपुलिनतलनिषण्णनिनदानुमीयमानराजहंसाभिः, विकचनीलोत्पलकाननदर्शिताकाण्डचक्रवाकतिमिरशङ्काभिः, युवतीभिरिव सुपयोधराभिः, सुग्रीवयुद्धप्रवृत्तिभिरिव कीलालस्नपितकुम्भ-

---

कटिपश्चाद्भागः तस्य आस्फालनेन आघातेन उच्छ्वसितैः उद्गतैः शीकरनिकरैः अम्बुकणैः स्नपिता आर्द्रीकृता वेदिका परिष्कृता भूमिः, अङ्गनादौक्र तमुपवेशनस्थानं वा। 'वेदिः स्यात् पण्डिते पुमान्। स्त्रियामङ्गुलिमुद्रायां स्यात्परिष्कृतभूतले।' इति मेदिनी। 'स्याद्वितर्दिस्तु वेदिका' इत्यमरः। कर्पूरेति—कर्पूरपूरेण घनसारसमूहेन विरचितं यत् पुलिनं तोयोत्थितं तटं तस्य तले निषण्णा उपविष्टाः निनदेन शब्देन अनुमीयमानास्तत्रस्थितत्वेनोह्यमानाः राजहंसा यासु ताभिः। कर्पूरपुलिनराजहंसयोः समवर्णत्वात्तेषामनुमानं तद्रुतेनैव सम्भवतीति भावः। अत्र पुलिनशब्दप्रयोगो भाक्तः। अनुमानाख्यः प्रमाणालङ्कारः। कर्पूरपुलिनवर्णनेन संपत्तेरपरिमेयत्ववर्णनात् उदात्तालङ्कारोऽप्यत्र। तथा च दण्डी—आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम्। उदात्तं नाम तं प्राहुरलङ्कारं मनीषिणः। इति, इति दर्पणकारः। विकचेति—विकचानां विकसितानां नीलोत्पलानां काननेन दर्शिता प्रकटिता अकाण्डे अनवसरे असमये इत्यर्थः, चक्रवाकानां चक्रवाकपक्षिणां तिमिरशंका अन्धकारभ्रमो याभिस्ताः। 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवारिषु।' इत्यमरः। अत्र 'रक्तोत्पलपाठपक्षे रात्रौ विकासासम्भवात्। नीलोत्पलपाठपक्षे चक्रवाकानामेव तिमिरशंकावर्णनानुपयोगादुपेक्ष्यम्, इति दर्पणकारः। तत्र च 'विकचनीलोत्पलनीलिम्ना सर्वेषामप्यसमयतिमिरोद्गमशंकासम्भवेऽपि चक्रवाकग्रहणं तेषामेव तिमिरदर्शनेन दुःखातिशयः इत्याशयेन। तथा चोच्यते—'धूमस्तोमं तमः शङ्के कोकीविरहशुष्मणाम्। एतेन दर्पणोक्तिरुपेक्षिता' इत्यभिनवभट्टबाणाः। सुपय इति—शोभनं पयो जलं, तस्य धराभिः। पक्षे—सुस्तनीभिः। 'तरुणी युवतिः समे।' 'स्त्रीस्तनाब्दौ पयोधरौ।' इति विश्वः। कीलालेति—कीलालेन जलेन स्नपिता आर्द्रीकृताः कुम्भकर्णाः कलशाग्रभागा याभिस्ताः। कुम्भकर्णा अवताराश्मानः। 'कुम्भकर्णोऽवताराश्मा' इति भागुरिरिति साम्प्रदायिकाः' इत्यभिनवभट्टबाणाः। 'कुम्भकर्णः पक्षिविशेषः कलमुखः' इति प्रसिद्धः,

---

हुई) और निकलती हुई युवतियोंके विशाल नितम्बोंके आघातसे उठती हुई जलबिन्दुओंसे स्नान-सा कर रही थीं—गीली हो रही थीं। उनके कर्पूर-निर्मित पुलिनों पर बैठे हुए राजहंस अपनी ध्वनि द्वारा ही मालूम पड़ते थे। उनके नीलोत्पल-वनके कारण, असमयमें ही चक्रवाकपक्षियोंको अन्धकारका सन्देह हो रहा था। सुन्दर स्तनोंसे विभूषित युवतियोंके समान वे (नदियाँ) शीतल जल धारण किये थीं। रुधिरसे कुम्भकर्णको भिगोनेवाली सुग्रीवकी युद्ध-चातुरीके समान उनके घाटके पत्थर जलसे भीग रहे थे। सुन्दरी नामक

कर्णाभिः, सागरकूलभूमिभिरिव सुन्दरीपादपरागशबलाभिः, नवनृपतिचित्तवृत्तिभिरिव कुल्यापमानकारिणीभिः, अनेकाभिर्नदीभिरुपशोभितम्, शिखरगतमुक्ताजालव्याजेन पुरयुवतिदर्शनकुतूहलागतं तारागणमिवोद्ध-

इति परे। पक्षे—कीलालेन रुधिरेण स्नपितः कुम्भकर्णो रावणानुजः येन सः। 'शोणितेऽम्भसि च कीलालम्' इत्यमरः। सुन्दरीति—सुन्दरीणां रमणीनां पादपरागैः चरणरेणुभिः शबलाभिः कर्बुराभिः। पक्षे, सुन्दरीपादपानां सुन्दरीनामकानां वृक्षविशेषाणां रागेण पल्लवादिरक्तिम्ना शबलाभिः। सुन्दरीणां मत्स्यविशेषाणां पादपरागैरिति वा। 'सुन्दरी तरुभिन्नारीभिदोः स्त्री रुचिरेऽन्यवत्।' इति मेदिनी। 'विटवी पादपस्तरुः' इत्यमरः। 'सुन्दरीपादपाः वृक्षाकारा विद्रुमाः। 'सुन्दरी विद्रुमे नार्याम्' इति वैजयन्तीति साम्प्रदायिकाः। नवेति—नवः नूतनः अचिरप्राप्तराज्यः नृपतिः तस्य चित्तवृत्तिः इव। कुल्येति—कुल्यानाम् अल्पसरितां अपमानं कुर्वन्ति उपहसन्तीति तादृशीभिः। पक्षे, कुले साधोः अपमानकारिणीभिः, नवनृपतिर्हि सगर्वतया कुलक्रमागतान् अमात्यादीनपमनुते न तु तेषां हितवाक्यान्यनुतिष्ठतीति भावः। 'पित्रादेरमात्यादयः शिशुत्वाज्ञत्वाद्वा नैनमतिमन्वत इति तेषामपमानः।' इति दर्पणकारः। 'कुल्याय मानकरिणीभिः' इत्यभिनवभट्टधृतपाठः। कुल्या नदीभ्यः प्रवर्तिता अल्पा कृत्रिमा सरित्, ताम् अयमानाः प्राप्नुवत्यः करिण्यः हस्तिन्यो यासां ताभिः तादृशीभिः। 'कुल्या क्षुद्रनदी ताम् आयमानाः आगच्छन्त्यः करिण्यः यासु ताभिः' इति कश्चित्। पक्षे, कुल्यान् वंश्यान् पूर्वपुरुषान् अयमाना प्राप्नुवती करिणी अभिप्रायो यासां ताभिः तथोक्ताभिः। 'कुल्याऽल्पा कृत्रिमा सरित्।' इत्यमरः। 'करिणी हस्तिपिप्पल्यामभिप्रायगजस्त्रियोः' इति भागुरिः। इति सम्प्रदायागतं व्याख्यानम्। कुल्याः कुलभवाः, आयः आयतिः, मानः पूजा गर्वो वा, करो राजदेयो भागः एतैर्युक्ताः। 'अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ' इति तद्व्याख्यानम्। शिखरेति—शिखरगतस्य शोभार्थं उपरिप्रदेशबद्धस्य मुक्ताजालस्य मौक्तिकसमूहस्य व्याजेन मिषेण, शिखरगतानां पक्षिप्रवेशवारणार्थमुपरिबद्धानां मुक्ताजालानां मुक्तामयानायानां व्याजेन पुरयुवतिजनस्य नगरीतरुणीजनस्य दर्शनकुतूहलेन अवलोकनकौतुकेन आगतं तारागणं नक्षत्रसमूहम् उद्वहद्भिः। 'कुतुकं च कुतूहलम्।' 'जालं समूह आनायो गवाक्षक्षारकावपि' इत्य-

वृक्षोंकी लालिमासे विभूषित समुद्रकी तट-भूमिके समान वे रमणियोंकी चरणरजसे अलङ्कृत थीं। पूर्वपुरुषोंके समान आशय रखनेवाली, नवीन राजाकी चित्तवृत्तिके समान जिनमें स्थित हथिनियाँ कुल्याओं—छोटी छोटी नहरोंमें जारही थीं। वह भवन (पक्षियोंका प्रवेश रोकनेके लिये) ऊपर बंधे हुए मुक्तामय जालके मिषसे, पुरवासिनी युवतियोंके दर्शनार्थ उपस्थित तारागणोंको मानों धारण किये हुए, (महलके) ऊपर (अथवा) पासमें

हद्भिः, उपान्तनिलीनाभिः काचकलशाकृतिमुद्वहन्तीभिः शिखण्डिसंहति-भिरुद्भासितैः प्रासादैरुपशोभमानम्, क्वचिदनवरतदह्यमानकृष्णागुरुधूम-पटलैर्दर्शिताकालजलदसंनाहम्, क्वचिद्गम्भीरमुरजरवाहूतसमदनील-कण्ठम्, सायन्तनसमयमिव पतितलोकलोचनम्, जनकयज्ञस्थानमिव दारोत्सुकरामम्, मानुष्यकमिवाभिनन्दितसुरतम्, अरण्यमिवानेकसाल-

---

मरः। उपान्तेति–उपान्ते अग्रभागे निकटे वा निलीनाभिः नितरां लीनाभिर्निश्चलतया स्थिताभिः अत एव काचकलशाकृतिम्–काचो नाम नीलवर्णो मृद्विशेषः, तेन कृतानां निर्मितानां कलशानां घटानाम् आकृतिमुद्वहन्तीभिः धारयन्तीभिः, शिखण्डिनां मयूराणां संहतिभिः वृन्दैः, उद्भासितैः शोभमानैः प्रासादैः सौधैः उपशोभितम्। क्वचिदिति–अनवरतं सततं दह्यमानानां धूप्यमानानां कृष्णागुरूणां धूमपटलैः धूमसमूहैः, दर्शितः अकालजलदानाम् असमयमेघानां संनाहः आडम्बरो यत्र तत्। गम्भीरेति—गम्भीरेण धीरेण मुरजरवेण मृदङ्गध्वनिना आहूताः आकारिताः मेघरवभ्रान्त्या स्वयमागता इत्यर्थः। तादृशाः समदाः मदोन्मत्ताः प्रहृष्यन्त इत्यर्थः, नीलकण्ठा मयूरा यत्र तत् तथोक्तम्। 'रवाहूतसानन्दनर्तित—' इति दर्पणसम्मतपाठः। रात्रौ मयूरनृत्यवर्णनं तिर्यञ्चोऽपि सर्वकालं सुखिनो मनुष्याणां तु का कथेति ध्वनयितुम्। 'मृदङ्गा मुरजाः।' 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठः' इति द्वयोरमरः। पतित इति—पतितानि सौन्दर्य-दर्शनाय तत्र संलग्नानि लोकानां जनानां लोचनानि दृष्टयो यत्र तत् तथोक्तम्। पक्षे, पतितः अस्तङ्गमनाय नभसोऽधश्च्युतः लोकलोचनं जगच्चक्षुः सूर्यो यत्र सः। 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः। जनकेति—जनकस्य विदेहराजस्य यज्ञस्थानं यागभूमिरिव। दारेति—दारयति व्यथयतीति दारः कन्दर्पः तेन उत्सुकाः सुरतार्थमुत्कण्ठिता रामाः स्त्रियो यत्र तत्। दाराः जाराः। उदीच्यानां दजयोरभेदः। तेषु उत्सुकाः साभिलाषाः रामा रमण्यो यत्र तत् तथोक्तम्। पक्षे, दारेषु भार्यायां सीतायाः भार्यात्वेन स्वीकरणे उत्सुकः रामः दाशरथिर्यत्र तत् तथोक्तम्। 'सुन्दरी रमणी रामे'त्यमरः। मानुष्यकमिति—मनुष्याणां समूहो मानुष्यकम्। 'गोत्रोक्षो–' इत्या-

---

चुपचाप बैठी हुई अतएव नीलमृत्तिका-निर्मित कलश-सी प्रतीत होती हुई मयूर-श्रेणियोंसे सुशोभित प्रसादोंसे अलङ्कृत था। उस भवनमें कहीं निरन्तर जलती हुई अगरके धूम पटलसे असमयमें ही मेघोंका भ्रम हो रहा था, कहीं मुरजके गम्भीर शब्दसे मदमत्त मयूर एकत्रित हो रहे थे। अस्त होते हुए सूर्यसे अलङ्कृत सायङ्कालके समान (सौन्दर्य दर्शनके लिये) मनुष्योंके नेत्र उसमें आसक्त हो रहे थे। (सीताको) पत्नीरूपसे ग्रहण करनेके लिये उत्कण्ठित रामसे विभूषित जनकके यज्ञस्थानके समान वहां रमणियाँ अपने प्रियतमों (उपपतियों) के लिये उत्कण्ठित हो रही थीं। देवत्वका अभिनन्दन करनेवाले मनुष्यके

शोभितम् , निधानमिव कौतुकस्य, आस्थानमिव शृङ्गारस्य, कुलगृहमिव सकलविभ्रमाणाम् , सङ्केतस्थानमिव सौन्दर्यस्य, वासवदत्ताभवनं भवनन्दनप्रभावो ददर्श ।

भद्रे द्रवसि द्रवसिद्धेरगदिता । चपला च पलायते किमेषा । स्तबक-

---

दिना समूहार्थे वुञ् । अभिनन्दितं श्लाघितं सुरतं मैथुनं यत्र तत् तथोक्तम् । पक्षे अभिनन्दिता श्लाघाविषयीकृता सुरता देवत्वं येन तत् । 'मानुषमि'वेति पाठान्तरम् । 'सुरतं स्यान्निधुवने देवत्वे सुरता मता ।' इति मेदिनी । अनेकेति—अनेकैः बहुभिः सालैः पादपैः उपशोभितम् । भवनपक्षे सालः प्राकारः । अरण्यपक्षे सर्जकतरवः इति वा । 'सालः पादपमात्रे स्यात् प्राकारे सर्जपादपे ।' इति मेदिनी । कौतुकस्य आश्चर्यस्य निधानं निधिः, गृहम् । शृंगारस्य आस्थानं राजसभा । 'पुंसः स्त्रियां स्त्रियाः पुंसि सम्भोगं प्रति या स्पृहा । स शृङ्गार इति ख्यातो रतिक्रीडादिकारणम् ।' इति भरतः । सकलेति—सकलानां सर्वविधानां विलासानां कुलगृहम् उत्पत्तिस्थानम्, वंशपरम्परयागतं गृहं वा । 'क्रोधः स्मितं च कुसुमाभरणादियाच्ञा तद्वर्जनं च सहसैव विमण्डनं च । आक्षिप्य कान्तवचनं लपनं सखीभिर्निष्कारणोत्थितगतं वद विभ्रम तत् ।' इत्यालङ्कारिकाः । 'कामोत्सुक्यकृताकार रूपयौवनसम्पदा । अनवस्थितचेष्टत्वं विभ्रमः परिकीर्तितः' । इति भरतः । भवेति—एतादृशं वासवदत्ताभवनं भवनन्दनस्य कार्तिकेयस्येव प्रभावो यस्य सः तादृशः कन्दर्पकेतुः ददर्श ।

भद्रे इति—इत्यतः प्रवालकाननमित्यन्तम् अन्योऽन्यप्रणयेन पेशला रम्याः प्रमदानामालापकथाः शृण्वन् कन्दर्पकेतुर्मकरन्देन समं तद्भवनं प्राविशदिति सम्बन्धः । हे भद्रे मङ्गलकारिणि ! (त्वम्) अगदिता अकथिताऽपि द्रवसिद्धेः केलिप्राप्त्या द्रवसि धावसि । 'द्रवसि द्रवसिद्धितो निगलिते' इति दर्पणधृतपाठः । द्रवसिद्धितः नर्मसिद्धितः । सार्वविभक्तिकस्तसिः । निगलिते डलयोरैक्यान्निगडिते द्रवसि । बद्धस्य गमनप्रयास उपहासाय असफलत्वादिति काचिदुपहसति । यद्वा मया प्रेम्णा बद्धासि त्वं मां परित्यज्य यासीत्युपालम्भः । यद्वा, निगलिते एतदभिधाने द्रवसिद्धितो द्रावकौषधिविशेषात् द्रवसि । 'यद्यप्यष्टगुणः स्मरो निगदितः पुंसोऽङ्गनानां सदा । नो याति द्रवतां तथापि झटिति व्यायामिता सङ्गमे । तस्याद्भेषजसंप्रयोगविधिना संक्षे-

---

समान वहां सुरतकेलिका अभिनन्दन किया जारहा था । वह वनके समान अनेक वृक्षोंसे सुशोभित था । वह राजमहल कौतुकका निधि, शृङ्गारका दरबार, सब प्रकारके विलासोंका परम्परागत गृह और सौन्दर्यका संकेतस्थान था—सब प्रकार कर सौन्दर्य वहां संकेतपूर्वक मानों एकत्रित हो रहा था ।

अनन्तर कन्दर्पकेतु प्रमदाजनोंकी प्रेम-पूर्ण मनोहर बातचीत सुनते हुए मकरन्दके साथ वासवदत्ता भवनमें प्रविष्ट हुआ । रमणियाँ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप कर रही थीं-

स्तव कर्णतः पतितोऽयम् । सुरेखे सुकपोलरेखे सुरया सुरयाचिताश्रीस्त्वमसि । मत्ते कलहे ! कलहेमकाञ्चीदामक्वणितैः स्मरमिवाह्वयसि । मलये

पतो द्रावणम्' इति रन्तिदेवः । इति च तद्व्याख्यानम् । चपलेति— इदमेकस्या अपरां प्रति वचनम् । एषा पुरोवर्तिनी चपला चञ्चला एतन्नामिका च । किं किमर्थम् । पलायते धावति । यद्वा, चपलायते विद्युदिवाचरति । झटिति इतस्ततो गमनात् क्षणदृष्टनष्टा भवतीत्यर्थः । विद्युद्वाचकाच्चपलाशब्दात् 'कर्तुः क्यङ्–' इत्याचारार्थे क्यङ् । एषा चपला चञ्चला किं पलायते । चपला पुंश्चली सती इति वा । पलायत इति परापूर्वकस्य 'अय गतौ' इत्यस्य रूपम् । 'उपसर्गस्यायतौ' इति रेफस्य लत्वम् । 'इण् गतौ' इत्यस्य रूपमिति दर्पणोक्तिस्तु न साधीयसी तद्धातोः परस्मैपदित्वात् । यद्वा चपलेव पिप्पलीवाचरति । इयमेवौषधिः, सर्वथा द्रवसीति भावः । 'चपला कमला विद्युत् पुंश्चलीपिप्पलीषु च । नपुंसके तु शीघ्रे स्याद्वाच्यवत्तरले चले ।' इति मेदिनी । स्तवक इति–एकस्या अन्यां प्रत्युक्तिरियम् (अयि सखि) तव कर्णतः श्रोत्रात् अयं स्तवकः बवयोरभेदात् स्तवकः पुष्पगुच्छतः पतितः च्युतः । न त्वं वेत्सि, किमर्थमेतावत् प्रमाद्यसि इति भावः । सुरेखे इति—सु शोभना कपोलरेखा गण्डपङ्क्तिर्यस्याः सा सुकपोलरेखा तत्संबोधने हे सुकपोलरेखे ! सुरेखे इत्यस्य विशेषणम् । सु शोभनः रयः वेगो यस्याः सा सुरया अतिवेगशालिनी । सुरया मदिरया आचिता व्याप्ता, मद्यसेविनीत्यर्थः । अपि च, सुरैः देवैः याचिता प्रार्थिता । देवा अपि तव सौन्दर्येण मुह्यन्तीति भावः । त्वम् श्रीः शोभा असि । अत्र यद्यपि एषा न श्रीरपि तु श्रीयुक्तास्ति तथापि धर्मेण धर्मिणो निर्देशान्न काप्यनुपपत्तिः किंच 'श्रीः लक्ष्मीः, असि । यतः सापि सुरया वारुण्या सह संभूता । विनापि सहशब्दं तदर्थप्रतीतिः । सुरेण श्रीमता नारायणेन याचिता ।' इति अभिनवभट्टबाणाः । 'सुरया चिता सुरयाचितश्रीस्त्वमासि मत्ता' इति दर्पणधृतपाठः । 'एनामेवोपहसति सुरैर्देवैर्याचिता । अर्थाद्ब्रह्मण उचिता योग्या श्रीः सौन्दर्यश्रीर्यस्याः तादृशी त्वं सुरया मदिरया चिता व्याप्ता तादृशी सती मत्तासि' इति तद्व्याख्यानं च । मत्ते इति—मत्ते हे कलहे कलह-

अयि भद्र ! तुम बिना कह हो परिहासके लिये दौड़ रही हो । यह चपला क्यों दौड़ रही है ? (अथवा) यह विद्युत्‌के समान क्यों इधर-उधर फिर रही है ? अरी ! तुम्हारे कानसे यह फूलोंका गुच्छा गिर पड़ा है । अयि तुम्हारे कपोल बड़े ही सुन्दर है, तुम्हारी चाल भी मनोरहर है; इसीलिये देवता भी तुमपर मुग्ध हैं, तुम साक्षात् शोभा ही हो । (अथवा) तुम साक्षत् लक्ष्मी ही हो क्योंकि तुम मद्यपायिनी हो और वह भी मद्यके साथ उत्पन्न हुई है । तुम्हें सुर-देवता चाहते हैं और उसे सुर—भगवान् नारायण अङ्कशायिनी बनाते हैं । अरी मदमत्त कलहे ! तुम अपने मधुर स्वर्णमय काञ्ची-ध्वनिसे मानों कामको ही बुला रही हो । हे मलये ! मलयपर्वतकी अभिलषित वस्तु-चन्दन-तुमने अपनी दृष्टिसे

मलयेप्सितं कुरु दृशैवाधिगतासि। कलिके! कलिकेतुमिमां मुखरां मुञ्च मेखलाम्; शृणुमः कलवल्लकीविरुतम्। मेखला मेखला न भवति, त्वमेव

कारिणि! कलानि अव्यक्तमधुराणि यानि हेम्नः सुवर्णस्य काञ्चीदाम्नः मेखलागुणस्य क्वणितानि ध्वनयः तैः। स्मरं कामम् आह्वयसीव आकारयसीव। कलहे रतिकलहविषये तदर्थमित्यर्थ इति वा। 'पत्यरितिक्तपुरुषाह्वानोत्प्रेक्षणमुपहासाये'ति दर्पणकारः। मलये इति—हे मलये! मलये मलयाचले ईप्सितं प्रियं वस्तु चन्दनमित्यर्थः। दृशा दृष्ट्यैव। अधिगता प्राप्ता असि। चन्दनवत्तापहारिणी ते दृष्टिरिति भावः। अस्मिन् व्याख्याने मलये ईप्सितमिति पदच्छेदकल्पने 'पूर्वत्रासिद्धम्' इत्यनेन यलोपस्यासिद्धत्वात्सन्धिर्दुर्घटः। यद्वा, अमलया स्वच्छया दृशा एव ईप्सितं मनोरथम् अधिगता प्राप्ता असि। कुरु यथेष्टमाचर। स्वकटाक्षपातैरेव त्वं यूनो वशमानेष्यसीति यथेष्टमाचरेति भावः। यद्वा हे मलये त्वम् ईप्सितं कुरु। अमलया दृशैव अधिगता विदिता ज्ञाताभिशयेत्यर्थः। त्वया गोप्यमानोऽपि तवान्तरोऽभिप्रायः तव कटाक्षपातेनैव प्रतीयते इति भावः। 'मे शिवे लयो नाशो यस्य स मलयः कामः तद्वत् ईप्सितं हृद्यं दृशैवाधिगतासि। त्वं पुरुषं कटाक्षैरामन्त्रयसीति भावः। 'अभीष्टेऽपीप्सितं हृद्यम्' इत्यमरः। यद्वा, मः शिवो लयो गृहं यस्य स मलयः चन्द्रमाः तस्येप्सितं हरिणः तं दृशैवाधिगतासि। मृगलोचनाऽसीति भावः। 'मः शिवः चन्द्रमा वेधा' इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी।' इति दर्पणकारः। कलिके इति—हे कलिके! कलेः रतियुद्धस्य केतुं ध्वजं, यथा केतुना सेनादि द्योत्यते तथा स्वध्वनिना रतिकलहसूचिकामित्यर्थः। 'कलिः स्यात्कलहे सूरे कलिरन्त्ययुगे युधि।' इति विश्वः। मुखरां वाचालां क्वणन्तीमित्यर्थः। इमां मेखलां काञ्चीम्, मुञ्च दूरीकुरु। कलम् अव्यक्तमधुरं वल्लकीविरुतं वीणाध्वनिं वीणाध्वनिवन्मनोहरं निधुवनध्वनिमिति भावः। शृणुमः आकर्णयामः। मेखलाध्वनिस्तत्र प्रतिबन्धकः अतस्तामपनयेति सख्याः सरहस्यभाषणम्। उत्तरयति सखी एनाम्—मेखलेति। सखि! मे मेखला काञ्ची खला पिशुना न भवति (किन्तु) त्वमेव मुखरतया वाचालतया खरतया दुष्टतया च खला भवसि इति शेषः। 'मुखरतया मुखरतया च' इति दर्पणधृतपाठः। 'मुखेन प्रेष्ठेन रतं यातीति मुखरतयाः। यद्वा मुखेन वात्स्यायनाद्युक्तोपायेन रतं यातीति मुखरतयाः। 'मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेष्ठे

ही पाली है। तुम्हारी दृष्टि ही चन्दनके समान ताप-नाशक है। (अथवा) तुम अपनी निर्मल दृष्टिसे ही अपना मनोरथ प्राप्त कर सकती हो अतः जो चाहे सो करो—तुम्हारे कटाक्षमात्रसे ही युवक जन तुम्हारे वशमें हो जाँयगे फिर जो चाहो सो करना (अथवा) हे मलये! तुम्हारी यह निर्मल दृष्टि ही तुम्हारे मनकी बात कह रही है, तुम अपनी इच्छानुसार करो, छिपानेकी क्या आवश्यकता है। हे कलिके! (अपने शब्द द्वारा) रति-कलहकी सूचना देनेवाली इस मेखला-काञ्ची-को दूरकर-उतार दे, हम मधुर वीणा-

मुखरतया खरतया च। त्रपतेऽत्र पतेयमिति नागकुसुमोपहारेषु स्खलन्तीयम्। तव कैतवकैरलम्, कलिलो निःश्वासैर्वेपथुरेवाशयं व्यनक्ति। वहतीव हतीरनङ्गलेखे तव वपुरलसं स्मरसायकानाम्। तव च हारलता पिहिताऽपि हि तायते। उत्कलिके तवोत्कलिका बहुले वदने वद नेत्रपयोज-

---

निस्सरणास्ययोः' इति हैमः।' इति तद्व्याख्यानं च। त्रपते इति। इदमेकस्या वचनम्। इयं सम्मुखस्थिता नागकुसुमोपहारेषु बल्यर्थं विक्षिप्तेषु नागाख्यतरुकुसुमेषु स्खलन्ती सती। अत्र पतेयमिति त्रपते लज्जते। 'त्रपतेऽत्र पतेदियमवन्तिसेना कुसुमोपहारे मुग्धा' इति पाठः, मुग्धा इयमवन्तिसेना त्रपते लज्जते। अत्र कुसुमोपहारे पतेत्, सम्भावनायां लिङ्।' इति तद्व्याख्यानञ्च दर्पणसम्मतम्। तवेति—तव कैतवकैः छलैः आकारगोपनप्रयासैरित्यर्थः। अलं साध्यं नास्ति, व्यर्थानि तादृशानि कैतवानि इति भावः। कैतवकैरित्यत्र गम्यमानसाधनक्रियायाः करणत्वात्तृतीया। गम्यमानापि क्रियाकारकविभक्तीः प्रयोजयति इति व्याकरणसिद्धान्तः। निश्वासैः श्वासमारुतैः कलिलो गहनः तत्सहित इत्यर्थः। 'कलिलं गहनं समे।' इत्यमरः। वेपथुः कम्प एव, तव आशयम् अभिप्रायं व्यनक्ति प्रकटयति। सात्विकाविर्भावात् त्वमेव कम्पसे मां किं वृथा वदसीति भावः। 'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रु प्रलय' इत्यष्टौ सात्विका मताः। इति। वहतीति—हे अनङ्गलेखे! तव वपुः शरीरं स्मरसायकानां कामबाणानां, हतीः प्रहारान् वहतीव धारयतीव यतोऽलसम्। वपुषोऽलसत्वे कामबाणप्रहाराः कारणत्वेनानुमीयन्ते। हतिरित्यत्र हन्धातोः 'स्त्रियां क्तिन्' इति क्तिन्। तवेति—सुरतकाले त्रुटितं कथञ्चिदेकया वस्त्राच्छादनेन तिरोधीयमानं मुक्तासरं पश्यन्त्या अपरस्याः तां सखीं प्रत्युक्तिरियम्। हे सखि! तव हारलता मुक्ताहारः। पिहिता आच्छादिता, वस्त्रेण कथञ्चित्तिरोहिताऽपि तायते स्वयं विस्तृता बहिः प्रकटा भवतीत्यर्थः। 'तनु विस्तारे' अस्मात्कर्मकर्तरि यकि 'तनोतेर्विभाषा' इति वैकल्पिकमात्वम्। यद्वा, त्वया पिहिताऽपि आच्छादितापि तिरस्कृताऽपीति गम्यते।

शब्द सुनूंगी-मैं तुम्हारा रति-कूजित सुननेको अत्यन्त उत्कण्ठित हो रही हूँ। परन्तु तुम्हारी यह मेखला सुनने नहीं देती अतः इसे उतार दे। (सखी का उत्तर) मेरी मेखला दुष्ट नहीं है तू ही अपनी वाचालता और क्रूरतासे दुष्टता कर रही है। यह सखी, पूजाके लिये बिखरे हुए नागकेसरके पुष्पोंपर लपटती हुई गिरनेके भयसे लज्जित हो रही है। सखि! तुम अपने आकार छिपानेका व्यर्थ प्रयास न करो, उससे कोई लाभ नहीं है; क्योंकि तुम्हारी लम्बी सांसे और कम्पन ही तुम्हारा हृदय प्रकाशित कर रही है। हे अनङ्गलेखे! तुम्हारा शरीर कामदेवके बाणोंके प्रहारसे घायल हो रहा है। हे सखि! यद्यपि तुम अपना हार वस्त्रसे छिपाये हुए हो तथापि वह स्वयं ही बाहर निकल पड़ता है। हे उत्कलिके!

कान्ते किमुपमानमिन्दुरप्यायाति । वसतीव सतीव्रते ! तव हृदि कोऽपि । शतधा शतधारसारा वाचस्तवानुभूताः । कुन्तलिके ! करकाकरकालमेघ-

हितायते हितवदाचरति । तत्र तत्र नखक्षतगोपनेन त्वां रक्षतीत्यर्थः । यद्वा हि निश्चयेन तायते लोकोपहासात् त्वां पालयतीत्यर्थः । 'ताङ्ग सन्तानपालनयोः' इति धातो रूपम् । 'पिहिताऽपि हिताय त उत्कलिकामहोर्मिः' इति दर्पणधृतपाठः । 'तेऽप्युत्कलिकामहोर्मिः पिहिता छन्ना हिताय । विरहस्यानाविष्करणादर्थात् ते हिताय कल्याणाय । यद्वा, उत्कलिकामहोर्मिः पिहिताऽपि हितवदादरति हितायते । यद्वा, उत्कलिकामहोर्मिः पिहिताऽपि हि निश्चयेन तायते लोकोपहासात् त्वां पालयतीत्यर्थः । यद्वा, पिहिताऽपि उत्कलिकामहोर्मिः कर्मकर्तृ तायते स्वयमेव विस्तृता भवति । हि प्रसिद्धौ । तनु विस्तारे । तनोतेर्यकीति विभाषात्वम् । यद्वा, उत्कलिकामहोर्मिः पिहिताऽपि हिता वृद्धा । हि गतौ वृद्धौ च । अयते लोके गच्छति प्रसृता भवति । उत्कलिक इति । हे उत्कलिके ! उत्कलिकाबहुले उत्कण्ठया परिपूर्णे इदं उत्कलिके इत्यस्य विशेषणम् । नेत्रे पयोजे कमले इव, नेत्रे एव पयोजे इति वा ताभ्यां कान्ते मनोहरे, वदने मुखे इन्दुः चन्द्रः उपमानं सादृश्यम् आयाति किम् ? चन्द्रोऽपि तव मुखसादृश्यं न भजतीति भावः । वद कथय । दर्पणकारस्तु अपिपदम् उपमानपदेन संयोज्य किम् इन्दुः उपमानमपि यातीति वद । पूर्वं त्वन्मुखमुपमानम् । इदानीमिन्दुरुपमानमपि यातीति सम्भावनं मुखे विरहातिशयात् पाण्डुत्वाधिक्यद्योतनाय ।' इति व्याचष्टे। वसतीति—सतीनां पतिव्रतानां व्रतमिव व्रतं यस्याः तत्सम्बोधने । यद्वा-तीव्रतया सहितं सतीव्रतं तस्मिन् हृदीत्यस्य विशेषणम् । त्वं चित्ते कमपि चिन्तयतीव भासीति सपरिहासं कस्याश्चिदपरां प्रतिभाषणम् । शतधेति—एवमुक्तायास्तस्याः प्रत्युत्तरमिदम् । शतं धाराः कोटयो यस्य स शतधारः, वज्रं तस्येव सारः दार्ढ्यं यासां ताः शतधारसाराः, अशनिवदसह्या इत्यर्थः । तव वाचः वचांसि । मया शतधा शतप्रकारेण । अनुभूताः श्रुताः सोढाश्चेत्यर्थः । अतः परमेवं वक्ष्यसि चेन्न सहिष्ये इति भावः । 'सर्वदाऽपि त्वमेतादृशीर्दुःसहा वाच एव वदसि, अतो नेयं ते वागपूर्वा त्वं यथेच्छं यत्किञ्चित्प्रलपेति भावः' इत्यपरे । 'धारोत्कर्षे खड्गाद्यग्रे सैन्याग्रे वाजिनां गतौ ।' इति हैमः । कुन्तलिक इति—हे कुन्तलिके ! उल्लसितां शोभमानाम् उत्फुल्लां विकसितां च मल्लिकामालां बिभर्ति इति तादृशाः । 'इष्टके शोकामाला…' इति मालाशब्दस्य ह्रस्वः । एतादृशः तव कुन्तलकलापः केशकलापः । करकाणां वर्षोपलानाम् आकरः खनिः यः कालमेघ-

कमलतुल्य नेत्रोंसे मनोहर, उत्कण्ठा-परिपूर्ण तुम्हारे मुखकी क्या चन्द्रमा तुलना कर सकता है ? हे सतीव्रते ! तुम्हारे हृदयमें कोई बसा हुआ-सा है (उत्तर) मैंने, तुम्हारी वज्रके समान असह्य बातें अनेक बार सही है तुम्हारी यह बात कोई नहीं है, तुम जो चाहो

खण्डतुलामयमुपयात्युल्लसितोत्फुल्लमल्लिकामालभारी तव कुन्तलकलापः । केरलिके पुरगोपुरगोचराः श्रूयन्ते सङ्गीतध्वनयः किमिव कल्पयसि । क्षणमीक्षणमीलनादपि चटुलं चटुलम्पटं सखीजनमायासयसि । सुरते सुरते स्तनताऽनेषु यत्सौख्यं लब्धं तत्स्मरता स्मरतापनोदनं दयितेन दयितेन विमुक्तासि । किं मुह्यसि महतो महतो दयितः स्मरति

खण्डः कृष्णाभ्रखण्डः तस्य तुलां साम्यम् उपयाति प्राप्नोति । अत्र केशकलापस्थितमालायाः कालमेघखण्डे सादृश्यप्रतिपत्तये वर्षोपलग्रहणम् । 'वर्षोपलस्तु करके' त्यमरः । उत्फुल्लेति 'फुल्ल विकसने' इत्यस्य पचाद्यचि रूपम् । केरलिक इति । हे केलिके ! पुरस्य नगरस्य गोपुरं द्वारं तद्गोचराः तत्र जायमानाः इति भावः । संगीतध्वनयः सङ्गीतशब्दाः श्रूयन्ते, क्षणम् ईक्षणमीलनात् नेत्रनिमीलनात् किमिव कल्पयसि विचारयसि, किं गायति कथं कस्य वा कृते गायतीति किं विचारयसि त्वदर्थमेवायं सङ्गीतध्वनिरिति ज्ञायत एवेत्युपहासः । क्षणमिति— क्षणम् अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । ईक्षणमीलनात् नेत्रनिमीलनात् । चटुलं चञ्चलं कार्येऽनलसम् । त्वदाज्ञासम्पादनदक्षमिति भावः । चटुषु प्रियवाक्येषु लम्पटमासक्तमपि सखीजनम् आयासयसि क्लेशयसि । अनुरक्ते सखीजने नैतन्न्यायमिति भावः । तवेक्षणमीलनेन तव विरहपीडामनुमाय वयमपि क्लिश्याम न च त्वमस्मासु स्वखेदं प्रकाशयसीति तात्पर्यम् । अभिनवभट्टबाणास्तु 'कुन्तलिके ! कुन्तलालङ्कृते न च पुर······किमिव······नात् । अपि चटुल······हे सुरते शोभनं रतं यस्याः सा सुरता तत्सम्बोधने हे सुरते ! सुरते रतौ । स्तनताडनेषु कुचमर्दनेषु, स्तनता मणितशब्दं कुर्वता सङ्केतार्थं पथ्यादिशब्दं कुर्वता वा, दयितेन प्रियेण स्मरतापं कामजनितपीडां नोदयति निवारयति तादृशं यत्सौख्यं लब्धं तत्स्मरता चिन्तयतापि दयितेन पत्या विमुक्ता परित्यक्ता असि । 'दयितः स्वामिकान्तयोः' इति धरणिः । एतादृशी त्वं तादृशेनापि मुक्ताऽसीति को वेद तवापराधमिति ध्वनिः । अत्र······'तस्केन वियुक्तासि' इत्यभिनवभट्टबाणसम्मतः पाठः । केन पुरुषेण विमुक्ता विरहिता असि इति तदर्थश्च । किमिति— अतएव वदति किं मुह्यसि ? किमर्थं विरहवेदनया ताम्यसीत्यर्थः । युक्तमेव कृतं भर्त्रेत्यभिप्रायः । यद्वा,

बकती रहो । हे केरलिके ! सुन्दर और विकसित मल्लिकामालासे सुशोभित तुम्हारा यह जूड़ा ओले बरसानेवाले काले मेघके समान प्रतीत होता है । कुन्तलालङ्कृत हे कुन्तलिके ! नगरके पुरद्वारपर सङ्गीतध्वनि सुनाई नहीं पड़ती ? अरी ! आँखें बन्दकर क्या सोच रही है ? तू, तेरे सब कार्य करने में समर्थ, प्रियवादी सखीजनको क्यों क्लेश दे रही है । हे सुरते ! रतिक्रीडाके समय कुचमर्दन करते हुए स्मर-ताप मिटानेवाले सुखका स्मरणकर सिसकारी लेते हुए किस मनुष्यसे तुम विमुक्त हो । (पतिके न आनेपर खिन्न सखीको

स्म रतिप्रियं तव कौशलम्। नवनिशानखराणां नखराणां स्मर-जन्यां स्म रजन्यां कुरुते कुरुतेन रुजम्। तव लोचनाभ्यां लोचनाभ्यां प्रीणिताखिलजनेक्षणदेशः क्षणदेशः किं न पीयते। प्रियसखि! मदन-

---

पत्यनागमनेन ताम्यन्तीं प्रत्येकस्याः समाश्वासनोक्तिरियम्। महतो महीयसः महतः उत्सवात्, महान्तमपि उत्सवं विहायेत्यर्थः। ल्यब्लोपे पञ्चमी। महशब्दात्तस्। 'मह उद्धव उत्सवः' इत्यमरः। दयितः पतिः। रतिप्रियं क्रीडानुगुणम्। तव कौशलं सुरतचातुर्यम् स्मरति स्म सस्मार। अतः किं मुह्यसि। यः खलु प्रागपि तव सुरत-कौशलमनुस्मृत्य महतोऽप्यन्यानुत्सवान्विहाय त्वत्समीपमागतः। सोऽयमिदानीमपि समेष्यति मा मोहं गच्छेति भावः। नवेति—आश्वासयन्त्या एव वाक्यमिदम्। तव रतिचातुर्यं स्मृत्वा समागतः तव पतिः। स्मरस्य कामस्य जनिः उत्पत्तिः यस्यां स्मर-जनिः तस्यां स्मरजन्यां कामोद्दीपिकायामित्यर्थः। यद्वा स्मरं कामं जनयतीति स्मरजनी कामोद्दीपिका तस्यां, 'कर्मण्यण्' 'जनिवृद्ध्योश्चेति वृद्धिप्रतिषेधः। नवेन नूतनेन निशानेन तीक्ष्णीकरणेन खराणां कठिनानां निशितानामिति भावः। नख-राणां नखानाम्। कुरुतेन ईषच्छब्देन अव्यक्तध्वनिनेति यावत्। ईषदर्थकः कुशब्दः। रुजं मदनपीडाम् कुरुते स्म चकार 'लट् स्मे' इति भूते लट्। एतादृशस्तव पतिरिदानी-मपि कथं त्वामुपेक्षेत इति भावः। यद्वा स्मरेण जन्या कामेनोत्पादिता तामिति रुज-मित्यस्य विशेषणम्। 'जन्या मातृवयस्यायां जन्यः स्याज्जनके पुमान्। त्रिषूत्पाद्यज-नित्रोश्च' इति विश्वमेदिन्यौ। 'स्त्रीरुग् रुजा चोपताप' इत्यमरः। 'नखराणां व्रणः' 'रुजं किम्' इति च दर्पणसम्मतपाठः। 'कुरुते' इति कस्याश्चित्सम्बोधनमभिप्रेत्य हे कुरुते! तादृशानां नखानां व्रणः रुजं न कुरुते स्म किम्।' इति च तद्व्याख्यानम्। तवेति—चिन्तामग्नां चन्द्रमप्यपश्यन्तीं काञ्चित्प्रत्यपरस्या वचनम्। हे सखि! प्रीणितः प्रसादितः तोषित इति यावत् अखिलजनानां समस्तजनानाम् ईक्षणदेशः नेत्रप्रदेशो येन सः तादृशः क्षणदाया रात्रेरीशः चन्द्रः लोचनाभ्यां द्रष्टुं समर्थाभ्यां लोचनाभ्यां नेत्राभ्यां किं न पीयते सादरं न दृश्यते। सम्यग्दर्शनं च नेत्रैः पानमुच्यते। 'पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः' इति रघुः। यद्वा, स्वसौन्दर्येण प्रीणितः सन्तोषितः अखिलजनेक्षणदेशः अतिसुन्दर इति यावत् क्षणदः सुखप्रदश्चासावीशः पतिः लोच-

---

आश्वासन देनेके लिये सखी वाक्य) हे सखि! तुम्हारा पति, तुम्हारे रति-अनुकूल सुरत-कौशलका स्मरणकर बड़े-बड़े उत्सवोंको छोड़कर आया करता था, अतः तुम खिन्न न हो, वह अवश्य आयेगा। वह तुम्हारा पति, कामोद्दीपक रात्रिमें अपने तीक्ष्ण नाखूनोंके अव्यक्त ध्वनिसे मदन-पीडा किया करता था तब वह तुम्हारी उपेक्षा कैसे कर सकता है। जिस चन्द्रमाके दर्शनसे समस्त संसारके नेत्र सफल होते हैं, तू उसे अपने दर्शन-समर्थ इन नेत्रोंसे क्यों नहीं देखती? आँख बन्द किये क्यों बैठी है? हे प्रियसखि मदनमालिनी!

मालिनी ! बिम्बाधरसङ्गत्या सङ्गत्यागेच्छया विरागं कुरु मधुमदारुण-मालवीकपोलतलसमानो लसमानो रक्तमण्डलतया लतया त्वया को विशेषः ? कुरङ्गिके ! कल्पय कुरङ्गशावकेभ्यः शष्पाङ्कुरम् । किशोरिके !

नाभ्यां किं न पीयते ? यतोऽसौ तव प्रियः, रक्तमण्डलतया अनुरक्तमण्डलतया, मधुमदेन मद्यपानजनितमदेन अरुणं रक्तवर्णं यत् मालवीकपोलतलं मालवदेशस्त्रीगण्डस्थलं तेन समानः तुल्यः अतएव लसमानः शोभमानः तिष्ठति अतः, विम्बवत् बिम्बफलवत् विद्यमानः अधरः बिम्बाधरः तस्य सङ्गत्या संसर्गेण सङ्गत्यागेच्छया सङ्गस्य सम्बन्धस्य चुम्बनस्येति यावत् यः त्यागः विरहः तदिच्छया 'माऽसौ मां चुम्बतु', इति वाञ्छयेत्यर्थः । विरागं विरतिं कुरु इति यावत् । यतः त्वया लतया च को विशेषः भेदः न कोऽपीत्यर्थः । यथा वैद्यणदेशस्य चन्द्रस्यौषधीपतित्वेन लतया सहाविरोधः एवं तवापि सुखप्रदेन भर्त्रा सहाविरोध एवोचित इति भावः । अत्र अभिनवभट्टबाणाः 'तव लोचनाभ्यां लोचनाभ्यां फलिताखिलजनेक्षणदेशः क्षणदेशः किं न पीयते । प्रियसखि मदनमालिनि मालिनि बिम्बाधरसङ्गत्यागेच्छया विरागं कुरु । मधुमदारुणमालवीकपोलकोमलदलमण्डलतया लतया को विशेषस्तव ।' इति पाठमभ्युपगम्य प्रियसखीत्यादिवाक्यव्याख्यानं—'भ्रमरबाधया क्लिश्नतीं सखीं प्रति लतासादृश्यात्त्वयि भ्रमरः पततीति सप्रशंसमभिदधानाया एकस्या वचनमिदम् । प्रियसखि हे मदनमालिनि ! विम्बाधरे यः सङ्गः सम्बन्धः पतनमिति यावत् । तस्य त्यागः विरहः तदिच्छया, न पततु भ्रमरोऽयमित्याशयेनेत्यर्थः । अलिनि भृङ्गे । विरागं विद्वेषम् । मा कुरु नात्र तस्यापराधो लताभ्रान्तस्य । परन्तु लतासदृशी त्वमेवापराध्यसीत्याह--मधुमदेति–मधुमदेन अरुणः यः मालवीकपोलः तद्वत् कोमलं मनोहरं मार्दवरक्तिमादिविशिष्टमित्यर्थः । तादृशं लोलं चञ्चलं च दलमण्डलं किसलयसमूहो यस्याः सा मधुमदारुणमालवीकपोलकोमलदलमण्डला, तस्या भावेन (उपलक्षितया) लतया वल्ल्या सह तव को विशेषः न कोऽपीत्यर्थः । अतएव भ्रमरः पततीति भावः । इत्याहुः । कुरङ्गिक इति । कुरङ्गिकाकिशोरिकाप्रभृतीति एकैकस्या नामानि । कुरङ्गशावकेभ्यः हरिणशिशुभ्यः । शष्पाणां बालतृणानाम् अङ्कुरान् नवोद्भिदः । कल्पय उपपादय देहीत्यर्थः । 'मृगे कुरङ्गवातायुः' 'पृथुकः शावकः शिशुः ।' 'शष्पं बालतृणं घासः ।' 'अङ्कुरोऽभिनवोद्भिदि ।' इति चतुर्ष्वप्यमरः । किशोरिक-

---

अपने बिम्बफलके समान रक्तवर्ण ओष्ठपर बैठते हुए भ्रमरपर द्वेष न कर, इससे उसका क्या अपराध है ? मधुपानसे लाल मालवीके कपोलके समान सुन्दर और चञ्चल किसलयवाली लता और तुझमें क्या अन्तर है ? कुछ भी नहीं । वह (भ्रमर) तुझे लता समझकर ही तेरे अधरोष्ठपर बैठना चाहता है । हे कुरङ्गिके ? मृगशावकोंको नई घास डालो ।

कारय किशोरप्रत्यवेक्षाम्। तरलिके! तरलय कृष्णागुरुधूपपटलम्। कर्पूरिके! पाण्डरय कर्पूरधूलिभिः पयोधरभारम्। मातङ्गिके! मानय मातङ्गशिशुयाचनाम्। शशिलेखे! विलिख ललाटपट्टे शशिलेखाम्। केतकिके! सङ्केतय केतकीमण्डपदोहदम्। शकुनिके! देहि क्रीडाशकुनिभ्य आहारम्। मदनमञ्जरि! मञ्जीरय लतामण्डपम्। शृंगारमञ्जरि! कल्पय शृंगाररचनाम्। सञ्जीवनिके! वितर जीवञ्जीवकमिथुनाय मरिच-

---

इति—किशोरस्य अश्वबालकस्य प्रत्यवेक्षाम् अवेक्षणं कुरु। प्रत्यवेक्षां श्रद्धायोगमिति वा। 'किशोरस्तुरगार्भकः।' इति बाणः। तरलिक इति—तरलय चञ्चलय विस्तारयेत्यर्थः। पयोधरभारं स्तनाभोगम्। पाण्डुरय—पाण्डुरं शुभ्रं कुरु। मातङ्गेति—मातङ्गशिशोः गजशावकस्य याचनां प्रार्थनाम् मानय अङ्गीकुरु। एष पुनः पुनः करचालनेन तव कुचौन्नत्यं स्वकुम्भयोः प्रार्थयते इति भावः। क्वचित् मातङ्गशिशुधावनम्—गजशावकस्य धावनं पलायनम्। मानय संभावय। धावन्तं गजबालकं त्वमनुधावेति भावः। ललाटपट्टे—मस्तके। शशिलेखां—चन्द्रकलासदृशं तिलकविशेषम्। विलिख—सिन्दूरादिभिः विरचयेत्यर्थः। यद्वा चन्द्राकृतिं विरचय स्मरविभीषिकार्थमिति भावः। 'शशिलेखा नाम चन्द्रप्रभेति व्यवह्रियमाण आभरणविशेषः। तां विलिख लम्बमानां कुरु' इत्यपरे। केतकिके—इति। केतकीमण्डपस्य दोहदं मनोरथं तद्वृद्धिसम्पादकं जलप्रदानादिकं कर्म सङ्केतय लालय कुर्वित्यर्थः। तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् 'पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया।' इति शब्दार्णवः। 'सङ्केतय जानीहि कस्मैचिद्वद वा'। 'दोहदो गर्भलक्षणे अभिलाषे तथा गर्भे' इति हैमः। इति दर्पणकारः। देहीति—क्रीडाशकुनिभ्यः क्रीडार्थं पञ्जरापदेषु स्थापितेभ्यः शकुनिभ्यः पक्षिभ्यः। देहि प्रयच्छ। मञ्जीरय—स्वसञ्चरणेन चरणाभरणयुक्तं कुरु। (विदलय—उद्घाटय।) कल्पय—उपपादय, कुरु। जीवञ्जीवकः चकोरः, अन्य एव कश्चित्पक्षिविशेषः इत्यन्ये, तस्मै। मरिचपल्लवं 'मिर्च' इति लोके प्रसिद्धस्य पदार्थविशेषस्य पत्रं वितर देहि। 'मरिचं

हे किशोरिके! अश्वशावककी देखरेख करो। हे तरलिके! काले अगरकी धूप जलाओ। हे कर्पूरिके! कर्पूररेणुसे अपने स्तनोंको शुभ्रकर। हे मातङ्गिके! हस्तिशावकके पीछे तुम भी दौड़ो। हे शशिलेखे! मस्तकपर चन्द्रकलाकार तिलक बनाओ। हे केतकिके! केतकीमण्डपके लिये दोहद—फलपुष्पादिकी पुष्टिके लिये क्रियाविशेषकर। हे शकुनिके! क्रीडापक्षियोंको भोजन दो। हे मदनमञ्जरी! लतामण्डपमें भ्रमण करो। हे कदलिके कदलीगृहको खोल। हे शृङ्गारमञ्जरी! सिन्दूर लगाओ। हे संजीवनिके! जीवजीवकके जोड़ेको मिरचके

पल्लवम् । पल्लविके ! पल्लवय कर्पूरधूलिभिः कृत्रिमकेतकीकाननम् । सहकारमञ्जरि ! संमार्जय श्रमोदकबिन्दून् सहकारसौरभंव्यजनवातेन । मदनलेखे ! विलिख मदनलेखं मलयानिलस्य, मकरिके ! मकराङ्कशोभिते ! देहि मृणालाङ्कुरं राजहंसशावेभ्यः। विलासवति ! विलासय मयूरकिशोरकम् । तमालिके ! लेपय मलयजरसेन भवनवाटम् । काञ्चनिके ! विकिर कस्तूरिकाद्रवं काञ्चनमण्डपिकायाम् । प्रवालिके ! सेचय घुसृणरसेन बालप्रवालकाननम् इत्यन्योन्यं प्रणयपेशलाः प्रमदानामालापकथाः शृण्वन् कन्दर्पकेतुर्मकरन्देन सह तद्भवनं प्राविशत् ।

कीलकं कृष्णम् ।' 'जीवञ्जीवश्चकोरकः' इत्यमरः । पल्लवय-अलङ्कुरु । संमार्जय-- अपनय । श्रमोदकबिन्दून् घर्माम्बुविप्रुषः । सहकारस्य आम्रविशेषस्य सौरभं सुगन्धः यस्मिन् तादृशेन व्यजनवातेन । मलयानिलस्य—तव प्रेमभाजनस्य तन्नामकस्य भर्तुः । मदनलेखः स्वस्य मदनावस्थासूचकः प्रियया प्रेयसे लिख्यमानो लेखो मदनलेखः तं लिख । मलयानिलस्य दक्षिणमारुतस्य मदनलेखं लिख । स्वावस्थां विनिवेद्य सन्तापकारिणं मलयानिलं सान्त्वयेति भावः, इत्यपरे । मकरांक-मीनध्वजः कामः तेन शोभिता तत्संबुद्धौ हे मकराङ्कशोभिते । विलासय—विशेषेण लासय नर्तय । मयूरकिशोरकं तरुणमयूरम् । 'किशोरस्तरुणे श्रेष्ठे' इति धरणिः । तमालिक इति । मलयजरसेन चन्दनद्रवेण, भवनवाटं गृहमार्गं लेपय लेपनं कारय । 'वाटः पथि वृतौ वाटं वरण्डेऽङ्गान्नभेदयोः ।' इति हैमः । 'परिमलय' इति दर्पणसम्मतपाठः । परिमलय सुगन्धितं कुरु । विकिर विक्षिप । घुसृणरसेन कुङ्कुमद्रवेण बालप्रवालकाननम् बालमभिनवं नवारोपितं यत् प्रवालकाननं विद्रुमभवनम् तत् सेचय सेचनं कुरु । 'कुङ्कुमं पीतकावेरं घुसृणं कुसुमान्तकम् ।' इति हारावली । 'प्रवालानां प्रकृष्टकेशानां काननं समूहः' इति दर्पणकारः। प्रणयपेशलाः स्नेहमनोरमाः। आलापकथाः वार्तालापाः ।

पत्ते दो । हे पल्लविके ! कृत्रिम केतकी वन कर्पूररेणुसे अलङ्कृतकर । हे सहकारमञ्जरी ! आम्रमञ्जरीकी गन्धसे सुरभित पङ्खेकी हवासे पसीनेकी बूँदें सुखाओ । हे मदनलेखे ! अपने पति मलयानिलको मदनलेख अपनी कामावस्थासूचकलेख लिखो । कामदेवसे सुशोभित हे मकरीके ! राजहंसके बच्चोंको मृणाल-अङ्कुर दो । हे विलासवति ! मयूरशावकको बचाओ ।। हे तमालिके ! चन्दनरससे गृह-मार्गका (अथवा बरंडा) सेचन करो । हे काञ्चनिके काञ्चनमण्डपमें कस्तूरी-जल छिड़को । प्रवालिके ! केशपाश जूड़ेमें केसर-रस डालो ।

अकरोच्च मनसि—अहो भुवनातिशायि सौन्दर्यम्। अहो शृंगारकलाकौशलम्। तथा ह्ययं तत्काललीलाबहलविरलविमलमालतीदशनकान्तिदन्तिदन्तघटितो मण्डपोऽसावपि कनकशलाकाविनिर्मितयन्त्रपञ्जरसंयतः क्रीडाशुकः इत्यादिपरिचिन्तयन्, प्रविश्य, व्याकरणेनेव सरक्तपादेन महाभारतेनेव सुपर्वणा रामायणेनेव सुन्दरकाण्डचारुणा जङ्घायुगलेन विराजमानाम्, छन्दोविचितिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्, नक्षत्रविद्या-

मनसीति—मनसि अकरोत् अचिन्तयदित्यर्थः। इत्यादि परिचिन्तयन् प्रविश्य वक्ष्यमाणस्वरूपां वासवदत्तां ददर्शेति संबन्धः। आदौ चिन्तास्वरूपमाह—अहो इत्यादिना। भुवनातिशायि लोकोत्तरमसाधारणम्। अहो इत्याश्चर्यद्योतकमव्ययम्। 'भवनानामतिशायि' इति दर्पणसम्मतपाठः। शृङ्गारेति—शृङ्गारकलाकेलिषु आद्यरससंबन्धिक्रीडासु नैपुण्यम्। तत्कालेति—तत्काले लीलाबहला विरला अनिबिडा विमलाः स्वच्छाः ये मालतीदशनाः मालतीदन्ताः तेषां कान्तिरिव कान्तिर्येषां तादृशैः दन्तिदन्तैः हस्तिदशनैः घटितो निर्मितः। मण्डपः—सभाभवनम्। कनकेति—कनकशलाकाभिः स्वर्णषीकाभिः निर्मितं यत् पञ्जरं तस्मिन् संयतो बद्धः। व्याकरणेनेव पाणिनिप्रोक्ताष्टाध्यायीरूपेणेव। सरक्तपादेन। एवंविधेन जंघायुगलेन विराजमानामित्यन्वयः। रक्तः स्वभावाल्लाक्षारसाच्च लोहितः यः पादः चरणः तत्सहितेन। पक्षे—रक्तपादः। रक्तार्थे प्रत्ययविधायकेन 'तेन रक्तं रागात्' इति सूत्रेण सहितः अष्टाध्याय्यां चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः तत्सहितेन। सुपर्वणेति—शोभनं पर्व ग्रन्थिः यस्य तादृशेन। पक्षे शोभनानि पर्वाणि अध्यायादिवत् अवान्तरविच्छेदसूचका भागाः तैः सहितेन। 'ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी' इत्यमरः। सुन्दरेति—सुन्दरेण मनोहरेण काण्डेन नालेन चारुणा मनोरमेण। सुन्दरकाण्डवच्चारुणेति वा। पक्षे सुन्दरकाण्डः रामायणांशविशेषः तेन चारुणा। अत्र न केवलं श्लेषवशादेव सुन्दरकाण्डोपादानमपि तु वस्तुतः रामायणे एष काण्डः काव्यदृष्ट्या मनोरमः' इति बोध्यम्। 'काण्डं चावसरे बाणे नाले स्कन्धे च शाखिनाम्। स्तम्बे रहसि वर्गे च' इति धरणिः। छन्दोविचितिः छन्दःस्वरूपप्रति-

उस समय उसके मनमें यह विचार उठा—यहाँका कैसा अलौकिक सौन्दर्य है? (यहांके निवासियोंकी) शृङ्गार-क्रीडामें कैसी चातुरी है? सोनेकी छड़ोंसे निर्मित पींजरेमें बंधा हुआ यह शुक है यह सोचते हुए उस भवनमें प्रविष्ट हो कन्दर्पकेतुने वासवदत्ता देखी। वह (वासवदत्ता) 'तेन रक्तं रागात्' इत्यादि सूत्रसे प्रारब्ध पादसमन्वित व्याकरण (अष्टाध्यायी) के समान स्वभावतः एवं लाक्षारससे रक्तवर्ण चरण-विभूषित, सुन्दर पर्वों-अध्यायों-से युक्त महाभारतके सदृश मनोरम घुटनेसे अलंकृत और सुन्दरकाण्ड द्वारा मनोहर रामायणके समान मनोरम अस्थिसे सुन्दर दोनों जंघाओंसे सुशोभित हो रही थी। 'तनुमध्या' नामक छन्दसे अलंकृत छन्दोविचिति (ग्रन्थविशेष) की तरह उसका

मिव गणनीयहस्तश्रवणाम्, न्यायस्थितिमिवोद्द्योतकरस्वरूपाम्, बौद्धसङ्गतिमिवालङ्कारभूषिताम्, उपनिषदमिवानन्दमेकमुद्द्योतयन्तीम्, द्विजकुलस्थितिमिव चारुचरणाम्, विन्ध्यगिरिश्रियमिव सुनितम्बाम्, तारामिव-

पादको ग्रन्थविशेषः। भ्राजमानेति—भ्राजमान शोभमानं तनोः शरीरस्य मध्यं मध्यप्रदेशोऽवलग्नं यस्याः तां तादृशीम्। तनु अल्पं मध्यमिति वा। 'मध्यमं चावलग्नं च मध्योऽस्त्री।' इत्यमरः। पक्षे तनु मध्या नाम वृत्तविशेषः। 'त्यौ स्तस्तनुमध्या।' इति तल्लक्षणम्। नक्षत्रविद्या ज्योतिःशास्त्रम्। गणनीयेति—हस्तौ च श्रवणे च एतेषां समाहारः हस्तश्रवणम्। प्राण्यङ्गत्वोदकवद्भावः। गणनीयम् उत्कृष्टतया गणयितुं योग्यं हस्तश्रवणं यस्याः तां तादृशीम्। पक्षे गणनीयौ संख्येयौ हस्तश्रवणौ नक्षत्रविशेषौ यस्यां सा तादृशीम्। न्यायस्थितिः न्यायमर्यादा। उद्द्योतेति—उद्योतकरं प्रकाशकारि प्रकाशमानमिति यावत्। तादृशं स्वरूपम् आकारोऽवयवो यस्याः सा तादृशी। उद्योतेति—उद्योतकरो न्यायवार्तिककृत् आचार्यः तेन स्वरूपं स्थितिः प्रतिष्ठेति यावत् यस्याः सा तथोक्ताम्। बौद्धैः खण्डितस्य न्यायशास्त्रस्य वार्तिककारेण पुनः स्थापनात्स्वरूपस्थितिरुक्ता। दर्पणकारस्तु 'उद्योतकर आचार्यो न्यायवार्तिककृत् तत्स्वरूपां तदात्मिकाम्। विघातद्धतोरभेदविवक्षात्र त्रिमुनिव्याकरणमितिवत्। भेदविवक्षायां तु उद्योतकरेण स्वरूपं यस्याः। उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ताकृता वार्तिककृता स्वरूपं यथाप्रतिपादितरूपं न तु खण्डितं भ्रष्टमित्यर्थः।' इत्याह। बौद्धेति—अलङ्कारैः भूषणैः भूषिताम्। पक्षे-धर्मकीर्तिनिर्मितेन ग्रन्थविशेषेण भूषिताम्। 'सत्कविकाव्यरचनाम्' इति पाठान्तरम्। सतः काव्यनिर्माणकुशलस्य कवे रचनां निर्माणमिवेति तदर्थः। अस्मिन्पक्षे अलङ्कारैः अनुप्रासादिभिः शब्दालङ्कारैश्च भूषिताम्। उपनिषदिति—उपनिषत् वेदान्तभागः। एकम् उत्कृष्टम् आनन्दम् आह्लादम् उद्योतयन्तीं प्रकाशयन्तीं जनयन्तीमिति यावत्। पक्षे—आनन्दं ब्रह्मानन्दमित्यर्थः। 'सदानन्दाम्' इति पाठान्तरम्। सदा सर्वकालेऽपि आनन्दः यस्यास्तां तथोक्ताम्। सन् आनन्दो यस्याः सा इति वा। पक्षे सच्छब्दस्य ब्रह्मवाचकत्वात् सदानन्दः ब्रह्मानन्दः अस्यामस्तीति ताम्। द्विजेति—द्विजकुलस्य ब्राह्मणकुलस्य स्थितिः मर्यादा आचारपद्धतिरिति यावत्। चार्विति—चारू मनोहरौ चरणौ

कृश मध्यभाग सुन्दरता पा रहा था। हस्त, श्रवण आदि गणनीय नक्षत्रोंसे युक्त नक्षत्रविद्याके समान उसके हाथ और कान सुन्दरताके कारण गणनीयोग्य थे। उद्योतकराचार्यके द्वारा प्रतिष्ठापित तर्कशास्त्रकी तरह उसके सब अवयव प्रकाशमान-शोभासंपन्न थे। 'उपमा' आदि अलंकारोंसे विभूषित उत्तम कविनिर्मित काव्यके समान वह भूषणोंसे सजी हुई थी। ब्रह्मानन्द देनेवाली उपनिषद्की तरह वह सदा आनन्दमें मग्न रहती थी। संसारको प्रकाशित करनेवाली सूर्यप्रभाके समान वह अपने सौन्दर्यसे समस्त जनोंको प्रफुल्लित करती

गुरुकलत्रतयोपशोभिताम्, शतकोटियष्टिमिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, प्रियङ्गु-श्यामासखीमिव प्रियदर्शनाम्, ब्रह्मदत्तमहिषीमिव सोमप्रभाम्, दिग्गज-करेणुकामिवानुपमाम्, रेवामिव नर्मदाम्। वेलामिव तमालपत्रप्रसाधि-

---

पादौ यस्याः सा तथोक्ताम्। पक्षे—चारु, रम्यं श्लाघ्यमित्यर्थः चरणमाचारः गोत्रं मूलं वा यस्यास्तथोक्ताम्। 'चरणोऽस्त्री बह्वृचादौ मूले गोत्रे पदेऽपि च।' इति मेदिनी। सुनितम्बेति—सु शोभनः नितम्बः कटिपश्चाद्भागः यस्याः सा तादृशीम्। पक्षे नितम्बः पर्वतकटकः। 'नितम्बः कटिरोधसोः। स्त्रियाः पश्चात् कटौ सानौ।' इति हैमः। तारामिवेति—तारा बृहस्पतिपत्नी। गुर्विति—गुरु विशालं कलत्रं श्रोणिः यस्याः सा गुरुकलत्रा तस्या भावः तया उपशोभिताम्। पक्षे-गुरोः सुरगुरोः बृहस्पतेः कलत्रतया भार्यात्वेनोपशोभिताम्। 'कलत्रं श्रोणिभार्ययोः' इयि विश्वः। शतकोटिः वज्रं तस्य यष्टिमिव। मुष्टीति—मुष्टिग्राह्यः अतिसूक्ष्म इति यावत्, मध्यं मध्यभागः यस्याः तादृशीम्। प्रियङ्ग्विति—प्रियङ्गुश्यामा नरवाहनदत्तमहिषी तस्याः सखी तामिव। प्रियेति—प्रियमाह्लादकरं दर्शनं यस्याः सा तथोक्ताम्। पक्षे—प्रियदर्शनेति सख्या नामधेयम्। ब्रह्मदत्तेति—ब्रह्मदत्तस्य राजविशेषस्य महिषीं राज्ञीमिव। सोमेति—सोमस्य चन्द्रस्येव सोमा रम्या वा प्रभा कान्तिर्यस्याः तादृशीम्। 'सोमो मनोहरे चन्द्रे' इति विश्वः। पक्षे-सोमप्रभेति तस्याः संज्ञा। दिग्गजेति-दिग्गजस्य कुमुदाख्यस्य करेणुकां पत्नीमिव। अनुपमाम् सादृश्यरहिताम्। पक्षे-तन्नामिकाम्। 'करिण्योऽभ्रमुः कपिला पिङ्गलानुपमा क्रमात्।' इत्यमरः। नर्मदामिति—नर्म क्रीडां ददातीति नर्मदा ताम्। पक्षे रेवाया एव नर्मदेति नामान्तरम्। वेला समुद्रतीरम्। 'वेला काले च सीमायामब्धेः कूलविकारयोः।' इति मेदिनी। तमालेति—तमालपत्रं तिलकं तेन प्रसाधितां भूषिताम्। पक्षे—तमालानां तापिच्छवृक्षाणां पत्रैः किसलयैः प्रसा-

---

थी। सदाचार-संपन्न ब्राह्मणकुलकी मर्यादाकी तरह उसके पैर परम मनोहर थे। वह तथा विन्ध्यगिरिशोभा अपने नितम्बों कटिपश्चाद्भाग एवं ढालू प्रदेशोंसे सुशोभित हो रहे थे। जिस तरह बृहस्पति-पत्नी तारा सुरगुरुकी भार्या होनेसे सुशोभित होती है। उसी तरह वह (वासवदत्ता) अपने भारी नितम्बसे सुशोभित हो रही थी। उसकी कमर (पतली होनेके कारण) मुट्ठीमें आ जाती थी अतएव वह वज्रयष्टिके समान प्रतीत हो रही थी। उसका दर्शन बड़ा ही मनोरम था अतः वह नरवाहनदत्तकी रानी प्रियङ्गुश्यामाकी सखी प्रियदर्शना मालूम पड़ रही थी। सोमप्रभा नामक ब्रह्मदत्तकी रानीकी तरह उसका सौन्दर्य सोम-चन्द्रमाके समान था। वह दिग्गजपत्नी अनुपमाके समान थी क्योंकि कोई उसकी (सौन्दर्यमें) समता नहीं कर सकता था। नर्मदा नाम धारण करनेवाली रेवानदीके समान वह क्रीडा-आनन्द-दायिनी थी। तमालपत्रोंसे विभूषित समुद्र-तटके समान वह तिलकसे

ताम्, अश्वतरकन्यामिव मदालसाम् वासवदत्तां ददर्श ।

अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबतः कन्दर्पकेतोर्जहार चेतनां मूर्च्छा । तमपि पश्यन्ती वासवदत्ता मुमूर्च्छ । अथ मकरन्दसखीजनप्रयत्नाल्लब्धसंज्ञावेतावेकासनमलञ्चक्रतुः । अथ वासवदत्तायाः प्राणेभ्योऽपि गरीयसि सर्वविस्रम्भपात्रं कलावती नाम सखी कन्दर्पकेतुमुवाच । 'आर्यपुत्र ! नायं विस्रम्भकथानामवसरः । अतो लघुतरमेवाभिधीयते ।

धितामलङ्कृताम् । 'तमालपत्रतिलकचित्रकाणि विशेषकम् ।' इत्यमरः । अश्वतरः विद्याधरराजः तस्य कन्यामिव । मदेति—मदेन यौवनजन्येन अलसां मन्दगतिम् । पक्षे-मदालसेति तस्या नाम । ददर्श अपश्यत् ।

अथेति—प्रीत्या स्नेहेन विस्फारितं विस्तारितं प्रफुल्लमिति यावत् । पिबतः सादरं पश्यतः । स्फुरतेर्ण्यन्तात् कर्मणि क्तः । 'चिस्फुरोर्णौ' इत्यात्वम् । चेतनां सञ्ज्ञाम् । जहार अपहृतवती । मूर्च्छा अचैतन्यम् । तमिति-तं कन्दर्पकेतुं पश्यन्ती वासवदत्ताऽपि मुमूर्च्छेति अपिर्भिन्नक्रमः । 'तमनु' इति पाठान्तरम् । तमनु कन्दर्पकेतुना सहेत्यर्थः । 'तृतीयार्थे' इत्यनोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां द्वितीयेति केचित् । 'अनुर्लक्षणे' इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञेति परे । मकरन्देति—मकरन्दस्य प्रयत्नेन उपचारेण कन्दर्पकेतुः सखीजनस्य प्रयत्नेन च वासवदत्ता लब्धसंज्ञौ प्राप्तचेतनौ एकम् अभिन्नम् आसनम् अलञ्चक्रतुः भूषितवन्तौ भेजाते इति यावत् । प्राणेभ्यः असुभ्यः । गरीयसी श्रेष्ठा प्रियेति यावत् । विस्रम्भपात्र विश्वासस्थानम् । आर्यपुत्रः—पतिः । यद्यपि 'आर्यपुत्रेति संबोध्यः पतिः पत्नीजनेन वा ।' इति भरतवचनात् भार्ययैव आर्यपुत्रेति वक्तव्यं तथाप्यत्र सख्या सहात्यन्तात्मीयत्वद्योतनाय कलावत्यापि प्रयुक्तमिदं पदम् । 'एतत्पूजावचनम्' इति केचित् । 'आर्यपुत्रेति राजपुत्राणामभिधानम् । आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः । राजा चेति निपातनात् इति परे ।' इत्यभिनवभट्टबाणाः । विस्रम्भकथानां सविश्वासं प्रेमालापानाम् । अवसरः समयः । लघुतरम्—अतिसंक्षिप्तम् । 'अभिधीयते'

अलंकृत हो रही थी । अश्वतर नामक विद्याधरकी कन्या मदालसाके समान वह यौवन-मदसे धीमे-धीमे विलासपूर्वक चलती थी ।

निर्निमेष दृष्टिसे उसे देखते हुए कन्दर्पकेतु मूर्च्छित हो गये । उसकी यह दशा देख वासवदत्ता भी मूर्च्छित हो गई । अनन्तर, मकरन्द तथा सखियोंके प्रयत्नसे वे दोनो होशमें आकर एक आसनपर बैठ गये । इसके बाद वासवदत्ताकी प्राणोंसे भी प्यारी अन्तरङ्ग सखी कलावतीने कन्दर्पकेतुसे कहा—हे आर्यपुत्र ! निश्चिन्त बैठकर प्रेमालाप करनेका यह समय नहीं है, इसलिये बहुत संक्षेपमें ही सब बातें कहे देती हूँ । इस (वासवदत्ता) ने तुम्हारे

त्वत्कृते याऽनया वेदनाऽनुभूता, सा, यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा। त्वयापि राज्यमुज्झितं किं बहुना—आत्मा संकटे समारोपित एव । एषाऽस्मत्स्वामिदुहिता प्रभातायां शर्वर्यां यौवनातिक्रमदोषशङ्किना पित्रा हठेन विद्याधरचक्रवर्तिनो विजयकेतोः पुत्राय पुष्पकेतवे पाणिग्रहणेन दातव्येति निश्चिता । अनयाचार्याऽस्माभिः सह सम्मन्त्र्यालोचितम्-अद्य यदि तं जनमादाय नागच्छति तमालिका, तदावश्यमेवाश्रयाश आश्रयितव्य इति ।

इति पाठे त्वमिति शेषः कर्मणि प्रत्ययः । त्वत्कृते त्वदर्थम् । 'तादर्थ्यार्थकस्य कृते इत्यव्ययस्य षष्ठ्यन्तेन युष्मच्छब्देन समासः । 'पूरणगुण-' इति षष्ठीसमासनिषेधस्तु कृदव्यय एव । 'यत्कृतेऽरीन् निगृह्णीमः । इति भट्टिः । वेदना दुःखम् । नभः आकाशम् । पत्रायते पत्रवत् आचरति पत्रं भवतीत्यर्थः । 'कर्तुः क्यङ्—' इति क्यङ् । मेलानन्दायते—मसीपात्रायते मसीपात्रं भवति । 'मेलानन्दो ।मसीपात्रम्' इति हारावली । लिपिकरायते—लिपिं करोतीति लिपिकरः लेखकः । लिपावुपपदे 'दिवा विभा—' इत्यादिना करोतेष्टप्रत्ययः । स इवाचरति इति लिपिकरायते लेखको भवतीत्यर्थः । कथको वक्ता स इवाचरति कथकायते । 'ब्रह्मायते लिपिकरः । भुजगराजायते कथकः ।' इति दर्पणसम्मतपाठः । 'ब्रह्मायते चिरजीवितार्थमिदम् । कथको वक्ता भुजगराजायते, योगशास्त्रप्रणेतृत्वेनान्तरभावाभिज्ञत्वार्थम्, शब्दशास्त्रार्णवपारावारीणत्वेन बहुमुखत्वेन बहुधाभिप्रायाविष्कारकर्तृत्वार्थं वैद्यकशास्त्राचार्यत्वेन विरहवेदनयाऽस्याः इयमवस्था न ज्वरादिजन्येति वक्तृत्वार्थम् चेदम् ।' इति तद्व्याख्यानम् । उज्झितम् त्यक्तम् । संकटे दुःखे । हठेन बलात्कारेण । 'प्रसभं तु बलात्कारो हठः ।' इत्यमरः । पाणिग्रहणेन—विवाहेन । संमन्त्र्य विचार्य । आलोचितं निश्चितम् । तम्—त्वल्लक्षणं जनम् । आश्रयाशः आश्रयं स्वावस्थानं काष्ठादिकमश्ना-

लिये जो कष्ट सहे हैं वे, यदि आकाशको कागज बना लिया जाय, समुद्र दावात हो जावे, ब्रह्मा लेखक हों और सर्पराज वक्ता–बोलनेवाले हो जावें, तो कदाचित् अनेक सहस्रयुगोंमें उसका कुछ भाव लिखा वा कहा जा सके। और तुमने भी राज्य छोड़ दिया अधिक क्या कहूँ–तुमने अपने आपको संकटमें ही डाल दिया है। हमारी इस राजपुत्रीको प्रातःकाल, इसके पिताने यौवनका उल्लंघन करनेमें दोषकी संभावनाकर, जबर्दस्ती ही विद्याधरचक्रवर्ती विजयकेतुके पुत्र पुष्पकेतुको देना निश्चय करलिया है। इधर इस आर्या वासवदत्ताने हमलोगोंके साथ विचारकर निश्चय किया है कि––यदि आज तमालिका उनको (कन्दर्पकेतुको) लेकर न आवेगी तो निश्चय ही अग्निदेवकी शरण लूँगी। पुण्यवश आप आगये

सुकृतवशाच्च महाभागः समागतः। तदत्र यत् साम्प्रतं तत्रभवानेव प्रमाणम्। इत्युक्त्वा विरराम।

अथ कन्दर्पकेतुर्भीतभीत इव, प्रणयानन्दामृतसागरलहरीभिराप्लुत इव, भुवनत्रयराज्याभिषिक्त इव, वासवदत्तया सह सम्मन्त्र्य, मकरन्दं वार्तान्वेषणाय तत्रैव नगरे नियुज्य, भुजङ्गेनेव सदागत्यभिमुखेन सरित्पतिनेव शुक्तिशोभितेन, विन्ध्यविपिनेनेव श्रीवृक्षलाञ्छितेन, हंसेनेव

तीति आश्रयाशो वह्निः। कर्मण्यण्। 'आश्रयाशः पुमान् वह्नौ त्रिषु चाश्रयनाशके।' इति कोशः। आश्रयितव्यः सेवनीयः। अग्नौ पतितव्यमिति भावः। सुकृतवशात्—पुण्यवशात्। महाभागः भाग्यवान्। 'भागो भाग्यैकदेशयोः' इति विश्वः। साम्प्रतम् युक्तम्। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने।' इत्यमरः। प्रमाणं निर्णेता। 'प्रमाणं हेतुमर्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु।' इत्यमरः। विरराम तूष्णीं बभूव। 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम्।

अथात—भीतभीतः—अत्यन्तं भीतः। 'अननुभूतपुरुषसङ्गेयं मा कदाचिदुद्विग्नाऽभूत् तथा सति रसभेदः स्यात् इति सभय इवेत्यर्थः।' इति दर्पणकारः। प्रणयेति—प्रणयेन प्रेम्णा जातः आनन्दः प्रणयानन्दः स एव अमृतसागरः सुधापरिपूर्णः समुद्रः तस्य लहरीभिर्वीचीभिः आप्लुतः सिक्त इव। 'सप्रश्रयमानन्दसागर—' इति दर्पणसम्मतपाठः। भुवनेति—भुवनत्रयस्य लोकत्रयस्य राज्ये अभिषिक्तः कृताभिषेकः प्रतिष्ठापित इव। संमन्त्र्य विमृश्य। 'सप्रश्रयं सविश्वासं वासवदत्तया संमन्त्र्य सख्याः कामचारानुज्ञां विधाय तया सह रतिं कृत्वेत्यर्थः।' इति दर्पणकारः। सदेति—सदा सर्वदा गतौ गमने अभिमुखेन सोत्साहेन। पक्षे—सदागतौ वायौ विषये अभिमुखेन संमुखेन। वायुग्रहणार्थं तत्संमुखेनेत्यर्थः। 'वायुर्मातरिश्वा सदागतिः।' इत्यमरः। सरित्पतिः समुद्रः। शुक्तीति—शुक्त्या आवर्तेन शोभितः। अश्वानामुरसि रोमावर्तः प्रशस्यते। पक्षे—शुक्तिः मुक्तास्फोटः तया शोभितेन। 'शुक्तिः कपालशकले शङ्खे शङ्खनकेऽपि च। नख्यश्चावर्तदुर्नाममुक्तास्फोटेषु च स्त्रियाम्।' इति मेदिनी। श्रीवृक्षेति—श्रीवृक्षोऽश्वस्योरसि आवर्तविशेषः। पक्षे—श्रीवृक्षः पिप्पलवृक्षः। 'श्रीवृक्षो

हैं। अब जो कुछ करना उचित हो वह आप ही जानें। यह कहकर वह चुप हो गई।

अनन्तर, कन्दर्पकेतुने अत्यन्त भयभीत हो तथा प्रेम और आनन्दरूपी अमृतसागरकी लहरोंसे स्नानसा कर वासवदत्ताके साथ सलाह करके मकरन्दको समाचार जाननेके लिये उसी नगरमें नियुक्त करदिया और स्वयं, वायुके सम्मुख स्थित सर्पके समान सर्वदा चलनेके लिये उत्साहित, शुक्ति-शंखोंसे सुशोभित समुद्रकी तरह शुक्ति-मस्तक तथा छातीपर बनी हुई भौरों-से अलंकृत, श्रीवृक्ष-अश्वत्थ (पीपल) से विभूषित विन्ध्याटवीके समान श्रीवृक्ष-हृदयस्थित आवर्त विशेषसे चिह्नित, मानसरोवरके प्रति जानेवाले हंसके समान अत्यन्त

मानसगतिना, अरण्येनेव गण्डशोभितेन, वनस्पतिनेव स्कन्धशोभितेन, वज्रेणेवेन्द्रायुधेन, मनोजवनाम्ना तुरगेण तया सह नगरान्निर्जगाम ।

ततः क्रमेण गव्यूतिमात्रमध्वानं गत्वा, नरजाङ्गलकवलनाभिलाषमिलितनिःशङ्ककङ्ककुलसंकुलेन अर्धदग्धचिताचक्रसिमसिमायमानवसा-

---

वक्षसि चेद्रोमावर्तो मुखेऽपि च ।' इति वैजयन्ती । 'अश्वत्थः श्रीवृक्षः कुञ्जराशनः ।' इति हैमः । मानसेति—मानसस्य मनस इव गतिः गमनं वेग इति यावत्, यस्य सः, तेन । पक्षे-मानसं मानसरोवरं प्रति गतिर्यस्य तेन । वनस्पतिनेव वृक्षेणेव । स्कन्धेति—स्कन्धेन अंसेन भुजमूलेन शोभित इति स्कन्धशोभितः तेन । पक्षे—स्कन्धेन प्रकाण्डेन मूलादारभ्य शाखावधिभागेन शोभितः । 'स्कन्धः प्रकाण्डे कोषांऽसे विज्ञानादिषु पञ्चसु । नृपे समूहे व्यूहे च ।' इति हैमः । गण्डेति—गण्डः बुद्बुदाकारं ह्यश्वभूषणम् । पक्षे—खड्गिमृगः । 'गण्डः स्यात्पुंसि खड्गिनि । ग्रहयोगप्रभेदे च वीथ्यङ्गे पिटकेऽपि च । चिह्नवीरकपोलेषु ह्यश्वभूषणबुद्बुदे ।' इति मेदिनी ॥ इन्द्रेति—इन्द्रायुधः कृष्णनेत्रोऽश्वः । 'मल्लिकाक्षः सितैर्नेत्रैः स्याद्वाजीन्द्रायुधोऽसितैः । इति शिलोञ्छः । पक्षे—इन्द्रस्य आयुधेन । तुरगेण वाजिना । निरगात् निर्जगाम । इण् धातोर्लुङि 'इणो गा लुङि' इति गादेशः ।

तत इति—एवंविधेन श्मशानवाटेन निर्गत्य एवंविधां विन्ध्याटवीं विवेशेत्यन्वयः । गव्यूतिमात्रम्—क्रोशद्वयपरिमितम् । 'गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्' इत्यमरः । गव्यूतिः प्रमाणं यस्य स गव्यूतिमात्रः तम् । 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' इति मात्रच्प्रत्ययः । नरेति—नरजाङ्गलस्य नरमांसस्य कवलनाभिलाषेण ग्रासेच्छया मिलितं यत् निःशङ्कानां निर्भयाणां कङ्काणां पक्षिविशेषाणां कुलं समूहः तेन सङ्कुलेन व्याप्तेन । 'जाङ्गलं जलदेशे स्याज्जाङ्गलं पिशितेऽपि च ।' इति विश्वः । अर्धेति—अर्धदग्धे चिताचक्रे चितामण्डले सिमसिमायमानया सिमसिमेति शब्दं कुर्वत्या वसया मेदसा विस्रः आमगन्धिः विकटः भीषणः यः कटः शवः तस्य तृष्णया भक्षणलिप्सया चटुलानां चञ्चलानां कटपूतनानां निशाचराणाम्, उत्तालानां भयङ्कराणां वेतालानाञ्च भूतविशेषाणाञ्च रवेण शब्देन भीषणेन भयावहेन । सिमसिमायमाने-

---

वेगवान्, गैंडोंसे विभूषित वनके समान गण्डनामक अश्व-भूषणालङ्कृत, तनेसे सुशोभित वृक्षकी तरह स्कन्ध-गरदनसे अलङ्कृत और इन्द्रके शस्त्र वज्रके समान कृष्णनेत्र मनोजवनामक अश्वपर चढ़कर वासवदत्ताके साथ नगरसे निकल गया ।

अनन्तर, वहांसे चलकर लगभग चार मील चलकर एक श्मशानभूमिमें पहुँचा । वहां (श्मशानमें) कहीं मनुष्य-मांस खानेकी इच्छासे कङ्क-बकविशेष एकत्रित हो निर्भयताके साथ घूम रहे थे । कहीं अधजली चितामें सिमसिमाती हुई वसाकी गन्धसे भीषण मुर्दोंको

विस्त्रविकटकटतृष्णाचटुलकटपूतनोत्तालवेतालरत्रभीषणेन, शूलशिखरारोपितशङ्कितवर्णकर्णनासिकच्छेदरुधिरपटलपतितझाङ्कारिकरकोटिकर्परकरालकौणपनृत्ततुमुलेन भम्भरालीकेलिसम्भारभरितभूमिभागबीभत्सेन, कटाग्निदह्यमानपटुचटचटन्नृकरोटिटङ्कारभैरवरवेण, विवृतोल्कामुखीमुखज्वलज्ज्वलनज्वालाजटिलेन, आन्त्रतन्तुप्रोतकपालकलितकुचप्रालम्ब-

---

स्यन्त्र सिमशब्दात् 'अव्यक्तानुकरणात्' इति डाचि 'डाचि बहुलं द्वे' इति द्वित्वे क्यषि 'वा क्यषः' इति पाक्षिकमात्मनेपदम् । 'कटः समयबन्धेऽपि तृणेऽपि मृतकेऽपि च ।' इति विश्वः । शूलेति—शूलशिखरे शूलाग्रभागे आरोपितस्य शङ्कितवर्णस्य चौरस्य कर्णनासिकच्छेदेन कर्णौ च नासिका चेति कर्णनासिकं समाहारद्वन्द्वे प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः तस्य छेदेन कर्तनेन यत् रुधिरपटलपतनं रक्तसमूहस्रावः तेन झङ्कारिणः झंझमिति शब्दयुताः ये करकोटिकर्पराः हस्ताग्रभागस्थितकपालाः तैः करालाः भीषणाः कौणपा राक्षसाः तेषां नृत्तेन तुमुलं व्याप्तम् । 'चोरः शङ्कितवर्णश्च कुसुमाक्षः प्रकीर्तितः ।' इत्युत्तरतन्त्रम् । 'कौणपोऽसृप राक्षसः ।' इत्यमरः । भम्भरालीति—भम्भरालीनां मक्षिकाणां केलिसम्भारेण इतस्तत उड्डयनरूपेण क्रीडासमूहेन भरितः पूर्णः भूमिभागः भूप्रदेशः तेन बीभत्सेन घृणास्पदेन । 'मस्सरा मक्षिका ज्ञेया भम्भराली च सा मता ।' इति हारावली । कटेति—कटाग्निना तृणाग्निना कटाग्नौ वा दह्यमाना, पटुः तीव्रः भीषण इति यावत्, चटत्कारः चटचटाशब्दो यस्याः तादृशी या नृकरोटिः मनुष्यशिरोऽस्थि तस्याष्टङ्कारेण भैरवरवः भीषणशब्दो यस्मिन् स तथोक्तेन । 'पटुस्तीक्ष्णे स्फुटे दक्षे निष्ठुरे निर्दयेऽपि च ।' इति रुद्रः । 'शिरोऽस्थनि करोटिः स्त्री ।' इत्यमरः । विवृतेति—विवृतानि व्याप्तानि उल्कामुखीनां शृगालीनां यानि मुखानि तेषु ज्वलतः ज्वलनस्य अग्नेः ज्वालया जटिलेन व्याप्तेन । शृगालीनां मुखेषु उल्का विद्यन्त इति लोकप्रसिद्धिः । 'उल्कामुखी शृगाली स्यात् ।' इत्यमरः । आन्त्राणि पुरीतन्ति एव तन्तवः सूत्राणि तेषु तैर्वा प्रोतानि कपालान्येव कलिताः

खानेके लिये लपलपाते हुए पिशाचों एवं भीषण वेतालों—भूताविष्ट शवों—के शब्दसे वह बड़ा डरावना हो रहा था । कहीं पर राक्षस हाथमें, शूल-शिखरपर चढ़े हुए चोरके नाक तथा कानोंसे बहते हुए रुधिरके गिरनेसे टं टं शब्दयुक्त खप्पर लिये नाच रहे थे । कहीं, मुर्दोंपर उड़ती हुई मक्खियोंसे परिपूर्ण स्थानसे वह बीभत्स-घिनौना-हो रहा था । कहीं अग्निमें जलती हुई तथा भीषणताके चट-चट शब्द करती हुई मनुष्यकी खोपड़ीके शब्दसे वह भयानक हो रहा था । कहीं सियारियोंके खुले हुए मुखमें जलती हुई अग्नि-शिखाओंसे व्याप्त हो रहा था । कहीं अंतड़ियोंमें पिरोए हुए कपोलोंसे युक्त कुचरूपी मालाओंसे भीषण डाकिनियोंका समूह मुर्दोंका विभाग करनेके लिये कोलाहल कररहा था । कहीं गीली-

डामरडाकिनीगणकृतकुणपविभागकोलाहलेन, आर्द्रसिरारचितविवाहमङ्गलप्रतिसरपिशाचमिथुनप्रदक्षिणीक्रियमाणचितानलेन, शूलपाणिनेव कपालावलिशिवाबहुभूतिभुजगराजावरुद्धदेहेन, पुरुषातिशयेनेव अनेकमण्डलकृतसेवेन, दण्डकारण्येनेव कबन्धाधिष्ठितेन, चक्रवर्तिनेव अनेकनरेन्द्र-

---

धृताः कुचयोः पयोधरयोः प्रालम्बाः लम्बमाना हारास्तैः डामरो भीषणो यः डाकिनीगणः भूतविशेषसमूहः तेन कृतेन कुणपानां शवानां विभागेन जनितः कोलाहलो यत्र तादृशेन। आर्द्रेति—आर्द्रसिराभिः रुधिरार्द्रनाडीभिः रचितः विवाहमङ्गलप्रतिसरः विवाहे मङ्गलार्थं धार्यमाणं हस्तसूत्रं यस्य तादृशं यत् पिशाचमिथुनं भूतस्त्रीपुरुषयोः युगलं तेन प्रदक्षिणीक्रियमाणः चितानलः चिताग्निर्यत्र तादृशेन। शूलपाणिः शिवः। कपालेति— कपालावलिभिः शिरोऽस्थिसमूहेन शिवाभिः गोमायुभिः बहुभूतिभिः प्रचुरभस्मभिः भुजगराजेन च अवरुद्धो व्याप्तः देहः प्रदेशो यस्य तादृशेन। पक्षे—शिवा पार्वती। अन्यत सर्वं पूर्ववत्। 'श्मशानवाटपक्षे—भूतिः भस्म, अङ्गारविपक्कं मांसं वा, भुजो बाहुः, गरः गलः, एतान् अदन्ति भक्षयन्तीति भूतिभुजगरादाः गृध्रादयः तैः अवरुद्धा देहाः मृतदेहा यस्मिन् तेन। उदीच्यानां दजयोरभेद इति कश्चित्।' इत्यभिनवभट्टबाणाः। पुरुषेति—पुरुषानतिशेत इति पुरुषातिशयः पुरुषश्रेष्ठो नृपः। बाहुलकात्कर्तरि 'एरच्' इत्यच्। 'पुरुषेष्वतिशयो यस्य स महाराजः' इति दर्पणकारः। अनेकेति—अनेकैः मण्डलैः श्वभिः कृता सेवा यस्य तादृशेन। अनेकसारमेयविशिष्टेनेत्यर्थः। पक्षे अनेकैर्मण्डलैः देशैः तत्रस्थैर्जनैरिति भावः, कृता सेवा यस्य तथोक्तेन।। 'मण्डलं परिधौ कुष्ठे देशे द्वादशराजसु।' इति मेदिनी। कबन्धेति—कबन्धैः अपमूर्धकलेवरैः अधिष्ठितेन युक्तेन। पक्षे कबन्धो दनुकबन्धः। विश्वावसुर्नामगन्धर्वो ब्रह्मशापेन कबन्धतामवापेति पौराणिकी वार्ता। 'कबन्धमुदके रुण्डे कबन्धो राहुरक्षसोः।' इति हैमः। अनेकेति—अनेकैः नरेन्द्रैः विषवैद्यैः परिवृतेन। पक्षे नरेन्द्रैः राजभिः परिवृतेन। विषवैद्या मन्त्रसाधनाय श्मशाने जपन्तीति

रुधिरसे सनी हुई-नाड़ियों द्वारा निर्मित विवाहका माङ्गलिक सूत्र बांधे हुए पिशाच-युवक-युवतियाँ (जोड़े) चिताग्निकी प्रदक्षिणा कररही थीं। कहीं, खप्पर, पार्वती, भस्म और सर्पोंसे जिनका शरीर व्याप्त हो रहा है ऐसे महादेवके समान, वह खोपड़ी, सियार, राख और बाहु, गला आदि शरीरावयव खानेवाले गृध्र आदिसे भर रहा था। कहीं अनेक देशवासीजनोंसे सेव्यमान राजाके समान उसमें अनेक कुत्ते घूम रहे थे। कहीं, दनुकबन्ध नामक राक्षससे अधिष्ठित दण्डकारण्यकी तरह उसमें अनेक धड़ पड़े हुए थे। कहीं अनेक राजाओंसे परिवृत सम्राट्के समान अनेक विषवैद्योंसे परिपूर्ण हो रहा था।

परिवृतेन, श्मशानवाटेन निर्गत्य, निमेषमात्रादेवानेकशतयोजनमध्वानं गत्वा- पुनरपि, प्रलयकालवेलामिव समुदितार्कसमूहाम्, नागराज्यस्थितिमिव अनन्तमूलाम्, सुधर्मामिव स्वच्छन्दस्थितकौशिकाम्, सत्पुरुषसेवामिव बहुश्रीफलाढ्याम्, भारतसमरभूमिमिव दूरप्ररूढार्जुनाम्, पुलोमकुलस्थितिमिव सहस्रनेत्रोचितेन्द्राणीम्, शूलपालचित्त-

---

लोकप्रसिद्धिः। 'नरेन्द्रस्तु महीपाले विषवैद्ये च।' इति विश्वः। श्मशानवाटेन श्मशानमार्गेण। शवाः शेरतेऽत्रेति श्मशानं पृषोदरादित्वात्साधुः। 'वाटो मार्गे वृतिस्थाने स्यात्कुटीवास्तुनोः स्त्रियाम्।' इति मेदिनी। वेला समयः। अर्काः एतन्नाम्ना प्रसिद्धाः लघुवृक्षाः। पक्षे सूर्याः। अनन्तेति—अनन्तानि असंख्येयानि मूलानि शिफा यस्यां सा, तथोक्ताम्। पक्षे-अनन्तः शेषः मूलमादिकारणं यस्याः सा, तादृशीम्। 'अनन्तः केशवे शेषे पुमान्निरवधौ त्रिषु।' इति मेदिनी। सुधर्मामिव देवसभामिव। स्वच्छन्देति—स्वच्छन्दं स्वैरं स्थिताः कौशिका उलूका यस्यां तां तादृशीम्। पक्षे—कौशिकः इन्द्रः। 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः।' इत्यमरः। बहुश्रीति—बहुभिः श्रीफलैः बिल्ववृक्षैः आढ्यां परिपूर्णाम्। पक्षे—बहु श्रीरेव फलं तेन आढ्याम् युक्ताम्। बहुलाभप्रदामित्यर्थः। 'बिल्वे शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि।' इत्यमरः। दूरेति—दूरमत्यन्तं प्ररूढाः समुत्पन्नाः अर्जुनाः ककुभवृक्षा यस्याम् तां तथोक्ताम्। पक्षे—दूरप्ररूढः अत्यन्तं विख्यातः अर्जुनः पार्थो यत्र तादृशीम्। 'अर्जुनः ककुभे पार्थे' इति मेदिनी। पुलोमेति—पुलोमा शचीपिता असुरविशेषः। सहस्रेति—सहस्रनेत्रैः सहस्रमूलैः उचिता योग्या व्याप्तेति यावत् इन्द्राणी शतावरी यस्यां तादृशीम्। 'चारुधारा महेन्द्राणी शक्राणी जयवादिनी।' इति रभसः। इन्द्राणी सिन्धुवारो वा। 'इन्द्राणी करणे स्त्रीणां पौलोमीसिन्धुवारयोः'। इति मेदिनी। 'नेत्रं मथिगुणे वस्त्रे तरुमूले विलोचने।' इति विश्वः। पक्षे—सहस्रनेत्राय इन्द्राय उचिता योग्या इन्द्राणी पुलोमतनया यस्याम्

उस श्मशानसे निकलकर वे क्षणभरमें सैकड़ों योजन रास्ता तैकर विन्ध्याटवीमें प्रविष्ट हुए। जिसमें अनेक सूर्योंसे युक्त प्रलयकालीन समयके समान सैकड़ों आकके पेड़ उगे हुए थे। अनन्त-शेष-नाग जिसका आदि पुरुष है ऐसी नागराज्यकी स्थितिके समान जिसमें अनन्त जड़ें थीं। जिस प्रकार देवसभामें इन्द्र स्वच्छन्दतासे सुशोभित होते हैं इसी तरह उसमें उलूक स्वच्छन्द विचर रहे थे। लक्ष्मीरूपी फलसे संपन्न सत्पुरुषोंकी सेवाके समान वह बिल्ववृक्षोंसे परिपूर्ण थी। अत्यन्त प्रसिद्ध अर्जुनका वर्णन करनेवाली भारतीय युद्धभूमिके समान उसमें ऊँचे-ऊंचे अर्जुन नामक वृक्ष उगे हुए थे। जिस तरह इन्द्रके योग्य शचीके कारण पुलोमवंश शोभित होता है उसी तरह वह हजारों मूलोंसे व्याप्त सिन्धुवार-

वृत्तिमिव फलितगणिकारिकाम्, सज्जनसंपदमिव विकसिताशोकसरल-पुन्नागाम्, शिशुजनलीलामिव कृतधात्रीधृतिम्, क्वचिद्राघवचित्तवृत्ति-मिव वैदेहीमयीम्, क्वचित्क्षीरसमुद्रमथनवेलामिव उज्जृम्भमाणामृताम्,

---

तां तथोक्ताम्। शूलेति—शूलपालो वेश्यापालो वैशिको वा तच्चित्तवृत्तिमिव। शूरपालेति पाठान्तरम्। 'शूरपालः ज्योतिःशास्त्रपारगः कश्चिद्वणिक् तेन गणनोपयोगिनी कारिका कृतेति प्रसिद्धिः। इति सम्प्रदाय' इति अभिनवभट्टबाणाः। फलितेति—फलिता सफला वैशिकेभ्यो धनलाभाद् गणिकानां वेश्याजनानाम् आरिका गतिः आकारणं वा यस्यास्ताम्। 'ऋ गतौ' अस्माद् धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्। आकारणार्थे आङ्पूर्वः। प्रत्ययस्थादितीकारः। पक्षे—गणिकारिका वृक्षविशेषः।'। इति दर्पणकारः। 'दर्शितगणिकारिका' इति पाठमभ्युपगम्य दर्शिता गणिकारिका श्रीपर्णवृक्षो यया तां तथोक्ताम्। पक्षे—दर्शिता गणीनां गणकानां गणनानां वा कारिका संग्रहश्लोकः यया तां तादृशीम्। 'कारिका तु स्वल्पवृत्तौ बहोरर्थस्य सूचनी।' इति हेमचन्द्रः। 'श्रीपर्णमग्निमन्थः स्यात्कणिका गणिकारिका' इत्यमरः। इति अभिनवभट्टबाणाः। विकसितेति—विकसिताः फुल्लाः अशोकाः सरलाः पुन्नागाश्च यस्यां ताम् तथोक्ताम्। पक्षे—विकसिता हृष्टा अशोकाः शोकरहिताः दारिद्र्यादिदुःखाभावात्। सरला उदाराः पुन्नागाः पुरुषश्रेष्ठाः यस्यास्तां तथोक्ताम्। 'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः।' इत्यमरः। कृतेति—कृता धात्र्या आमलक्या धृतिः अवस्थानं यस्यां तां तथोक्ताम्। पक्षे—कृता धात्र्याः उपमातुः मातुर्वा धृतिः सन्तोष इति यावत् यया सा तां तादृशीम्। वैदेहीति—वैदेही पिप्पली तन्मयीं तत्प्रचुराम्। प्राचुर्ये मयट्। पक्षे—वैदेही सीता। 'वैदेही रोचनासीतावणिक्स्त्रीपिप्पलीष्वपि।' इति विश्वः। उज्जृम्भणेति—उज्जृम्भमाणा विकसिता प्रवर्धमाना वा अमृता गुडूची यस्यां तां तथोक्ताम्। पक्षे—अमृतं सुधा। 'गुडूची तन्त्रिकामृता।'

संभाल् वृक्ष-से परिपूर्ण हो रही थी। गणनासंबन्धी कारिका-संग्रहश्लोक-का निर्माण करने-वाले ज्योतिःशास्त्रपारङ्गत शूरपाल नामक वैश्यकी वृत्ति-व्यवहारके समान वह श्रीपर्ण-वृक्षोंको प्रदर्शित कर रही थी। कहीं जिसके द्वारा सज्जनगण प्रसन्न, शोकरहित और सरल बन जाते हैं ऐसी साधुजनोंके ऐश्वर्यके समान उसमें अशोक, सरल, पीतदारु तथा नागकेसर वृक्ष विकसित हो रहे थे। कहीं माताको संतोषदायक बालक्रीडाके समान उसने अनेक हरीतकी वृक्ष धारण किये हुए थे। कहीं सीतामय रामचन्द्रकी मनोवृत्तिके समान वहां पिप्पली वृक्षोंकी प्रचुरता थी। कहीं जिस प्रकार क्षीर-सागरके मथन समय अमृत निकल रहा था उसी तरह उसमें अमृत-गुडूची विकसित हो रही थी। कहीं स्वच्छ तथा अनभिभूत

क्वचिन्नारायणशक्तिमिव स्वच्छन्दापराजिताम्, क्वचिद्वाल्मीकिसरस्वतीमिव दर्शितेक्ष्वाकुवंशाम्, क्वचिल्लङ्कामिव बहुपलाशसेविताम्, क्वचित्कुरुसेनामिव अर्जुनशरनिकरपरिवारिताम्, क्वचिन्नारायणमूर्तिमिव बहुरूपाम्, सुग्रीवसेनामिव पनसचन्दनकुमुदनलसेविताम्, क्वचिदविधवामिव सिन्दूरतिलकभूषिताम् प्रवालाभरणाञ्च, क्वचित्कुरुसेनामिव उलूकद्रोण-

'पीयूषममृतं सुधा।' इत्यमरः। स्वच्छन्देति—स्वच्छन्दं निराबाधं प्रवहत् अपां समूहः आपं तेन राजितां शोभिताम्। स्वच्छन्दा निरर्गलप्रसृता अपराजिता विष्णुक्रान्ता यस्यामिति वा। 'विष्णुक्रान्ताऽपराजिता' इत्यमरः। पक्षे—स्वच्छन्दा स्ववशा पराजयरहिता च। 'स्वच्छापराजितेति' पाठान्तरम्। तत्र तत्र स्वच्छेन निर्मलेन आपेन अपां समूहेन राजिताम्। दर्शितेति—दर्शिताः प्रकटिताः इक्ष्वाकवः कटुतुम्ब्यः वंशा वेणवो यया सा तां तथोक्ताम्। पक्षे—इक्ष्वाकोः वैवस्वतमनोः पुत्रस्य वंशः कुलं यस्यां तां तथोक्ताम्। बह्विति—बहुभिः पलाशैः किंशुकवृक्षैः राक्षसैश्च सेवितां युक्ताम्। 'पलाशः किंशुकेऽस्रपे' इत्यमरः। अर्जुनेति—अर्जुनो वृक्षविशेषः, शरः तृणविशेषः तयोः निकरेण समूहेन परिवारिताम् युक्ताम्। पक्षे—अर्जुनस्य पार्थस्य शरनिकरेण बाणसमूहेन परिवारितां वेष्टितां युक्तां वा। बह्विति—बहवो रूपाः पशवो यस्यां सा ताम्। पक्षे—बहूनि अनेकानि रूपाणि स्वरूपाणि यस्याः ताम्। 'रूपं तु श्लोकशब्दयोः। पशावाकाशे सौन्दर्ये नाणके नाटकादिके। ग्रन्थावृत्तौ स्वभावे च।' इति हैमः। पनसेति—पनसः कण्टकिफलः चन्दनं पाटीरं कुमुदं कैरवं, नलः तृणविशेषः। एतैः सेविताम्। पक्षे—पनसादयो वानरविशेषाः। 'पनसः कण्टकिफले कण्टके कपिरुग्भिदोः।' 'चन्दनं मलयोद्भवे। चन्दनः कपिभेदे स्यात्।' 'कुमुदं कैरवे रक्तपङ्कजे कुमुदः कपौ। दैत्यान्तरे च दिङ्नागयोगयोरपि कीर्तितः।' इति विश्वः। सिन्दूरेति—सिन्दूरतिलकौ वृक्षविशेषौ। पक्षे—सिन्दूरस्य रक्तचूर्णस्य तिलकेन भूषिताम्। 'सिन्दूरस्तरुभेदे स्यात् सिन्दूरं रक्तचूर्णके' इति विश्वः। 'तिलकः क्षुरकः श्रीमान्।' इत्यमरः। प्रवालेति—प्रवालाभरणां नवपल्लवा-

नारायण-शक्तिके समान उसमें निर्मल जलवाली नदियाँ बह रही थीं, कहीं, इक्ष्वाकुवंशका प्रदर्शन-वर्णन करनेवाली भगवान् वाल्मीकि की वाणीकी तरह वह इक्ष्वाकु-कड़वी तूंबी (तितलौकी) और वेणुका प्रदर्शन कर रही थी। कहीं, अनेक राक्षस-परिपूर्ण लंकाके समान उसमें पलाश वृक्ष-ढाक खड़े हुए थे। कहीं, अर्जुनके बाणोंसे व्याप्त दुर्योधन-सैन्यके समान अर्जुन-घास तथा नकुलोंसे व्याप्त हो रही थी। कहीं, अनेकरूप धारण करनेवाली नारायणमूर्तिकी तरह उसमें हजारों पशु घूम रहे थे। कहीं, पनस, नल तथा कुमुद नामक वानरोंसे अधिष्ठित सुग्रीव-सेनाके समान उसमें कटहर, नरकुल तथा कैरव व्याप्त हो रहे थे। कहीं, सिन्दूर-तिलकविभूषित तथा अलकावली-सुशोभित सुहागिनकी तरह सिन्दूर

शकुनिसनाथाम् धार्त्तराष्ट्रान्वितां च ?, अम्लानजातिभूषितामपि विरुद्ध-वंशाम्, दर्शिताभयामपि विभीषणाम्, सततहितपथ्यामपि प्रवृद्धगुल्माम्,

---

भरणाम्। पक्षे—प्रकृष्टा बालाः केशा विद्रुमा आभरणं यस्याः तां तथोक्ताम्। उलकेति—उलूकः कौशिकः, द्रोणः काकः, शकुनिः पक्षी, तैः सनाथां युक्ताम्। पक्षे—उलूकः शकुनिपुत्रः, द्रोणः द्रोणाचार्यः, शकुनिः दुर्योधनमातुलः। तैः सनाथां सहिताम्। धार्तराष्ट्रा राजहंसविशेषाः, धृतराष्ट्रपुत्रा दुर्योधनादयश्च। तैः अञ्चितां पूजितां पालितां युक्तां वेति यावत्। अम्लानेति—अम्लाना अग्लाना उत्तमेति यावत्। या जातिः ब्राह्मणत्वादिः तया भूषितामलङ्कृतामपि, विरुद्धः लोकविद्विष्टः नीच इति यावत्। तादृशः वंशः कुलं यस्याः तां तथोक्ताम्। उत्तमजातिसमुत्पन्नाया नीचकुलत्वं विरुद्धम्। पक्षे—अम्लानो महासहा, जातिः मालती ताभ्यां भूषिताम्। विभिः पक्षिभिः रुद्धा व्याप्ताः वंशा वेणवो यस्यां तां तथोक्तमिति परिहारः। 'वंशो वेणौ कुले गर्वे पृष्ठाद्यवयवेऽपि च।' इति विश्वमेदिन्यौ। 'अम्लानस्तु महासहा।' 'सुमना मालती जातिः।' इत्यमरः। 'अकुलीनवंशामिति' दर्पणसम्मतपाठः। न कुलीनः उत्तमकुलविशिष्टो वंशः सन्तानो यस्यास्तामिति विरोधः। 'वंशोऽन्ववायः सन्तानः' इत्यमरः। यद्वा—न कुलीनस्य उत्तमकुलस्य वंशो गर्वो यस्यास्तामिति। पक्षे—न कौ लीना वंशा वेणवो यस्याम्।' इति तद्व्याख्यानञ्च। दर्शितेति—दर्शितमभयं भयाभावो यया तादृश्यपि विशेषेण भीषयतीति विभीषणेति विरोधः। दर्शिता अभया हरीतकी यया सा तादृशी। जनसंचारराहित्याच्च विभीषणेति परिहारः। सततेति—सततं सर्वदा हितमनुकूलं पथ्यं वैद्यकशास्त्रप्रतिपादितं हितावहमाहारादिकं यस्यास्तामपि। प्रवृद्धः वृद्धिं गतः गुल्मः उदरामयः यस्यास्तामिति विरोधः। हितावहभोजनादिं कुर्वतो गुल्मासम्भवात्। पक्षे—सततं हिता प्राप्ता पथ्या हरीतकी यया ताम्। 'हि गतौ' अस्मात् क्तः। गत्यर्थत्वात्प्राप्त्यर्थः। हिता हितकरी

तथा तिलक नामक वृक्षों एवं किसलय-नवपल्लवोंसे वह अलंकृत हो रही थी। कहीं, उलूक (शकुनिपुत्र), द्रोण तथा शकुनिसे युक्त और दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रपुत्रोंसे सुरक्षित कौरवसेनाके समान उसमें उल्लू, कृष्ण काक एवं पक्षी तथा हंस विचर रहे थे। (यहांसे विरोधाभास प्रारम्भ होता है) श्रेष्ठ जातिसे अलंकृत होते हुए भी उसका खानदान निकृष्ट था। (परिहार) यह विन्ध्याटवी महासहा तथा जातिनामक पुष्पवृक्षोंसे सुशोभित थी और उसमें वांस पक्षियोंसे व्याप्त हो रहे थे। यद्यपि वह अभय दिखा रही थी तो भी भयानक थी। (परि०) वह अभया—हरीतकीसे व्याप्त एवं अनेक प्रकारके पक्षियोंके कारण भयङ्करसी प्रतीत हो रही थी। सर्वथा हितकारी पथ्य-औषध-आदिका सेवन करते हुए भी उदररोग बढ़ा हुआ था (वस्तुतः) वह सर्वदा हितकारी पथ्या-हरीतकीसे युक्त

षट्पदव्याकुलामपि द्विपदानाकुलाम्, द्विजकुलभूषितामप्यकुलीनवंशाम्, बिन्ध्याटवीं प्रविवेश । अनन्तरं तयोर्निद्रामादाय जगाम रजनी ।

ततः क्रमेण कालकैवर्तेन तमिस्रानायं प्रक्षिप्य गगनमहासरसि सजीवशफरनिकर इवापह्रियमाणे तारागणे, सन्ध्यारक्तांशुके विषमप्ररूढविस-

---

पथ्या यस्यामिति वा । प्रवृद्धः गुल्मः तृणादिस्तम्बो यस्याम् । 'अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मावि'त्यमरः । षट्पदेति—षड्भिः पदैः चरणैः व्याकुलां व्याप्तामपि, द्वाभ्यां पदाभ्याम् अनाकुलाम् अव्याप्ताम् इति विरोधः । शते पञ्चाशन्न्यायेन षट्पदव्याप्ताया द्विपदाकुलत्वस्यावश्यकत्वात् । पक्षे—षट्पदा भ्रमराः । द्विपानां हस्तिनां दानेन मदजलेनाकुलां व्याप्ताम् । 'द्विपदैर्मनुष्यैरनाकुला । समुच्चयेऽपि ।' अगम्यत्वादिति भावः । यत्तु जगद्धरः—षट्पदेषु पदद्वयसद्भावादिति भाव इति, तच्चिन्त्यम् । गौण्यप्युत्तरा सङ्ख्या पूर्वसङ्ख्यां बाधत इति विरोधानुत्थानात् । 'नहि त्रिपुत्रो द्विपुत्रव्यपदेशं लभते' इति शिवरामस्तु चिन्त्यः; विरोधप्रकरणगतस्य अवेः, तद्घटितस्य वाक्यस्य च विरोधपरत्वावश्यम्भावात् । प्रदर्शितरीत्या विरोधस्य सूपपादत्वात् । द्विजेति—द्विजकुलेन ब्राह्मणवंशेन भूषितामपि । अकुलीनः असत्कुलोद्भवः निकृष्ट इति यावत् । वंशो यस्यास्तामिति विरोधः । ब्राह्मणकुलस्य सर्वोत्कृष्टत्वात् । पक्षे—द्विजकुलेन पक्षिसमूहेन भूषिताम् । कौ भूमौ लीनाः संसक्ताः कुलीनाः ह्रस्वाः न कुलीनाः अकुलीना अत्युच्चाः वंशा वेणवो यस्यां तथोक्तामिति परिहारः ।

तत इति । तारादिषु एतादृशेषु सत्सु कन्दर्पकेतुर्लतागृहे सुष्वापेत्यन्वयः । काल एव कैवर्तो धीवरः मत्स्यजीवी । 'कैवर्ते दाशधीवरौ' इत्यमरः । तेन । तमिस्रेति । तमिस्रा रात्रिः, तमो वा एव आनायः जालम् । 'तमिस्रं तिमिरे कोपे पुंसि स्त्री तु तमस्ततौ ।' 'आनायः पुंसि जालं स्यात् ।' इत्यमरः । गगनेति । गगनमाकाशमेव महासरः तस्मिन् । सजीवेति—सजीवाः चैतन्यविशिष्टाः शफरा मत्स्यविशेषाः तेषां निकरः समूहस्तस्मिन् । 'शफराणां सजीवत्वकथनमुपमेयानां ताराणां प्रकाशवत्त्वानुरोधेन । रूपकोत्प्रेक्षयोः संकरः ।' इत्यभिनवभट्टबाणाः । सन्ध्येति । एतादृशे कमलाकरभित्तौ स्वधर्मं पठतीव सतीत्यन्वयः । सन्ध्यैव रक्तमंशुकं वस्त्रं यस्य तादृशे । सन्ध्यया

एवं बढ़ी हुई झाड़ियोंसे परिपूर्ण थी । छः पैरोंसे व्याप्त होते हुए भी दो पैरोंसे व्याप्त न थी (वस्तुतः) भ्रमरोंसे तथा हाथियोंके मदजलसे परिपूर्ण हो रही थी । ब्राह्मणकुलसे विभूषित होते हुए भी कुलीन (उत्तम) वंशकी न थी । (वस्तुतः) अनेक पक्षियों एवं ऊँचे-ऊँचे बांसोंसे वह विभूषित थी ।

अनन्तर क्रमशः, जब कालरूपी धीवर आकाशरूपी महासरोवरमें रात्रिरूपी जाल फैलाकर जीवित मत्स्यसमूहके समान तारागणोंका अपहरण कर रहा था, विकसित कमल-

लताशरयन्त्रानुगतशतपत्रपुस्तकसनाथे, मकरन्दबिन्दुसन्दोहनिर्भरपान-मत्तमधुकरसान्द्रमन्द्रमञ्जुस्वनैः स्वधर्ममिव पठति विकचकमलाकर-भिक्षौ, कृषीवलेनेव कालेन तिमिरबीजनिकरेष्विव मधुकरेषु मधुरसकर्द-मितपरागपङ्केषु घनघट्टमानदलपुटेषु कुमुदाकरक्षेत्रेषूप्यमानेषु, रजोमुर्मुर-चूर्णसनाथमधुकरपटलधूमानुगतोद्दण्डपुण्डरीकव्याजाद्धूपमिव भगवते

रक्ताः लोहितवर्णाः अंशुकाः किरणा एव रक्तांशुकं रक्तवस्त्रं यस्य तथोक्ते। भिक्षूणां रक्तवस्त्रधारित्वादेतत्कथनम्। विषमेति। विषमं तिर्यक्प्रसरणेन परस्परसंबद्धं यथा तथा प्ररूढा अभिवृद्धा बिसलता मृणालवल्ली एव शरयन्त्रं 'रहल, घोड़ी, इति लोकप्रसिद्धं पुस्तकस्थापनाय परस्परान्तःप्रवेशितं फलकद्वयम्। तेन अनुगतं युक्तं शतपत्रं कमलमेव शतपत्रमनेकपत्रसहितं पुस्तकं तेन सनाथे युक्ते। मकरन्देति। मकरन्दबिन्दुसन्दोहानां पुष्परसबिन्दुसमूहानां निर्भरं सातिशयं यथेष्टं यथा तथा पानेन मत्तानां हृष्टानां मधुकराणां भ्रमराणां सान्द्रमन्द्रैः गम्भीरैः मञ्जुस्वनैः मधुर-शब्दैः। विकचेति। विकचः विकसितः केशरहितश्च कमलाकर एव भिक्षुः सन्न्यासी तस्मिन्। 'मन्द्रस्तु गम्भीरः' इत्यमरः। कृषीवलेनेति। कुमुदाकरक्षेत्रेषु आधारेषु तिमिरबीजनिकरेष्विव मधुकरेषु कृषीवलेनेव कालेन उप्यमानेषु, इत्यन्वयः। कृषी-वलः कर्षकः। 'कर्षकस्तु कृषीवलः' इत्यमरः। तिमिरेति। तिमिरस्य अन्धकारस्य बीजनिकरेषु बीजसमूहेन इव मधुकरेषु। मधु मकरन्द एव रसः जलं तेन कर्दमिताः कर्दमयुक्ताः कृताः परागपङ्काः पुष्परजांसि येषु तेषु तथोक्तेषु।

उप्यमानेषु विकीर्यमाणेषु। 'टुवप्-बीजसन्ताने'। रज इति। रजः पराग एव मुर्मुरचूर्णं तेन सनाथं सहितं मधुकरपटलमेव भ्रमरसमूह एव धूमः तेन अनुगतं युक्तम् उद्दण्डम् ऊर्ध्वप्रसृतदण्डं पुण्डरीकं श्वेतकमलं तस्य व्याजात् मिषेण, किरण-मालिने सूर्याय, कमलिनी एव तापसी तस्यां धूपमिव प्रयच्छन्त्यां सत्याम्। रूपको-

---

वनोंसे सुशोभित पद्मसररूपी मुण्डितभिक्षु, सन्ध्याके कारण रक्तकिरणरूपी लालवस्त्र लपेटे हुए परस्पर गुंथकर उगी हुई बिसलतारूपी रहल पर रक्खी हुई कमलरूपी सैकड़ों पृष्ठोंसे युक्त पुस्तक लेकर पुष्प-रसके बिन्दुओंका अत्यधिक पान करनेसे मत्तमधुकरोंके मनोहर शब्द मिससे अपने धर्मका-धर्मशास्त्रका पाठसा कर रहा था। जब कालरूपी किसान, जिनके पराग पुष्परसरूपी जलसे कर्दमित-कीचड़से-हो गये हैं तथा जिनके पत्र अच्छीतरह खिले हुए हैं ऐसे कुमुद-सरोवररूपी खेतोंमें अन्धकाररूपी अनाजके बीजस्वरूप भ्रमरोंको बोसा रहा था। जिस समय कमलिनीरूपी तपस्विनी, परागरूपी मुर्मुरचूर्णसंयुक्त भ्रमरसमूहरूपी धूमसे व्याप्त उद्दण्ड—जिनका बिसदण्ड ऊपर को उठा हुआ हो—श्वेत कमलोंके बहाने

किरणमालिने प्रयच्छन्त्यां कमलिनीतापस्याम्, रजनीवधूकरद्वयोच्छलित-पतत्प्रभात-मुसलाहतिक्षतान्तरे उलूखल इव चन्द्रमण्डले कण्डनविकीर्णेषु तण्डुलेष्विव तारागणेषु उन्मीलत्सु, सन्ध्याताम्रमुखेन वासरवानरेण नभस्तरुमारोहता शाखाभ्य इव कम्पिताभ्यो दिग्भ्यो विकचप्रसूननिकर इव तारागणे फल इवेन्दुमण्डले च पतति, तारागणशालितण्डुलशबल-नभोऽङ्गणं स्फुरदरुणकिरणचूडाचक्रचारुवदने वासरकृकवाकौ चरितुमवतरति, मत्संगमादतिप्रवृद्धो वारुणीसंगमाद् द्विजपतिरेष पततीति हसन्त्या-

---

त्प्रेक्षयोः संकरः। रजनीति। रजनी रात्रिरेव वधूः तस्याः करद्वयेन हस्तयुगलेन उच्छलितम् ऊर्ध्वोत्क्षिप्तं प्रभातः प्रत्यूष एव मुसलं तस्य आहत्या आघातेन क्षतं खण्डितम् अन्तरं मध्यभागो यस्य तस्मिन्। नायं कलङ्कः किन्तु मुसलाघातसमुत्पन्नरन्ध्रेणाकाशमेव दृश्यते इति द्योतनाय क्षतान्तरत्ववर्णनम्। कण्डनेति। कण्डनेन वितुषीकरणेन विकीर्णेषु इतस्ततः पतितेषु। उन्मीलत्सु प्रकाशमानेषु। सन्ध्येति। सन्ध्या एव ताम्रं रक्तं मुखं यस्य, सन्ध्यया रक्तं मुखम् आरम्भ एव, सन्ध्यावत् ताम्रं मुखं यस्येति वा तेन। वासरेति—वासरो दिनमेव वानरः तेन। तारागणेति—तारागण एव शालिः कलमः तेन शबलं कर्बुरम्। स्फुरन् दीप्यमानः अरुणकिरणः सूर्य एव चूडाचक्रं शिखामण्डलं तेन चारु मनोहरं वदनं मुखं यस्य तस्मिन्। वासरः एव कृकवाकुः ताम्रचूडः तस्मिन्। चरितुं भक्षयितुम्, अवतरति सति। 'मेघो वर्षतीतिवत् प्रसिद्धेश्चरतेः कर्म नोपात्तम्' इति दर्पणकारः। मदिति। एष द्विजपतिः चन्द्रो ब्राह्मणश्रेष्ठश्च। मत्संगमात् मम पूर्वदिशः संयोगात्, स्वर्गाप्त्याशया च अतिप्रवृद्धः पूर्णमण्डलः गगनमहोच्चपदप्राप्तो वा, तपसा प्रवृद्धश्च। वारुणीसंगमात् पश्चिमदिक्संबन्धात् सुरासंयोगाच्च पतति आकाशादधश्च्यवते पातित्यवांश्च भव-

---

भगवान सूर्यको धूप सा देरही थी। रात्रिरूपी वधूके दोनों हाथों द्वारा चलाये जाते हुए (ऊपर उठाते तथा नीचे गिराये जाते हुए) प्रभातरूपी मूसलके आघातसे जिसका मध्यभाग विदीर्ण हो चुका है ऐसी चन्द्रमण्डलरूपी ओखलीमें कूटनेके कारण चावलोंके समान तारागण प्रकाशित हो रहा था। जिस समय, सन्ध्याके कारण रक्तवर्ण दिनारम्भ-रूपी सन्ध्याके समान रक्तवर्ण मुखवाले दिनरूपी वानर, आकाशरूपी वृक्षपर चढ़कर दिशारूपी हिलती हुई शाखाओंसे खिले हुए पुष्पोंके समान तारागण तथा फलतुल्य चन्द्र-मण्डलको गिरा रहा था। सूर्यरूपी हिलती हुई शिखाओंसे मनोहर मुखवाली दिनरूपी मुरगा, तारागणरूपी शालि-तण्डुलोंसे व्याप्त आकाशरूपी आंगनमें उतर रहा था। जब पूर्व दिशा, यह चन्द्रमारूपी ब्राह्मण मेरे संसर्गसे उन्नतिको प्राप्त हुआ परन्तु वारुणी—पश्चिम दशारूपी मदिराके संसर्गसे पतित हो गया यह समझकर उसका उपहाससा कर

मिवाखण्डलाशायाम्, अरुणकेसरिकराघातनिहतान्धकारकरीन्द्ररुधिरधाराभिरिव उदयगिरिशिखरनिर्झरधौतधातुधाराभिरिव, त्वङ्गत्तुरङ्गखरखुरपाटितपद्मरागपरागच्छटाभिरिव, उदयाचलकूटकोटिप्ररूढजपाकुसुमकान्तिभिरिव पूर्वगिरिकेसरिकरतलाहतमत्तमातङ्गोत्तमाङ्गविगलदसृग्धाराप्रसारणीभिरिव त्रिभुवनकार्यसम्पादनानुरागरसैरिव रक्तमण्डले, तारा-

तीति आखण्डलाशायां पूर्वदिशि हसन्त्यामुपहासं कुर्वत्याम्। 'पतिष्यति' इति दर्पणसम्मतपाठः। 'मया सह यदा सङ्गतस्तदोभयोः समवयस्कतासीत्। इदानीं त्वपराङ्गना उपभुक्ताऽपि प्रवयस्यासीदयमपि क्लान्तस्तया चात्तसारोऽस्यौत्सुक्यादापतिष्यतीति भावः। तथा च यत्सुखलोभान्मां परित्यज्य यातस्तत् सुखं नाप्स्यतीत्युपहासः। उक्तं चान्यत्र—'बालोपभुक्ता बलमादधाति पतिं श्लथाङ्गं तरुणी करोति। प्रौढा जरां निश्चितमेव सूते वृद्धा नितान्तं बलजीवहानिम्।' इति, इति दर्पणकारः। रक्तमण्डले भास्करे उदयमारोहति इत्यन्वयः। रक्तमण्डलत्वे हेतूनुत्प्रेक्षते—अरुणेत्यादिना। अरुणः सूर्यसारथिरेव केसरी सिंहः तस्य कराघातेन किरणाहत्या एव हस्ताघातेन निहता मृता अन्धकारा एव करीन्द्राः तेषां रुधिरधाराभिः रक्तप्रवाहैः। उदयेति—उदयगिरेः उदयाचलस्य शिखरगतानांश्रृङ्ग स्थितानां निर्झराणां वारिप्रवाहाणां धौताः प्रक्षालिता धातवो गैरिकादयो याभिस्तादृश्यो या धारास्ताभिरिव। त्वङ्गदिति—त्वङ्गन्तः चञ्चलाः गमनोत्सुका इत्यर्थः। ये तुरङ्गाः अश्वाः तेषां खरैः तीक्ष्णैः खुरपुटैः शफैः पाटिताः चूर्णीकृताः ये पद्मरागाः पद्ममणयः रक्तवर्णरत्नानि तेषां छटाभिः कान्तिभिरिव। उदयेति—उदयाचलस्य पूर्वगिरेः कूटकोटौ श्रृङ्गाग्रभागे प्ररूढानां समुत्पन्नानां जपाकुसुमानां जपापुष्पाणां कान्तिभिरिव। पूर्वगिरीति—पूर्वगिरिः उदयाचल एव केसरी सिंहः तस्य करतलेन आहतानां निहतानां मत्तमातङ्गानां मत्तदन्तिनाम् उत्तमाङ्गेभ्यः शिरोभ्यः विगलन्त्यः प्रवहन्त्यः असृग्धाराः रक्तप्रवाहा एव प्रसारिण्यः प्रणालिकास्ताभिरिव। 'प्रसारिणी प्रणालिकेति' हारावली। त्रिभुवनेति। त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य प्रकाशरूपकार्यसम्पादने ये अनुरागरसाः प्रीतिरसास्तैः। सूर्याभावे

रही थी। जिस समय भगवान सूर्य उदय हो रहे थे, उस समय उनका बिम्ब मानों अरुणरूपी सिंहकी चपेटा-प्रहारसे मरे हुए अन्धकाररूपी हाथीके रुधिर की धाराओंसे, अथवा, उदयाचल-शिखर पर बहते हुए झरनोंसे धुली हुई मैनसिल आदि धातुओंकी धाराओंसे, अथवा, चलनेके लिये उत्सुक अश्वोंके पैने खुरपुटोंसे उखड़ी हुई पद्मरागमणियों की पराग-कान्तिसे, अथवा, उदयाचलके शिखर पर उत्पन्न जपापुष्पोंकी कान्तिसे, अथवा, उदयपर्वत-रूपी सिंहके हाथ द्वारा धृत हाथीके सिरसे टपकती हुई रुधिर धाराकी कुल्याओंसे-प्रवाहसे, अथवा, तीनों लोकोंको प्रकाशित करने रूप कार्य-सम्पादनके लिये विद्यमान अनुराग-

कुमुदवनग्रहणाय प्रसारितहस्त इव कुङ्कुमारुणैः किरणैः, कनकदर्पण इव प्राचीविलासिन्याः, पूर्वाचलभोगीन्द्रफणामणौ गगनेन्द्रनीलतरुकनककिसलये, नभोनगरप्राग्द्वारकनकपूर्णकुम्भे तप्तलोहकुम्भकारे, प्राचीकुमारीललाटतटघटितकुङ्कुमतिलकविन्दौ, सन्ध्याबाललतैककुसुमे, मञ्जिष्ठारक्तपट्टसूत्रपिण्डसदृशे, सन्ध्यारुणसूत्रग्रथितप्राचीवधूकाञ्चीकाञ्चनदीनारचक्र इव, वासरविद्याधरसिद्धगुलिक इव, कुमार इव संहृततारके,

---

सकलकार्याणामनुष्ठानासम्भवादेवमुक्तिः। अनुरागो रक्तवर्ण इति च कविसमयः। तारेति। तारा नक्षत्राणि एव कुमुदवनं कैरववनं तस्य ग्रहणाय। कुङ्कुमारुणैः कुङ्कुमवत् रक्तवर्णैः। पूर्वेति.। पूर्वाचलः उदयगिरिरेव भोगीन्द्रः सर्पराजः तस्य फणामणौ शिरोरत्ने। गगनेति। गगनमेव इन्द्रनीलतरुः तस्य कनककिसलये स्वर्णपल्लवे। 'कनककिसलये राजभवनादौ निर्मितेन रूपकम्। तत्र रेखागवयन्यायात्तरुता।' इति दर्पणकारः। नभ इति। नभ आकाशमेव नगरं तस्य प्राग्द्वारे पूर्वदिगवस्थितद्वारे कनकस्य सुवर्णस्य पूर्णकुम्भः जलपरिपूर्णकलशः तस्मिन्। तप्तेति—तप्तः अग्निसमवर्णः यो लोहकुम्भः आयसघटः तस्य आकार इवाकारो यस्य तादृशे। सन्ध्येति। सन्ध्यैव बाललता तस्याः एकं कुसुमं तस्मिन्। प्राचीति। प्राची पूर्वदिगेव कुमारी तस्या ललाटतटे मस्तके घटितः रचितः कुंकुमस्य केसरस्य यः तिलकविन्दुः तस्मिन् तत्सदृशे इत्यर्थः। मञ्जिष्ठेति। मञ्जिष्ठया 'मञ्जीठ' इति लोकप्रसिद्धेन रञ्जनद्रव्येण रक्तानां रञ्जितानां पट्टसूत्राणां पिण्डेन गोलेन सदृशे। सन्ध्येति—सन्ध्यैव अरुणसूत्रं रक्तसूत्रं तेन ग्रथितं गुम्फितं यत् प्राचीवध्वाः पूर्वदिग्वध्वाः काञ्च्यां मेखलायां विद्यमानं काञ्चनदीनारचक्रं चक्राकारः सुवर्णनिष्कः तस्मिन्। 'काञ्चनदीनारचक्रं काञ्चनकिङ्किणीसमूहः। अथवा स्त्रियो मङ्गलार्थं स्वर्णमयं वर्तुलं शकलं कण्ठे बध्नन्ति तदेव दीनारचक्रम्। सुवर्णमयताटङ्को वा। इत्यपरे'। वासरेति—वासरः दिवस एव विद्याधरः तस्य सिद्धः रसादिप्रयोगेण साधितः गुलिकः गोलाकारा वटिका तस्मिन्निव। कुमा-

---

रससे, रक्तवर्ण हो रहा था। उस समय सूर्य, मानो कुङ्कुम-समान किरणोंसे तारारूपी कुमुदवनको पकड़नेके लिये हाथ फैलाये हुए था। वह उस समय, पूर्वदिशारूपी विलासिनीके सुवर्णमय दर्पण, पूर्वाचलरूपी सर्पराजकी फणामणि, आकाशरूपी इन्द्रनीलवृक्षके स्वर्णमय पत्ते और आकाशरूपी नगरके पूर्वीय द्वारपर स्थापित स्वर्णमयपूर्णकुम्भ (जलसे भरा माङ्गलिक कलश) के समान शोभित हो रहा था। उसका आकार तपे हुए लोह-कलश की तरह चमक रहा था। उस समय वह, पूर्वदिशारूपी कुमारीके मस्तकपर बने हुए कुङ्कुम-तिलक-विंदु, सन्ध्यारूपी बाललताके एक पुष्प, मंजीठसे रंगे हुए रेशमके पिण्ड, सन्ध्यारूपी लाल धागेसे गुंथी हुई, पूर्वदिशारूपी वधूकी काञ्चीमें विद्यमान गोल मोहर

पद्मनाभ इवोल्लसितपद्मे अध्वग इव छायाप्रिये, शक्र इव गोपतौ, उदयगिरिधातुरागारुणदिग्गजपादतलानुकारिणि विभावरीतिमिरतस्करे भगवति भास्करे उदयमारोहति, माञ्जिष्ठचामर इव दिग्गजेषु, महाभारतसमरभूमिरुधिरोद्गार इव कुरुक्षेत्रेषु, सुरधनुःकान्तिविलेप इव जलदच्छेदेषु काषायपट इव शाक्याश्रमशाखिशाखासु, कौसुम्भराग इव ध्वजपटपल्लवेषु, फलपाक इव कर्कन्धूषु, कुङ्कुमरस इव व्योममहासौधाङ्गणे,

---

कुमारः स्कन्दः। संहृताः विलोपिता निहतश्च (पक्षे एकवचनेन विग्रहः तारकाः नक्षत्राणि तारकासुरश्च येन तस्मिन्) पद्मनाभः विष्णुः। उल्लसितेति—उल्लसितानि विकसितानि पद्मानि कमलानि येन तस्मिन्। पक्षे-उल्लसिता प्रहर्षिता पद्मा लक्ष्मीर्येन तथोक्ते। अध्वगः पान्थः। छायेति—छाया एतन्नाम्नी स्वपत्नी प्रिया यस्य तादृशे। पक्षे-छाया अनातपः। शक्रः इन्द्रः। गवां किरणानां पतिः। पक्षे-गोः स्वर्गस्य पतिः। उदयेति—उदयगिरेः उदयाचलस्य धातूनां गैरिकादीनां रागेण रक्तिम्ना अरुणं रक्तवर्णं यत् दिग्गजस्य पादतलं तदनुकर्तुं शीलं यस्य तस्मिन्। विभावरीति। विभावर्याः रात्रेः तिमिरस्य अन्धकारस्य तस्करे-अपहारके। एतादृशे बालातपे प्रसरति सति। माञ्जिष्ठेति। मञ्जिष्ठया रक्तं माञ्जिष्ठं चामरं तस्मिन्निव। हस्तिनां चामरमाभरणीक्रियते इत्याचारः। महाभारतेति—महाभारतस्य समरभूमौ रुधिरस्य उद्गारः वमनं विस्तार इति यावत्। सुरेति। जलदानां मेघानां छेदेषु खण्डेषु। सुरधनुषः इन्द्रचापस्य कान्तेः विलेपः लेपनमिव। काषायेति। कषायेण रक्तः काषायः तादृशः पट इव। शाक्याश्रमस्य बौद्धभिक्षोः शाखिशाखासु वृक्षस्कन्धेषु। कौसुम्भेति-कुसुम्भस्यायं कौसुम्भः स चासौ रागः कौसुम्भरागः। ध्वजपटपल्लवेषु पताकाञ्चलेषु। फलेति—फलानां पाकः परिणाम इव। कर्कन्धूषु बदरीषु। व्योमेति। व्योमैव आका-

और दिनरूपी विद्याधर की सिद्धकी हुई गोलीके समान प्रतीत हो रहा था। उसने, तारकासुरका संहार करनेवाले कुमार कार्तिकेयके समान समस्त नक्षत्रों का संहार-लोप-कर दिया था। कमलाको आनन्दित करनेवाले विष्णु भगवान्की तरह कमलोंको विकसित कर दिया था। जिस प्रकार पथिकको छाया-साया-प्रिय होती है इसी तरह उसे भी छाया—अपनी पत्नी-प्रिय थी। वह गो (स्वर्ग) के पति इन्द्रके समान गो (किरणों) का पति था। वह उदयाचलपर विद्यमान गेरू आदि धातुओंसे लाल दिग्गजके पैरका अनुकरण कर रहा था और उसने अन्धकाररूपी चोर मार भगाया था। उस समय, प्रातःकालीन धूप, दिग्गजोंपर मंजीठ रंगकी चामर, कुरुक्षेत्र प्रदेशमें भारतीय युद्धमें रुधिरके फुव्वारे, मेघखण्डोंमें इन्द्रधनुषकी शोभाका लेप, विहारस्थित वृक्षोंकी शाखाओंपर गेरुए वस्त्र, पताकाञ्चलोंपर कुसुम्भ-केसरका रंग, बदरियोंपर पके हुए

सञ्चरदरुणयवनिकापट इव कालनर्तकस्य, बालप्रवालभङ्गारुणे प्रसरति बालातपे। क्षणेन च चाटुचटुलचक्रवाकहृदयशोकसन्तापहरणादिव दहनसमर्पिततेजःप्रवेशादिव दिननाथकान्तोपलसङ्गादिव उष्णिमानमुष्णरश्मेराश्रयति रश्मिसंचये, कन्दर्पकेतुः सर्वरात्रजागरणपरवशाहारशून्यशरीरतया निश्चेतनोऽनेकयोजनशताध्वभ्रमणखिन्नो वासवदत्तयाप्येवंविधया सह लतागृहे मन्दमारुतान्दोलितकुसुमपरिमललुब्धमुग्धपरि-

---

शमेव महासौधः महाप्रासादस्तस्याङ्गणेषु अजिरेषु। सञ्चरदिति। सञ्चरन् इतस्ततः प्रचलन् अरुणः रक्तवर्णः यवनिकापटः तिरस्करिणीवसनमिव। बालेति— बालः नूतन इति यावत्। यः प्रवालभङ्गः किसलयच्छेदः विद्रुमभङ्गो वा तद्वदरुणे। चाट्विति। चाटुषु प्रियवाक्येषु चटुलानि चञ्चलानि, रात्रौ विरहानन्तरं परस्परप्रियवाक्याकर्णनोत्सुकानि यानि चक्रवाकहृदयानि, चाटुभिः चटुलानां मनोहराणां चक्रवाकानां यानि हृदयानीति वा तेषां शोकसन्तापस्य हरणात् आदानादिव। हेतूत्प्रेक्षा। 'चटु-चाटू प्रिये वाक्ये' इति हेमचन्द्रः। 'चटुलश्चञ्चले चारौ।' इति बाणः। दहनेति। दहनेन अग्निना समर्पितस्य प्रत्यर्पितस्य तेजसः प्रवेशात् आधानादिव। सूर्यः सायं स्वतेजो वह्निं समर्प्यास्तं याति, प्रातश्च वह्निस्तं समर्पयतीति श्रुतिः। 'आदित्यो वा अस्तं यन्नाग्निमनुप्रविशति।' इत्यादि। वायुपुराणेऽपि 'उद्यन्तश्च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत्' इति। दिननाथकान्तोपलं सूर्यकान्तमणिः। उष्णिमानम् उष्णत्वम्। दृढादित्वादिमनिच्। उष्णरश्मेः सूर्यस्य। सर्वेति। सर्वा रात्रिः सर्वरात्रः। 'अहःसर्वैकदेशे-' इत्यादिना समासान्तोऽच्। सर्वरात्रं जागरणेन परवशं कार्याक्षमम् आहारशून्यं च शरीरं यस्य तस्य भावस्तया। निश्चेतनः निसंज्ञः। मन्देति— मन्दमारुतेन सुधीरसमीरेण आन्दोलितानां कम्पितानां कुसुमानां परिमललुब्धाः गन्धोत्सुका मुग्धा मनोहरा मुखरा वाचालाः परिभ्रमन्त इतस्ततो धावन्तः ये भ्रमरा मधुकरास्तेषां

फल, आकाशरूपी प्रासादके आंगनमें केसररस, कालरूपी नटकी चलती-फिरती लाल यवनिका-पर्दी और नवीन कटी हुई कोंपलके समान सुशोभित हो रही थी। क्षणभरमें ही उसकी किरणें, मानो प्रिय वाक्यों द्वारा सुन्दर चक्रवाक मिथुनके हृदय-संतापको दूर करने अथवा (सायङ्कालके समय) अग्निको सौंपे हुए अपने तेजके पुनः प्रवेशसे अथवा सूर्यकान्तमणिके संसर्गसे गरम हो गई थीं। उस समय कन्दर्पकेतु सारी रात जागने और भोजन न मिलनेके कारण शरीरके क्षीण हो जानेसे निश्चेष्टसा हो रहा था, साथ ही सैकड़ों योजन मार्ग तय करनेसे अत्यन्त थका हुआ था। वासवदत्ताकी भी यही दशा हो रही थी इसलिये वे दोनों ही, धीमी-धीमी वायुसे हिलते हुए पुष्पोंकी गन्धमें उत्कण्ठित, सुन्दर

भ्रमद्भ्रमरझंकारमनोहरे तत्कालागतया निद्रया गृहीतो निस्पन्दकरणग्रामः सुष्वाप।

ततो वणिजीव प्रसारिताम्बरे, महादावानल इव सकलकाष्ठोद्दीपिनि, कल्पवृक्ष इव सर्वाशाप्रसाधके, पतङ्गमण्डले मध्यं नभःस्थलमारूढे, कन्दर्पकेतुः प्रबुद्धः, प्रियया विनाकृतं लतागृहमवलोक्य उत्थाय च ततइतो दत्तदृष्टिः, क्षणं विटपिषु, क्षणं लतान्तरेषु, क्षणमधः कूपेषु, क्षणमूर्ध्वं तरुशिखरेषु, क्षणं शुष्कपर्णराशिषु, क्षणमाकाशतले, क्षणं दिक्षु, क्षणं विदिक्षु,

---

झङ्कारेण झमित्यव्यक्तशब्देन मनोहरे। निस्पन्देति—निस्पन्दः निश्चलः स्वस्वविषयग्रहणासमर्थ इति यावत्। करणग्रामः इन्द्रियसमूहो यस्य स तथोक्तः। 'करणं कारणे काये साधनेन्द्रियकर्मसु।' इत्यजयः। 'निष्पन्द' इति पाठे षत्वं चिन्त्यम्। तथा च वामनः—'निष्पन्द' इति षत्वं चिन्त्यम्।' इत्यभिनवभट्टबाणाः।

तत इति। ततः कन्दर्पकेतुः लतागृहं प्रियया विहीनं विलोक्य विललापेत्यन्वयः। प्रसारितेति—प्रसारितं विस्तारितं ग्राहकजनदर्शनाय बहिःप्रकटितञ्च अम्बरम् आकाशं वस्त्रं च। सकलेति—सकलाः समग्राः काष्ठाः दिशः उद्दीपयति द्योतयतीति तस्मिन्, सकलानि काष्ठानि इन्धनानि उद्दीपयति दहतीति तथोक्ते। 'काष्ठं दारुणि काष्ठा तु प्रकर्षे स्थानमात्रके। दिशि' इति हैमः। सर्वेति—सर्वासाम् आशानां दिशां प्रसाधकः भूषयिता, पक्षे—आशानाम् मनोरथानां प्रसाधकः पूरयिता। पतङ्गः सूर्यः 'पतङ्गः सूर्यपक्षिणोः।' इत्यमरः। विनाकृतं शून्यम्। प्रिययेत्यत्र 'पृथग्विना—' इत्यादिना विनायोगे तृतीया। लतान्तरेषु—लतामध्येषु। 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च।' इत्यमरः। विदिक्षु—उपदिशासु। दिङ्मध्येषु इत्यर्थः। 'दिशोर्मध्ये

और गुंजायमान भ्रमरोंकी झंकारसे मनोहर लताकुञ्जमें सो गये। उस समय उनकी इन्द्रियाँ बिलकुल असमर्थ हो गई थीं और ऐसे समय नींदका आना अत्यन्त स्वाभाविक भी था।

अनन्तर, जब (ग्राहकोंके लिये) कपड़े फैलाकर बैठे हुए वैश्य, सब ईंधन जलानेवाले दावानल और सब प्रकारकी आशाओंके पूरक कल्पवृक्षके समान सूर्य भगवान्, आकाशको विस्तृत, सब दिशाओंको उद्दीपित और सम्पूर्ण पूर्वादि दिशाओंको अलङ्कृतकर मध्याकाश में चढ़ रहे थे उस समय कन्दर्पकेतुने जागकर लतागृह प्रिया—वासवदत्ता—से खाली देखा। उन्होंने उठकर इधर-उधर देखा। वे, क्षणभर वृक्षोंपर, क्षणभर लताओंमें, क्षणभर नीचे कुओंमें, क्षणभर ऊपर वृक्ष-शिखरोंपर, क्षणभर सूखे पत्तोंके ढेरपर, क्षणभर आकाशमें, क्षणभर दिशाओं और उपदिशाओंमें घूमते हुए विलाप करने लगे। उनका हृदय निरन्तर

च भ्रमन्ननवरतविरहानलदह्यमानहृदयो विललाप। हा प्रिये! वासवदत्ते देहि मे दर्शनम्। कृतं परिहासेन। अन्तर्हिताऽसि। त्वत्कृते यानि दुःखान्यनुभूतानि तेषां त्वमेव प्रमाणम्। हा प्रियसख मकरन्द! पश्य मे दैवदुर्विलसितम्। किं पूर्वं मया कृतमनवदातं कर्म। अहो दुर्विपाका नियतिः। अहो दुरतिक्रमा कालगतिः। अहो ग्रहाणामतिकटु कटाक्षपातनम्। अहो विसदृशफलता गुरुजनाशिषाम्। अहो दुःस्वप्नानां दुर्निमित्तानाञ्च

विदिक् स्त्रियाम्' इत्यमरः। भ्रमन्—कुत्राप्यनवतिष्ठमानः। अत्र 'मानुषीष्वेतादृशरूपस्यानुपलम्भान्नागकन्येति केनचिन्नागेन वा न नीता स्यादिति क्षणमधःकूपेषु, क्षणं शुष्कपर्णराशिषु साक्षान्मृत्युयोगात् तद्विषोष्मणा वा तत्क्षण एवापगतजीविता भीरुस्तेन शयनस्थान एव परित्यक्ता स्यात्। अत्यप्सरोरूपा केनचिद्दिव्यद्विहारिणा विद्याधरादिना वाऽपहृता स्यादिति क्षणं तरुशिखराग्रे क्षणमाकाशे क्षणं दिक्षु विदिक्षु च पश्यन् विललापेति' दर्पणकारः। हेति—हा इति विषादे। इति बहुविधं विलपन् कन्दर्पकेतुः एतादृशेन महासागरकच्छोपान्तेन गत्वा एतादृशं जलनिधिमपश्यदिति सम्बन्धः। कृतम् अलम्। परिहासस्य प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः। कृतमित्यव्ययम्। 'कृतं निवारणनिषेधयोः'। इति गणव्याख्यानम्। 'गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तेः प्रयोजिका' इति नियमात् तृतीया। किं परिहासेन अन्तरितासि' इति पाठान्तरम्। दैवदुर्विलसितं भाग्यदुर्विपाकम्। अनवदातम् अशुद्धम्। असमीचीनं पापमित्यर्थः। अवदातमित्यत्र 'दैप्—शोधने' इत्यस्मात् कर्मणि क्तः। 'अवदातं तु विमले मनोज्ञे सितपीतयोः।' इति हैमः। नियतिः विधिः। दुर्विपाका—दुष्टः विपाकः परिणामो यस्याः सा तथोक्ता। 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः।' इत्यमरः। 'दैवनियत्योः पर्यायतया पुनरुक्तिरपि वैचित्र्येण' इति दर्पणकारः। 'अहो विपाको नियतेः' इति पाठान्तरम्। दुरतिक्रमा—दुःखेन अतिक्रमो यस्याः सा तथोक्ता। 'अहो दुरतिक्रमता कालगतेः' इति पाठान्तरम्। ग्रहाणाम्—चन्द्रसूर्यादीनाम्। अतिकटु अतिक्रूरम्। कटाक्षपातनम् अवलोकनम्। विसदृशेति—विसदृशम् अननुरूपं फलं यासां ताः, तासां भावः, फले विसंवादः।

जलती हुई विरहाग्निसे दग्ध हो रहा था। 'हा प्यारी वासवदत्ता! मुझे दर्शन दो। हंसी मत करो। क्या तुम कहीं छिप गई हो? तुम्हारे लिये, मैंने जो दुःख उठाये हुए हैं उनके लिये तुम्हीं साक्षी हो। हा प्यारे मित्र मकरन्द! आकर दुर्भाग्यकी करतूत देखो। पूर्व-जन्ममें मैंने कौनसे दुष्कर्म किये हैं? भाग्य-परिणाम कैसा आश्चर्यजनक है। कालकी गति कैसी दुर्लङ्घ्य है। ग्रहोंकी दृष्टि कैसी कड़वी-दुखदायिनी है। गुरुजनोंके

फलम्। सर्वथा न किञ्चिदगोचरो भवितव्यतानाम्। किं न सम्यगागमिता विद्याः। किं यथावदनाराधिता गुरवः। किं नोपासिता वह्नयः। किं नामाधिक्षिप्ता भूदेवाः। किं न प्रदक्षिणीकृताः सुरभयः। किं न कृतं शरणागतेष्वभयम्' इति बहुविधं विलपन्, मरणेच्छुर्दक्षिणेन काननं निर्गत्य, नव्यनडनलदनलिनीनिचुलपिचुलवञ्जुलसरलविदलबकुलचिरबिल्वबिल्वबहुलेन, प्रचुरविरचितविविधोटजकुटजरुद्धोपकण्ठेन, सोत्क-

---

गुरुजनाशिषाम् अस्मान् परित्यज्य यातोऽपि सुकृतिभोग्यान् भोगान् लभस्वे'त्येवंरूपाणाम्। स्पष्टा चेयं रीतिरर्जुनदाराणामभिमन्युविलापे महाभारते।' इति दर्पणकारः। भवितव्यता पूर्वजन्मकृतकर्मणां परिपाकः। अगोचरः अविषयः। 'प्रायः शुभं च विदधात्यशुभञ्च जन्तोः सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव।' इति भवभूतिः। आगमिताः अधीताः। विद्याः ज्योतिर्नीतिप्रमुखाः। यदावाभ्यां दुर्मुहूर्ते प्रस्थितं नीतिविरुद्धञ्चात्र स्थितमिति भावः। यथावत् यथाविधि। अनाराधिताः—न सेविताः। अधिक्षिप्ताः तिरस्कृताः। भूदेवाः ब्राह्मणाः। तदुक्तम्—'गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान् द्वेष्टि भारत!।' तेन किं वा ममेयमवस्थेति भावः। 'अग्रजन्मभूदेववाडवाः' इत्यमरः। सुरभयः गावः। इन्द्रमुपस्थाय ऋतुस्नातां सुदक्षिणां स्मृत्वा सत्वरो दिलीपो मार्गस्थां धेनुमप्रदक्षिणीकृत्यैव यातस्तयाशप्तः, एवमहमपि किं गोभिः शप्त इति भावः। शरणागतेष्विति—येन मामपि कश्चित् प्रियादानेन विरहानलान्न त्रायते इति भावः। दक्षिणेन एनबन्तमिदम्। काननस्य दक्षिणभागेनेत्यर्थः। काननपदे 'एनपा द्वितीया' इति द्वितीया। नव्येति। नव्याः नूतनाः शाखादिभिरत्यन्तं प्रवृद्धाः नडा धमनाः 'नरकुल' इति लोकप्रसिद्धाः, नलदानि अभयानि, नलिन्यः पद्मिन्यः, निचुलाः वेतसाः, पिचुलाः कार्पासवृक्षाः, झावुकाः, 'झाऊ' इति ख्याता वा' विदुलाः परिव्याधाः, वकुलाः केसराः, चिरबिल्वाः करञ्जाः, बिल्वाः शैलूषाः बहुला यत्र तादृशेन। प्रचुरेति—प्रचुरम् अधिकं यथा तथा विरचितेषु विविधेषु उटजेषु पर्णशालासु संवर्धितैः कुटजैः गिरिमल्लिकाभिः रुद्धः व्याप्तः उपकण्ठः यस्य तेन। 'मुनीनां तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्।' 'कुटजः शक्रो वत्सको गिरिमल्लिका।' इत्यमरः। सोत्कण्ठेति—सोत्कण्ठाः समुत्सुका ये भृङ्गराजाः

आशीर्वाद कैसे उलटे फल दे रहे हैं! दुःस्वप्न तथा दुर्दिन कैसे फल रहे हैं? सब तरहसे होनहारसे बाहर कुछ भी नहीं है। क्या मैंने ठीक-ठीक विद्याएँ नहीं पढ़ीं? क्या विधिपूर्वक गुरुओंका आदर नहीं किया? क्या अग्नियों की पूजा नहीं की? क्या ब्राह्मणों का तिरस्कार किया? क्या गायोंकी प्रदक्षिणा नहीं की? क्या शरणागतोंको अभय नहीं दिया? इसप्रकार अनेक तरहसे विलाप करते हुए मरनेकी इच्छा कर जङ्गलके दाहिनी ओरसे निकल कर, नवीन-हरेभरे-नरकुल, उशीर, कमलिनी, वेंत, सई, अशोक, सरल,

एठभृङ्गराजरसितसुन्दरसुन्दरीवनेन, विततवेत्रव्रततिव्रातावरणतरुणवरुणस्कन्धसन्नद्धभृङ्गरोलेन, गोलाङ्गूलभग्नमधुपटलरसासारशीकरसिक्ततरुतलेन, प्रवृद्धनारिकेलकङ्केलिराजतालीतालतमालहिन्तालपूगपुन्नागकेसरनागकेसरवनेन, घनसारमल्लिकाकेतकीकोविदारमन्दारजम्बूबीजपूरजम्बीरगुल्मगहनेन, पवनसंवाहितानेकपनसविटपिविटपेन, अप्रत्यूहदात्यूहकु-

---

भ्रमरश्रेष्ठाः तेषां रसितेन सुन्दरं मनोहरं सुन्दरीवनं सुन्दरीवृक्षकाननं यत्र तादृशेन। 'सुन्दरी तरुभिन्नारीभिदोः स्त्री रुचिरेऽन्यवत्। इति धरणिः। वितततेति। विततानां विस्तृतानां वेत्रव्रततीनां वेतसलतानां व्रातः समूहः आवरणम् आच्छादनं येषां तादृशास्तरुणा नवीनाः ये वरुणास्तिक्तशाकास्तेषां स्कन्धेषु प्रकाण्डेषु सन्नद्धाः उपविष्टाः भृङ्गरोला भ्रमरा यत्र तादृशेन। 'भृङ्गरोलः पक्षिभेदे कीटभेदे च षट्पदे।' इति धरणिः। गोलाङ्गूलेति—गोलाङ्गूलैः कृष्णमुखवानरैः भग्नस्य मधुपटलस्य मधुकोशस्य रसस्य आसारशीकरैः धारासम्पातकणैः सिक्तानि तरुतलानि यत्र तादृशेन। 'वानरोऽथासौ गोलाङ्गूलोऽसिताननः।' इति हेमचन्द्रः। प्रवृद्धेति—प्रवृद्धानि, नारिकेलाः, कङ्केलयः अशोकवृक्षाः, राजताली क्रमुकः, तालः, तमालाः हिन्ताला हीना अल्पास्तालाः, पृषोदरादिः। पूगाः क्रमुकाः, पुन्नागाः केसराः, केसराः वकुलाः, नागकेसराः, एतेषां वनानि यत्र तथोक्तेन। अस्मिन्प्रकरणे बहवो वृक्षाः पुनरुक्ताः। घनसारेति—घनसारः वृक्षभेदः। कूष्माण्डको वा। 'कूष्माण्डकः पुष्पफलो घनसारः' इति हारावली। 'मल्लिको हंसभेदे स्यात् तृणशून्ये तु मल्लिका। इति रुद्रः। कोविदारः 'कचनार' इति प्रसिद्धः। मन्दारः 'बकाइन' इति प्रसिद्धः। मन्दारो देवतरुर्वा। बीजपूरः मातुलुङ्गः। जम्बीरः मातुलुङ्गः। स्तम्बः गुल्मः। 'अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ' इत्यमरः। पवनेति—पवनेन वायुना संवाहिताः कम्पिताः अनेके पनसविटपिनां पनसवृक्षाणां विटपाः पल्लवाः शाखाविस्तारा वा यत्र तादृशेन। अप्रत्यूहेति—अप्रत्यूहं निर्बिघ्नं क्रियमाणं यत् दात्यूहकुहरितं काकध्वनिस्तेन भरितः पूर्णः नदीतटे निकुञ्ज-

---

विदल, वकुल, करञ्ज बेल आदि वृक्षोंसे व्याप्त, प्रचुरतासे बनी हुई अनेक प्रकारकी पर्णशालाओंमें उत्पन्न गिरिमल्लिकाओंसे जिसका समीपभाग भरा हुआ था, जहां सुन्दरी नामक वृक्षोंका वन, उत्कण्ठित भ्रमरों की गूंजसे मनोहर हो रहा था। जहां, अच्छे प्रकार फैली हुई वेंतकी लताओंसे आच्छादित नवीन वरुण-वृक्षके शाखाओं पर भ्रमर पंक्तिसे बैठे हुए थे। जहां, वृक्षोंके अधस्तल, लङ्गूरों द्वारा तोड़े हुए मधुछत्तोंसे टपकते हुए रस—मधुकी वर्षासे गीला हो रहा था। जहां नारियल आदि वृक्षोंका वन-खूब हरा-भरा हो रहा था, जो घनसार आदि गुल्मों-झाड़ियोंसे व्याप्त हो रहा था। जहां वायुद्वारा अनेक कटहर-वृक्षोंके पत्ते (अथवा शाखाएँ) हिल रहे थे। जलकाक पक्षियोंके निर्बिघ्नतासे

हरितभरितनदीतटनिकुञ्जपुञ्जेन, पुञ्जिताकुण्ठकण्ठकलकण्ठाध्यासितसहकारपल्लवेन, चपलकुलायकुक्कुटकुटुम्बाध्युषितोत्कटानेकविटपेन, कोरकनिकुरम्बरोमाञ्चितकुरवकराजिना, रक्ताशोकपल्लवलावण्यविलिप्यमानदशदिशा, प्रविकसितकेसरकुसुमकेसररजोविसरधूसरितपरिसरेण, परागपुञ्जपिञ्जरसिन्दुवारमञ्जरीरज्यमानमधुकरमञ्जुशिञ्जितजनितजनमुदा, लवङ्गचम्पकमधूकतमाललोध्रकर्णिकारकदम्बकदम्बकेन, मदजलमेचकितगण्डकाष-

---

पुञ्जो निकुञ्जसमूहो यत्र तादृशेन। कुहकुहारावेति पाठान्तरम्। कुहकुहारावः रतिध्वनिः। कुहकुहाराव इति शब्दानुकरणम्। पुञ्जितेति—पुञ्जिता मिलिता अकुण्ठकण्ठा निर्बाधकण्ठस्वराः कलकण्ठाः कोकिलास्तैः अध्यासिताः सहकारपल्लवा आम्रकिसलयानि यत्र तथोक्तेन। 'कलकण्ठः पिके पारावते हंसे कलध्वनौ।' इति हैमः। चपलेनि—चपलेन कुलायकुक्कुटकुटुम्बेन नीडस्थितकुक्कुटपरिवारेण अध्युषिताः अध्यासिताः उत्कटा विशाला अनेके विटपाः यत्र तादृशेन। कोरकेनि—कोरकनिकुरम्बेण कलिकासमूहेन रोमाञ्चिता कण्टकिता कुरवकराजिः रक्तमहासहापङ्क्तिः यत्र तादृशेन। रक्तेति—रक्ताशोकपल्लवानां रक्ताशोककिसलयानां लावण्येन सौन्दर्येण विलिप्यमानाः परिपूर्यमाणा इत्यर्थः, दश दिशो यत्र तादृशेन। प्रविकसितेति—प्रविकसितं केसरस्य वकुलवृक्षस्य यः कुसुमकेसरः पुष्पकिञ्जल्कः तस्य रजोविसरेण परागसमूहेन धूसरितः पाण्डुरीकृतः परिसरः समीपदेशो यस्य तथोक्तेन। 'अथ केसरे बकुलः'। 'किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्।' 'ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः।' इत्यमरः। परागेति—परागपुञ्जेन कुसुमरजःसमूहेन पिञ्जरा पीतवर्णा या सिन्दुवारमञ्जरी निर्गुण्डीस्तबकः तया तस्यां वा रज्यमानाः सानुरागाः ये मधुकराः भ्रमराः तेषां मञ्जुना मनोहरेण शिञ्जितेन अव्यक्तशब्देन जनिता जनानां मुत् येन तथोक्तेन। यद्यपि शिञ्जितशब्दस्य भूषणादिरवे प्रयोगः कोषेषु व्युत्पादितः, तथाप्यत्रोपचारेण मधुकररवे प्रयोगो द्रष्टव्यः। क्वचिद् 'गुञ्जिते'ति पाठः। लवङ्गेति—लवङ्गादीनां कदम्बकं समूहो यत्र तादृशेन। मदेति—

होनेवाले कुह-कुह शब्दसे नदी-तटकी लता-गृह-श्रेणी परिपूर्ण हो रही थी। जहाँ सहकार-मञ्जरियोंपर एकत्रित हो मधुरकण्ठ कोकिलाएँ बैठी हुई थीं जहां, विशाल अनेक वृक्ष, घोंसलोंमें चञ्चल कुक्कुट-कुटुम्बसे अधिष्ठित थे। जहाँ, गुलशादाव (पुष्प वृक्ष विशेष), कलिकाओंसे रोमाञ्चित हो रहा था। जहां, रक्ताशोकके पत्तोंकी लुनाईसे दसों दिशाएँ रंगी हुई-सी थीं। जिसका समीपस्थ भाग, खिले हुए केसर-मौलसिरी-पुष्पोंके रजःसमूहसे पाण्डुवर्ण हो रहा था। जहाँ, पुष्परेणुसे पीतवर्ण सिन्दुवार-निर्गुण्डीकी मंजरियों द्वारा रंगे हुए भ्रमर, अपनी मधुर गूँजसे मनुष्योंको आनन्दित कर रहे थे। जहाँ, लौंग आदि वृक्षोंके समूह सुशोभित थे। जहाँ, मुचुकुन्द नामक वृक्षके स्कन्ध-जिनपर हाथियोंके

मुचुकुन्दकाण्डकथ्यमाननिःशङ्ककरिकरटविकटकण्डूतिना, कतिपयदिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटरेण, चटकसञ्चार्यमाणचटुलवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटुना, सहचरीसहचरणचञ्चुरचकोरचुञ्चुना, शैलेयसुगन्धितशिलातलसुखशयितशशशिशुराशिना, शेफालिकाशिफाविवरविस्रब्धविव-

---

मदजलेन दानवारिणा मेचकितः कृष्णवर्णीकृतः गण्डकाषः कपोलस्थलघर्षणप्रदेशः यस्य तादृशस्य मुचुकुन्दस्य वृक्षविशेपस्य काण्डेन स्कन्धेन कथ्यमाना सूच्यमानेति यावत् निःशंकानां निर्भयानां करिणां हस्तिनां करटानां कपोलानां विकटा अधिका कण्डूतिः खर्जनं यत्र तादृशेन। 'मुचुकुन्दो वृक्षभेदे मुनिदैत्यविशेषयोः।' इति विश्वः। 'काण्डं चावसरे बाणे नाले स्कन्धे च शाखिनाम्।' इति धरणिः। कतिपयेति—कतिपयदिवसप्रसूता अल्पदिनप्रसूता या कुक्कुटी ताम्रचूडभार्या तया कुटीकृतं स्वल्पगृहीकृतं तत्र अध्युषितमिति यावत्। कुटजकोटरं कुटजनिष्कुटो यत्र तादृशेन। 'कुटी तु स्यात्कुम्भदास्यामल्पवेश्मनि चापि सा।' इति भागुरिः। 'कुटीरीकृतम्' इति पाठान्तरम्। चटकेति—चटकैः कलविङ्कैः संचार्यमाणा इतस्ततो नीयमाना लाल्यमाना इत्यर्थः। चटुलाः चञ्चलाः वाचाटा बहुभाषिणो ये चाटकैराः चटकायाः पुमपत्यानि तैः क्रियमाणं चाटु प्रियवचनं यत्र तादृशेन। 'चटकः कलविङ्कः स्यात्।' 'पुमपत्ये चाटकैरः' इति द्वयोरप्यमरः। 'चटकाया ऐरक्' इति ऐरक्प्रत्ययः। वाचाटपदे 'आलजाटचौ बहुभाषिणि' इति आटच्। सहचरीति—सहचरीणां भार्याणां सहचरणे सहगमने चञ्चुरैः समर्थैः चकोरैः चुञ्चुना प्रसिद्धेन। 'तेन वित्त–' इति चुञ्चुप्प्रत्ययः। 'सहचरीचारणचुञ्चुचतुरचकोरचुञ्चुना' इति पाठान्तरम्। सहचरीणां चारणैः चुञ्चुभिः प्रसिद्धैः चतुरचकोरैः चुञ्चुना प्रसिद्धेनेत्यर्थः। शैलेयेति—शिलायां भवं शैलेयं शिलाजतु। 'शिलाया ढः' इति ढप्रत्ययः। तेन सुगन्धिषु शिलातलेषु सुखेन शयितः सुप्तः शशशिशूनां राशिर्यत्र तथोक्तेन। शेफालिकेति—शेफालिकायाः सुवहायाः 'निवारी' इति लोकप्रसिद्धायाः शिफाविवरे जटारन्ध्रे विवर्तमानः विलुठन् गौधेरराशिः गोधाशिशुसमूहो यत्र तादृशेन। 'शेफालिका तु सुवहे'त्यमरः। 'शिफा जटायां सरति मांसिकायां च मातरि' इति विश्वः।' 'गौधेर' इत्यत्र 'गोधाया ढ्रक्' इति ढ्रक्

कपोल रगड़नेके स्थान मदजलसे काले पड़ रहे थे-गजोंका निर्भयतापूर्वक कपोल रगड़ना सूचित कर रहे थे। जहां, अचिर-प्रसूत कुक्कुटियोंने कुटज-कोटरको अपनी कुटी बनायी हुई थी। जहां चटका (गौरय्या चिड़िया) से प्रेरित हो सुन्दर और बकवादी चिड़ा अनेक खुशामदकी बातें कर रहा था। जो, सहचरी-पत्नियोंके साथ घूमने (अथवा खाने) में समर्थ चकोरोंके लिये विख्यात था। जिसमें, शिलाजीतकी गन्धसे सुगन्धित शिलातल पर शश-शिशु आरामसे लेटे हुए थे। जहाँ, गोधा-शिशु, शेफालिका (एक पौधा) की जटाछिद्रोंमें विश्वस्त हो लोट रहे थे। जहाँ, रङ्कु-मृगविशेष-निर्भय हो विचरते थे। जिसमें,

र्तमानगौधेरराशिना, निरातङ्करङ्कुनिकरेण, निराकुलनकुलकुलकेलिना, कलकोकिलकुलकवलितसहकारकलिकोद्गमेन, सहकाराराम रोमन्थायमानचमरीयूथेन, श्रवणहारिसनीडगिरिनितम्बनिर्झरनिनादश्रवणनिद्रानन्दमन्दायमानकरिकुलकर्णतालदुन्दुभिध्वनिना, समासन्नकिन्नरीगीतश्रवणरममाणरुरुविसरेण, कुहरितहरिद्राद्रवरज्यमानवराहपोतपोत्रपालिना, गुञ्जाकुञ्जपुञ्जितजाहकजातेन, दंशदशनकुपितकपिपोतपेटकनखकोटिपाटितपाटली-

प्रत्ययः। 'तत्र गौधारगौधेयगौधेरा गोधिकात्मजे।' इत्यमरः। निरेति—निरातङ्कः निःशङ्कः रङ्कुनिकरो मृगसमूहो यत्र तथोक्तेन। कलेति—कलं मनोहरं यत् कोकिलकुलं पिकवृन्दं तेन कवलितो भक्षितः सहकारकलिकायाः आम्रकोरकस्य उद्गमो यत्र तथोक्तेन। सहकारेति—सहकारारामेषु आम्रोपवनेषु रोमन्थायमानं रोमन्थं वर्तयत्, चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणं रोमन्थः। 'कर्मणो रोमन्थ' इति क्यङ्। चमरयूथं मृगकुलं यत्र तादृशेन। 'यूथं तिरश्चां पुंनपुंसकम्।' इत्यमरः। श्रवणेति—श्रवणहारिणा श्रोत्रानन्दप्रदेन सनीडे समीपे स्थितानां गिरिनितम्बनिर्झराणां पर्वतकटकवारिप्रवाहाणां निनादस्य शब्दस्य श्रवणेन समुत्पन्नः यः निद्रानन्दः तेन मन्दायमानम् अलसगमनं यत् करिकुलं तस्य कर्णतालः श्रोत्राघातध्वनिः दुन्दुभिध्वनिरिव यत्र तादृशेन। 'समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीडवत्।' इत्यमरः। मन्दायमानेत्यत्र 'भृशादिभ्यो भुवि-इति क्यङ्। समेति—समासन्नानां समीपवर्तिनां किन्नरीणां गीतिश्रवणेन रममाणः आनन्दमनुभवन् रुरुविसरः मृगसमूहो यत्र तादृशेन। कुहरितेति—कुहरिता नासिकाग्रभागेन छिद्रिता कुहरशब्दाण्णिचि क्तः। 'कुहरं सुषिरं विवरं विलम्।' इत्यमरः। या हरिद्रा रजनी तस्या द्रवेण रज्यमाना वराहपोतानां शूकरशिशूनां पोत्रपालिः घोणाप्रदेशो यत्र तथोक्तेन। 'पोत्रं वक्त्रं मुख्याग्रञ्च शूकरस्य हलस्य च।' इति विश्वः। 'पालिः पङ्क्तिप्रदेशयोः' इत्यमरः। गुञ्जेति—गुञ्जानां काकचिञ्चीनां कुञ्जेषु पुञ्जितमेकत्रीभूतं जाहकजातं विडालसमूहो यत्र तथोक्तेन। 'गुञ्जाऽपि पटहे प्रोक्ता काकचिञ्च्यां कलध्वनौ' इति विश्वः। दंशेति-दंशानां वनमक्षि-

नकुल निर्भयतापूर्वक क्रीडा कर रहे थे। जहाँ, मनोहर पिक (कोयल) आमकी कलिकाएँ खा रही थीं। जिसमें, आम्रवनोंमें चमरी-मृग रोमन्थ (जुगाली) कर रहे थे। समीपवर्ती पहाड़ी ढाल पर विद्यमान झरनोंके श्रुति-मधुर शब्द सुननेके कारण नींदके आनन्दसे अलसाये हुए हाथी अपने कर्णतालोंसे दुन्दुभि शब्द-सा कर रहे थे। जहाँ, कृष्ण-मृगोंके झुण्ड पासमें स्थित किन्नरियोंके गानका आनन्द उठा रहे थे। जिसमें, सुअरके बच्चोंकी थूथनी छिद्रित और हरिद्रा-द्रवसे पीली हो रही थी। जहां, घुँघचीकी झाड़ियोंमे बिडाल-समूह एकत्रित हो रहे थे। जिसे दंशों-वनमक्षिकाओं-के काटनेसे क्रुद्ध वानर-शिशु अपने

पुटकीटसंकटेन, कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गकुम्भस्थलरुधिरच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभासुरकेसरिकदम्बेन, महासागरकच्छोपान्तेन कतिपयदूरमध्वानं गत्वा, अतिचपलवीचिप्रचयप्रहतप्रपाततया, ताण्डवोद्दण्डदोर्दण्डषण्डखण्डपरशुविडम्बनापण्डितम्, वारुणविजयपताकाभिरिव, शेषकुलनिर्मोकमञ्जुमञ्जरीभिरिव, सुधासहचरीभिरिव, ज्योत्स्नासहोदरीभिरिव, शशाङ्कमण्डलपरिशेषपरमाणुसन्तति-

---

काणां दशनेन दंष्ट्राव्यापारेण कुपितानां कपिपोतकानां कपिशावकानां पेटकेन समूहेन नखकोटिभिः नखाग्रभागैः पाटितो यः पाटलीपुटः पाटलावृक्षः तत्र तैः कीटैः संकटो व्याप्तः तादृशेन। कुलिशेति—कुलिशशिखरवत् वज्राग्रभागवत् खरेण तीक्ष्णेन नखरप्रचयेन नखसमूहेन प्रचण्डया भीषणया चपेटया प्रहारेण पाटितानि विदारितानि मत्तमातङ्गानां मत्तदन्तिनां यानि कुम्भस्थलानि तेषां रुधिरच्छटया छुरितेन रूषितेन केसरभारेण स्कन्धकेशसमूहेन भासुराणां दीप्तिमतां केसरिणां सिंहानां कदम्बकं समूहो यत्र तथोक्तेन। 'पाणौ चपेटप्रतलप्रहस्ता विस्तृताङ्गुलौ' इत्यमरेण चपेटशब्दस्य विस्तृताङ्गुलिपाणिवाचकत्वेऽपि पुंस्त्वेऽपि 'खण्डिकोपाध्यायश्चपेटां ददाति।' इत्यादिमहाभाष्यादिप्रयोगात् स्त्रीत्वं प्रहारवाचकत्वं चावसेयम्।' इत्यभिनवभट्टबाणाः। कच्छोपान्तः—जलप्रायप्रदेशसमीपभूमिः। 'जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः।' इत्यमरः। अतिचपलेति—अतिचपलानां बीचीनां तरङ्गाणां प्रचयेन समूहेन प्रहतः ताडितः प्रपातः कूलं येन तस्य भावस्तया। ताण्डवेति ताण्डवेषु नृत्येषु उद्दण्डम् उद्धतं दोर्दण्डषण्डं भुजदण्डं यस्य तादृशस्य खण्डपरशोः शिवस्य विडम्बनायामनुकरणे पण्डितो निपुणस्तम्। वारुणेति—वरुणस्येमाः वारुण्यः वारुण्यश्च ताः विजयपताकास्ताभिः। 'पुंवत्कर्मधारय—' इति पुंवद्भावः। 'वारुणी'तिपाठे वारुणी मदिरा पश्चिमदिग्वा। दर्पकारस्तु 'वारुणी' इति पाठेऽपि वरुणस्येयं वारुणी, विजयपताकास्ताभिरिव' इत्याह। शेषेति—शेषकुलस्य सर्पराजपरिवारस्य निर्मोकस्य कञ्चुकस्य मञ्जुमञ्जर्यः मनोहरराशयस्ताभिरिव। लक्ष्मीति—लक्ष्म्या लीलार्थं यत्

तेज नाखूनोंके अग्रभागसे नोचकर पाटली वृक्षोंके कीड़ोंसे भर रहे थे। जहाँ, केसरी-सिंहों के सुन्दर अयाल, अपने वज्र-धारके समान तीक्ष्ण नाखूनोंके प्रहारसे मत्तहाथियोंके क्षतविक्षत गण्डस्थलोंके रुधिर-छटासे चमक रहे थे। समुद्रके ऐसे जलप्राय देशके पास कुछ दूर जाकर समुद्र देखा। जिसके किनारेपर लहरें टकरा रही थीं अत एव वह ताण्डव नृत्यके समय भुजा फैलाए हुए महादेवका अनुकरण करनेमें प्रवीण प्रतीत होता था। जिसका तट-प्रदेश, वरुणदेवकी विजयपताकाओं, सर्पोंकी केचलियों, अमृतकी सहचरियों, ज्योत्स्नाकी भगिनियों, चन्द्रमण्डलका निर्माण करनेसे अवशिष्ट परमाणु-समूहों

भिरिव, लक्ष्मीलीलातर्पणधाराभिरिव, जलदेवताचन्दनविच्छित्तिभिरिव, फेनराजिभिरुपान्तरमणीयम्, अपरमिव गगनतलमवनितलमवतीर्णम्, अच्छजलादुच्छलच्छीकरनिकरेण नभश्चरान् मुक्ताफलैरिव, विलोभयन्तम्, अभयाभ्यर्थनागतानेकसपक्षक्षितिधरभरितकुक्षिभागम्, सगरसुतविसरसमुत्खातम्, वडवामुखगतवारिजातम्, सुरपत्युपात्तपारिजातम्, अभिजातमणिरत्नाकरम्, करिमकरकुलसंकुलम्, शकुलकुलकवलनाभिलाषसंचरन्नक्रचक्रम्, स्तिमितातिमितिमिङ्गिलकुलम्, कदलीवनपालीपालि-

---

आतर्पणं मङ्गलालेपनं तस्य धाराभिरिव। 'चत्वरे चूतमूले च मधुपिष्टद्रवेण यत्। कन्याभिः सिच्यते धारां विदुरातर्पणं हि तत्।' इति सम्प्रदायः, इत्यभिनवभट्टबाणाः। सहचरीभिः सखीभिः, तुल्याभिरित्यर्थः। जलेति—जलदेवतानां चन्दनविच्छित्तयः चन्दनाङ्गरागाः ताभिरिव। उपान्तेषु प्रान्तप्रदेशेषु रमणीयम्। उच्छलदिति—उच्छलताम् ऊर्ध्वमुत्पतताम् शीकराणाम् अम्बुकणानां निकरेण समूहेन। नभश्चरान्—आकाशचारिणो गन्धर्वादीन्। अभयेति—अभयाभ्यर्थनाय अभययाचनाय आगतैः अनेकैः बहुभिः सपक्षक्षितिधरैः पक्षसहितपर्वतैः भरितः पूर्णः कुक्षिभागः अभ्यन्तरप्रदेशो यस्य तथोक्तम्। 'सपक्षति' इति पाठे सपक्षतयः पक्षमूलसहिताः। 'स्त्री पक्षतिः पक्षमूलम्' इत्यमरः। 'पक्षात्तिः' इति तिप्रत्ययः। सगरेति—सगरसुतानां विसरेण समूहेन समुत्खातम् अवदारितम्। 'खनु–अवदारणे' अस्मान्निष्ठायां 'जनसन–' इत्यात्वम्। वडवेति—वडवामुखे और्वावदने वारिजातं जलसमूहो यस्य तथोक्तम्। सुरेति—सुरपतिना इन्द्रेण उपात्तः गृहीतः पारिजातो देववृक्षो यस्मात् यस्य वा सः, तादृशम्। अभिजातेति—अभिजातानां शुद्धानां मणीनां रत्नानाञ्चाकरः खनिः प्रभवो वा। करीति—करिभिः जलचरगजैः मकरैश्च संकुलं व्याप्तम्। करिरूपमकरकुलेन वा सङ्कुलम्। शकुलेति—शकुलकुलस्य मत्स्यसमूहस्य कवलनाभिलाषेण भक्षणेच्छया संचरत् नक्रचक्रं यत्र तथोक्तम्। स्तिमितेति—

लक्ष्मीके विलासके लिये निर्मित मङ्गलजनक लेपनकी धाराओं और जलदेवियोंके (मस्तकपर लगे हुए) चन्दनकी छटाओंके समान फेन-समूहसे रमणीक हो रहा था। मानों, दूसरा आकाश पृथ्वीपर उतरा हुआ था। वह अपने निर्मल-जलसे उठते हुए जलकणोंके मिस, मानों मोतियोंसे आकाशचारी विद्याधर आदिको लुभा रहा था। जिसका अभ्यन्तर प्रदेश, अभय-दान मांगनेके लिये आये हुए अनेक सपङ्ख पर्वतोंसे परिपूर्ण था। जिसे सगर-पुत्रोंने खोदा था। जिसका जल वडवानलके मुखमें प्रवेश कर रहा था। जिसका पारिजात इन्द्रने ले लिया था। जो शुद्ध-निर्मल मणि तथा रत्नोंकी खान था। हाथी तथा मकरोंसे व्याप्त था। जिसमें, पक्षियोंके खानेकी इच्छासे नाकें घूम रहे थे। जिसमें अनेक तिमि और तिमिङ्गिल (बड़ी मछली

तैलालवलीलवङ्गमातुलुङ्गगुल्मगहनम्, ऊर्मिमारुतमर्मरिततरलतरोत्ताल-तालीदलचकितजलमानुषमिथुनमृदितनिलीनतलिनशैवालम्, प्रवाला-ङ्कुरकोटिपाटितमुखखिन्नशङ्खनखखरशिखाविलिखिततटलेखम्, खगेश्वर-गोत्रपत्ररथपटलकलिलसलिलम्, अद्याप्यनिर्मुक्तमन्दरमथनसंस्कारमिवा-

---

स्तिमितं निश्चलं तिमितिमिङ्गिलयोः मत्स्यविशेषयोः कुलं यत्र, तादृशम्, तिमिं मत्स्यं गिलतीति तिमिङ्गिलो महामत्स्यः। मूलविभुजादित्वात्कः। 'अचि विभाषा' इति लत्वम्। 'गिलेऽगिलस्य' इति मुम्। कदलीति—कदलीवनस्य वनपाल्या वन-पालिकया, वनं पालयतीति वनपाली कर्मण्यणि ङीप्। पालितैः एलाभिः, लवलीभिः लताविशेषैः लवङ्गैः मातुलुङ्गैः गुल्मैः गहनं व्याप्तम्। ऊर्मीति—ऊर्मिमारुतेन तरङ्ग-वायुना मर्मरितैः सशब्दैः तरलतरैः अतिचञ्चलैः उत्तालैः तालीदलैः तालपत्रैः चकि-तानि भीतानि यानि जलमानुषाणां मिथुनानि द्वन्द्वानि तैः मृदितं प्रहतं निलीनं भूम्या सहैक्यमापन्नमिव तलिनं स्तोकं शैवालं जलनीली यत्र। 'तलिनं विरले स्तोके'। 'जलनीली तु शैवालम्' इत्यमरः। प्रवालेति—प्रवालानां विद्रुमाणाम् अङ्कुर-कोटिभिः अङ्कुराग्रभागैः पाटितं विदारितं मुखं येषां तादृशाः अतएव खिन्नाः ये शङ्खनखाः क्षुद्रशङ्खाः तेषां खरशिखाभिः तीक्ष्णाग्रभागैः विलिखिता सरेखा कृता तटलेखा तीरपङ्क्तिर्यस्य तथोक्तम्। 'क्षुद्रशङ्खाः शङ्खनखाः' इत्यमरः। खगेति—खगानां पक्षिणाम् ईश्वरः अधिपतिः खगेश्वरो गरुडः, तस्य गोत्रपत्ररथानां कुलोत्प-न्नपक्षिणां पटलेन समूहेन कलिलं व्याप्तं सलिलं जलं यस्य तथोक्तम्। अनिर्मु-क्तेति—न निर्मुक्तः निःशेषेण परित्यक्तः मन्दरेण मथनस्य आलोडनस्य संस्कारो वासना येन तादृशमिव। आवर्तः अम्भसां भ्रमः, तस्य भ्रान्तिभिः भ्रमणैः। 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः।' इत्यमरः। अपस्मारः रोगविशेषः। 'चिन्ताशोकादिभिः क्रुद्धा दोषा हृत्स्रोतसि स्थिताः। कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते।' इति वैद्यके। 'अत्र सितफेनेत्युक्त्या अपस्मारस्य श्लैष्मिकत्वमुक्तं भवति। तथा च

जो छोटी मछलियोंको खा जाती है) निश्चेष्ट पड़े हुए थे। जो, कदली बनकी रक्षिका द्वारा पालित इलायची, लवली (एक प्रकारकी लता), लौंग और विजौरा नींबूके गुल्मोंसे व्याप्त हो रहा था। जिसकी छोटी-छोटी सिरवाल, लहरों (लहर-जल सम्पृक्त) की हवा लगनेसे मर्मरशब्दयुक्त तथा हिलते हुए तालपत्रोंके कारण भयभीत जल-मानुषोंके जोड़ों द्वारा मसलने से भूमि (जल) के समतल हो गई थी—ऊपर उठी हुई सिरवाल नीचे बैठकर जलके बराबर हो गई थी। जिसकी तटरेखा, विद्रुमोंकी नोकसे मुख फट जानेके कारण खिन्न छोटे छोटे शङ्खोंके तीक्ष्ण अग्रभागसे क्षत-विक्षत हो गये थे, जिसका जल, पक्षिराज-गरुड़के वंशमें उत्पन्न पक्षियोंसे व्याप्त हो रहा था। उसके आवर्त-चक्रोंसे प्रतीत होता था,

वर्तभ्रान्तिभिः, सापस्मारमिव सितफेनसंचयैः, ससुरामोदमिव वेलावकुलपरिमलैः, सरोषमिव गर्जितैः, सखेदमिव नागनिःश्वासैः, सभ्रूभङ्गमिव तरङ्गैः, सालानस्तम्भमिव रामसेतुना, कुम्भीनसीकुक्षिमिव लवणोत्पत्तिस्थानम्, व्याकरणमिव विततस्त्रीनदीकृत्यबहुलम्, राजकुलमिव दृश्यमानमहापात्रम्, हस्तिबन्धमिव वारिगतानेकनागमुच्यमानशूत्कारम्, विश्वामित्रपुत्रवर्गमिव अम्भोजचामरमत्स्योपशोभितम्, सत्पुरुषमिव

माधवः-'शुक्लफेनाङ्कवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः। पश्यन् शुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात्।' इति। इत्यभिनवभट्टबाणाः। ससुरेति—वेलायां तीरभूमौ ये वकुलाः केसरवृक्षाः तेषां परिमलैः गन्धैः, सुराया मद्यस्य आमोदेन गन्धेन सहितमिव। नागाः जलसर्पा जलगजा वा। भ्रूभङ्गः भ्रुकुटिः। आलानस्तम्भः गजबन्धनस्तम्भः। 'आलानं बन्धनस्तम्भः' इत्यमरः। कुम्भीनसी—लवणासुरजननी। लवणेति—लवणस्य क्षारद्रव्यस्य, पक्षे लवणासुरस्य उद्भवस्थानम्। विततेति-वितताना विस्तृतानां स्त्रीनदीनां पत्नीभूतानां नदीनां कृत्यैः स्वस्मिन्प्रवेशरूपैः तरङ्गाश्लेषरूपैर्वा बहुलं व्याप्तम्। पक्षे-विततानि स्त्री स्त्र्यधिकारकार्याणि, नदी नदीसंज्ञाकार्याणि कृत्याः कृत्यसंज्ञकप्रत्यया बहुलं 'मघवा बहुलम्' इत्यादीनि यत्र। स्त्रीनद्योः कृत्यानि टापूह्रस्वादीनि तैः बहुलम् इति वा। दृश्येति—दृश्यमानं महापात्रं विततं कूलद्वयान्तरं यस्य तादृशम्। पक्षे महापात्रं महामात्यः। 'पात्रं तु कूलयोर्मध्ये पर्णे नृपतिमन्त्रिणि।' इति हैमः। हस्तिबन्धेति—हस्तिनो बध्यन्तेऽत्रेति हस्तिबन्धः। गजबन्धनस्थानम्। अधिकरणे घञ्। वारीति—वारिगतैः जलमध्यस्थितैः अनेकैः नागैः सर्पैः मुच्यमानः क्रियमाणः शूत्कारो यत्र स तथोक्तम्। पक्षे-वारिगतैः बन्धनरज्जुगतैः तद्बद्धैरित्यर्थः। नागैः गजैः मुच्यमानः शूत्कारो यत्र तादृशम्। 'पानीये वारि विख्यातं वारिर्बन्धनरज्जुषु।' इति धरणिः। अम्भोजेति—अम्भोजचामरैः शैवालैः

मानों, मन्दर पर्वत द्वारा मथनका संस्कार आज भी नहीं छूटा है। वह, सफेद फेन समूहोंसे अपस्मार-मृगी रोगी सा प्रतीत होता था। वेला-तटपर विकसित बकुल-पुष्पोंकी गन्धके कारण उसमें सुराकी सी गन्ध आरही थी। वह गर्जनाके कारण क्रुद्धसा, सर्पोंकी श्वाससे खिन्न-सा, लहरोंसे भौं चढ़ाये हुआसा, और राम-सेतुके द्वारा हस्ति-बन्धन स्थूणा युक्त-सा प्रतीत हो रहा था। लवणासुरकी उत्पत्तिस्थान कुम्भीनसीकी कुक्षिके समान वह नमक उत्पन्न होने का स्थान था। स्त्री, नदी और कृत्यसंज्ञा द्वारा विधीयमान अनेक टाप्, ह्रस्वादि कार्योंसे परिपूर्ण व्याकरणके समान वह अपनी पत्नीरूप नदियोंके प्रवेश रूप कार्यैसे व्याप्त हो रहा था—उसमें अनेक नदियाँ प्रवेश कर रही थी। जिस प्रकार रज्जुसे बंधे हुए अनेक हाथी सूँसूँ शब्द किया करते हैं इसी तरह उसमें (जलमें) स्थित अनेक सर्प फुंकार मार रहे थे

गोत्राश्रयम्, साधुमिवाच्युतस्थितिरमणीयम्, सुनृपमिव सज्जनक्रमकरम्, कृतमन्युमिव करतोयाप्लुतमुखम्, विरहिणमिव चन्दनोदकसिक्तम्, विलासिनमिव नर्मदानुगतम्, राशिमिव समीनकुलीरम्, शृङ्गारिणमिव अनेकमुक्तालङ्कृतम्, उद्धृतकालकूटमपि प्रकटितविषराशिम्,

---

मत्स्यैश्चोपशोभितम्। 'शैवालं शैवलाम्भोजचामरं जलनीलिका।' इत्युत्पलिनी। पक्षे-अम्भोजः चामरः मत्स्यश्चेति विश्वामित्रपुत्रनामानि। 'अम्भोजचारुमत्स्येति' पाठान्तरम्। तत्र समुद्रपक्षे अम्भोजैः कमलैः चारुः मनोहरः मत्स्यैश्चोपशोभितः इत्यर्थः। पक्षे अम्भोजः चारुमत्स्य इति विश्वामित्रपुत्रेष्वन्यतमौ। गोत्रेति—गोत्रस्य वंशस्य आश्रयः आधारस्तम्। पक्षे गोत्राणां पर्वतानाम् आश्रयः तम्। अच्युतेति— अच्युतस्य विष्णोः स्थित्या उपस्थित्या रमणीयं मनोहरम्। पक्षे-अच्युतया अपरिभ्रष्टया स्थित्या आचारमर्यादया रमणीयम्। सज्जेति—सज्जाः सर्वदोपस्थिताः नक्राः मकराश्च यत्र तथोक्तम्। पक्षे-सज्जनानां साधूनां क्रमकरं व्यवहारकारिणम्, व्यवस्थाकरं वा। कृतेति—कृतमन्युः कृतक्रोधस्तमिव। 'मन्युः शोके क्रतौ क्रुधि।' इति विश्वः। करेति—करतोया सदानीरा काचन नदी। 'करतोया सदानीरा।' इत्यमरः। तया आप्लुतं सिक्तं मुखं सङ्गमस्थलं यस्य तम्। पक्षे-करतोयेन हस्तस्थितजलेन आप्लुतं क्षालितं मुखं यस्य येन वा तम्। चन्दनेति—चन्दनसम्बन्धिजलं, चन्दना नदीविशेषो वा, चन्दनस्योदकेन सिक्तम्। नर्मदेति—नर्मदया रेवयाऽनुगतम्। पक्षे-नर्मक्रीडा तां ददतीति नर्मदा अङ्गनास्ताभिरनुगतम्। समीनेति— मीनैः मत्स्यैः कुलीरैः कर्कटकैश्च सहितम्। पक्षे-मीनकुलीरौ राशिभेदौ। अनेकेति अनेकाभिः मुक्ताभिः मौक्तिकैः अलङ्कृतम् शोभितम्। शृङ्गारिपक्षे मुक्ताभिः स्वैरिणीभिरिति वा। इत्यभिनवभट्टबाणाः। उद्धृतेति—उद्धृतो निष्कासितः कालकूटो हालाहलो यस्मात् तादृशमपि, प्रकटितो विषस्य गरलस्य राशिर्येनेति विरोधः।

अम्भोज और चारुमत्स्य नामक पुत्रोंसे सुशोभित विश्वामित्रके पुत्र-मण्डलकी तरह वह समुद्र कमलोंसे मनोहर एवं मत्स्योंसे उपशोभित था। अपने कुलके आश्रयभूत सत्पुरुषकी तरह उसमें (अनेक) पर्वतोंने आश्रय लिया था। मर्यादा-सम्पन्न सदाचारसे मनोहर सज्जनके समान वह विष्णु भगवान् के निवासके कारण रमणीय था। सत्पुरुषोंकी व्यवस्था करनेवाले उत्तम नृपतिके समान उसमें नक्र और मकर परिपूर्ण हो रहे थे। हस्तस्थित जलसे मुख धोने वाले क्रुद्ध पुरुषकी तरह उसके सङ्गमस्थलको करतोया नदी सींच रही थी। वियोगी-जनके समान वह चन्दन जलसे सिक्त हो रहा था। विदूषक-सहचारी विलासी जनके समान वह नर्मदासे अनुगत था। मीन और कुलीर नामक राशियोंसे युक्त राशिमण्डलके समान वह मत्स्य और केकड़ोंसे व्याप्त हो रहा था। शृङ्गारीजनके समान अनेक

अतिवृद्धमपि सुन्दरीपरिवृतकण्ठम्, सुरोत्पत्तिस्थानमपि असुराधिष्ठितम्, जलनिधिमपश्यत्।

अचिन्तयच्च—अहो मे कृतापकारेणापि विधिनोपकृतिरेव कृता; यदयं लोचनगोचरतां नीतः समुद्रः। तदत्र देहमुत्सृज्य प्रियाविरहाग्निं निर्वापयामि। यद्यप्यनातुरस्य देहत्यागो न विहितस्तथापि कार्यः। न खलु सर्वः सर्वं कार्यमेव करोति। असारे संसारे केन किं नाम न कृतम्। तथाहि—गुरुदारहरणं द्विजराजोऽकरोत्। पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया

परिहारपक्षे विषं जलम्। 'विषं तु गरलं तोये' इत्यमरः। अतीति- अतिवृद्धम् अतिस्थविरमपि, सुन्दरीभिः रमणीभिः परिवृतो वेष्टितः कण्ठो यस्य तादृशम् इति विरोधः। सुन्दरीभिः वृक्षविशेषैर्विद्रुमैर्वा परिवृतो युक्तः कण्ठः समीपदेशो यस्य तथोक्तमिति परिहारः। 'कण्ठो गले गलध्वाने समीपेऽपि प्रकीर्तितः।' इति विश्वः। सुरेति—सुराश्चन्द्रादयो मद्यं वा तदुत्पत्तिस्थानमपि ताभ्यामनधिष्ठितम् इति विरोधः। यद्वा—सुरस्य ब्रह्मणः उत्पत्तिर्यस्मात् स सुरोत्पत्तिर्विष्णुस्तस्य स्थानमपि। असुरैः दानवैः अधिष्ठितः आश्रितश्चेति परिहारः। एतादृशं जलनिधिमपश्यत्।

अहो इति—कन्दर्पकेतुः इत्येवं विचिन्त्य पुलिनतलमाससादेत्यन्वयः। लोचनगोचरताम् दृष्टिपथम्। उत्सृज्य त्यक्त्वा। निर्वापयामि शमयामि। अनातुरस्य रोगाद्यनभिभूतस्य। आतुरस्य तु मरणम्, 'दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुमानपि। प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं कुर्यादनशनादिकम्' इत्यादिस्मृत्युक्तमेव।' इति दर्पणकारः। असारे—साररहिते। 'अद्य स्थित्वा श्वो गमिष्यद्भिरल्पैर्लज्जास्माभिर्मीलितावर्जितैव।' इत्युक्तोऽभिप्रायः, असार इत्यनेन विवक्षितः।' इत्यभिनवभट्टबाणाः। ते च 'असारे संसारे' इति पदद्वयस्य पूर्ववाक्ये सम्बन्धं कुर्वन्ति। गुर्विति—गुरुः बृहस्पतिः सुर-

---

मोतियोंसे परिपूर्ण था। यद्यपि उसमें से कालकूट-विष निकाल लिया गया था तोभी वह विष प्रकट कर रहा था (वस्तुतः) जल दर्शा रहा था, यद्यपि वह बूढ़ा था तोभी सुन्दरी स्त्रियाँ उसके गलेमें लिपटी हुई थीं (वस्तुतः) वह बहुत बढ़ा हुआ था और उसका समीप प्रदेश सुन्दरी नामक वृक्षोंसे व्याप्त था। देवताओंका उत्पत्ति स्थान होते हुए भी असुर—दैत्योंसे अधिष्ठित था। (वस्तुतः) मद्यका उत्पत्ति स्थान था तथा उसमें दानवगण निवास करते थे।

(उसे देखकर) कन्दर्पकेतु सोचने लगा—भाग्यने, अपकार करते हुए भी मेरे साथ उपकार ही किया है क्योंकि यह समुद्र मेरी दृष्टिमें पड़ गया है। यहाँ मैं शरीर—विसर्जन किये देता हूँ। यद्यपि स्वस्थ पुरुष के लिये आत्महत्या शास्त्र विहित नहीं है तोभी मैं करूँगा ही क्योंकि इस असार संसारमें सभी मनुष्य उचित कर्म ही नहीं करते (प्रत्युत अकार्य भी

विननाश । नहुषः परकलत्रदोहदी भुजङ्गतामयासीत् । ययातिर्विहित-ब्राह्मणीपाणिग्रहणः पपात । सुद्युम्नः स्त्रीमय एवाभवत् । सोमकस्य प्रख्याता

गुरुः तस्य दाराः भार्या तारा नाम । तस्याः हरणं ग्रहणम् । द्विजराजः चन्द्रः । गुरोः पितृभ्रात्रादेः दाराणां ग्रहणम् । द्विजराजः ब्राह्मणश्रेष्ठः श्रुतिस्मृत्याद्यध्ययन-सम्पन्नश्चेति प्रतीयते । 'पुरा चन्द्रः स्वमभिलषन्तीं बृहस्पतिपत्नीं ताराम्' परिगृह्य तस्यां बुधं पुत्रं समुत्पादयामासे'ति भारतादिपर्वणि । पुरूरवा इति—बुधस्य इलायां जातश्चन्द्रवंश्यो राजा पुरूरवाः । स वयःशेषे ब्रह्मस्वमगृह्णात् तत एव नष्टः । इत्यपि भारते ।' इति दर्पणकारः । 'पुरूरवाः पूर्वां दिशं जेतुं गच्छन् केनाप्याहृतप्रभूत-धनेन विप्रेण यज्ञे निमन्त्रितो लोभाक्षिप्तहृदयस्तद्धनं जिहीर्षुस्तच्छापान्नष्टः । तस्मिन् मृते स विप्रो नृपं विना प्रजा विनश्यतीति ज्ञात्वा तदायुषा राजर्षिमायुर्नामानमजी-जनत् । इति शंकरः । नहुष इति—परकलत्रस्य परभार्याया दोहदी अभिलाषुकः भुजङ्गतां सर्पत्वम् अयासीत् प्राप्तवान् । 'कामुको दोहदी मतः ।' वृत्रवधात् ब्रह्म-हत्याक्रान्ते सुरेन्द्रे इन्द्रपदमारोपितो नहुषः इन्द्राणीमभिललाष । यद्यपूर्ववाहना-रूढो मां समयेऽवाप्स्यसि तदाऽहं तुभ्यमात्मानं समर्पयिष्यामीति तयोक्तो नृपः अगस्त्यादीन्महर्षीन् याने नियुज्य मन्दं मन्दं सञ्चरन्तमगस्त्यं सर्प सर्पेति ब्रुवाणः पादेन जघान तदा क्रुद्धेनागस्त्येन सर्पो भवेति शप्तः सर्पो बभूवेति भारते । ययातिः कश्चिन्नृपः । कृतं ब्राह्मण्याः शुक्राचार्यदुहितुर्देवयान्याः पाणिग्रहणं विवाहो हस्ता-वलम्बनञ्च येन स तथोक्तः । पपात तारुण्यादित्यर्थः । कूपाद्देवयान्युद्धरणकाले स्वयं कूपे पपातेति चेत्यपरे । समयबन्धेन स्वपरिचारिकायां शर्मिष्ठायामप्यासक्तो ययातिः तज्ज्ञात्वा कुपितया देवयान्या निवेदितेन शुक्रेण 'प्रवया भवेति शप्तः' भारते । सुद्युम्नो नृपविशेषः । 'सुद्युम्नो राजा' शोभनं द्युम्नं बलमस्येति च । स्त्रीमयो महिलाकृतिः कान्तानुरक्तश्च । 'योऽत्र तोयमुपयोचयते स स्त्रीत्वमापत्स्यते' इति भगवता भवान्याभ्यर्थितेन भवेन शप्तः 'सन्सरसः पीत्वा तोयं सुद्युम्नो मृगया-विहारी स्त्रीमयोऽभूदिति शंकरः । सोमकस्येति सोमको राजा । जन्तुः तत्पुत्रः, जन्तवः प्राणिनश्च । निर्घृणता निर्दयत्वम् । सोमकस्य शतस्त्रीष्वेकस्यां जन्तुसंज्ञः पुत्र उत्पन्नः । स कदाचित् पिपीलिकया दष्टोऽरुदत्, ततः सर्वास्तन्मातरोऽरुदन्,

करते ही हैं) । किसने क्या नहीं किया ? देखो—चन्द्रमाने, सुरगुरु-बृहस्पति की पत्नी—तारा का अपहरण किया था । अनेक ब्राह्मण-श्रेष्ठ भी आचार्यादिकी पत्नियोंमें गमन करते हैं। ब्राह्मण-धनकी तृष्णासे पुरूरवा नष्ट हो गया । दूसरे की पत्नी की कामना कर नहुषको सर्प बनना पड़ा । ब्राह्मण-पुत्री देवयानीके साथ विवाह करनेसे ययाति पतित हो गया । सुद्युम्न स्त्री ही बन गया—अनेक बलवान् पुरुष भी स्त्रियों पर अनुरक्त हो जाते हैं । अपने पुत्र

जगति जन्तुवधनिर्घृणता । पुरुकुत्सः कुत्सित एवाभवत् । कुवलयाश्वोऽश्वतरकन्यामपि जगाम । नृगः कृकलासतामगमत् । नलः कलिनाऽभिभूतः । संवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात् । दशरथोऽपीष्टरामोन्मा-

तेनान्तःपुरे महानाक्रन्दः समुत्थितः । तच्छ्रुत्वा राजा 'कथं मे बहवः पुत्राः स्युरि'ति पुरोहितं पृष्टवान् । पुत्रस्य जन्तोर्वपया होमे तद्धूमाघ्राणेन सर्वा अप्यन्तःपुरस्त्रियो गर्भिण्यो भविष्यन्तीति पुरोहितेनोक्तस्तथैव कृतवान् । पुरुकुत्सः कश्चिन्नृपः । 'पुरुकुत्सः पुरा तपश्चरन्नर्मदायां स्नानं कुर्वन् कामप्यङ्गनामालोक्य कामाविष्टो नीतिमुत्ससर्ज' इति शंकरः । 'रेवैव स्त्रीरूपेणागता' इत्यपरे । कुवलयाश्वः नृपविशेषः । अश्वतरस्य सर्पविशेषस्य कन्यां मदालसामाजहार । गर्दभेनाश्वायामुत्पन्नः पशुविशेषः 'खिच्चर' इति लोके ख्यातश्चाश्वतरः । 'विश्वावसोर्गन्धर्वराजस्य सुता मदालसा पातालकेतुना दानेवन बलात् गृहीत्वा पाताले निक्षिप्ता । कालान्तरे च तं दानवं हतवता कुवलयाश्वेन पाणौ गृहीता । ततश्च पातालकेतुसुहृदः कस्यचन दानवस्य कपटप्रयोगेण मदालसा कुवलयाश्वस्यासंनिधावग्निं प्रविष्टा । तद्विरहदूनस्य स्वसुतसखस्य च कुवलयाश्वस्य प्रियचिकीर्षुणा अश्वतराभिधानेन सर्पराजेन परमेश्वरप्रसादाद्यथापुरावस्थितवयोरूपादिकं समासादिता मदालसा कुवलयाश्वाय प्रतिपादितेति वायुपुराणे इत्यभिनवभट्टबाणाः । 'कुवलयाश्वो मृगयाप्रसङ्गेन घर्मातुरो मज्जनरभसेन सरसीमवतीर्णो रसातलं प्राप्तो मदालसां नागकन्यकामूढवान्' । इति शंकरः । मायानिर्मितां मदालसामश्वतरः कुवलयाश्वायार्पयत्' इति दर्पणकारः । नृगः कश्चिन्नृपः । स खलु कस्मैचिद्दत्तपूर्वामेव गावमज्ञानादन्यस्मै प्रदिशन् तेन व्यतिकरेण विवदमानाभ्यां ब्राह्मणाभ्यां 'कृकलासो भव' इति शप्त इत्युत्तररामायणे' इत्यभिनवभट्टबाणाः । 'नृगेण पुष्करे तीर्थे गा द्विजत्रा कृताः पुरा । तत्राज्ञानाद् द्विजस्यैका कपिला मिलिताऽभवत् । अपराधादतस्तेन शप्तः सरटतामयात् ।' इति दर्पणकारः । कलिना कलियुगेन, कलहेन च । सुप्रसिद्धेयं कथा । संवरणो—नृपविशेषः । मित्रदुहितरि सूर्यसुतायां तपत्याम् । पक्षे मित्रस्य सुहृदो दुहितरि कन्यायाम् । विक्लवतां विह्वलताम् अन्यथाभावमिति यावत् । इष्टेति—इष्टा वल्लभा या रामा रमणी कैकेयी तया तस्यां वा उन्मादेन चित्तविभ्रमेण । इष्टः प्रियः यः रामः स्वसुतः तेन तस्मिन्वा उन्मादेन च । मृगयायां हतस्य तपस्विनः पित्रोर्यथा पुत्रवियोगादावयोर्मरणमेवं तवापि पुत्रशोकान्मरणं भविष्यतीति शापात् रामवियो-

जन्तुके मारनेसे सोमक की निर्दयता प्रसिद्ध ही है । पुरुकुत्स, निन्दित ही हो गया । कुवलयाश्वने अश्वतरनायक नागकी कन्या मदालसासे सम्भोग किया । राजा नृग कृकलास—गिरगिट बना । राजा नल कलियुगसे अभिभूत हुआ । संवरण, सूर्य पुत्री तपतीके लिये धैर्य खो बैठे । दशरथ, अपनी प्यारी पत्नी कैकेयी (तथा) अपने प्रियपुत्र रामके कारण उन्मादी

देन मृत्युमवाप । कार्तवीर्यो गोब्राह्मणपीडया पञ्चत्वमयासीत् । शन्तनुरतिव्यसनाद्विललाप । युधिष्ठिरः समरशिरसि सत्यमुत्ससर्ज । तदित्थं नास्त्येव जगत्यकलङ्कः कोऽपि । तदहमपि देहमुत्सृजामि । इति विचिन्त्य कुररखरनखरशिखरखण्डितपृथुलपृथुरोमशल्कसंकुलम्, संकलितजलनकुलोच्चारशारम्।' क्रोष्टुकुलोत्सृष्टविकटकर्कटककर्परपरम्परापरिगतप्रान्तम्, अतितरलजलरयलुलितचटुलशफरकुलकवलनकृतमतिनिभृतवकशकुनि-

गाद्दशरथो मृत्युमवापेति प्रसिद्धेयं कथा। गोब्राह्मणेति—गोः जमदग्निगोः, ब्राह्मणस्य जमदग्नेश्च, गोनिमित्तं ब्राह्मणस्येति वा पीडया वधेन, पञ्चत्वं मृत्युम् अयासीत्। कार्त्तवीर्योऽर्जुनः जमदग्निहोमधेनुं बलादाच्छिद्य स्वपुरं नीतवान् ततोऽनेनापराधेन तत्पुत्रेण परशुरामेण निहतोऽर्जुनः। शन्तनुः—भीष्मपिता। शापाद्भुवमागतां गङ्गां समयपूर्वकं विवहन् शन्तनुरष्टमं पुत्रमपि जले प्रक्षेप्तुकामां तां निरुन्धानः समयबन्धातिक्रमात्तस्यां गतायां बहुधा विललापेति भारते।' इत्यभिनवभट्टबाणाः। युधिष्ठिरः धर्मपुत्रः। युद्धे पराक्रमन्तं द्रोणं हन्तुमिच्छुर्युधिष्ठिरः 'अश्वत्थामा हतः (कुञ्जरः) इत्यर्थद्वयाभिप्रायेण प्रयुञ्जानः सत्यात्प्रच्युत' इति भारते। अत्र 'शोकान्मृतिर्वपुरुत्सर्गो वने च परिदेवनम्। कन्दर्पकेतुः स्वकृतावुपष्टम्भकमुक्तवान्।' इति दर्पणधृतसंग्रहश्लोकः। कुररेति—कुरराणाम् उत्क्रोशपक्षिणां खरनखराणां तीक्ष्णनखानां शिखरैः अग्रभागैः खण्डितानां विदारितानां पृथुलानां स्थूलानां पृथुरोम्णां मत्स्यानां शल्केन शकलेन संकुलं व्याप्तम्। 'पृथुरोमा झषो मत्स्यः।' 'द्वे शल्के शकलवल्कले' इत्यमरः। संकलितेति—संकलितस्य एकत्रीभूतस्य जलनकुलकुलस्य उच्चारेण विष्ठया शारं शबलम्। 'उच्चारावस्करौ शमलं शकृत्।' इत्यमरः। क्रोष्टुकुलेति—क्रोष्टुकुलेन शृगालवृन्देन उत्सृष्टानां परित्यक्तानां भक्षणावशिष्टानामिति यावत् कर्कटककर्पराणां कुलीरकपालानां परम्पराभिः परिगतो व्याप्तः प्रान्तः समीपदेशो यस्य तथोक्तम्। 'स्यात्कर्परः कपालोऽस्त्री।' इत्यमरः। अतीति—अतितरले अतिचञ्चले जलरये जलप्रवाहे लुलितं विवृतं चटुलं चञ्चलं यत् शफरकुलं

हो गये—उनका चित्त विकृत हो गया। कार्तवीर्य—सहस्रबाहु अर्जुन गौके कारण ब्राह्मणको पीड़ा देनेसे मर गया। राजा शन्तनु अति व्यसनी होनेके कारण (अथवा) अत्यन्त दुःखी होनेसे वनमें विलाप करते फिरते थे। युधिष्ठिरने युद्धमें सत्य छोड़ दिया। इस प्रकार संसारमें कोई भी निष्कलङ्क-निर्दोष मालूम नहीं देता। इसलिये मैं भी शरीर छोड़ता हूँ। यह सोचकर वह समुद्र-तटपर पहुँचा। वहां, कुरर-चकवा-के तीक्ष्ण नाखूनोंके अग्रभागसे काटे हुई बड़ी बड़ी मछलियोंके टुकड़े पड़े हुए थे। वह, एकत्रित हुए जलनकुलों-ऊदबिलावों की विष्ठासे रंग-विरंगा हो रहा था। उसकी प्रान्तभूमि, शृगालों द्वारा बड़े-बड़े कुलीरोंकी

निवहधवलितपरिसरम्, अतिचपलजलकपिकुलविहरणलुलितसलिलकण-निकरपरिमिलनशिशिरिततमालतलम्, अनुदिननिपतदतितरुणवनमहिष-गवलशिखरविलिखितविषमतटम्, अनवरतचरदसितमुखचरणविहगरव-निवहमधुरनिनदमुखरितम्, अहिमकरकरनिकररुचिरजलमनुजगणशयन-मृदिततटधरणीतलम्, अतिबहलमदजलशबलकरटतटकरिशतनिपतित-

---

मत्स्यसमूहः तस्य कवलनाय भक्षणाय कृतमतीनामत एव निभृतानां निश्चलानां वकशकुनीनां वकपक्षिणां निवहेन वृन्देन धवलितः शुभ्रितः परिसरः प्रान्तप्रदेशो यस्य स, तथोक्तम्। अतिचपलेति—अतिचपलस्य जलकपिकुलस्य विहरणेन संचरणेन लुलितस्य इतस्ततो विच्छिन्नस्य सलिककणनिकरस्य जलकणवृन्दस्य परिमिलनेन संसर्गेण शिशिरितं शीतलीकृतं शीतलं वा तमालतलं तमालवृक्षाधःप्रदेशो यत्र तादृशम्। अनुदिनेति—अनुदिनं प्रत्यहं निपतन्तः वेगेन धावन्तः अतितरुणा युवानः बलोद्रिक्ता इति यावत् ये वनमहिपास्तेषां गवलशिखरेण शृङ्गाग्रभागेण विलिखितानि उत्कीर्णान्यत एव विषमाणि उन्नतानतानि तटानि यत्र तादृशम्। अत्र यद्यपि 'गवलं माहिषं शृङ्गम्।' इत्यमरकोशात् गवलशब्देनैव महिषसंबन्धिशृङ्गस्य प्रतीयमानत्वेन महिपशब्दो व्यर्थस्तथापि कर्णावतंसादिवत् गवलशब्दः शृङ्गमात्रपरः इति बोध्यम्। अनवरतेति—अनवरतं निरन्तरं चरन्तो भ्रमन्तः असितं कृष्णवर्णं मुखचरणं येषां ते तादृशा ये विहगाः पक्षिणः धार्तराष्ट्राख्या हंसविशेषाः तेषां निवहस्य समूहस्य मधुरनिनदेन मधुरध्वनिना मुखरितं वाचालितं सशब्दमिति यावत्। अहिमेति—अहिमकरस्य सूर्यस्य करनिकरवत् किरणसमूहवत् करनिकरेण वा रुचिरं भासुरं, जलमनुजानां जलमनुष्याणां शयनेन मृदितञ्च तटधरणीतलं यत्र तथोक्तम्। यद्वा अहीनां सर्पाणां मकराणां च निकरेण रुचिरं, शेषं पूर्ववत्। अतिबहलेति—अतिबहलेन अतिप्रचुरेण मदेन दानवारिणा शबलं कर्बुरं करटतटं गण्डस्थलं येषां तादृशेषु करिशतेषु निपतितस्य उपविष्टस्य मधुकरनिकरस्य भ्रमरवृन्दस्य विरुतिभिः

झोपड़ियोंसे व्याप्त हो रहा था। उसका समीप प्रदेश, अत्यन्त चञ्चल जलवेगके कारण चमकती हुई (अथवा) किनारे पर आयी हुई मछलियोंको खानेके विचारसे चुपचाप बैठे हुए बगुले और पक्षियोंसे सफेद हो रहा था। समीपवर्ती तमाल-तल, अतिचञ्चल जल-वानरोंके इतस्ततः भ्रमण करनेसे उठी हुई जलबिन्दुओंके सम्पर्कके कारण शीतल हो रहे थे। उसके तट, प्रतिदिन आनेवाले युवक (बलवान्) जङ्गली भैंसोंके शृङ्गाग्रभागके प्रहारसे विषम-ऊँचे-नीचे हो रहे थे। वह, निरन्तर घूमते हुए काले मुख और चञ्चुवाले राजहंसोंके मधुर-शब्दसे प्रतिध्वनित हो रहा था। उसका समीपवर्ती धरणीतल, सूर्यकी किरणें पड़नेसे रुचिर और जल-मनुष्योंके लेटनेसे मुलायम हो रहा था। वहां, सैकड़ों हाथी—जिनके

मधुकरनिकरविरुतिरतिकरम्, अतिजवनपवनविधुतजलधिजलविघटननिपतितमणिगणपरिगतपरिसरम्, जलनिधिजलगतभुजगनिर्मुक्तनिर्मोकपट्टम्, दर्पणमिव वसुन्धरायाः, स्फटिककुट्टिममिव वरुणस्य, कमलवनमिव सपद्मरागम्, वनप्रदेशमिव सविद्रुमलतम्, कातरमिव सदरम्, विष्णुमिवानेकमुक्तोपेतम्, पुलिनतलमाससाद।

ततः कृतस्नानादिसकलकृत्यो जलनिधिजलमवतरितुमारेभे शरीरत्यागाय।

अथ सानुग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु,

---

गुञ्जनैः रतिकरं प्रीतिजनकम्। अतिजवनेति—अतिजवनेन वेगवता पवनेन विधुतं कम्पितं यत् जलधिजलं तस्य विघटनेन उल्लोलनेन निपतितेन मणिगणेन परिगतो व्याप्तः परिसरः प्रान्तप्रदेशो यस्य तथोक्तम्। जलनिधीति—जलनिधेः जलगतैः भुजगैः सर्पैः निर्मुक्ताः स्वशरीरात्परित्यक्ताः निर्मोकपट्टाः कञ्चुकवसनानि यत्र तथोक्तम्। स्फटिकेति—स्फटिकमणिनिर्मितं कुट्टिमं निबद्धा भूः। सपद्मेति—पद्मरागेण रत्नविशेषेण सहितम्। पक्षे, पद्मानां कमलानां रागेण रक्तिम्ना च सहितम्। सविद्रुमेति—विद्रुमलतया लताकारप्रवालेन सहितम्। पक्षे—विशेषेण विभिः पक्षिभिर्युक्ता वा द्रुमलता यत्र तथोक्तम्। कातरं—भीतमिव। दरः शङ्खः गर्तो वा। पक्षे भयं च। 'दरोऽस्त्री शङ्खभये गर्तेऽपि च।' इति रत्नमाला। अनेकेति—अनेकाभिः मुक्ताभिः मौक्तिकैः, मुक्तिं गतैः जीवैश्च समुपेतम्। 'कमलवनम्' इत्यारभ्य 'मुक्तोपेतम्' इत्यन्तः पाठः अभिनवभट्टबाणसम्पादितपुस्तक एवोपलभ्यते।

अथेति—ग्राहादिष्वेवं स्थितेषु सरस्वती समुदचरदित्यन्वयः। सानुग्रहेषु सकृपेषु।

गण्डस्थल मदसे रञ्जित थे-घूम रहे थे, उनके कपोलों पर बैठनेवाले मधुकर अपने शब्दसे आनन्दित कर रहे थे। तेज हवाके कारण समुद्र-जलमें बड़ी-बड़ी लहरें उठकर किनारेसे टकरा रही थीं अतएव किनारे पर गिरी हुई (जलके साथ आकर) मणियोंसे उसका प्रान्तदेश भरा हुआ था। वह, समुद्र-जलमें विद्यमान सर्पों द्वारा छोड़ी हुई केंचुलियोंसे पूर्ण था। जो, पृथ्वीका दर्पण, वरुण देवताका स्फटिकमणि-निर्मित फर्शसा प्रतीत हो रहा था। पद्मों की रक्तिमासे युक्त कमल-वनके समान पद्मरागमणियोंसे वह विभूषित था। पक्षियोंसे अधिष्ठित द्रुम-लता पूर्ण वन-भूमिके समान, उसमें लताकार प्रवाल शोभा पा रहे थे। भयभीत कायरकी तरह वहां अनेक शङ्ख थे, मुक्त हुए जीवोंसे युक्त भगवान् विष्णुके समान वह अनेक प्रकारके मोतियोंसे सुशोभित हो रहा था।

इसके बाद, कन्दर्पकेतुने अपना शरीर छोड़नेके लिये समुद्रमें उतरना प्रारम्भ किया।

अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयङ्करेषु मकरेषु, अमारेषु शिशुमारेषु, आकाशसरस्वती समुदचरत्—आर्य: कन्दर्पकेतो! पुनरपि तव प्रियया संगतिर्भविष्यत्यचिरेण। तद्विरम मरणव्यवसायात्।' इति। सोऽपि तदुपश्रुत्य मरणारम्भाद्विरराम। ततः प्रियासमागमाशया शरीरस्थितिहेतुमशनं चिकीर्षुः कच्छोपान्तवनं जगाम। अथ तत इतः परिभ्रमन्, फलमूलादिना वने वर्तयन्, कियन्तं कालं निनाय कन्दर्पकेतुः।

एकदा कतिपयमासापगमे काकलीगायन इव समृद्धनिम्नगानदः, सन्ध्यासमय इव नर्तितनीलकण्ठः, कुमारमयूर इव समारूढशरजन्मा, महातपस्वीव प्रशमितरजःप्रसरः, तापस इव धृतजलदकरकः, प्रलयकाल-

---

कच्छपेषु कूर्मेषु। अभयङ्करेषु भीत्यजनकेषु। 'मेघर्ति—' इत्यादिना खच्। अमारेषु अमारकेषु। शिशुमारेषु मत्स्यविशेषेषु। आकाशसरस्वती गगनवाक्। समुदचरत् उत्थिता। अकर्मकत्वात् 'उदश्चर-' इत्यात्मनेपदं न। अचिरेण शीघ्रमेव। अशनं भोजनम्। चिकीर्षुः कर्तुमिच्छुः। वर्तयन् शरीरधारणां कुर्वन्। 'वर्तमानः' इति पाठान्तरम्।

एकदेति—एकदा वक्ष्यमाणप्रकारः वर्षासमयः समाजगामेति सम्बन्धः। काकली कलः सूक्ष्मो ध्वनिस्तादृशगायनवत्। समृद्धेति—समृद्धाः जलपरिपूर्णाः निम्नगा नद्यः नदाः प्रत्यक्स्रोतसो नर्मदादयश्च यत्र तादृशः। पक्षे—समृद्धं शोभनं निम्नं नीचं गम्भीरं वा गानं ददातीति तादृशः। 'काकली तु कले सूक्ष्मे।' 'निम्नं गभीरं गम्भीरम्' इत्यमरः। नर्तितेति—नर्तितः नीलकण्ठः मयूरो यत्र तादृशः। पक्षे नीलकण्ठो महादेवः। समारूढेति—समारूढम् सम्यक् प्रवृद्धं शराणां तृणविशेषाणां जन्म यत्र तथोक्तः। पक्षे—समारूढः शरजन्मा कार्तिकेयो यं सः। प्रशमितेति—प्रशमितः शान्तिं नीतः

अनन्तर जब, ग्राह—अनुकूल थे, मत्स्योंने मत्सरता छोड़ दी थी, कच्छपोंकी भी (उसके भक्षण की) इच्छा नहीं थी। नक्र सदय हो गये थे, मकर भी भीषण नहीं रहे और शिशुमार—जलहस्ती—हिंसक न रहे तब आकाश-वाणी हुई—'आर्य कन्दर्पकेतु! शीघ्र ही तुम्हारी प्रियाके साथ भेंट होगी इसलिये मरनेकी इच्छा छोड़ दो। यह सुनकर उसने मरनेका विचार छोड़ दिया; और, प्रिया-मिलनकी आशा कर प्राणधारणके एकमात्र कारण भोजन करनेकी इच्छासे कच्छप्रदेशके समीपवर्ती वनमें पहुँचा। अनन्तर इधर-उधर घूमते हुए फल-मूल आदिसे शरीर-धारण करते हुए बहुतसा समय बिता दिया।

कुछ समय व्यतीत होने पर एक समय वर्षा काल उपस्थित हुआ, जिसमें उत्तम और गम्भीर गानके प्रवर्तक काकलीगायन—बारीक आवाज-की तरह नदियां तथा नद जलसे भरे हुए थे। जिसमें, महादेवके नृत्यसे युक्त सायङ्कालके समान मोर नाच रहे थे। कार्तिकेयसे अधिष्ठित कुमार (कार्तिकेय) के वाहनभूत मयूरके समान शर-सरकण्डा-बहुतायतके सथा

इव दर्शितानेकतरणिविभ्रमः, निरुपद्रवकाननोद्देश इव घनोत्सेकितसारङ्गः, रेवतीकरपल्लव इव हलिधृतिकरः, लङ्केश्वर इव समेघनादः, विन्ध्य इव घनश्यामः, युवतिजन इव पीनपयोधरः, समाजगाम वर्षासमयः। विभिन्नमेघनीलोत्पलकाननीले क्रीडासरसीव नभसि स्मरस्य कनकरत्ननौकेव, जलदकाललक्ष्मीमातङ्गकन्यानर्तनरज्जुरिव, नभःसौधतो-

---

रजःप्रसरो धूलिसमूहो येन तादृशः। पक्षे रजोगुणः। धृतेति—धृता जलदा मेघाः करका वर्षोपलाश्च येन सः। पक्षे—धृतो जलदः जलप्रदः करकः कमण्डलुर्येन सः तथोक्तः। 'करका मेघपाषाणे करका च कमण्डलौ। दाडिमेऽपि च करकं करौ च करकः स्मृतः।' इति विश्वः। वर्षासु करकावर्णनं कविसम्प्रदायः। दर्शितेति—दर्शितः प्रकटितः अनेकेषां तरणीनां नौकानां विभ्रमो विशेषेण भ्रमणं येन स तथोक्तः। पक्षे—तरणीनां सूर्याणां विभ्रमो विलासो येन तथोक्तः। 'तरणिस्तरणेऽर्कांशौ कुमार्योपधिनौकयोः।' इति हैमः। घनेति—घनेन मेघेन उत्सेकिताः उन्मादिताः सारङ्गाः चातका यत्र तादृशः। पक्षे—घनमत्यन्तं यथा तथा उत्सेकिताः सारङ्गाः हरिणा यत्र सः। 'चातके हरिणे पुंसि सारङ्गः शबले त्रिषु।' इत्यमरः। हलीति—हलिनां कृषकाणां धृतिकरः सन्तोषजनकः। पक्षे—हलिनो बलरामस्य धृतिकरः धैर्याधायकः। समेघनादेति—मेघानां घनानां नादेन गर्जितेन सहितः। पक्षे—मेघनादेन एतन्नाम्ना स्वपुत्रेण सहितः। घनेति—घनैर्मेघैः श्यामवर्णः। पक्षे—घनवत् घनं निबिडं यथा तथा वा श्यामः। पीनेति—पीनाः जलपूर्णाः महाकारा वा पयोधरा मेघा यत्र सः। पक्षे—पीनौ स्थूलौ पयोधरौ कुचौ यस्या सः। विभिन्नेति—विभिन्नानि नानाविधानि मेघा एव नीलोत्पलकाननानि तैः नीले श्यामवर्णे नभसि आकाशे कनकस्य सुवर्णस्य रत्ननौका रत्नजटिततरणिरिव। जलदेति—जलदकाललक्ष्मीः वर्षाकालशोभैव मातङ्गकन्या चाण्डालकुमारी तस्याः नर्तनरज्जुः डोलोपयोगिनी रज्जुः रज्जुमयी डोलेति

उगे हुए थे। जिसका रजोगुण शान्त हो चुका है ऐसे तपस्वीके समान जिसमें धूल दबी हुई थी। जलप्रद कमण्डलु धारण करनेवाले संन्यासीके समान जिसने मेघ और ओले धारण किये हुए थे। अनेक सूर्योंका विलास—चमक प्रदर्शित करनेवाले प्रलय-कालके समान जिस समय (नदी आदिमें) अनेक नौकाएँ घूम रही थीं। जिसमें मृग खूब मत्त—आनन्दित हो विचरते थे ऐसे शान्त वन-प्रदेशके समान जिसने मेघों द्वारा चातकोंको मस्त बना दिया था। बलरामको सन्तुष्ट करनेवाले रेवतीके हाथके समान जो कृषकोंको धैर्य दे रहा था। स्वपुत्र मेघनाद सहित रावणके समान जिस समय मेघ गर्जना कर रहे थे। जो विन्ध्याचलकी तरह नीलवर्ण हो रहा था। और पीनस्तनी युवतियोंके समान जिसमें बड़े घने मेघ उठ रहे थे। उस समय, इन्द्रधनुष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों, मेघरूपी अनेक

रणरत्नमालिकेव, प्रवसता निदाघेन दिवः पयोधरे स्मरणाय दत्ता नखपदावलिरिव, गगनलक्ष्मीबन्धुररशनामालेव, नभोमन्दारसुन्दरकलिकेव, रतिनखमार्जनरत्नशलाकेव, रत्नमयी विलासयष्टिरिव कुसुमकेतोरिन्द्रधनुर्लता रराज ।

अतितृष्णावेगपीतजलनिधिजलशङ्खमालां बलाकाच्छलादुद्वमन्निवा-

यावत् । नभ इति—नभः आकाशमेव सौधं तस्य तोरणस्य बहिर्द्वारस्य रत्नमालिका इव । 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः । प्रवसतेत्यादि—प्रवसता देशान्तरं गच्छता निदाघेन उष्णापगमेन दिवो द्योः पयोधरे स्तने मेघे च नखपदावलिः नखक्षतपङ्क्तिरिव । 'निदाघदिवोः पुल्लिङ्गस्त्रीलिङ्गाभ्यां पयोधरशब्दश्लेषेण नायकनायिकाव्यवहारप्रतीतेः समासोक्तिः । तदुपजीविनी च नखपदावलित्वोत्प्रेक्षेति तयोः संकरः।' इत्यभिनवभट्टबाणाः । 'चिरोत्पन्नप्रवासेन प्रीतिर्गच्छेत्पराभवम् । रागायतनसंस्मारि यदि न स्यान्नखक्षतम् ।' इति कामतन्त्रम् गगनेति—गगनलक्ष्म्या आकाशाङ्गनाया बन्धुरा मनोहरा रशनामाला काञ्चीपङ्क्तिरिव । 'बन्धूरबन्धुरौ रम्ये ।' इति विश्वः । नभ इति—नभः आकाशमेव मन्दारः देवतरुः तस्य सुन्दरकलिका मनोहरकोरक इव । रतीति—रतेः कामभार्यायाः नखमार्जनाय रत्नशलाका इव । रत्नमयी—रत्नखचिता ।

अतितृष्णेति—जलधरनिकरः मेघवृन्दम्, अतितृष्णया अतिपिपासया प्रबलेच्छया च हेतुभूतया वेगेन रभसात् पीता या जलधिजलगता शङ्खमाला तां बलाकाच्छलात् बिसकण्ठिकामिषात् उद्वमन् इवालक्ष्यत । नितरां पिपासितो हि जलस्थितमन्यदपि वस्तु जलेन सहान्तर्निगिरति । अत्र सापह्नवोत्प्रेक्षेत्यभिनवभट्टबाणाः । कैतवापह्नुतिः । 'कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नुते पदैः' इति लक्षणात् ।' इति दर्पणकारः ।

प्रकारके नीलोत्पल वनके कारण नीलवर्ण, क्रीडासरोवर तुल्य आकाशमें कामदेवकी रत्नजटित स्वर्णमयी नौका हो । अथवा, वर्षा कालकी शोभारूपी चाण्डालकुमारीके नाचनेकी रज्जु हो । अथवा, आकाशरूपी प्रासादके बहिर्द्वारकी रत्नजटित माला हो । अथवा, यात्रामें जाने वाले ग्रीष्मऋतुरूपी नायकने, (अपनी प्रीतिका) स्मरण दिलाने के लिये आकाशरूपी नायिकाके मेघरूपी स्तनमें नख-क्षत किये हों । अथवा, आकाश-शोभारूपी (नायिका) की मनोहर काञ्ची हो । अथवा, आकाशरूपी मन्दार वृक्षकी सुन्दर कली हो । अथवा, कामपत्नी रतिके नाखून साफ करनेकी रत्ननिर्मित सलाई हो । अथवा, कामदेवकी रत्नखचित घूमनेकी छड़ी हो ।

(मेघोंके नीचे उड़ती हुई) बकपंक्तियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो, अत्यन्त प्यास (तथा स्पृहा) के आवेगसे समुद्र-जल पीनेके समय मेघने (जलके) अन्तःस्थित शङ्ख भी

दृश्यत जलधरनिकरः। पीतहरितैः कृष्णकेदारिकाकोष्ठिकासु समुत्पतद्भिर्दर्दुरशिशुकैर्जातुषैर्नयद्यूतैरिव चिक्रीडविद्युता समं घनकालः। रविदीपकज्जलितमेघनिकषोपले मेघसमयस्वर्णकारकषितस्वर्णरेखेव तडिदशोभत। विरहिणां हृदयं विदारयितुं कृतं करपत्रमिव कुसुमायुधस्य केतकीपुष्पमभासत। जलददारुणि लोलतडिल्लताकरपत्रदारिते पवनवेगनिर्धूताश्चूर्णनिकरा इव जलकणा बभुः विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव खरपवनवेगभ्रमितघनघरट्टघट्टनसंचूर्णिततारानिकरा इव त्रिभुवनविजिगीषो-

---

पीतहरितैरित्यादि—घनकालः वर्षासमयः, कृष्णाः सस्यैः श्यामलाः कृष्णवर्णाश्च केदारिकाः अल्पाः केदारा एव कोष्ठिकाः वस्त्रादिनिर्मिताः क्रीडासाधनस्थलविशेषास्तासु। केदारकोष्ठाभ्यामल्पत्वे कन्। समुत्पतद्भिरुत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छद्भिः, पीतहरितैः पीतवर्णैः हरितवर्णैश्च दर्दुरशिशुकैः मण्डूकशावकैः करणैः विद्युता समं, जातुषैः जतुनो विकारैः जतुनिर्मितैः। नयद्यूतैः नयाख्यद्यूतविशेषसाधनैरक्षैरिव चिक्रीड क्रीडितवान्। 'नयो नीतौ द्यूतभेदे' इति रत्नमाला। 'नयो युद्धनीतिः। तच्छिक्षकैः द्यूतैः चतुरङ्गैः चतुरङ्गसाधनेषु लक्षणा। नयद्यूतसाधनभूतैर्हस्त्यश्वादिभिरिव समुत्पतद्भिः।' इति दर्पणकारः। रवीति—रविः सूर्य एव दीपः तेन कज्जलितः श्यामलीकृतः मेघ एव निकषोपल आकषः 'कसौटी' इति लोके प्रसिद्धः तस्मिन्। करपत्रं क्रकचम्। 'आरा' इति भाषायाम्। अभासत अशोभत। 'केतकीपुष्पम्' इत्यस्य स्थाने 'क्रकचच्छदम्' इति पाठान्तरम्। तत्र क्रकचच्छदं केतकीपुष्पमित्यर्थः। 'द्रोणीदलं सूचीपुष्पं जम्बालं क्रकचच्छदम्' इति हारावली। जलदेति—जलकणाः, जलददारुणि मेघकाष्ठे, लोला चञ्चला तडिल्लता विद्युदेव करपत्रं क्रकचस्तेन दारिते द्विधाकृते। बभुः शुशुभिरे। विच्छिन्नेति—करकाः वर्षोपलाः। विच्छिन्नः त्रुटितः

पी लिये थे और अब वमनकर उन्हींको बलाका मिससे निकाल रहा है। उस समय, (सस्योंसे) नीलवर्ण क्यारीरूपी कोष्ठिकाओं—खानों—में उछल उछलकर चलते हुए पीले-हरे मेंढकोंके बच्चेरूपी लाखके बने हुए मोहरों द्वारा, मानों, वर्षाकाल विजलीके साथ जुआ (या शतरंज) खेल रहा था। विजली ऐसी शोभित हो रही थी, मानो, सूर्यरूपी दीपकसे काली की हुई मेघरूपी कसौटीपर वर्षाकालरूपी सुनारने सोनेकी रेखा खींची हो। उस समय, केतकीका फूल, वियोगियोंका हृदय चीरनेके लिये बनाये हुए कामदेवके क्रकच—आरा—के समान प्रतीत हो रहा था। जलकण, चञ्चल विद्युल्लतारूपी करपत्र-क्रकच-से विदीर्ण मेघरूपी काष्ठपर, वायुवेगके कारण उड़े हुए बुरादेके समान शोभित हो रहे थे, ओले, दिग्वधुओंके टूटे हुए हारके मुक्ताओं, तेज हवासे उड़ते हुए मेघरूपी चक्कीमें पिसनेके कारण चूरा हुए तारागण और तीनों लोककी विजयेच्छासे प्रस्थित कामदेवकी प्रस्थान-

मकरध्वजस्य प्रस्थानलाजाञ्जलय इव करका व्यराजन्त। नवशाद्वलं सेन्द्रगोपं महीमहिलायाः शुकाङ्गश्यामलं लाक्षारसाङ्कितं स्तनोत्तरीयमिवालक्ष्यत।

मेघकुम्भसलिलैः पृथिवीनायिकां स्नपयित्वा प्रावृट्चेटिकायां गतायां स्वच्छमम्बरं दर्शयन्ती शरच्चेटिका समाजगाम।

अनन्तरमखञ्जखञ्जरीटे, अकुञ्चितक्रौञ्चसंचारे, निर्भरभरद्वाजद्विज-

---

दिग्वध्वाः यो हारः तस्य मुक्तानिकरा इव मौक्तिकसमूहा इव। खरपवनस्य प्रचण्डवातस्य वेगेन भ्रमितः घनो मेघ एव घरट्टः पेषणयन्त्रं तस्य घट्टनेन भ्रमणेन संचूर्णिताः सम्यक् चूर्णीकृताः तारानिकराः नक्षत्रसमूहा इव, प्रस्थानकाले यात्रासमये लाजाञ्जलयः अञ्जलिस्थलाजा इवेत्यर्थः। व्यराजन्त अशोभन्त। नवेति—इन्द्रगोपैः रक्तवर्णैः कीटविशेषैः 'वीरवधूटी' इति लोकप्रसिद्धैः सहितम्। नवशाद्वलम् नवबालतृणसंयुक्तस्थलम्। शादाः बालतृणानि सन्त्यस्मिन्निति शाद्वलम्। 'नडशादाड्वलच्।' इति वलच्। महीमहिलायाः पृथिव्यङ्गनायाः। शुकाङ्गवत् कीरोदरवत् श्यामलं श्यामवर्णम्।

मेघेति—मेघा एव कुम्भाः तेषां सलिलैः जलैः। स्नपयित्वा स्नानं कारयित्वा। प्रावृट् वर्षाकालः एव चेटिका दासी तस्याम्। अम्बरम् वस्त्रम्, आकाशञ्च।

अनन्तरमिति—एवंविधे शरत्समये विजृम्भमाणे कन्दर्पकेतुः पाषाणमयीं पुत्रिकां पस्पर्शेति सम्बन्धः। अखञ्जेति-अखञ्जाः शोभनगतयः स्वेच्छासञ्चारिणो वा खञ्जरीटाः खञ्जनपक्षिणो यत्र तादृशे। 'खजि-गतिवैकल्ये।' अकुञ्चितेति—अकुञ्चितः अनिरुद्धः क्रौञ्चानां पक्षिविशेषाणां सञ्चारो गमनं यत्र तथोक्ते। निर्भरेति—निर्भरमत्यन्तं यथा तथा भारद्वाजद्विजैः व्याघ्राटपक्षिभिः वाचाटाः वाचालाः सशब्दा इतियावत् विटपिनां वृक्षाणां विटपाः शाखाः स्कन्धा यत्र तादृशे। पटिवति—पटुतरं विशदं प्रकाशमानमित्यर्थः। मेघाद्यावरणाभावादिति भावः। प्रभातं दिनमुखं यत्र

कालीन (माङ्गलिक) खीलों के समान शोभित हो रहे थे। इन्द्रगोपों-वीरबहूटी-से परिपूर्ण नवीन दूबके मैदान, पृथ्वीरूपी महिलाके, लाक्षारससे अङ्कित (बिन्दुयुक्त) तोतेके पंखोंकी तरह हरे रंगके दुपट्टेकी तरह शोभित हो रहे थे। (हरी धरतीपर लाल बूँदीवाली छींट) जब वर्षा-रूपी दासी पृथ्वी-नायिकाको मेघरूपी कलश-जलसे स्नान कराके चली गई तब शरद्रूपी दूसरी दासी स्वच्छ आकाशरूपी वस्त्र लेकर उपस्थित हुई।

शरत् समयके प्रारम्भ होनेपर, जब कि खञ्जरीट पक्षी स्वेच्छासे विहार कर रहे थे, क्रौञ्च पक्षियोंका भ्रमण निर्बाध चल रहा था, वृक्षोंकी शाखाएँ, भरद्वाज पक्षियोंके गुंजारसे

वाचाटविटपिविटपे, पटुतरप्रभप्रभाते, उद्भ्रान्तशुककुलकलकलसंकुलकलमकेदारे, प्रवेशितवेशराजहंसे, कंसारातिदेहद्युतिद्युतले, हंसतूलतुलितजरज्जलमुचि, सान्द्रीकृतेन्दुमहसि, गामुकजनमृदितमधुतृणवीरुधि, सरससारसरसितसारकासारे, कशेरुकन्दलुब्धपोत्रिपोत्रोत्खातसरस्तटभागे, चकितचातके, सञ्चरन्मत्स्यपुत्रिकापत्रिपटलमधुरध्वनिविहितमुदि, कदर्थि-

तथोक्ते। उद्भ्रान्तेति- उद्भ्रान्तस्य भ्रमणविशिष्टस्य शुककुलस्य कलकलेन कोलाहलेन संकुला व्याप्ताः कलमकेदाराः शालिक्षेत्राणि यस्मिन् तादृशे। प्रवेशितेति-प्रवेशिताः वेशेषु गृहेषु वर्षाकाले परित्यक्तेषु स्वस्वपूर्वस्थानेषु राजहंसा यत्र तथोक्ते। कंसेति-कंसारातेः श्रीकृष्णस्य देहस्य शरीरस्य द्युतिरिव द्युतिर्यस्य तादृशं द्युतलमम्बरतलं यत्र तादृशे। हंसेति- हंसैः तूलेन च तुलिता उपमिताः जरन्तः पुराणाः, जलरहिता इत्यर्थः। जलमुचो मेघा यत्र तथोक्ते। जलसंयोगकृतं नवत्वं, जलवियोगकृतञ्च जरत्त्वं बोध्यम्। 'हंसवत् तूलं हंसतूलं तत्तुलिते जरज्जलमुचि' इति दर्पणकारः। सान्द्रीकृतेति—सान्द्रीकृतं घनीकृतम् उद्योतितमिति यावत् इन्दुमहः चन्द्रप्रकाशः कौमुदीत्यर्थः येन तथोक्ते। मेघाद्यावरणाभावात् शरदि चन्द्रः दीप्यते इत्याशयेनेदं विशेषणम्। 'सान्द्रीकृतेन्द्रमहकामुकमुदि' इति दर्पणधृतपाठः। इन्द्रमहकामुकाः श्वानः। गामुकेति—गामुकजनैः गन्तृभिरध्वगैरित्यर्थः। मृदिता भग्नाः मधुतृणवीरुधः लतावल्ल्यो इच्छुकाण्डा यत्र तथोक्ते। मृदिताः प्रहताः मधुतृणानां वीरुधो यत्रेति वा। 'गामुक' इत्यत्र 'लषपत-' इत्यादिना उकञ्। सरसेति-सरसानां सानन्दानां सारसानां चक्रवाकाणां रसितैः कूजितैः साराः श्रेष्ठाः कासाराः सरांसि यत्र तादृशे। कशेर्विति—कशेरुकन्दानां मुस्ताकन्दानां लुब्धैः अभिलाषुकैः पोत्रिभिर्वराहैः पोत्रैः मुखैः उत्खाताः सरसां तटभागा यत्र तादृशे। 'कोलः पोत्री किरिः किटिः' इत्यमरः। चकितेति—चकिताः वित्रस्ताः चातका यस्मिन् तादृशे। चातकाः खलु वर्षाकाले सन्तुष्यन्ति। सञ्चरदिति—सञ्चरतां मत्स्यपुत्रिकापत्रिणां पक्षिविशेषाणां पटलस्य

भरी हुई थीं। प्रातःकाल खूब चमकदार-स्वच्छ था। धानोंके खेत, उड़ते हुए तोतोंके शब्दसे व्याप्त हो रहे थे। राजहंस अपने-अपने पूर्व स्थानोंमें पहुँच चुके थे आकाशमण्डल कृष्ण-शरीरकी कान्ति-नीलापन धारण किये हुए था। हंस, बरसे हुए मेघोंकी (श्वेत) समता धारण किये हुए थे। चन्द्रकिरणें स्वच्छ हो रही थीं। पथिकजन (पार्श्ववर्ती खेतोंमें-से) गन्ने तोड़ रहे थे, सारसोंके मधुर शब्दसे सरोवर सुन्दर प्रतीत हो रहे थे, मुस्ता-प्रेमी सुअर अपनी थूँथनीसे सरोवरोंके तट-प्रदेशोंको खोदा करते हैं, चातकगण भयभीत होते हैं, मेघ कहीं-कहीं ही दिखाई पड़ते हैं, तारे खूब चमकने लगते हैं, चन्द्रमा पश्चिम-दिशाके तिलकके समान शोभित होने लगता है—निर्मल हो जाता है। जल अत्यन्त

तकदम्बे, कम्बुद्विषि, प्रसृतविसप्रसूने, विरलवारिदे, तारतरतारके, वारुणीतिलकचन्द्रमसि, स्वादुतरसलिले, स्फुरितशफरचक्रकवलननिभृतबकानीके, मूकमण्डूकमण्डले, सङ्कोचितकञ्चुकिनि, काञ्चनच्छेदगौरगोधूमशालिशालिनि, उत्क्रोशदुत्क्रोशे, सुरभिसौगन्धिकगन्धहारिहरिणाश्वे, दरदलितकुमुदामोदिनि, कौमुदीकृतमुदि, निर्बर्हबर्हिणि, कूजत्कोयष्टिके, धृतधृतिधार्तराष्ट्रे, हृष्टकलमगोपिकागीताकर्णनसुखितमृगयूथे, कथीकृतयूथिके,

---

मधुरध्वनिना विहिता जनिता मुत् हर्षो यस्मिन् तथोक्ते। कदर्थितेति—कदर्थिताः पुष्पादिशोभारहिताः कृताः कदम्बा नीपवृक्षा येन तादृशे। कदम्बा हि वर्षाकाले फुल्लन्ति। प्रसृतेति—प्रसृतानि प्रवृद्धानि विसप्रसूनानि कमलानि यत्र तादृशे। 'बिसप्रसूनराजीव पुष्कराम्भोरुहाणि च' इत्यमरः। तारेति–तारतराः–अत्यन्तं विशुद्धाः तारका यत्र तथोक्ते। वारुणीति–वारुणीदिक् पश्चिमा दिक् तस्याः तिलकं भूषणं चन्द्रमाः यत्र तादृशे। स्फुरितेति—स्फुरितस्य इतस्ततो भ्रमतः शफरचक्रस्य मत्स्यसमूहस्य कवलनाय भक्षणाय निभृतः निश्चलतयाऽवस्थितः बकानीको बकसमूहो यत्र तादृशे। सङ्कोचितेति—सङ्कोचिताः कञ्चुकिनः सर्पा येन तादृशे। काञ्चनेति— काञ्चनच्छेदवत् स्वर्णखण्डवत् गौरैः गोधूमशालिभिः गोधूमकलमैः शालते शोभत इति, तादृशे। उत्क्रोशदिति—उत्क्रोशन्तः कूजन्तः उत्क्रोशपक्षिणो यत्र तादृशे। सुरभिरिति-सुरभिसौगन्धिकानां सगन्धकह्लाराणां 'सौगन्धिकन्तु कह्लारम्' इत्यमरः। गन्धहारी हरिणाश्वो वायुर्यत्र तथोक्ते। दरेतिः—दरदलितानाम् ईषद्विकसितानाम् कुमुदानाम् आमोदः अतिनिर्हारी गन्धो यत्र तथोक्ते। कौमुदीति—कौमुद्या ज्योत्स्नया कृता मुत् हर्षो यत्र तादृशे। निर्बर्हेति—निर्बर्हाः गलितपिच्छा बर्हिणो मयूरा यत्र तथोक्ते। कूजदिति—कूजन्तः कोयष्टिकाः टिट्टिभका यत्र तथोक्ते। धृतेति—धृतधृतयः सपरितोषा धार्तराष्ट्रा यत्र तथोक्ते। हृष्टेति-हृष्टानां मुदितानां कलमगोपिकानां सस्यपालिकाङ्गनानां गीताकर्णनेन सुखितानि सानन्दानि मृगयूथानि यत्र तादृशे।

स्वादिष्ट हो जाता है, बकपङ्क्तियाँ, इधर-उधर चलती हुई मछलियोंको खानेके लिये ध्यानावस्थितसे हो जाते हैं, सांप संकुचित हो जाते हैं—अपने-अपने बिलोंमें घुस जाते हैं (शरद् ऋतुमें सर्प बाहर कम निकलते हैं) वायु, सुगन्धित सफेद कमलकी गन्ध धारणकर बहने लगता है। कुछ खिले हुए कुमुदोंका गन्ध सर्वत्र फैल जाता है। मयूरोंके पिच्छ गिर जाते हैं, कोयष्टि—एक पक्षी जो पानीके ऊपर उड़ा करता है—शब्द करने लगते हैं, धार्तराष्ट्र-हंसविशेष-सन्तुष्ट हो जाते हैं, मृगोंके झुण्ड, खेतोंकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंके गीत सुनकर आनन्दित हो जाते हैं, इन्द्रधनुष विच्छिन्न-नष्ट-हो जाता है, दसों दिशाएँ, विकसित केसर-परागसे पीली हो जाती हैं, कमल खिलने लगते हैं और जो

ग्लायमानमालतीमुकुले, बन्धूकबान्धवे, विसूत्रितसौत्रामधनुषि, स्मेर-काश्मीररजःपिञ्जरितदशदिशि, विकस्वरकमले, शरत्समयारम्भे विजृम्भमाणे कन्दर्पकेतुरितस्ततः परिभ्रमन् काञ्चिच्छिलापुत्रिकां मम प्रियानुकारिणीति करेण पस्पर्श। अथ सा स्पृष्टमात्रैव शिलाभावमुत्सृज्य वासवदत्तास्वरूपं प्रपेदे। तामवलोक्य कन्दर्पकेतुरमृतार्णवमग्न इव सुचिरमालिङ्ग्य, 'प्रिये वासवदत्ते! किमेतत्', इति पप्रच्छ।

सा तु दीर्घमुष्णं च निश्वस्य प्रत्युवाच—आर्यपुत्र! अपुण्याया मन्दभाग्याया मम कृते महाभागो भवान् उत्सृष्टराज्य एकाकी परिभ्रमन् प्राकृतजन इव अवाङ्मनसगोचरं दुःखमनुबभूव। उपवासादिना तृषातुरे भवति निद्राश्रान्ते प्रथमप्रबुद्धाऽहं भवतः फलमूलादिकमाहरिष्यामीति

कथीकृतेति—कथीकृता 'यूथिकासीदिति'—कथामात्रावशेषीकृता यूथिका येन तादृशे। ग्लायमानेति—ग्लायमानं म्लानीभवत् मालतीमुकुलं यत्र तथोक्ते। विसूत्रितेति—विसूत्रितं विच्छिन्नं सुत्राम्णः इन्द्रस्य इदं सौत्रामं धनुर्यत्र तथोक्ते। स्मेरेति—स्मेरस्य विकसितस्य काश्मीरस्य कुङ्कुमस्य रजसा पिञ्जरिता पिङ्गलिता दश दिशो यत्र तथोक्ते। विकस्वरेति—विकस्वराणि विकसितानि कमलानि यत्र। 'विकासी तु विकस्वरः' इत्यमरः। शिलापुत्रिकां शिलाप्रतिमाम्।

एकाकी असहायः। 'एकादाकिनिच्चासहाये'। 'एकाकी त्वेक एककः' इत्यमरः। प्राकृतजनः साधारणजनः। 'प्राकृतस्तु पृथग्जनः' इत्यमरः। अवाङ्मनसेति—वाचो मनसश्चाविषयमित्यर्थः। 'अचतुर–' इत्यादिना वाङ्मनसशब्दो निपातितः। तृषा पिपासया। 'उदन्या तु पिपासा तृट्' इत्यमरः। आतुरः ससंकटः। आहरिष्यामि आनेष्यामि

(शरत्समय) बन्धूक–गुडहर पुष्प–के लिये बन्धुके समान है—उसे खिलानेवाला है—ऐसे समय कन्दर्पकेतुने इधर–उधर घूमते हुए किसी पत्थरकी पुतलीका, अपनी प्रियाके सदृश समझकर हाथसे स्पर्श किया। छूनेके साथ ही वह, पाषाण–स्वरूप छोड़कर वासवदत्ताके रूपमें परिवर्तित हो गई। उसे देखकर अमृत–सागरमें गोता लगाते हुए कन्दर्पकेतुने अच्छी तरह आलिङ्गनकर पूछा कि—'प्यारी वासवदत्ता! यह क्या बात है'?

उसने लम्बी और गरम सांस लेकर जवाब दिया—आर्यपुत्र! मुझ अभागिन और पापिनीके लिये आप राज्य छोड़कर साधारण मनुष्यके समान अकेले ही इधर–उधर घूमते हुए ऐसा दुःख भोग रहे हैं जिसे न तो वाणीसे कहा ही जा सकता है और न मनमें लाया ही जा सकता है। आप, उपवास और प्याससे व्याकुल हो सो गये। मैं आपसे पहिले ही जाग गई और यह सोचकर कि आपके लिये फल–मूल आदि ले आऊँ, फल आदि

विचिन्त्य फलाद्यन्वेषणाय वने नल्वमात्रमगच्छम्।

अथ क्षणेन तरुगुल्मान्तरितं सेनानिवेशं दृष्ट्वा 'किमयं ममान्वेषणाय तातस्य व्यूहः समायातः। आहोस्विदार्यपुत्रस्येति चिन्तयन्तीं मां चारकथितोदन्तो दूरात्किरातसेनापतिर्धावति स्म। ततोऽन्यः किरातसेनापतिस्तादृश एव तथाभूतया सेनयाऽन्वितो मृगयां गतः' सोऽपि तच्छ्रुत्वा धावति स्म।

अनन्तरं चिन्तितं मया यद्यहमार्यपुत्राय कथयामि तदा स एकाक्येभिरेव हन्तव्योऽथ न कथयामि तदैभिरहं घातनीयेति चिन्ताक्षण एव एकामिषलुब्धयोरिव गृध्रयोः तयोर्युद्धमासीत्। ततः प्रवृत्तशरासारदुर्दिन-

---

नल्वमात्रम् नल्वप्रमाणकं देशम्। प्रमाणे 'प्रमाणे द्वयसच्-' इति द्वयसच्। 'नल्वः किष्कुचतुःशतम्।' 'किष्कुर्हस्ते वितस्तौ च।' इत्यमरः।

अथेति—क्षणेन सेनासन्निवेशं दृष्ट्वेति चिन्तयन्तीं मां प्रति किरातसेनापतिर्धावति स्मेति सम्बन्धः। अन्तरितं तिरोहितम्। निवेशं शिविरम्। 'निवेशः शिविरम्' इत्यमरः। अन्वेषणं मार्गणम्। 'आकर्षणाये'ति पाठे आकर्षणं बलादाकृष्य नयनम्। व्यूहः सैन्यविन्यासः। 'व्यूहः स्याद्वस्तुविन्यासे वृन्दे निर्माणतर्कयोः।' इति विश्वः। चारेति—चारेण गूढपुरुषेण कथितः उदन्तः वार्ता यस्य तथोक्तः। मृगया आखेटः। एकामिषम् एकं भोग्यवस्तु, एकं मांसं च। 'आमिषं पुंनपुंसकम्। भोग्यवस्तुनि संभोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च।' इति मेदिनी।

प्रवृत्तेति—प्रवृत्तो यः शराणां बाणानाम् आसारः वर्ष एव शराणां जलानामासारः धारासम्पातः तेन जातं यत् दुर्दिनं तमः तेन स्थगिता आच्छादिता दिनकरकिरणाः सूर्यरश्मयो यत्र तादृशे। 'शरस्तु तेजने बाणे दध्यग्रे ना शरं जलम्।'

खोजनेके लिये नल्वमात्र गई (नल्व = ४०० हाथकी लम्बाईका एक परिमाण)।

क्षणभरमें ही, जब कि मैं वृक्ष और झाड़ियोंमें छिपी हुई सेनाका पड़ाव देखकर यह सोच ही रही थी कि 'क्या यह मुझे जबर्दस्ती पकड़नेके लिये आई हुई पिताकी सेना है? अथवा आर्यपुत्रकी सेना है? उसी समय, गुप्तचर द्वारा समाचार पाकर किरातसेनापति दूरसे ही (मेरी ओर) दौड़ा आरहा था। उधर वैसा ही एक दूसरा किरातसेनाध्यक्ष वैसे ही सेनाके साथ शिकारके लिये वहां आया, वह भी यह सुनकर मेरी ओर दौड़ा।

एकही मांस (खण्ड) के लिये दो गीधोंके समान वे दोनों परस्पर युद्ध करने लगे। जिस युद्ध में, बाणवर्षारूपी जलवृष्टिके अन्धकारसे सूर्य-किरणें ढक गई थीं, युद्धविद्या-

स्थगितदिनकरकिरणे, रणकर्मविशारदद्विरदकरदूरोत्क्षिप्तखड्गधरसुभटाश्लिष्यमाणविद्याधरविभ्रमे, समरदर्शनसञ्चरदनेकनभश्चरचारणरचितचक्रवाले, चरच्चारुभटखड्गखण्डितद्विपपदसमाप्तपिशाचिकाकर्णोलूखलाभरणे, कौतुकाकृष्टजनकृतवदननान्दीके, कान्दिशीकभीरुणि, प्रस्कन्नक्लीबजने, रणोद्यतजितकाशिनि रणखले, सृगालिकासृगालप्रार्थनीयेष्वामिषपिण्डेष्विव, जिह्मगदष्टेष्विव, श्वित्रदुर्भगेष्विव, शरीरेष्वनास्थां कलयन्तः, समं द्विषतां धनुषाञ्च जीवाकर्षणं योधाश्चक्रुः।

इति विश्वः। रणेति—रणकर्मणि युद्धव्यापारे विशारदैः समर्थैः द्विरदैः हस्तिभिः करैः शुण्डादण्डैः करणैः दूरोत्क्षिप्तैः खड्गधरसुभटैः खड्गधारियोद्धृभिः आश्लिष्यमाणः आश्रीयमाणः विद्याधरविभ्रमो विलासो विशिष्टो भ्रमो वा यत्र। 'विद्याधराणां सदा खड्गधारित्वादत्रापि सुभटानां खड्गधरत्वविशेषणम्। भ्रान्तिमानलङ्कारः।' इत्यभिनवभट्टबाणाः। समरेति—समरदर्शनाय युद्धावलोकनाय सञ्चरद्भिर्भ्रमद्भिरनेकैः नभश्चरचारणैः आकाशगामिदेवकुशीलवैः रचितं चक्रवालं मण्डलं यत्र तादृशे। 'चक्रवालन्तु मण्डलम्।' 'चारणाश्च कुशीलवाः' इत्यमरः। चरदिति—चरतां चारुभटानां खड्गैः खण्डितैः द्विपानां हस्तिनां पदैः चरणैः समाप्तानि सम्यक्प्राप्तानि पिशाचिकानां कर्णेषु उलूखलाभरणानि उलूखलाकाराणि भूषणानि यत्र तादृशे। कौतुकेति—कौतुकेन समरदर्शनकुतूहलेन आकृष्टैः जनैः कृतो वदननान्दी मुखध्वनिर्यत्र तादृशे। कान्दिशीकेति—कान्दिशीका भयपलायिता एव भीरवो जम्बुका यत्र तादृशे। 'कान्दिशीको भयद्रुतः।' इत्यमरः। 'शृगाले जम्बुके भीरुः शूरे वै दानवान्तरे।' इति विश्वः। प्रस्कन्नेति—प्रस्कन्नाः पतिताः क्लीबजनाः कातरा अधीरा यत्र तादृशे। रणेति—रणोद्यताः युद्धतत्परा जितकाशिनो जयशालिनो यत्र तादृशे। रणखले—रणमेव खलं धान्यादिमर्दनस्थानम्। जिह्मगाः सर्पाः। अनास्थाम् अना-

---

निपुण हाथियों द्वारा ऊपर फेंके हुए सखड्ग योद्धागण विद्याधरोंकी भ्रान्ति उत्पन्न कर रहे थे, युद्ध-दर्शनके लिये विचरते हुए अनेक आकाशचारी गन्धर्व चारों ओर एकत्रित होरहे थे, (रणभूमिमें) विचरते हुए बलिष्ठ योधाओंके खड्गोंसे कटे हुए हाथियोंके पैरों द्वारा पिशाचिकाओंने उलूखलाकार भूषण धारण किये हुए थे, जहां, कुतूहलवश आये हुए मनुष्य मुख-ध्वनि कर रहे थे, जो (युद्ध भूमि) कायरोंके लिये भयावह थी (अथवा जिससे कायरलोग भाग रहे थे), अधीर लोग जहां भाग रहे थे और शूरवीर युद्धके लिये उद्यत हो रहे थे; उसमें योद्धागण, सृगाल और सृगालियोंसे अभिलषणीय मांसपिण्डकी तरह सांप-काटे हुए और कोढ़के कारण अस्पृश्य शरीरोंमें अश्रद्धा-अनादर-दिखाते हुए धनुषकी डोरी तथा शत्रुओंका जीवन साथ ही साथ खींच रहे थे।

तत्र त्यागिन इव दानवन्तो मार्गणसम्पातं सहन्तः, समृद्धविलासिन इव शृङ्गारोपशोभिताः सहेमकक्ष्याश्च, सदारामा इव कदलीराजिताः सद्विजाश्च, निशानिवहा इव नक्षत्रमालोपशोभिताः, शरद्दिवसा इव समुल्लसत्पद्मा महामृगा बभुः ।

उत्कुपिता इव क्षमां मुञ्चन्तः, पयोधय इवावर्तशोभिनः सोर्मयश्च, उद्यानोद्देशा इव समल्लिकाक्षाः, कुलालगृहा इव अभिनवभाण्डहारिणः,

दरम् । कलयन्तः कुर्वन्तः । समम् एककालम् । जीवाकृष्टिम्—जीवस्य जीवनस्य आकर्षणमपनयनम्, जीवायाः मौर्व्याः आकर्षणमारोपणञ्च । 'जीवः स्यात्त्रिदशाचार्ये द्रुमभेदे शरीरिणि । जीवितेऽपि च जीवा तु वचायां धनुषो गुणे ।' इति हैमः ।

त्यागिनः दातारः । दानं मदजलं, वितरणञ्च । मार्गणानां बाणानां याचकानाञ्च सम्पातम्, आगमनं पतनञ्च । सहन्तः 'षह-मर्षणे' इति चौरादिकस्य आधृषीयत्वेन णिजभावे परस्मैपदम् । शृङ्गारो गजभूषणम्, आद्यो रसः सुरतं वा । कक्ष्या—गजमध्यबन्धनरज्जुः, काञ्ची च । 'कक्ष्या बृहतिकायां स्यात् काञ्च्यां मध्येभबन्धने ।' इति मेदिनी । सदारामाः सन्तः समीचीना आरामाः उपवनानि । कदली पताका रम्भावृक्षश्च । द्विजाः दन्ताः, पक्षिणश्च । नक्षत्रमाला तारकापङ्क्तिः, सप्तविंशत्या मौक्तिकैर्ग्रथितो हारश्च । पद्मानि वयोविशेषसूचका बिन्दवः, कमलानि च । महामृगाः गजाः । 'महामृगः पुष्करिदीर्घमारुतौ' इति हारावली । क्षमा शान्तिः, भूमिश्च ।

आवर्तः चक्रकारो रोमसन्निवेशः, अम्भसां भ्रमश्च । ऊर्मिः वेगः, वीचिश्च । 'ऊर्मिः पीडाजवोत्कण्ठाभङ्गप्राकाश्यवीचिषु ।' इति हैमः । 'पङ्क्तीकृतानामश्वानां नमनोन्नमनादिभिः । अतिवेगसमायुक्ता गतिरूर्मिरुदाहृता ।' इत्यश्वशास्त्रे इति प्राचीनटिप्पणी' इत्यभिनवभट्टबाणाः । मल्लिकाक्षाः अश्वविशेषाः । पक्षे—मल्लिकाः, अक्ष-

जिसप्रकार देनेवाले दानी पुरुष (अपने यहां) याचकोंका आना सहन करते, सम्पन्न विलासी पुरुष शृंगार-सजावटसे शोभित होते तथा सोने की काञ्ची धारण करते, सुन्दर बगीचे केलोंसे अलंकृत तथा पक्षियोंसे विभूषित होते, रात्रियाँ नक्षत्रपंक्तियोंसे सुशोभित होते और जिस तरह शरत्कालके दिनोंमें पद्म विकसित होते हैं उसी तरह उस युद्धमें हाथी, मद-जलकी वर्षा करते हुए बाण-वर्षा सहन कर रहे थे, उनके मस्तकपर सिन्दूरका भूषण बना हुआ था और वे सुनहरी जेवरबन्द धारण किये हुए थे, उनपर पताकाएँ उड़ रही थीं और उनके दांत चमक रहे थे, उनके गलेमें २७ मोतियों का हार पड़ा था और उनके शरीर पर अवस्थासूचक बिन्दु चमक रहे थे ।

जिसप्रकार क्रुद्धपुरुष क्षमा छोड़ देते, समुद्र भंवर और लहरोंसे शोभित होते, उपवनोंमें मल्लिकाक्ष नामक हंस विचरते, कुम्हारके घर नये वर्तनोंको धारण करते, सागर कौस्तुभमणिसे विभूषित होता, देवगण इन्द्रायुध-वज्र-से वृद्धि पाते और प्रकपी भट्टी-

रत्नाकरा इव सदेवमणयः, लेखा इव सेन्द्रायुधवृद्धयः, क्षीबा इव पानभूषितास्तुरङ्गमा विरेजुः।

कर्णाभ्यां श्रुतपरपरिवादाभ्याम्, खलोदयसाधुविपत्तिसाक्षिभ्यामक्षिभ्याम्, अस्थानेऽपि नमता मूर्ध्ना कीर्तयता चाकीर्तनीयान्यास्येन च वियुक्तोऽहं दिष्ट्येति हर्षादिव ननर्त चिरं कबन्धः।

ततः कृतपरिहासेनेव चक्षुः पिदधता, परापवादश्रवणभीरुणेव श्रोत्रवृत्ति स्थगयता, सोन्मादेनेव वायुवेगविक्षिप्तेन, पलितङ्करणेनेव सुरयोषि-

---

वृक्षाश्च। मल्लिकाक्षा हंसविशेषा वा। भाण्डम् अश्वभूषणम्, मृत्पात्रञ्च। 'भाण्डं पात्रे वणिङ्मूलधने भूषाश्वभूषयोः' इति मेदिनी। देवमणिः गलदेशस्थ आवर्तः। कौस्तुभमणिश्च। लेखाः देवाः। इन्द्रायुधाः अश्वविशेषाः, इन्द्रायुधं वज्रं च। क्षीबाः—मत्ताः। पानेति—पानेन रक्षणेन भूषिता अलङ्कृताः। पक्षे पानभुवि मद्यपानस्थले, उषिताः लुठिताः।

तत इति-अनन्तरं वक्ष्यमाणप्रकारेण रजोजातेन धूलिसमूहेन विजजृम्भे समुल्लसितम्। खलेति—खलानां दुष्टानामुदयस्य वृद्धेः साधूनां सज्जनानां विपत्तेश्च साक्षिभ्यां द्रष्टृभ्याम्। अस्थाने—अयोग्यस्थाने। कीर्तयता कथयता। अकीर्तनीयानि वक्तुमनुचितानि। दिष्ट्या भाग्येन। कबन्धः अपमूर्धकलेवरः।

पिदधता तिरोदधता। वृत्तिं व्यापारम्। सोन्मादः वातजन्योन्मादरोगविशिष्टः। वायुवेगेति-वायोः पवनस्य वेगेन विक्षिप्तेन इतस्ततः पातितेन। पलितंकरणेन शुक्लतासम्पादकेन अपलितं पलितं कुर्वन्त्यनेनेति पलितकरणम् तेन। 'आढ्यसुभग—'इत्यादिना कृञः

मद्यपीनेके स्थान-पर पृथ्वीपर लोटते रहते हैं उसी तरह उस युद्धमें घोड़े, (तेज दौड़नेके कारण) पृथ्वी को छोड़ रहे थे, वे भौंरी (गोल बालोंका चक्कर) से सुशोभित और बड़े वेगवान् थे। उनमें बहुतसे अश्व मल्लिकाक्ष जातिके थे। वे नवीन जेवर पहिने हुए थे, उनके गलेमें भौंरी थी। उनमें इन्द्रायुध जातिके भी बहुत अश्व थे (मल्लिकाक्ष जातिके अश्वोंके नेत्र सफेद और इन्द्रायुध जातिके अश्वोंके नेत्र काले होते हैं) और वे रक्षकोंसे अलंकृत हो रहे थे।

(योद्धाओंके) कबन्ध यह समझकर कि 'मैं दूसरोंकी निन्दा सुननेवाले कानों, दुष्टोंकी उन्नति और सज्जनोंका विनाश देखनेवाले नेत्रों, अयोग्यस्थानमें (बेमौके) झुकनेवाले मस्तक और अवाच्य बातें कहनेवाले मुखसे भाग्यवश छूट गया हूँ, मानों इस प्रसन्नतासे नाच रहा था।

इसके अनन्तर, युद्धभूमिमें धूली उड़ने लगी। जो, मजाक करनेवालेके समान आँखें बन्द कर रही थी, पर-निन्दा सुननेमें भीरुके समान श्रोत्रव्यापार-श्रवणशक्ति-को रोक

ताम् , अन्धकरणेनेव योधानाम् , तिमिरेणेव समरप्रदोषस्य, पतितेनेव विमुक्तगोत्रेण, मीमांसकदर्शनेनेव तिरस्कृतदिगम्बरदर्शनेन, सत्पुरुषेणेव विष्णुपदावलम्बिना, कुनृपतिनेव नक्षत्रपथगामिना, कलिङ्गेनेव कृतधूम्यारुचिना, राजसेनेव व्यवहितसत्त्वेन, अविनीतेनेव समुद्धतेन, असज्जनेनेव पिहितसत्पथेन, रणजेन रजोजातेन विजजृम्भे ।

अनन्तरं च नारायण इव कश्चिन्नरकच्छेदमकार्षीत् । कश्चिद्बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुतिवचनदर्शनोऽभवत् । कश्चित्क्षपणक इव कटावृत-

---

करणे ल्युन् । प्रदोषो रजनीमुखम् । विमुक्तेति-विमुक्ता त्यक्ता गोत्रा भूमिर्येन तत् तेन । पक्षे, विमुक्तं गोत्रं वंशः, तदाचारो वा येन तथोक्तेन। तिरस्कृतेति—तिरस्कृतं खण्डितमिति यावत् , दिगम्बराणां जैनानां दर्शनं सिद्धान्तो येन तादृशेन । पक्षे—तिरस्कृतं व्यवहितं दिशाम् अम्बरस्य आकाशस्य च दर्शनं येन तथोक्तेन । विष्णुपदम् आकाशम् , वासुदेवचरणञ्च । नक्षत्रपथः आकाशम् । पक्षे—क्षत्राणां क्षत्रियाणां पन्थाः मार्गः आचारः तं गच्छति अनुसरति इति क्षत्रपथगामी तादृशो न भवतीति नक्षत्रपथगामी तेन । कलिङ्गः पक्षिविशेषः । कृतेति—कृता धूम्यायां धूमसमूहे रुचिर्येन तथोक्तेन। 'पाशादिभ्यो यः' इति समूहार्थे यः । राजसः रजोगुणप्रधानेन । व्यवहितेति-व्यवहिता अन्तर्हिताः सत्त्वानि प्राणिनो येन स तथोक्तेन । पक्षे व्यवहितं तिरस्कृतं सत्त्वं सत्त्वगुणो येन तथोक्तेन । अविनीतो धृष्टः । समुद्धतेन ऊर्ध्वप्रसारितेन गर्विष्ठेन च। सत्पथः नक्षत्रमार्गः आकाशम् । साधुचरितञ्च । रणजेन युद्धोत्पन्नेन ।

नरकमिति—नरस्य मनुष्यस्य कं शिरः, पक्षे—नरको नरकासुरः। 'कं शिरोऽम्बुनोः' इत्यमरः। क्षपितेति—क्षपितं नाशितं श्रुतिः कर्णः, वचनं मुखं दर्शनं चक्षुश्च यस्य

रही थी, वायुके प्रकोपसे विक्षिप्त उन्माद रोगीकी तरह तेज पवनसे उड़ रही थी। जो, देवाङ्गनाओंके केश श्वेत और योधाओंको अन्धा कर रही थी। जो, युद्धरूपी प्रदोषका अन्धकार थी। जिसने, वंश-मर्यादाका परित्याग करनेवाले पतित-पापी-जनके समान भूमि छोड़ दी थी—भूमिसे उठकर आकाशमें चली गई थी। जो, क्षत्रियोचित आचारका परित्याग करनेवाले दुष्ट राजाके समान आकाशमें व्याप्त थी। जिसने, कलिङ्ग-पक्षिविशेष-की तरह धूम-मण्डलका आकार (अथवा रंग) धारण किया हुआ था। सत्त्वगुण को दबानेवाले रजोगुणके समान जिसने समस्त प्राणियोंको अन्तर्हित कर ली थी। जो, उद्दण्ड अशिक्षितजनके समान ऊपर फैली हुई थी और सन्मार्ग का परित्याग करनेवाले दुर्जनके समान जिसने आकाश ढक लिया था।

अनन्तर, नरकासुरके घातक नारायणकी तरह किसीने मनुष्यका सिर काट डाला। वेदवाक्य तथा दर्शन शास्त्रोंका विनाश-अनादर करनेवाले बौद्धसिद्धान्तके समान किसीके

विग्रहोऽभवत् । कश्चिदाशङ्कितोरुभङ्गः सुयोधन इव पयसि विवेश । कश्चित्सुरापद्विज इव पपात । कश्चित् शरतल्पगतो भीष्म इव गतायुश्चिरं श्वसन्नासीत् । कश्चित्कर्ण इव विक्लवीकृतसर्वाङ्गः शक्तिमोक्षमकरोत् । कश्चिद्राघव इव रावणवधमकरोत् ।

ततो विध्वस्तध्वजपटं पतत्पताकं च्युतचापचामरापीडं स्खलत्खड्गं तत्समस्तमुभयं मिथो जगाम हननं सैन्यम् ।

तादृशः । पक्षे—क्षपितं तिरस्कृतं श्रुतिवचनं वेदवाक्यं दर्शनं शास्त्रं येन तथोक्तः । क्षपणको बौद्धभिक्षुः । कटेति—कटेन गजगण्डेन शवेन वा आवृतो विग्रहः शरीरं येन स तादृशः । पक्षे—कटेन काशादिरचितरज्ज्वा आवृतो विग्रहो यस्य तथोक्तः । आशङ्कित इति—आशङ्कितः ऊरुः महान् भङ्गः पराभवो येन तथोक्तः । पक्षे—ऊर्वोः सक्थ्नोः भङ्गः विदलनम् । शरतल्पं शरशय्या । शक्तिः उत्साहः बलं वा । पक्षे—देवेन्द्रात्परिगृहीत आयुधविशेषः । रावणवधम्—रावयति शत्रूनिति रावणः वीरवरस्तस्य वधम् । पक्षे—पौलस्त्यहननम् ।

विध्वस्तेति—विध्वस्तो विनष्टो ध्वजपटो यत्र यस्य वा तथोक्तम् । पतदिति—पतन्ती अधोभवन्ती पताका वैजयन्ती यस्य तत् । च्युतेति—च्युतानि पतितानि चापानि धनूंषि चामराणि व्यजनानि आपीडाः शेखराश्च यत्र तादृशम् । हननं मरणम् । मिथः परस्परम् । अत्र 'च्युत–' इत्यस्य स्थाने 'व्यूहचारिभटकम्पितखड्गधेनुकम्' इति पाठान्तरम् । तत्र व्यूहः बलविन्यासः । खड्गधेनुः कृपाणी ।

कान, मुख और नेत्र नष्ट हो गये । व्यास आदिकी बनी हुई रस्सी जिसने शरीरमें लपेटी हुई है ऐसे क्षपणक बौद्धभिक्षुके समान किसीने (रक्षाके लिये) अपना शरीर मुर्दोंमें छिपा लिया था । कोई मद्यपी ब्राह्मणकी तरह गिर गया । जंघाओंके भङ्ग–टूटनेकी आशंका करनेवाले सुयोधनके समान कोई अपने महान् पराजयकी आशङ्का कर सरोवर–जलमें प्रविष्ट हो गया । कोई, शर–शय्यापर लेटे हुए भीष्मके समान क्षीणायु होकर देर तक श्वास ले रहा था । जिस प्रकार, कर्णने (घटोत्कचके साथ युद्धमें) क्षतविक्षत हो इन्द्रप्रदत्त शक्तिका प्रयोग किया था इसी तरह कोई वीर बुरी तरह घायल हो उत्साह छोड़ बैठा । किसीने, रावण–वध करनेवाले रामके समान, सबको रुलानेवाले किसी वीरका वध किया ।

तब, जिनकी ध्वजाएँ टूट गई थीं, पताका गिर गई थी और व्यूहमें विचरनेवाले वीरोंकी कृपाणिका—छोटी तलवार–कांप रही थी, ऐसी वे दोनों सेनाएँ परस्पर विनष्ट हो गईं ।

ततश्च यस्याश्रमः, तेन मुनिना पुष्पादिकमादायागतेन योगदृशा प्रतिपन्नवृत्तान्तेन 'त्वत्कृते ममायमाश्रमो भग्न' इति कुपितेन 'शिलामयी पुत्रिका भव' इति शप्ताऽस्म्यहम्। ततः क्षणेनैवेयं वराकी बहुदुःखमनुभवतीत्यनुग्रहादार्यपुत्रकरुणया च स मुनिर्याच्यमान आर्यपुत्रहस्तस्पर्शावधिकं शापमकरोत्।

ततः कन्दर्पकेतुः श्रुतवृत्तान्तेन समागतेन मकरन्देन तथा वासवदत्तया च समं स्वपुरं गत्वा हृदयाभिलषितानि सुरलोकदुर्लभानि सुखानि ताभ्यां सहानुभवन् कालमनेकं निनाय।

इति महाकविसुबन्धुविरचिता वासवदत्ता समाप्ता

योगदृशा ध्यानचक्षुषा। प्रतिपन्नेति—प्रतिपन्नः ज्ञातः वृत्तान्तो येन तादृशेन सता। वराकी दीना। आर्यपुत्रेति—आर्यपुत्रस्य करस्पर्शोऽवधिरन्तोऽस्य तादृशमकरोत्।

वासवदत्ता वासवदत्तामधिकृत्य कृताख्यायिका वासवदत्ता। 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' इत्यर्थे वृद्धाच्छः। तस्य लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलमिति लुप्। 'अभिनवभट्टबाणास्तु' वासवदत्ता वासवदत्ताचरितप्रतिपादको ग्रन्थः। अत्र वासवदत्तापदं ग्रन्थे औपचारिकं रत्नावल्यादिवत्। तेषां मते अस्य प्रबन्धस्य कथात्वेनाख्यायिकात्वाभावात् लुप् न। वार्तिके आख्यायिकापदेन गद्यकाव्यसामान्यं विवक्ष्यते इति न काप्यनुपपत्तिः।

इति श्री शङ्करदेवशास्त्रिविरचितवासवदत्ताव्याख्यानं समाप्तम्

अनन्तर, पुष्प आदि लेकर आये हुए आश्रमाध्यक्ष मुनिने, योगदृष्टिसे सब वृत्तान्त जानकर और क्रुद्ध हो 'तुम्हारे ही लिये मेरा यह आश्रम नष्ट-भ्रष्ट हुआ है अतः तू पाषाण-पुत्तलिका हो जाओ' मुझे यह शाप दे दिया। बादमें क्षणभरमें ही, यह बेचारी बड़ा दुःख भोग रही है, यह समझ कर कृपावश और आर्यपुत्रपर दया करके उस मुनिने, प्रार्थना किये जाने पर, आर्यपुत्रका कर स्पर्श शापकी अवधि कर दी।

इसके बाद, मकरन्दने आकर सारा वृत्तान्त सुना। तब कन्दर्पकेतु उसे तथा वासवदत्ताको साथ ले अपने नगर गया और वहां स्वर्गमें भी अलभ्य मनोवाञ्छित सुख, उन दोनोंके साथ भोगते हुए उसने बहुत समय व्यतीत किया।

इति वासवदत्तायाः हिन्दीव्याख्यानं समाप्तम्।